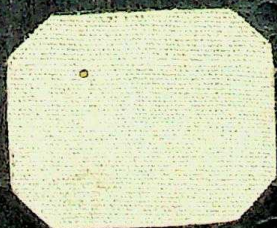


AKHAND JYOTI
1982 G. K. U.



COMPILED

आर्य समाज ज्योति



079522

पुस्तकालय
079522

कन्वे से प्राप्त संख्या 100
प्राप्ति दिनांक 12.10.82

21

सितम्बर १९८२

पढ़ें और पायें

—«●»—

सितम्बर	— १६८२
वर्ष	— ४५
अङ्क	— ६
वार्षिक चन्दा	— १५)
आजीवन	— १५०)

—«●»—

- १ आनन्दस्वरूपममृतं यद्विभाति १
- २ अध्यात्म तत्त्व ज्ञान के सात सूत्र १
- ३ मनोविज्ञान को नीति विरोधी न बनने दिया जाय १
- ४ जानना तो अपने को भी चाहिए १
- ५ सृष्टि सन्तुलन के कुछ शाश्वत सिद्धान्त १
- ६ मनुष्य में नई कलम लगने में देर नहीं १
- ७ संयोग कहकर अविज्ञात को झुठलाइये नहीं १
- ८ दुर्भाग्यग्रस्तों की दुनिया २
- ९ मनुष्य की अदृश्य सत्ता अति समर्थ २
- १० स्वप्न सार्थक भी होते हैं २
- ११ मात्र जीवट के बल पर जीवित हिम-मानव ३
- १२ काया में जल की प्रधानता—एक अद्भुत अनिवार्यता ३
- १३ मनीषा के भविष्य का शोध निमन्त्रण ३
- १४ ज्योतिर्विज्ञान की चिन्ती भौतिकी स्वीकार करें ३
- १५ तनाव की स्थिति उत्पन्न होने ही न दें ४
- १६ सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति गायत्री मन्त्र में ४
- १७ यज्ञ ऊर्जा की अनुपम एवं अद्भुत समर्थता ४
- १८ यज्ञ से अनेकानेक आधि-व्याधियों का निराकरण ४



वर्ष ४

अङ्क ६

विकास

के निय

का ज्ञान

जानते

सब जी

यद्विभा

भाविक

करें-स्व

आनन्द

आनन्द

उसकी

गायक

देखता

मिलन

साधना

सकते हैं

पता—अस्वण्ड-ज्योति संस्थान, मथुरा

ॐ भर्गो देवस्य धियो नः प्रचोदयात् ।

आर्यसङ्ख्योक्ति

प्रज्ञायोग

अध्यात्म विज्ञान

90

वर्ष ४५

अङ्क ६

सितम्बर १९८२

वापिक चन्दा १५)

आजीवन १५०)



आनन्दरूपममृतं यद्विभाति

हमारे ऋषि कह गये हैं कि “आनन्द से ही सभी जीवों की उत्पत्ति होती है। उसी से वे विकास पाते और अन्त में आनन्द में ही लीन हो जाते हैं।” इसका अर्थ यह नहीं कि ऋषियों को प्रकृति के नियमों का ज्ञान नहीं था अथवा वे कल्पना जगत में इतना विचरण करते थे कि उन्हें वस्तुस्थिति का ज्ञान नहीं रहता था। वायु, अग्नि और मृत्यु भी प्रकृति के कठोर अनुशासन में बंधे हैं, यह भी वे जानते थे। फिर भी उनका अन्तः—कवि हृदय आनन्द विभोर होकर यह गीत गाता था। आनन्द से ही सब जीव उत्पन्न होते हैं, विकास पाते हैं और आनन्द में ही लीन हो जाते हैं। “आनन्द रूपममृतं यद्विभाति” यह कहते हुए वे सृष्टि के आनन्द स्वरूप का ही वर्णन करते थे। आनन्द की पूर्णता की स्वाभाविकता ही इसी में है कि वह इस रूप में जो नियम व्यवस्था है, विधि अनुशासन है—अपनी अनुभूति करें—स्वयं को प्रकट करें। रूप हीन आनन्द रूप में प्रकट होने के लिये रचना करता है। गायक का आनन्द संगीत में, नर्तक का नृत्य में, कवि का छन्दों के रूप में प्रकट होता है। मनुष्य का असीम आनन्द भी कई रूपों में प्रकट होकर मनुष्य को निर्माता की पदवी दे देता है।

यह आनन्द जिसे—प्रेम—रस भी कहते हैं, स्वभाव से ही द्वित्वमय है। यह व्यक्ति को तो उसकी अनुभूति कराता है, आस-पास परिकर को भी उसके अन्तः के उल्लास का परिचय देता है। गायक गीत गाते हुए श्रोता भी होता है। प्रेमी अपनी प्रिय वस्तु के माध्यम से अपने ही रूप की छाया देखता है प्रिय वस्तु से वियोग की कल्पना भी उसी के आनन्द की कृति है जो वियोग के बाद फिर मिलन की इच्छा बन जाती है। परमात्मा का यह शाश्वत स्वरूप इन सबके अन्दर विद्यमान है। प्रेम साधना से—आत्मीयता विस्तार से—आनन्द, उल्लास को बिखेर कर हम सब उसका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं—यह एक शाश्वत सत्य है।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अध्यात्मतत्त्वज्ञान के सात सूत्र

अध्यात्म विद्या एक प्रकार का गुह्य विज्ञान है, रहस्यवाद है—यह भ्रान्ति बहुसंख्य व्यक्तियों के मन में जड़ जमाये बैठी है। सही मार्ग-दर्शन के अभाव में आत्मिक प्रगति के अधिकांश जिज्ञासु भटकते, निराश होते देखे जाते हैं। ब्रह्म को, मुक्ति को, ईश्वर को बहिरंग में नहीं, अपने अन्दर कैसे तलाशें—अपना विस्मृत स्वरूप पहचान कर किस प्रकार आगे बढ़ें, इसका मार्गदर्शन करने के लिये यहाँ अध्यात्म तत्त्वदर्शन के सात स्वर्णिम सूत्र दिये जा रहे हैं। इस सार गभित दर्शन में सारी ब्रह्मविद्या का मर्म छिपा पड़ा है। ये सात सूत्र इस प्रकार हैं—

(१) सूर्य का प्रतिबिम्ब लहरों पर चमकता है। हर लहर अलग-अलग दीखती है और सूर्य भी अगणित। किन्तु वस्तुतः समुद्र का जल भी एक है और सूर्य भी एक। मानवी सत्ता एक है जिसे समष्टि आत्मा-परमात्मा विराट्-विश्वमानव आदि कहते हैं। फिर भी शरीरों की भिन्नता के कारण वह लहरों की तरह अलग-अलग दीखता है। परब्रह्म एक है। उसी के प्रतिबिम्ब प्रकाश ज्योति के रूप में हर किसी के अन्तराल में विद्यमान है। कपड़ों की अनेक परतों से ढँक देने पर बल्व का प्रकाश धूमिल पड़ जाता है। इसी प्रकार कषाय-कल्मषों—मल आवरणों से आच्छादित रहने के कारण अन्तराल में विद्यमान ब्रह्म सत्ता भी प्रसुप्त जैसी स्थिति में जा पहुँचती है। उसका प्रकाश उपयुक्त मार्ग-दर्शन करने में अधिक सफल नहीं हो पाता। जीवन में प्रगति और प्रखरता भर देने में जैसा उसका सहयोग एवं अनुदान सम्भव है वह मिल नहीं पाता। यह कुसंस्कार ही आत्मा और परमात्मा के मध्य में खड़ी हुई दीवार है। इसे गिराने के लिए जिस सङ्कल्प, साहस और पुरुषार्थ की आवश्यकता पड़ती है उसी को आत्म साधना कहते हैं। यह मनुहार, रिश्वत, याचना या गिड़गिड़ाहट नहीं आत्मशोधन की प्रक्रिया है। कच्ची धातु को शोधने पर ही उसका वास्तविक स्वरूप निखरता और उपयुक्त मूल्य मिलता है और उपकरण, आभूषण

बनता है। ठीक इसी प्रकार आत्म शोधन की प्रक्रिया में जो जितना सफल होता है वह उसी स्तर का महामानव-भगवद् भक्त, सिद्ध पुरुष माना जाता है। आत्मिक प्रगति का राजमार्ग आत्मशोधन ही है।

(२) परब्रह्म की सत्ता ब्रह्माण्डव्यापी है। वह उत्पादन, अभिवर्धन और परिवर्तन की नियति व्यवस्था बनाती और समस्त गतिविधियों को स्वसंचालित क्रम से अनुशासन से बाँध कर रहती है। उसकी उपासना कर्मफल व्यवस्था स्वीकारने, मानवी गरिमा को अक्षुण्ण रखने और नीति मर्यादा का अनुशासन पालने भर से हो सकती है।

उपासना वाला परमेश्वर-परमात्मा—ससीम है। परब्रह्म अससीम। ससीम परमात्मा की उन सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय समझना चाहिए जो मानवी गरिमा का स्तर ऊँचा रखने की प्रेरणा देती है। साथ ही पात्रता के अनुरूप प्रतिफल अनुग्रह, अनुदान भी प्रदान करती है। इसे मनोविज्ञान का भाषा में सुपर चेतना—परिष्कृत अन्तःकरण कहते हैं। अध्यात्म भाषा में इसी को परम ज्योति कहते हैं। यह देव सत्ता विश्वव्यापी है। जो उसके साथ जिस स्तर का सम्पर्क साधता उसे वह तदनुसृत निहाल करती रहती है। यही आत्मा परमात्मा के बीच चलने वाला आदान-प्रदान है। भक्त और भगवान के बीच चलने वाले आदान-प्रदान का यही केन्द्र बिन्दु है। भक्ति का तात्पर्य है अन्तराल में विद्यमान उच्चस्तरिय आस्थाओं के साथ एकात्म भाव की—अद्वैत की—स्थापना। इसके लिए शरणागति, समर्पण, विसर्जन, विलय की मनोभूमि बनानी पड़ती है। बिन्दु का सिन्धु में, नाले का नदी में, पतंगे का दीपक में, चीनी का दूध में, पत्नी का पति में विलय विसर्जन इसका उदाहरण है कि आत्मा का परमात्मा में किस प्रकार एकात्म होना चाहिए। यह न तो कल्पना की उड़ान है न भावावेश का उत्तेजन, वरन् इसका सीधा और सुनिश्चित प्रमाण उपाय यह है कि भक्त अपनी क्षुद्र कामनाओं का ईश्वर के—विराट् के—आदर्श

के चरणों में समर्पण करे और अन्तराल में परमात्मा के संकेत, संदेश एवं अनुशान को पूरी तरह प्रतिष्ठित करे।

(३) विश्वव्यापी उत्कृष्टता ही परमात्मा है। समष्टि आत्मा—विराट् ब्रह्म यही है। इसे अन्तराल में धारण करने के लिए स्थान खाली करना और बुहारना पड़ता है। संकीर्ण स्वार्थपरता की गन्दगी हटानी पड़ती है। उसके स्थान पर अपने को विराट् का एक छोटा घटक-विश्व नागरिक अनुभव करना पड़ता है। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' की भावना विकसित करके घर परिवार के थोड़े से लोगों को ही अपना मानते रहने की संकीर्णता छोड़नी पड़ती है और विश्व मानव के—समष्टि जगत् के प्रति अपनी सघन आत्मीयता विकसित करनी पड़ती है। वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श को व्यावहारिक जीवन में उतारना पड़ता है। संक्षेप में स्वार्थ को परमार्थ में—संकीर्णता को व्यापकता में, कामना को भावना में परिणत करने का नाम ही ईश्वर प्राप्ति है। जो इस दिशा में जितना आगे बढ़ा वह उसी स्तर का भक्त बना और भगवान का अनुग्रह प्राप्त कर सकने में सफल हुआ है।

जीवन सत्ता को परमात्म सत्ता में—शुद्ध को महान में—परिणत करने की प्रक्रिया विशुद्ध भावनात्मक है। दृष्टिकोण, रुझान, स्वभाव, आदर्शवादी परिवर्तन देखकर ही यह अनुमान लगाया जाता है कि कौन किस स्तर का भगवद् भक्त है और किसे उस दिशा में कितनी सफलता मिली है। इसकी पृष्ठभूमि बनाने के लिए भगवान के—आदर्शवादी समुच्चय के साथ भक्त अपने आप को जोड़ने, लिपटने और घुटाने की भाव कल्पनाएँ करता रहता है। इसके लिए बेल का पेड़ के साथ लिपटना, बंसरी का वादक के होठों से लगना, सीप को स्वाति बिन्दुओं को आत्मसात करना, ईंधन का आग में खप जाना, झाड़ियों का समीपवर्ती चन्दन की सुगन्ध अपने में भर लेना, नाले का नदी में मिलकर तन्द्रूप हो जाना, पतंग का उड़ाने वाले के इशारे पर उड़कना, बाजीगर के इशारे पर कठपुतली का नाचना जैसे उदाहरणों के साथ आत्मा और परमात्मा की मध्यवर्ती सघन आत्मीयता-शरणागति की—ब्रह्म विकसित करनी होती है।

(४) वृक्ष का अस्तित्व एवं विकास उसकी जड़ों पर निर्भर रहता है। जड़ें दीखती नहीं। तना, टहनियाँ और पत्र, पुष्प ही दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु अदृश्य तथ्य यह है कि जड़ें ही जमीन से खुराक खींचती और पेड़ को विकसित परिपुष्ट बनाती हैं। व्यक्तित्व वृक्ष की जड़ें मनुष्य के अदृश्य अन्तराल में हैं। वे जितनी गहराई तक प्रवेश करती हैं—धरती से जितना खाद पानी खींच पाती हैं उसी अनुपात से वृक्ष बढ़ता है। वृक्ष को पत्तों, फलों फूलों से लदते देखकर यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि सुषमा आकाश के ग्रह नक्षत्रों ने भी स्वर्गस्थ देवताओं ने बरसाई है। बाहर का वैभव वस्तुतः आत्म सत्ता की पवित्रता और प्रखरता पर निर्भर है। बाहर भटकने में कस्तूरी मृग जैसी मूर्खता नहीं अपनानी चाहिए अन्तर्मुखी होना चाहिए। अन्तराल को कुरेदना चाहिए। जमीन को जोतने से ही अच्छी फसल उगती है। जिसने अपने कुसंस्कारों का जितना परिशोधन कर लिया, जो चिन्तन में उत्कृष्टता और चरित्र में आदर्शवादिता का जितना समावेश कर सका, समझना चाहिए उसकी समर्थता, सम्पन्नता और प्रगतिशीलता उसी अनुपात से सुनिश्चित हो गई।

आत्मदेव सबसे बड़ा देव है। उसकी सेवा साधना का प्रतिफल नकद धर्म का तरह सुनिश्चित है। हेय अन्तःकरण वाले नर-पिचास, नर-पशु, नारकीय, पिछड़े पतित बड़े जाते हैं और प्रतिकूलता, भर्त्सना एवं खीज से भरे रहते हैं। उदात्त परिष्कृत दृष्टिकोण, स्वभाव, एवं क्रिया कलाप समन्वय स्वर्ग कहलाता है। उत्कृष्ट व्यक्तित्व ही देवत्व है। संकीर्णताएँ, निकृष्टताएँ ही भव-बन्धन हैं जो उनसे उबर सका वह जीवन मुक्त कहलाता है।

(५) व्यक्तित्व में चुम्बकत्व रहता है। वह अपने सजातियों को खींचता और धेरता रहता है। वृक्षों का चुम्बकत्व बादलों को आकाश से खींचता और बरसने के लिए विवश करता है। धातुओं की खदान अपने चुम्बकत्व से दूर-दूर तक की भूमि से सजातीय कणों को खींचते और अपने भण्डार में निरन्तर वृद्धि करते रहते हैं। मनःस्थिति ही परिस्थितियों को—साथी सहयोगियों को—न्योन बुनाती है। फूल खिलता है तो भौरे गीत गाते

अखण्ड-ज्योति

और सितलियों के शोभायमान झुण्ड मडलाते हैं। गंदगी से सबखी, मच्छर और दुर्गन्धित कृमि-कीटक लदे रहते हैं। इसमें किसी का बाहरी हस्तक्षेप नहीं। अपने ही आन्तरिक स्तर एवं आकर्षण का चमत्कार है। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। वर्तमान को सुव्यवस्थित बनाकर कोई भी अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकने में समर्थ है। इसी प्रकार दुष्टता-भ्रष्टता अपनाने से लेकर आत्म हत्या करने तक की हर किसी को छूट है। किन्तु कृत्यों का प्रतिफल सृष्टि व्यवस्था का अविच्छिन्न अंग है। उज्ज्वल भविष्य की संरचना का एक ही उपाय है अपने वर्तमान का सुव्यवस्थित निर्धारण। उसका तात्पर्य है आकांक्षाओं-विचारणाओं और गतिविधियों का उत्कृष्टता परक निर्धारण। यह कार्य हर किसी को स्वयं करना पड़ता है। दूसरे इस प्रयास में यात्किंचित सहायता भर दे सकता है। उज्ज्वल भविष्य की संरचना, व्यक्तित्व को परिष्कृत करने की प्रक्रिया में स्वयं तत्परता बरतने पर निर्भर है। अपना काम आप ही करना चाहिए। ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं।

(६) उपासना के समस्त उपचारों का एकमात्र उद्देश्य है आत्मा को परमात्मा स्तर तक विकसित करने का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आत्मशोधन और आत्म परिष्कार के दो कदम अतवरत रूप से बढ़ाते चलना। आत्मशोधन अर्थात् संचित कुसंस्कारों का दृढ़पूर्वक उन्मूलन। आत्म परिष्कार अर्थात् सत्प्रवृत्तियों का अपने गुण, कर्म, स्वभाव में अधिकाधिक समावेश। पूजा अर्चा के-योग तप के-जप ध्यान के समस्त क्रिया कृत्य-आत्म-निर्माण एवं आत्म विकास का लक्ष्य प्राप्त कराने के उद्देश्य से ही सृजे गये हैं। कार्य कारण को संगति बिठाकर जो क्रिया-कृत्यों को-लक्ष्य का ध्यान रखते हुए-भावना पूर्वक सम्पन्न करते हैं उनकी उपासना सही होने के कारण सुनिश्चित परिणाम भी उत्पन्न करती है-जो ऐसे ही अन्धेरे में ढले फेंकते हैं और मनमाने अर्थ लगाते हैं उन्हें भटकावजन्य थकान के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता।

उपासना याचना नहीं है। याचना करने से भी किसी

को कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ कहाँ मिलती हैं। पात्रता और प्रामाणिकता ही सब कुछ रहे। याचना से उच्च पदवी किसे मिली है? प्रतिस्पर्धा जीतने वाले ही पुरस्कृत होते हैं।

(७) भक्त और भगवान के मध्यवर्ती आदान-प्रदान में कुछ भ्रान्तियाँ इन दिनों बुरा तरह घर कर गई हैं। इनसे जितनी जल्दी पीछा छुड़ाया जा सके उतना ही उत्तम है। “भगवान प्रशंसा के भूखे हैं। उन्हें भेंट उपहारों की भारी जरूरत पड़ रही है। जो प्रशंसा और पूजा की जितनी रिश्वत देता है, उस पर भगवान उतने ही प्रसन्न होते हैं। प्रसन्नता का उपहार एक ही है-पूजा अर्चा करने वाले को उचित अनुचित मनोकामनाओं को पूरी कर देना। आज यही भ्रान्ति जन-जन के मन-मन में घुसी हुई है। पूजा पत्री का सारा उपचार इसी भ्रान्ति की धुरी पर भ्रमण करता है। इस मान्यता को अपनाने वाले ‘सस्ते में बहुमूल्य लाभ’ प्राप्त करने की नीति का औचित्य अनौचित्य तक नहीं सोचते। यह तो ठग विद्या, जेब कटी की मछलीमारों चिड़ीमारों जैसी दुर्गति हुई। इसमें भक्ति के साथ जुड़ी हुई नीति निष्ठा कहाँ है? कम देकर अधिक पाने की लिप्सा अनैतिक एवं अवांछनीय है। भक्ति को उत्कृष्टता में तो सेवा साधना की उदारता का समावेश रहता है। अधिक देकर कम पाने या न पाने की मनोवृत्ति ही भक्ति भावना कही जाती है। भगवान को प्रसन्न करने और उनसे कुछ महत्वपूर्ण पाने के लिए इससे घटिया स्तर का दृष्टिकोण तनिक भी काम नहीं आता।

भगवान यदि तथाकथित भक्तों की मनुहार उपहार प्रक्रिया को ही सब कुछ मान बैठे और इतने भर आडम्बर से मनोकामना पूरी करदे तो फिर उन्हें न्यायकारी, निष्पक्ष, कर्म व्यवस्था का सूत्र संचालक कैसे कहा जा जा सकेगा? ईश्वर अपना स्तर और विधान समाप्त करके ही भक्तों के लिए उनकी कामना पूर्ति वाली नई आचार संहिता गठले तो ही यह आशा का जा सकती है कि पूजा उपचार के बदले मनोकामनाएँ पूर्ण होने का सिलसिला चल सके। इस स्वार्थान्ध परिकल्पना का अध्यात्म क्षेत्र से जितनी जल्दी बहिष्कार बन पड़े किया जाना चाहिए।

पात्रता
उच्च
पुरस्कृत

-प्रदान

ई हैं।

ना ही

हैं भेंट

और

उतने

ई-पूजा

ओं को

-मन में

भ्रान्ति

अपनाने

प्रति का

विद्या,

त हुई।

? कम

ीय है।

रता का

माने की

मान को

ए इससे

भाता।

उपहार

गडम्बर

प्रकारी,

कहा जा

समाप्त

ली नई

कती है

होने का

ना का

किया

ज्योति

मनोविज्ञानकी नीति विरोधी न बनने दिया जाय

मनुष्य में भी अन्य प्राणियों की तरह कुछ जन्मजात प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। वे पूर्व संचित अनुभवों एवं अभ्यासों का प्रतिफल हैं। विकास क्रम की लम्बी मंजिल पूरी करते-करते उसे बहुत कुछ भूलना और सीखना पड़ा है। इसी समुद्र मन्थन की उपलब्धियों से जितनी कुछ पूँजी हस्तगत है, उसी पिटारी को संचित प्रवृत्तियाँ कहा जा सकता है।

दिगत शताब्दी के मनोवैज्ञानिकों ने इन प्रवृत्तियों को असाधारण महत्व दिया है और लगभग पत्थर की लकीर जैसी मान बैठने की भूल की है। सामान्य-जन प्रेरणाओं से प्रेरित होकर रुचि लेते और कर्म करते हैं उसका पर्यवेक्षण करने पर उन्हें जिन अन्तःप्रेरणाओं का पता चला है उन्हें उन्होंने मौलिक प्रवृत्तियाँ मान लिया और यह कहना आरम्भ कर दिया कि वे अकाट्य हैं। इन्हीं के समन्वय से व्यक्तित्व बना है। इसलिए इन्हें हटाने की अपेक्षा तुष्ट करना चाहिए। इस प्रतिपादन का फल यह हुआ कि मनुष्य की स्थिति कठपुतली जैसी मानी गई और सोचा गया है कि जड़ पदार्थों की तरह ही मनुष्य की प्रकृति को बदलना भी अशक्य है। इस चिन्तन में मौलिक भूल यह होती रही है कि विकासवाद के उन सिद्धान्तों को भुला दिया गया जिन्हें अपनाकर एक कोशीय स्थिति से आगे बढ़ते-बढ़ते उस स्थिति तक पहुँचा जिसमें आज है। इस बीच जहाँ उसने अपनी काय संरचना में आश्चर्यजनक परिवर्तन किए वहाँ पुरानी आदतों, प्रवृत्तियों को भी सुधारता, समुन्नत बनाता चला गया। यदि यह क्रम भूतकाल में अपनाया जाता रहा है तो मनुष्य जावन में प्रवेश पाने के उपरान्त वह प्रक्रिया क्यों समाप्त हो जायगा? और क्यों तथाकथित मूल प्रवृत्तियाँ जड़वत् जहाँ की तहाँ बनी रहेंगी? क्या मनुष्य शरीर प्राप्त करते ही अब तक की प्रवृत्ति परिष्कार प्रक्रिया समाप्त हो जायगी?

विकासवाद और मनोविज्ञान की यदि संगति बिठाई

जाय तो भी यह आग्रह समाप्त हो जाता है कि मूल प्रवृत्तियों को परिष्कृत करने का प्रयास छोड़कर उनके तुष्टीकरण के लिए सिर झुका दिया जाय और रीति-नीति ऐसी अपनाई जाय जो प्रवृत्तियों के अनुरूप हो। देखना यह है कि मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियाँ क्या हैं? यों सभी मनोविज्ञानी इस सन्दर्भ में एकमत तो नहीं हैं फिर भी उन सबके प्रतिपादनों का जो सार निकलता है उसे इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है। (१) कामुकता (२) आत्मरक्षा (३) आक्रमण (४) वरिष्ठता (५) सहचर्य (६) अनुकरण (७) ईर्ष्या (८) दुराव (९) आधिपत्य आदि।

कहा जाता है कि इन्हीं उत्तेजनाओं से प्राणियों की विभिन्न प्रकार की आकांक्षाएँ उत्पन्न होती हैं और उनकी पूर्ति के लिए तरह-तरह के उपाय सोचने एवं प्रयत्न करने पड़ते हैं। आज की दुनिया में कल अच्छा स्थिति प्राप्त करने में अपने पुरुषार्थ जगाने, साधन बढ़ाने पड़ते हैं और दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा में उतरना पड़ता है। उसी आधार-पर जीवनचर्या चलती और कुशलता तथा सुविधा बढ़ती है। यह भी कहा जाता है कि यदि इस प्रवृत्ति प्रवाह में अवरोध खड़े किए जाएँगे तो मानसिक कुष्ठाएँ बढ़ेंगी और उनका शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और प्रगति क्रम में भी अवरोध उत्पन्न होगा।

यदि उपरोक्त प्रतिपादन को सही माना जाय तो उस 'सर्वाइवल ऑफ फिटेस्ट' के सिद्धान्त को भी सही मानना पड़ेगा जिसमें जंगल के कानून का समर्थन किया गया है। छोटी मछली को बड़ी मछली निगलती है, छोटे पौधों की खुराक ऊपर छाये हुए बड़े वृक्ष खा जाते हैं—वाली बात ही यदि प्रकृति को स्वीकार है तो फिर 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली उक्ति को ही न केवल प्राणि समुदाय में वरन् मनुष्यों में भी चरितार्थ होता पाया जायगा, अथवा प्रगति के निमित्त वैसा प्रचलन आरम्भ करना पड़ेगा।

अखण्ड-ज्योति

विचारणीय यह है कि क्या सचमुच ही इस जगत में उपभोग, आक्रमण की वृत्तियाँ ही प्रधान रहेंगी और उसी आधार पर कुछ बलिष्ठों को जीवित रहने और शेष दुर्बलों को उनका शिकार बनते जाने का सिलसिला चल पड़ेगा। अभी तो यह प्रवृत्ति मात्र मांसाहारी जीव-जन्तुओं में ही पाई जाती है और वह एक सीमित वर्ग पर ही लागू होती है, पीछे जब यह मान्यता प्रकृति प्रेरणा के नाम पर जोर-शोर से समर्थन प्राप्त करने लगेगी तो अपने पराये का भी भेद न रहेगा और जो वर्ग अभी सीमित उस आक्रामकता से बचे हुए हैं वे भी उसकी चपेट में आ जायेंगे? सिंह, व्याघ्र मात्र कुछेक पशुओं को ही अपने शिकार के लिए चुने हुए हैं। पक्षी उनके जबड़े पर बैठकर दाँतों में फँसा मांस निर्भय होकर निकालते कुरेदते रहते हैं, उनके लिए कोई संकट उत्पन्न नहीं होता। जलचर, थलचर, नभचर अपने-अपने वर्ग के कुछेक प्राणियों को आहार बनाते हैं और शेष के साथ छेड़खानी नहीं करते। पर जब भूख के लिए नहीं प्रगति के लिए आक्रामक वृत्ति का तुष्टीकरण आवश्यक माना जायगा और उसके लिए अधिकाधिक अवसर प्राप्त करने का उत्साह उठेगा तो उसके लिए क्षेत्र विस्तार की आवश्यकता पड़ेगी और अधिकाधिक आक्रमण करने, अधिकाधिक लाभ उठाने की यह सामन्तशाही एक स्वाभाविक प्रक्रिया बन जायगी जिसने मध्यकाल के अन्धकार युग में सारे नीति-नियम उठाकर ताक पर रख दिये थे और खुली लूट, कत्लेआम, युवा-युवतियों का दास-दासियों के रूप में अपहरण एक राज्य नियम बना दिया था। उन दिनों की रोमांचकारी घटनाओं की स्मृतियाँ तक आज भी दिल दहला देती हैं और गुहार उठती हैं कि हे भगवान् वे दिन लौटकर इस धरती पर फिर कभी न आयें।

उस मदान्ध प्रचलन को यदि मूल प्रवृत्तियों का तुष्टीकरण करने के नाम, प्रकृति प्रेरणा या प्रगति ध्ववस्था में सम्मिलित करके लोक मान्यता स्तर तक पहुँचा दिया गया तो फिर अन्य प्राणियों का तो इस धरती से अस्तित्व उठ ही जायगा, मनुष्य भी सुन्द-उप-सुन्द की कथा को चरितार्थ करने पाए जायेंगे और भाई को भाई का खून पीते देखा जायगा। पूर्वजों के उत्तरा-

धिकार में भाई ही प्रथम प्रतिद्वन्द्वी होता है। जब आक्रामकता और प्रतिद्वन्द्विता ही नीति रही तो अन्यों पर आक्रमण करने से पहले भाई को ही क्यों न समाप्त किया जाय? ताकि बँटवारे में जो घाटा पड़ने वाला था उसकी आशंका हा न रहे।

जब कामुकता प्रकृति प्रेरणा है और उत्साह उभारने के लिए आवश्यक है तो उसकी पूर्ति के लिए जहाँ-तहाँ भटकने का, नया अंश बढ़ाने की क्या आवश्यकता है? परिवार की स्त्रियाँ जो पहले से ही घर में रहतीं और खर्च कराती हैं उन्हीं से काम तृप्ति का काम भी क्यों न चला लिया जाय। वहिन या बेटी का अन्यत्र विवाह करने की क्या आवश्यकता? पिता, भाई आदि उन्हीं से सम्पन्न बनाकर सरलतापूर्वक तृप्ति क्रम क्यों न चलाते रहें! जब नीति-मर्यादाओं का मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियों में कोई स्थान ही नहीं है तो उन परम्पराओं का निर्वहण क्यों किया जाय जिनका समर्थन उपरोक्त मूल प्रवृत्तियों नहीं करतीं?

बच्चों को प्यार, दुलार देने और उनका पालन करने में एक ऐसा तत्व ही काम करता है जिनका न तो अर्थशास्त्र समर्थन करता है और न जिससे सुविधा सम्बन्धन में कोई सहायता मिलती है। ऐसी दशा में वात्सल्य को क्यों न प्रतिगामिता, कुरीति, मूढ़ मान्यता घोषित करके उसे समाप्त कर दिया जाय? जब आँगन में उगने फलने वाले शाक-भाजी पकाकर खाए जा सकते हैं तो बाल-बच्चों का वैसा ही उपयोग क्यों नहीं हो सकता।

ऐसी दशा में दया, उदारता, सेवा, दान, परोपकार जैसा उन सत्प्रवृत्तियों के समर्थन का भी कोई आधार नहीं रह जाता जो आत्म-रक्षा, सुरक्षा, ईर्ष्या, आक्रामकता आदि किसी भी मूल प्रवृत्ति का समर्थन नहीं करतीं।

मूल प्रवृत्तियाँ यदि वही हैं जिन्हें फ्रायड या उनके साथी प्रतिपादित करते हैं तो उनके साथ एक तथ्य और भी जुड़ा हुआ समझा जाना चाहिए कि प्रगति क्रम मिली आ रही पुरानी आदतें भर हैं। आदतों की जड़ें होती तो गहरी हैं, पर साथ ही समयानुरूप वे बदल भी रहती हैं। वचपन से लेकर यौवन काल में पहुँच तक ढेरों बार आदतें बदल जाती हैं। छोटा बच्चा बात

प्रेरणा का
खड़े होने
चढ़ने का
से लेकर
तीन वर्ष
पैरों चल
दूसरों का
जाती है
भव भा
भी मल-
ही समय
पर रोक
आये दि
आदत न
है इसे दे
ताल-मे
किस प्र
सैनिक
करने प
आसमान
गया। स
सुहने
कि उसी
प्रकार
गुजारें
हीगा, प
जनक ल
यह
प्रवृत्ति
वाले अ
भी उन
प्रेरणा
तथ्य भी
नैतिक
शासन
सुदुर्देश्य

अखण्ड-ज्योति

है। जब
अन्यों पर
प्राप्त किया
था उसकी
ह उभारने
जहाँ-तहाँ
प्रकटा है ?
हतीं और
भी क्यों न
वाह करने
से सम्पन्न
जाते रहें।
प्रवृत्तियों में
का निर्वहण
प्रवृत्तियों
का पालन
नका न तो
विधा सम्बन्ध
में वात्सल्य
ता घोषित
न में उगने
सकते हैं तो
सकता।
परोपकार
आधार नहीं
आक्रामकता
रतीं।
या उनके
तथ्य और
ति क्रम
तों की जड़
वे बदल
में पहुँच
च्चा बात

प्रेरणों का निरोधन करने और पड़े रहने की तुलना में खड़े होने या घूमने की इच्छा से अभिभावकों की गोदी में चढ़ने का प्रयत्न करता है और उसके लिए संकेत करने से लेकर मचलने तक का उपक्रम करता है किन्तु दो-तीन वर्ष का होते ही वह आदत बदल देता है और अपने पैरों चलने लगता है। इसी प्रकार असमर्थ रहने तक दूसरों का सहयोग पाकर काम चलाने की प्रवृत्ति भी हट जाती है। इतना ही नहीं उसमें लज्जा संकोच का अनुभव भा होने लगता है। शिशु की इच्छा होते ही कहीं भी मल-मूत्र त्यागने में संकोच नहीं होता किन्तु बड़ा होते ही समय और स्थान की अनुकूलता न होने तक उन्हें इस पर रोकथाम भी लगानी पड़ती है। ऐसे-ऐसे उदाहरण आये दिन देखे जाते हैं। विवाह के उपरान्त लड़कियों की आदत नई परिस्थितियों के अनुरूप किस तेजी से बदलती है इसे देखकर आश्चर्य होता है। परिस्थितियों के साथ ताल-मेल बिठाने में मनुष्य अपने स्वभाव, अभ्यास में किस प्रकार कितना परिवर्तन कर लेता है इसे कैदी, सैनिक और संन्यासी की पूर्व परिस्थिति के साथ तुलना करने पर लगता है कि न केवल परिस्थितियों में जमीन आसमान जैसा अन्तर आ गया वरन् स्वभाव भी बदल गया। साथ ही नया ढर्रा अनुकूल ही नहीं पड़ा वरन् सुहाने भी लगा। कई कैदी छूटते ही ऐसे उपाय करते हैं कि उसी अभ्यस्त ढर्रे में रहने के लिए फिर से किसी प्रकार जेल में जा पहुँचें और निश्चिन्तता पूर्वक दिन गुजारें। आरम्भ में उन्हें जेल का प्रवेश कष्टकारक लगा होगा, पर बाद में तो वही अनुकूल बन गया और संतोष-जनक लगने लगा।

यह उदाहरण बाहरी आदतों के सम्बन्ध में है। मूल प्रवृत्ति इससे गहरी होती है और प्रेरणा उत्पन्न करने वाले अन्तराल के साथ सम्बद्ध होती है। इतना होते हुए भी उन्हें अपरिवर्तनीय नहीं कहा जा सकता। मूल प्रेरणा में सुविधा संवर्धन, गौरव-सम्पादन, कामोपभोग जैसे तथ्य भी जुड़े हो सकते हैं। पर वे इतने प्रबल नहीं हैं कि नैतिक परतों के साथ विग्रह खड़ा करें या उनके अनुशासन की सर्वथा उपेक्षा करने लगे। यदि ऐसा होता तो सदुद्देश्यों के लिए कोई त्याग-बलिदान की बात सोचने या

करने में समर्थ ही न होता, वैसे उमंगें ही किसी के भीतर न उठतीं। वयस्क पुत्री के साथ अवसर मिलने पर पवित्रता बनाए रहने तक किसी के लिए भी शक्य न रहा होता। पर देखा इससे विपरीत ही जाता है। कसाई भी अपने बालकों तथा परिजनों को प्यार करते हैं और सहानुभूति भरा उदार व्यवहार करते हैं। आक्रमण की मूल प्रवृत्ति को निरन्तर परिपोषण मिलते रहने पर तो कसाइयों को सर्वथा क्रूर हो जाना चाहिए था। पर ऐसा कुछ होता नहीं है इससे प्रकट होता है कि मूल प्रवृत्तियाँ अकाट्य नहीं हैं।

गत शताब्दी के मनोविज्ञानी शोधकर्त्ताओं ने लगता है उथले अन्वेषणों में सन्तोष कर लिया है। सम्भव है उसने ओछे स्तर के, नैतिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को अपने अन्वेषण का निमित्त कारण चुना हो। हो सकता है उन्हें शोधकाल की वर्तमान स्थिति को ही सब कुछ मान बैठने का भ्रम रहा हो। यदि ऐसा न होता तो उन्हें मूल प्रवृत्तियों में कुछ और भी ऐसी बातें मिल सकती थीं जो आदर्शवादी आदतों की पुष्टि करतीं और बताती कि वे भी अवसर पाते ही प्रकट और प्रखर हो सकती हैं। माता का सन्तान के प्रति जो भावभरा अनुदान होता है उसे कहीं से सिखाने-सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ती और न उसके लिए कोई दबाव डालना पड़ता है। वह सब कुछ भीतर से ही उभर कर आता है। पीड़ितों के प्रति करुणा का, देशभक्ति जैसे उच्च उद्देश्यों के लिए प्राण उत्सर्ग करने का, ईश्वर भक्ति में भाव-विभोर होकर वराग्य लेने की जो उमंगें अन्तराल में उठती हैं उन्हें भी किसी मूल प्रवृत्ति का कारण होना चाहिए। यह सोचा गया होता तो विश्लेषण कर्त्ताओं को जितने सूत्र हाथ लगे हैं वे अधूरे प्रतीत होते और उस शृंखला में उनसे ऐसी खोजें भी की होतीं जो मूल प्रवृत्तियों की उत्कृष्ट परमार्थ परायणता को भी सम्मिलित कर लेतीं।

आदर्शवादिता का आचरण अपनाने पर अन्तराल में एक अलौकिक सन्तोष की अनुभूति होती है। यों बाहर से उसमें अनुदारता या अनाचार अपनाने की तुलना में घाटा, उपहास आदि सहने की ही अधिक सम्भावना रहती है। इतने पर भी यह सन्तोषानुभूति क्यों उठती

है? चित्त में शान्ति और प्रसन्नता क्यों लगती है? इसका कारण भी किसी न किसी मूल प्रवृत्ति से जुड़ना चाहिए था। हिंस्र प्राणियों का आहार के लिए आक्रमण करना प्रकृति प्रेरणा भी कहा जा सकता, पर मनुष्य जैसे शाकाहारी, समूहवादी आदर्शों में गरिमा अनुभव करने वाले विकसित प्राणी को भी उसी प्रवृत्ति का अनुयायी मान बैठना गलत है।

प्रवृत्तियों के विश्लेषण से जो निष्कर्ष निकले हैं वे एक पक्षीय एवं एक परिस्थिति की परिस्थिति वालों को सामने रखकर किए गए प्रतीत होते हैं। अन्यथा आदर्शवादी जीवनयापन करने वालों की उच्चस्तरीय आदतों को भी शोध-क्षेत्र में सम्मिलित किया गया होता और देखा गया होता कि जिन्हें आधारभूत प्रेरणा माना जा रहा है, वे शाश्वत नहीं, मात्र परिस्थितिजन्य हैं। परिस्थितियाँ बदलने पर उनमें आमूलचूल परिवर्तन होना सम्भव है। जबकि हर प्राणी को मरण से भय लगता है और खतरे से बचने के लिए भाग-खड़े होने की सूझती है तब सैनिक छावनियों में रहने वाले क्यों निरन्तर मौत के साथ खिलवाड़ करने में रस लेते और गर्व अनुभव करते देखे जाते हैं। वे युद्ध मोर्चे पर प्रबल शत्रु को देखते ही भाग खड़े होने की बात क्यों नहीं सोचते? देशभक्तों को सारा जीवन त्याग बलिदान से भरा-पूरा रखे रहने में स्वार्थ पोषक मूल प्रवृत्तियाँ बाधक क्यों नहीं बनती?

काम प्रवृत्ति यदि जन्मजात है और माता का स्तन पान करने में भी उसी कारण आनन्द मिलता है तो समर्थ होने पर सन्तान अपनी माता के साथ रमण करने में उत्सुकता क्यों नहीं प्रकट करती? ऐसे कुछ प्रश्न वर्तमान मनोविज्ञानियों की सूझ-बूझ से बाहर ही बने रहे होंगे। अन्यथा जान-बूझकर वे इतनी बड़ी समस्याओं को क्यों अनदेखा करते और क्यों अनमुलझाया छोड़ देते?

नीति निष्ठा थोपी हुई वस्तु नहीं है। उत्कृष्टता को मूल प्रवृत्तियों के विपरीत कहा जाय तो फिर मानवी सुसंस्कारिता को भी अमान्य ठहराना पड़ेगा और प्रगति अबाधित इतिहास को झुठलाकर कोई ऐसा प्रतिपादन खोजना पड़ेगा जो पशु प्रवृत्तियों को ही आधारभूत कारण ठहराए रहकर भी भावनात्मक उत्कर्ष का कोई और

कारण सिद्ध कर सके।

प्रवृत्तियों की प्रीढ़ता और समर्थता को मान लिया जाय और यह ठह किया जाय कि वे चेतना साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई ही हैं तो भी उक्त इतना सुधार तो बिना किसी असमंजस के किया जा सकता है कि उनकी तृप्ति के लिए ऐसे आधार भी ढूँढ जा सकते जो नीति-निष्ठा के साथ विग्रह न करें। प्रवृत्तियाँ काय तृप्ति और मनःतुष्टि के काम आती हों तो भी ऐसे अवसर उपलब्ध हो सकते हैं जिनमें स्वा और परमार्थ का समन्वय हो सके। इतना तो और अधिक सम्भव है कि सामान्य हास-परिहास से, विनोद कौतुक से भी उन्हें सन्तुष्ट किया जा सके।

जो हो, विज्ञ जनों ने देर से सही यह अनुभव किया है कि विज्ञान के नाम पर यदि उपयोगी मर्यादाओं

तमेव विदित्या अतिमृत्युमेति ।

नान्यः पन्था अयनाय विद्यते ॥

—श्वेताश्वर उपनिषद्

अर्थात्—उस आत्मा परमात्मा को जान कर व्यक्ति मृत्यु को जीत लेता है। मुक्ति प्राप्ति का इससे भिन्न और कोई उपाय नहीं है।

उल्लंघन चल पड़ा तो बांध टूटते ही बाढ़ का पानी सर्व फैलता चला जायगा और खेत-खलिहानों, घर-शौच को निस्सार करके रहेगा। अतएव वह आवश्यक है मानवी प्रगति की आधारभूत आदर्शवादी सत्प्रवृत्ति इस प्रकार अस्त-व्यस्त, नष्ट-भ्रष्ट न होने दिया जाय इसके लिए उन्होंने मनःशास्त्र की अधूरी खोजों अपर्याप्त माना और जो खोजना शेष रह गया है उसे पूरा करने का कदम बढ़ाया है। पिछली शताब्दियों हुए थे और भ्रमवश नीति-विरोधी, उच्छृंखलता समर्थ समझे गये थे। अब उनमें समुचित संशोधन किया चुका है। अपेक्षा यह की जा सकती है कि जब मन विज्ञान वर्तमान प्रायः सन्धि कोपार करके प्रीढ़ता पहुँचेगा वैसे ही प्रतिपादन करेगा जैसे कि दूरदर्शी में से की जाती है।

जानना तो अपने को भी चाहिए

कोई भी वस्तु तब तक उपयोगी सिद्ध नहीं होती जब तक उसके विषय में पूरी जानकारी न हो। वह चाहे कितनी भी कीमती क्यों न हो, उसका ठीक उपयोग कर सकना तथा लाभ उठा पाना तभी सम्भव है जब उससे पूर्णतया परिचित हों। एक मोटर ड्राइवर मोटर के कल-पुर्जों से अवगत होता है तभी वह भली-भाँति गाड़ी को चला सकने में समर्थ हो पाता है। मोटर के विभिन्न अंगों की जानकारी न हो तो वह कभी न कभी दुर्घटना कर बैठेगा। डाक्टर दवाओं के विषय में अच्छी प्रकार परिचित होता है। रोगों के उपचार कर पाने में इसी कारण वह समर्थ होता है। दवाओं एवं उनका मनुष्य शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन न हो तो किया गया उपचार सफल नहीं होता, उल्टे हानि की सम्भावना बनी रहती है।

इन्जीनियर को इन्जीनियरिंग का ज्ञान होता है। सुन्दर मकान, बड़े-बड़े कल-कारखाने, नहर, पुल का निर्माण कर सकना तभी सम्भव हो पाता है। अध्यापक अपने विषय में पारंगत होता है। विद्यार्थियों को ठीक प्रकार पढ़ा सकना उस विषय के गहन अध्ययन पर ही निर्भर करता है। अधिकचरे ज्ञान से वह विद्यार्थियों को ठीक प्रकार पढ़ा नहीं सकता उल्टे उनको अति ही पहुँचायेगा।

यह तो उन विषयों की बात हुई जिसके लिए विशेष भ्रम, समय एवं मनोयोग लगाना पड़ता है। तत्पश्चात् अभीष्ट सफलता मिलती है। उसका सही उपयोग बन पड़ता है। ऐसे सामान्य विषय भी हैं जिनकी जानकारी इस दृष्टि से आवश्यक होती है कि उनका प्रयोग हम दैनिक जीवन में करते हैं। दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं से सभी परिचित होते हैं। उनका प्रयोग विभिन्न कार्यों के लिए करते हैं। सामान्यतया ये जानकारीयाँ प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक होती हैं। सुचारु रूप से उनका उपयोग कर सकना तभी सम्भव हो सकता

है। जीवन से सम्बन्धित एवं नित्य प्रयोग में आने वाली चीजों से परिचित होना आवश्यक है और उपयोगी भी।

जिस सत्ता द्वारा विभिन्न वस्तुओं का-संसार का-बोध होता है उसको जानना इन सबकी अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यक है। आश्चर्य की बात यह है कि जड़-वस्तुओं से मनुष्य भली-भाँति परिचित होता है किन्तु जिसके कारण उनके अस्तित्व का बोध होता है उससे सर्वथा अपरिचित बना रहता है। विचारशीलता का इससे बढ़कर दोष कोई दूसरा नहीं हो सकता। 'मैं' का प्रयोग करते तो सभी हैं किन्तु 'मैं' क्या है, उसका स्वरूप क्या है-इस पर विचार करने तथा जानने का प्रयत्न विरले व्यक्ति ही करते हैं। इससे बढ़कर विडम्बना और क्या हो सकती है कि मनुष्य को अपने विषय में ही जानकारी न हो। अपना आपा ही पराया बना रहे। जीवन के स्वरूप, महत्व, लक्ष्य एवं उपयोग का पता न हो तो हर दृष्टि से दुर्भाग्यपूर्ण ही कही जायेगी। अपनी चीजों से अपरिचित बने रहने से तो उस पर अन्य व्यक्ति ही अधिकार कर लेते हैं।

शरीर और वस्तुओं के विषय में मनुष्य ने अनेकों प्रकार की जानकारीयाँ प्राप्त कीं। उन्हें सुधारने, सँवारने के लिए कितने शास्त्र गढ़े डाले। किन्तु अपना आपा ही अनजान बना रहा। दूसरों को खिलाया गया, उनकी सेवा की गई किन्तु अपनी सत्ता भूखी बनी रही। न उसे जानने का प्रयत्न किया गया और न ही सँवारने का। चेष्टा एवं मनोयोग इन्द्रियों की साज-सज्जा में लगी रही।

अमता, इन्द्रियों की आवश्यकता की पूर्ति में निर्योजित होने के कारण अपने से ही अनजान बने रहे। अपना वास्तविक परिचय तो अपने द्वारा ही सम्भव है। अपरिचित बने रहने का परिणाम ही है कि अपनी आत्मा की विभूतियों एवं उनसे मिलने वाले दिव्य अनुदानों से हम आजीवन वंचित रहते हैं। बाह्य आकर्षणों के पीछे

भटकने की मृग तृष्णा का कारण है—आत्म स्वरूप एवं उसकी सम्पन्नता का बोध न होना। यदि यह पता चल जाय कि अपना आपा कितना महान एवं सम्पन्न है तो जड़ पदार्थों के लिए की जाने वाली अनावश्यक एवं अवाञ्छनीय भाग-दौड़ समाप्त हो जाय।

बाह्य आकर्षणों में अत्याधिक लिप्त चेतना अपनी जानकारी से वंचित रह जाती है। जड़-पदार्थों में आवद्ध रहने से अपना परिचय मिल सकना सम्भव भी नहीं है। उनसे विमुख होने, आसक्ति को विरक्ति में बदलने से ही स्व की-आत्मा की-खोज कर सकना सम्भव है। बुद्धि भी जड़ इन्द्रियों के सदृश्य है। वह भी इन्द्रियों की सहयोगी बनी रहती तथा उनके हाँ में हाँ मिलाती रहती है। प्रवृत्तियों को बाह्य जगत से मोड़ले कर अन्तर्मुखी करने में इन्द्रियों के साथ वह भी अन्तरंग की खोज में सहयोग देने लगती है। जड़ तत्वों का ही उपादान होने के कारण बुद्धि भी शरीर को ही सब कुछ माने रहती है। अपने को शरीर मान लेना बुद्धि का एक बड़ा दोष है। 'मैं' का प्रयोग जिसके लिए किया जाता है वह शरीर नहीं है। इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि भी मैं नहीं हो सकती। इनकी जानकारी एवं अनुभव भौतिक संसार तक सीमित है। इनकी क्षमता भी अपनी स्वयं की नहीं है। स्पष्ट है कि जिसके कारण इन्द्रियाँ एवं बुद्धि संचालित है वह कारण सत्ता ही 'मैं' है। उसका प्रकाश ही इन्द्रियाँ को करने एवं बुद्धि को सोचने का सामर्थ्य देता है। उसके आलोक से ही संसार का स्थूल स्वरूप आकर्षण प्रतिभासित होता है। अन्यथा जड़ में आकर्षण कहाँ? आत्मा स्वयं आनन्द स्वरूप है। उसकी आनन्द-मयी किरणें ही वस्तुओं पर पड़कर आकर्षण उत्पन्न करती हैं। भूल यह होती है कि आकर्षण वस्तुओं में मान लिया जाता है जबकि उसका केन्द्र बिन्दु अन्तरात्मा है।

अपने स्वरूप एवं सामर्थ्य से परिचित न होने कारण ही व्यक्तियों, वस्तुओं एवं परिस्थितियों की पतिव्रता स्वीकार कर ली जाती है। अन्यथा अन्तरात्मा इतनी समर्थ है कि उसे बाह्य परिस्थितियाँ प्रभावित नहीं कर सकती। अविवेक के कारण ही वस्तुओं की पतिभासित

होने वाली सत्यता एवं नित्यता को यथाथं मग्न लिया जाता है। विवेक के प्रकाश में अपने विषय में बोध होते ही इनकी निस्सारता स्पष्ट मायूम होने लगती है।

अन्तरात्मा शान्त एवं आनन्द स्वरूप है। वह इतनी सम्पन्न है कि उसकी सम्पन्नता में कभी अभाव हो ही नहीं सकता कामनाओं की तृष्णा जो आजीवन मनुष्य को उद्विग्न बनाये रहती है, अन्तरंग की सम्पन्नता प्राप्त होते ही गल जाती है और कुछ पाने की कामना नहीं रह जाती है। जो भौतिक वस्तुएं आकर्षक प्रतीत होती थी वे ही नीरस लगने लगती हैं। अपने दिव्य स्वरूप के अलौकिक आनन्द की मस्ती में इन्हे साधक को जड़-वस्तुओं एवं संसार की वास्तविकता का बोध हो जाता है। ऐसी स्थिति में पहुँचा हुआ साधक शरीर को-इन्द्रियों

~~~~~  
 यथा वायु समाश्रित्य वर्तते सर्व जन्तवः ।  
 तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥  
 यस्मत्त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम् ।  
 गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥  
 जिस प्रकार सारे प्राणी वायु के आश्रित रहते हैं,  
 उसी प्रकार सारे आश्रम गृहस्थ के आश्रित रहते हैं ।  
 ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास तीनों आश्रमों  
 को अन्नादिक के दान से पालन करने वाला गृहस्था-  
 श्रम ही सबसे श्रेष्ठ है ।  
 ~~~~~

को-वाहन मानकर उनका सदुपयोग श्रेष्ठ कार्यों के लिए करता है।

शरीर-वस्तु एवं संसार की जानकारी एक सीमा तक उपयोगी हो सकती है। किन्तु इनसे भी आवश्यक है—अपने विषय में जानना—अपनी क्षमताओं से परिचित होना। अपने विषय में अपरिचित बने रहने से जीवन का सही उपयोग कर सकना सम्भव नहीं हो पाता। जो परिणाम एक अनाड़ी ड्राइवर, अज्ञानी डाक्टर एवं उथली जानकारी रखने वाले अध्यापक का होता है, वही मनुष्य का भी होता है अपना आपा ही अनजान बना रहा जो मनुष्य जीवन का इससे बढ़कर दुर्भाग्य दूसरा कोई नहीं हो सकता है। अपने को जानना ही मानव जीवन का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हर सम्भव प्रयास किये जाने चाहिए।

सृष्टि सन्तुलन के कुछ शाश्वत सिद्धान्त



समस्याएँ असन्तुलन से उत्पन्न होती हैं। व्यक्ति और समाज, पिण्ड और ब्रह्माण्ड सबमें ही यह नियम समान रूप से लागू होता है। असन्तुलन शरीर में विभिन्न प्रकार के रोगों के रूप में प्रकट होता है और समाज में वह विघटन, विद्वेष एवं अवांछनीय प्रवृत्तियों के रूप में अपना परिचय देता है। जड़ परमाणुओं में विस्फोट इस तथ्य का परिचायक है। अन्तर्ग्रही विधोभों में यह व्यतिक्रम ही काम करता दिखाई पड़ता है। चाहे जड़ परमाणु हो अथवा चेतन शरीर, समाज हो अथवा ब्रह्माण्ड ये सभी सुव्यवस्थित एवं उपयोगी सुसन्तुलन के कारण ही बने रहते हैं।

सात सिद्धान्त ऐसे हैं जो व्यक्ति, ब्रह्माण्ड सभी को समान रूप से प्रेरणा देते, सन्तुलन रखते एवं प्रगति पथ पर आगे धकेलते हैं। वे हैं—(१) सहकारिता (२) संघर्षशीलता (३) सामन्जस्य की प्रवृत्ति (४) क्रियाशीलता (५) अनुशासन (६) गतिचक्र (७) एकात्मता। ये ही जड़-चेतन की सुव्यवस्था एवं प्रगति के आधारभूत कारण हैं।

शरीर का स्वास्थ्य एवं विकास इन्हीं पर अवलम्बित है। आकार एवं प्रकार में शरीर के अंग-प्रत्यंग दीखते भर अलग-अलग हैं। इनकी क्रियाओं में भी अन्तर दिखाई पड़ता है। शरीर की गतिविधियों को सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो मालूम होगा कि एक अंग की उपयोगिता दूसरे के सहकार पर टिकी हुई है। हाथ काम करता है, पैर शरीर का बोझ सम्हालता है। दोनों के कार्य अलग हैं पर अवलम्बित हैं—एक दूसरे पर। पैर वाणी हो जाय तो शरीर को खड़ा रखना मुश्किल होगा। हाथ अपनी भूमिका सिकोड़ ले तो श्रम के अभाव में भूखो मरने की स्थिति आ जायेगी। शरीर के भीतरी अवयवों पर भी यही नियम लागू होता है। भोजन करने से लेकर, पाचन से रसों में परिवर्तन तक और रसों से रक्त, मज्जा, हड्डी एवं मांस बनने तक की प्रक्रियाओं में विभिन्न संस्थानों की सहयोग भरी भूमिका ही सम्पन्न होती दिखाई पड़ती

है। परिवार एवं समाज की सुव्यवस्था भी सहकार की भावना पर आधारित है। समाज रुپی बृहद् परिवार का हर व्यक्ति इकाई है। इसमें रहने वाले व्यक्तियों की योग्यताओं एवं क्षमताओं में अन्तर है। कोई किसी कार्य में निपुण है तो कोई किसी में। एक व्यक्ति प्रत्येक कार्य में दक्ष नहीं हो सकता।

जीवनरूपी गाड़ी को गतिशील रखने के लिए विभिन्न प्रकार के साधनों की आवश्यकता पड़ती है। जिनकी आपूर्ति कोई भी व्यक्ति अपने एकांगी बलवृत्ते नहीं कर सकता। परस्पर एक दूसरे के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। कृपक अन्न पैदा करता है और उदार हृदय में एक छोटा-सा भाग अपने लिए रखकर शेष समाज के लिए दे देता है। श्रमिक विभिन्न प्रकार के उत्पादनों द्वारा दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की आपूर्ति करते हैं। व्यवसायी वस्तुओं के आदान-प्रदान द्वारा उन्हें उपलब्ध कराने में सहयोग देते रहे हैं। अध्यापक शिक्षा के अनुदान से समाज का बौद्धिक विकास करते हैं। चिकित्सक स्वास्थ्य रक्षा का दायित्व सम्हालते हैं। सबका कार्य अलग-अलग है, पर समाज का प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे पर किसी न किसी कार्य के लिए आश्रित है। सभी के सहकार से ही जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की आपूर्ति होती है।

व्यक्ति एवं समाज के चेतन घटक में ही नहीं, पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड के जड़ परमाणुओं में भी सहकार की परम्परा ही उनके सन्तुलन को बनाये रखती है। ग्रह नक्षत्र अपनी सम्पदा को अपने तक ही सीमित नहीं रखते दूसरे ग्रहों को भी देते हैं। सूर्य की उदारता तो देखते ही बनती है। अपने मण्डल के समस्त ग्रह नक्षत्रों को ऊर्जा एवं प्रकाश बाँटता रहता है। अन्यान्य ग्रह भी सन्तुलन चक्र में अपना सहयोग देते हैं। अन्तर्ग्रही आदान-प्रदान से ही सामन्जस्य बना रहता है।

सहयोग के साथ संघर्ष का क्रम भी अनिवार्य रूप से

अखण्ड-ज्योति

सितम्बर १९६२

जुड़ा है। सन्तुलन के लिए यह भी आवश्यक है। सहयोग सजातीय के प्रति-मत्प्रवृत्तियों के प्रति होना आवश्यक है। विजातीय तत्व-अवांछनीयताओं के प्रति नहीं। वहाँ तो संघर्ष का रास्ता अपनाता पड़ता है। विकृतियाँ समय-समय पर कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं। वे शरीर की हों अथवा समाज की उनसे लोहा लेना पड़ता है। स्वास्थ्य संरक्षण के लिए शरीर के अंगों को आपसी सहकार जितना आवश्यक है उतना ही बाहरी अवरोधों से सुरक्षा के उपाय भी। नेत्र को हर क्षण धूल के कणों, छोटे कीड़ों का सामना करना पड़ता है। रक्त के श्वेत कण बाहर से आये विषाणुओं को मारने के लिए अपनी पूरी जक्ति से जुट जाते हैं। हार और जीत का—मरने और मारने का फैसला हुए बिना वे कुशल सैनिकों की भाँति युद्ध मोर्चे पर डटे रहते हैं। संघर्ष की यह प्रवृत्ति ही शरीर संस्थान की बीमारियों के बाह्य प्रकोप से बचाये रहती है। कमजोरी जराजीर्ण स्थिति में इसके अवरोध आने से ही अनेकों प्रकार की बीमारियाँ अपना अड्डा शरीर में जमा लेती हैं।

समाज की मुख्यवस्था के लिए भी सहकार के साथ-साथ संघर्ष का होना आवश्यक है। अवांछनीय तत्व वहाँ घुसपैठ मचाते हैं जहाँ वे देखते हैं कि विरोध का अभाव है। विरोध न करने के कारण ही चन्द डाकू आततायी अपने प्रयोजन में सफल हो जाते हैं अन्यथा उनकी इतनी सामर्थ्य कहाँ कि विपुल जन-समुदाय से लोहा ले सकें। समाज का पराभव सहकार के अभाव में ही नहीं होता वरन् अवांछनीयताओं के प्रति संघर्ष न करने के कारण भी होता है।

सन्तुलन के लिए तीसरा सिद्धान्त है—सामंजस्य की प्रवृत्ति—परिस्थितियों से ताल-मेल बिठाने की कला। सहनशीलता सहिष्णुता का गुण। मीसम के अनुरूप शरीर अपने को ढाल लेता है। शीत ऋतु में ठण्ड सहन करने की क्षमता तथा गर्मी में ताप सहन करना। अभ्यास करने पर कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी रहने की सामर्थ्य विकसित कर लेता है। ध्रुव प्रदेशों की भयङ्कर ठण्ड एवं सहारा जैसे मरुस्थल की भीषण गर्मी में भी शरीर अपने को ढाल लेता है। शरीर की सहनशीलता

एवं सहिष्णुता की धनता ही उसका अस्तित्व बनाये रखनी है।

सामंजस्य समाज की मुख्यवस्था के लिए भी अपनाता पड़ता है। समाज में रहने वाले व्यक्तियों के स्वभाव-अभिस्त्रिचों में भारी अन्तर होता है। हर मनुष्य में देव और दानव भी—सद्गुण है और अवगुण भी। उनसे तालमेल बिठाकर चलना पड़ता है। अवगुणों से अपने को बचाये रखने तथा सद्गुणों से लाभ उठा लेना सामंजस्य दृष्टि द्वारा ही सम्भव है। हर व्यक्ति को न तो अपने इच्छानुवर्ती बनाया जा सकता है और न ही स्वभाव में परिवर्तन किया जा सकता है। आपसी विग्रह परस्पर ताल-मेल न बिठा पाने के कारण ही उत्पन्न होता है।

जड़-चेतन में, व्यक्ति एवं समाज में सन्तुलन के लिए चौथा महत्वपूर्ण पथ है क्रियाशीलता का। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय स्पष्ट होगा कि विराम नाम की स्थिति का कहीं भी अस्तित्व नहीं है। स्थिर-जड़ दिखाई पड़ने वाली वस्तुओं के परमाणुओं में भी तीव्र गति हो रही है। बिना विराम लिये परमाणु के कण प्रोटान, इलेक्ट्रॉन एक निश्चित गति से नाभिक के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहे हैं। वस्तुओं का अस्तित्व इस गति प्रक्रिया पर ही टिका हुआ है। यह एक क्षण के लिए भी बन्द नहीं होता स्थिरता का अर्थ होगा वस्तु को अपनी सत्ता ही गँवा बैठना।

विराट् सृष्टि का कोई भी घटक स्थिर नहीं रहता। पृथ्वी २६८८ कि० मी० प्रति सैकण्ड की गति से चक्कर काट रही है। चन्द्रमा तीव्र रफतार से दौड़ा चला जा रहा है। सूर्य भी स्थिर नहीं है। अन्त्याय ग्रह नक्षत्रों की भी यही स्थिति है। उनमें से एक भी विराम के मूड में आ जाय तो सारा सन्तुलन डगमगा जायेगा।

बाह्य रूप से स्थिर दिखाई पड़ते हुए भी शरीर के भीतर तिरन्तर गति बनी हुई है। श्वास १८ बार प्रति मिनट के हिसाब से भातर आता है। हृदय ७२ से ७५ बार प्रति मिनट धड़कता है। हृदय ५-६ लीटर रक्त प्रति मिनट फेंकता है। रक्त ०७ से ० मी० प्रति सैकण्ड की गति से चलता है। शरीर के भीतरी अवयव कभी

भी शान्त नहीं बैठते। स्थिरता तो मृत्यु का पर्याय है—
क्रियाशीलता जीवन का। शरीर ही नहीं परिवार एवं
समाज को सुविकसित करने, जीवन बनाये रखने में गति-
शीलता की ही भूमिका होती है।

पाँचवा पक्ष है—अनुशासन का। अनुशासन के अभाव
में क्रियाशीलता उच्छृंखल बन जाती है। यही जड़ पर-
माणुओं को आपस में बाँधे रहता है परमाणु के प्रत्येक
कण अपनी निर्धारित कक्षा एवं गति में चक्कर काटते
रहते हैं। अनुशासन की मर्यादाओं का उल्लंघन करते ही
अणुकर विस्फोट का संकट उत्पन्न हो जाता है। शरीर
के प्रत्येक अवयव अपने सीमा क्षेत्र में रहते हुए अपनी
निर्धारित भूमिका सम्पन्न करते हैं। उनके बागी होते,
उच्छृंखल बनते ही अनेकानेक रोग उठ खड़े होते हैं तथा
जीवन-मरण तक का संकट उत्पन्न हो जाता है।

पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में अनुशासन-
हीनता, उच्छृंखलता एवं अनैतिकता को बढ़ावा देती
है। नैतिकता का अकुशल रहे तो परिवार को टूटने
एवं समाज को बिखरने देरी नहीं लगती। जड़ सृष्टि ही
अथवा चेतन दोनों के सन्तुलन के लिए अनुशासन का
होना आवश्यक है।

जड़-चेतन को सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिए एक
स्वचालित प्रक्रिया चल रही है। जिसे गतिचक्र कहते हैं।
जिसका एक निश्चित प्रयोजन है। सृष्टि का प्रत्येक घटक
अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति में संलग्न है। बादल बरसता है
पृथ्वी की प्यास बुझाने के लिए। नदियाँ प्राप्त जल को
समुद्र को सौंप देती हैं। समुद्र भी संग्रह नहीं करता।
प्राप्त जल को वाष्प बनाकर उड़ा देता है जो बादलों में
परिवर्तित हो जाता है। यह चक्र बिना किसी व्यतिरेक
के चलता रहता है।

शरीर में भी यह परिवर्तन चक्र सतत् देखा जा

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहितः ।

ना शान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैतमाप्नुयात् ॥ —कठोपनिषद्

अर्थात्—जो मनुष्य निषिद्ध कर्मों से विरत नहीं है, जिसने अपनी इन्द्रियों को जीता
नहीं है, जिसका मन एकाग्र नहीं है, जिसका चित्त शान्त नहीं हुआ है—उसको आत्म-साक्षात्कार
कभी नहीं होता है ।

सकता है। भोजन से रक्त, रक्त से रक्त, मांस-मज्जा बनने
की प्रक्रिया निर्बाध रूप से सम्पन्न होती रहती है। नई
कोशिकाएँ उत्पन्न होती हैं—पुरानी का निष्कासन होता
है। शरीर मरता है—नये का प्रादुर्भाव होता है। फलतः
जीवन-मरण का चक्र जीव-जगत का प्रवाह बनाये रहता
है। यदि वह चक्र रुक जाय तो जीवन का अस्तित्व ही
संकट में पड़ जायेगा।

सहकारिता, संघर्षशीलता, सामन्जस्य, क्रियाशीलता,
अनुशासन, गतिचक्र के सिद्धान्त एकात्मकता के बिना
अधूरे रह जाते हैं। समस्त सृष्टि में—जड़-चेतन में एक
सत्ता समायी हुई है। उसे अभिव्यक्त करने, सम्बन्ध
जोड़ने के लिए ही सभी व्यापार चल रहे हैं। एक सत्ता
में समस्त सृष्टि गुंथी हुई है। एक ब्रह्म ही सर्वव्यापी है—
सबमें समाया हुआ है। सभी सिद्धान्त इसी तथ्य का
बोध कराते हैं। प्रकृति एवं जीव जगत के बीच काम
कर रहा इकात्मिक सन्तुलन उस एक सत्ता का ही
परिचय देते हैं। जैसे-जैसे इस दिशा में मनुष्य के कदम
आगे बढ़ेंगे वह विराट् एक चेतता और भी स्पष्ट रूप में
व्यक्त होती जायेगी। अनुभूति का अभाव ही समाज में
अनेकानेक समस्याएँ खड़ी कर रहा है। एकात्मता के
बोध से ही समाज में स्नेह-सौहार्द एवं आत्मीयता की
भावना बढ़ेगी।

ये सात सिद्धान्त ऐसे हैं जो सन्तुलन के लिए आव-
श्यक हैं। चाहे वह शरीर के लिए अभीष्ट हो अथवा
समाज अथवा ब्रह्माण्ड के लिए। इन सातों का परिपालन
अनिवार्य है। असन्तुलनजन्य विक्षोभों को दूर करने के
लिए मनुष्य को इन सातों सिद्धान्तों का व्यावहारिक
जीवन में समावेश करने से चैन से रहने और प्रगति पथ
पर आगे बढ़ने का सुयोग मिलेगा।

मनुष्य में नई कलम लगने में देर नहीं



सामान्य पौधों में उच्चस्तरीय पौधों की कलम लगा कर विकसित किस्म के वृक्ष वनस्पतियाँ उत्पन्न करने में पिछले दिनों उत्साहवर्धक सफलताएँ मिली हैं। एक ही पड़ पर अनेक किस्म के फूल और अनेक किस्म के फल लगा देने जैसे चकित करने वाले प्रतिफल सामने आये हैं। देर से बढ़ने और छोटे एवं खट्टे फल देने वाले आम की कलम बनाने की विधि अब सर्व विदित है उस आधार पर थोड़े ही समय में बड़े आकार के एवं मीठे फल उत्पन्न किये जाने लगे हैं। चीकू जैसी अनेक कलमी जातियाँ अपने अनोखेपन का परिचय दे रही हैं। फूलों में भी यह प्रयोग सफल हुआ है। गुलाब की इतनी अधिक किस्में सामने हैं कि उनकी भिन्नता और विचित्रता देखते ही बनती है। शाक और धान्य के क्षेत्र में भी क्रान्तिकारी परिणाम उपलब्ध हुए हैं। पशु और पक्षियों की कितनी ही नई विरादरी उत्पन्न करली गई है। इन प्रयोगों में छोड़े और गधे की कलम लगाकर खच्चर उत्पन्न करने का प्रयोग तो शताब्दियों पूर्व सफल हो चुका है। मुर्गे और मछलियों पर यह प्रयोग अत्यन्त उत्साह के साथ चल रहा है। गाय जैसे दुधारु पशुओं को अपने वंश परम्परा को द्रुतगति से उत्प्लंघन करने और एक नया वर्ग बना कर खड़ा कर देने में सफलता मिल चुकी है। जिन्हें कौतूहलवर्धक प्रयोगों में रस आता है वे प्राणियों के निर्माण में प्रजापति की भूलों को सुधारने और जीव सृष्टि को नये सिरे से गढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। सफलताएँ उनकी हिम्मत को दिन दूना रात चौगुना बढ़ा रही हैं। कुत्तों की विरादरी में छे इंच ऊँचाई जितने छोटे और मधे जितने ऊँचे किस्म के नये जानवर रच लिये गये हैं। यह कलम लगाकर उत्पन्न की जाने वाली विसदरियाँ अपने पूर्वजों की तुलना में शारीरिक क्षमता और स्वभाव विशेषता की दृष्टि से आश्चर्यजनक मात्रा में भिन्न किस्म की बन रही हैं। कलम पर नई कलम, नई कलम पर नई

कलम—चढ़ाते-चढ़ाते बात यहाँ तक पहुँची है कि आगे चल कर यह ढूँढ़ निकालना तक कठिन हो जाता है कि इसके मूल पूर्वज कौन थे और किस स्थिति में रह रहे थे? इसे कलम लगाने की विद्या की चमत्कारी सफलता कहा जा सकता है।

‘मानव कलम’ या जेनेटिक इंजीनियरिंग को अब विज्ञान में एक अति महत्वपूर्ण विषय माना जा रहा है। जे० बी० एस० हैल्डेन ने जो इस शताब्दी के सर्वाधिक प्रतिभाशाली जीव वैज्ञानिक माने जाते हैं, कहा था कि “यदि कुशलता से मानव कलम को तैयार किया जाये तो समस्त कमियों को दूर कर एक नया मानव बनाया जा सकता है।” फ्रांसीसी जीव वैज्ञानिक जीन रोसे का विचार है—‘मानवी कलम का उपयोग व्यक्ति के खण्डित स्वरूप को नये स्वरूप में बदलकर उसे अमरत्व प्रदान करने के लिये किया जा सकता है।’ इस कार्य में वरीयता प्राप्त करने वाले इस दशाब्दी के वैज्ञानिक है नोबल पुरस्कार प्राप्त डा० जोशुआ लेडरबर्ग एवं यू० सी० एल० ए० के डा० एलोफ एक्सेल कार्लसन। डा० लेडरबर्ग का सुझाव है कि—‘शरीर कोशिका दान करने वालों का उपयोग उनके युवा अंकुरों को बढ़ाने के लिये किया जा सकता है। उनके अनुसार समान जीव वाले ऐतिहासिक व्यक्तियों की कोशिकाओं को पुनर्जीवित करने के लिये मृतकों की भी मानव कलम लगायी जाए।

अब जीनसंश्लेषण से जीवित व्यक्ति का प्रतिरूप, एक प्रतिमानव एक वैज्ञानिक सत्य है। अपनी बहुचर्चित पुस्तक ‘इन हिज इमेज, क्लोनिंग ऑफ मैन’ में डेविड रोसविक ने इसका बड़ा आश्चर्य चकित करने वाला वर्णन किया है।

डा० रोसविक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सुविकसित स्तर पर मनुष्य की ह-वह वैसी ही ‘ब्लूप्रिन्ट’ कापियाँ बनाकर तैयार की जा सकेंगी। तब गान्धी और जवाहरलाल के न रहने से किसी क्षति की आशका

न रहेगी क्योंकि उनके जीवन काल में ही अथवा मरने के बाद ह-बहु वैसे ही व्यक्ति सैकड़ों हजारों की संख्या में प्रयोगशालाओं में उत्पन्न करके रख दिया करेंगी। एक अन्य डा० रोस्टाक ने टिश्यू कल्चर अर्थात् "कोशिकाओं की खेती" के अगले दिनों सामान्य बागवानी की तरह प्रयुक्त होने की भविष्य वाणी की है। कार्नेल विश्व-विद्यालय के डा० फ्रेड्रिक सी स्टीवर्ड द्वारा गाजर की एक कोशिका को पूरी गाजर में विकसित करने में सफलता प्राप्त करने के बाद अब यह सोचा जाने लगा है कि मनुष्यों की भी ऐसी ही अभीष्ट पीढ़ियाँ उत्पन्न करने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

विचारक मॉलकम मेगरिज का कथन है कि सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक प्रकृति के जितने रहस्य जानने में मनुष्य को सफलता मिली थी, उसकी तुलना में कहीं अधिक ब्रह्माण्ड का रहस्योद्घाटन इस जतावदी में हुआ है। यह क्रम आगे और भी तीव्र गति में चलेगा। इन उपलब्धियों में एक सबसे बड़ी कड़ी जुड़नेगी अभीष्ट स्तर के मनुष्यों के उत्पादन की। अगले दिनों शरीर की दृष्टि से असह्य समझी जाने वाली परिस्थितियों में रहने वाले मनुष्य उत्पन्न किये जा सकेंगे और विद्वान् दार्शनिक कलाकार, योद्धा, राजनीतिज्ञ वैज्ञानिक, व्यापारी, श्रमिक आदि वर्ग न्यूनाधिक योग्यता के आवश्यकतानुसार उत्पन्न किये जा सकेंगे। तब मनुष्य सर्व शक्तिमान न मही, समीप शक्ति सम्पन्न अवश्य ही कहा जा सकेगा।

केलीफोर्निया इन्स्टीट्यूट आफ टेक्नोलॉजी के प्राक्टर विलियम जेडर ने भविष्यवाणी की है कि ऐसे परोक्ष तत्वों का जीन्स में प्रवेश कराया जा सकेगा जो पैतृक रोगों का उन्मूलन करके नयी स्वस्थ स्थापना लिए रास्ता साफ कर सके। यह तो निवारण की बात है। इसका दूसरा पक्ष स्थापना का है। जिस प्रकार किसी अच्छे खेत में इच्छानुसार बीज बोकर अभीष्ट सब उगाई जा सकती है उसी प्रकार परम्परागत वरोधों को हटा सकने की सफलता के साथ एक नया स्थाय और जुड़ जाता है कि वंश तत्व में इच्छानुसार शेषताओं के बीज बोये जा सकेंगे। अगली पीढ़ियों को ही उत्पन्न किया जा सके जैसा कि चाहा गया था।

खण्ड-ज्योति

वस्तुतः आनुवांशिक इंजीनियरिंग के रूप में एक नयी क्रांति विज्ञान जगत में हुई है। पिछले दिनों जीव-विज्ञानियों एवं आनुवांशिकी के अधिकांश शोधकर्त्ताओं का ध्यान इस दिशा में विशेष रूप से नियोजित रहा। इसकी कल्पना करीब १५ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक हरमन जोसेफ मूलर ने की थी। उन्हें आनुवांशिकी के क्षेत्र में अनुसंधान हेतु नोबल पुरस्कार भी मिला। अपनी मृत्यु से ६ माह पूर्व शिकागो में मितम्बर ६६ में हुये मानवीय आनुवांशिकी अधिवेशन में उपस्थित वैज्ञानिक समुदाय से उन्होंने अनुरोध किया था कि एक शुक्राणु बैंक की स्थापना की जानी चाहिये जिसमें शारीरिक विकास, मानसिक प्रखरता, एवं नैतिक दृष्टि से ऊँचे गुण वाले प्रख्यात महापुरुषों के शुक्राणुओं को जमा किया जा सके। स्वस्थ, सुन्दर और सच्चरित्र भावी सन्तानें जन्म ले, इसके लिये उपयुक्त माँओं का चयनकर कॉल्ड स्टोरेज में इन शुक्राणुओं की वितरण व्यवस्था की जानी चाहिये।

क्रोमोसोम व जीन्स के क्षेत्र में महत्वपूर्ण शोध करने वाले नोबेल पुरस्कृत वैज्ञानिक क्रीक, जिनके नाम पर डी० एन० ए० की संरचना वाले मॉडल का नाम रखा गया है, तो तानाशाही व्यवस्था का समर्थन करते हुये इस प्रकार के प्रयोगों पर अपनी वैज्ञानिक मुहर भी लगा चुके हैं। उनका मतव्य है कि राष्ट्र को जैसी सन्तानों की आवश्यकता है, वैसी ही पीढ़ी वैज्ञानिक तैयार करें। इसके लिये वे सन्तानोत्पत्ति की स्वतन्त्रता अविलम्ब समाप्त करना चाहते हैं। उनके अनुसार किसी ऐसी वस्तु का आविष्कार होना चाहिये जिसे भोजन में मिला देने से ही सबकी प्रजनन शक्ति समाप्त हो जाये। इसका एण्टीडोट (विलोम) सिर्फ इन्हीं व्यक्तियों को दिया जाये जिनके बच्चों की शासन की आवश्यकता है।

वास्तव में 'जीन्स' की विस्तृत लीला जानने के लिये जितने अधिक वैज्ञानिकों ने अपने धर्म को इसमें नियोजित किया है, वह अपने आप में एक कीर्तिमान है। जीन्स के सूक्ष्म घटक डी० एन० ए० की संरचना ज्ञात हो चुकी है। जीन्स के चित्र लिये जा चुके हैं। डी० एन० ए० द्वारा प्रोटीन संश्लेषण में भाग लेने की सम्पूर्ण आनुवांशिक

संहिता को जान कर अब सीधे उसी पर प्रयोग किये भी जा रहे हैं।

ब्रिटेन की इन्टर नेशनल साइन्स राइटर्स एसोसिएशन के अध्यक्ष जी० आर० टेलर थे अपनी पुस्तक "दि बायो-लॉजिकल टाइम बम" को जीव विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए यह बताया है कि वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य की अभीष्ट जातियाँ शाक भाजियों की तरह उगाई जा सकेंगी और उन्हें कलम लगाकर कुछ से कुछ बनाया जा सकेगा।

इस सन्दर्भ की नई उपलब्धियाँ ऐसी सम्भावना का द्वार खोलती हैं कि मानव भ्रूण का पालन किसी उपयुक्त प्रकृति की पशु मादा के पेट में पालन करा लिया जाय। इससे उस बच्चे में मनुष्य और पशु के सम्मिलित गुण विकसित हो जायेंगे। इन प्रयोगों से आरम्भ में थोड़े से बच्चे बनाने में ही अधिक परिश्रम पड़ेगा। पीछे तो कृतिम गर्भाधान विधि से वे थोड़े ही बच्चे तरुण होकर सहस्रों बच्चे पैदा कर देंगे। एक स्वस्थ माँड के द्वारा जीवन भर का संचित शुक्र ५० हजार तक बच्चे पैदा कर सकता है। विशेष रासायनिक प्रयोगों से उत्तेजित मादा डिम्बों द्वारा एक साथ ५ तक संतानें उत्पन्न करायी जा सकती हैं। नयी मनुष्य जाति को जल्दी बढ़ाने के लिए ऐसे ही तरीके काम में लाये जायेंगे साथ ही पुरानी पीढ़ी को समाप्त करके उन सबका वन्ध्याकरण किया जायेगा।



यदा न जायते मृत्युः कदा कस्य भविष्यति ।
आकस्मिके हि मरणे धृतिं विदेत कस्तदा ॥
परित्यज्य यदा सर्वमेकाकी यास्यसि ध्रुवम् ।
न ददा तदासि कस्मात्पाथेयार्थमिदं शुभम् ॥

—भविष्य पुराण

अर्थात्—जब कि यह नहीं जाना जाता है कि यह मृत्यु किस समय में किसकी हो जायेगी, जब अचानक ही मृत्यु प्राप्त होगी तो उस समय में कौन तुझे धीरज प्राप्त करायेगा? उस समय तू तो यहाँ पर ही यह सभी कुछ ठाट-वाट छोड़कर अकेले ही निश्चय रूप से जायेगा। इसलिये उस समय के वास्ते पाथेय के लिये सत्कर्म क्यों नहीं किया करता?

आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी के डा० जे० बी० गडन ने मेंढकों पर नई नस्ल पैदा करने के लिए कलम लगाने का प्रयत्न किया है। इस कार्य में दो अमेरिकी वैज्ञानिक डा० ब्रिग्स और केन्ग उनके सहयोगी रहे हैं। इस प्रयास में उन्हें आशातीत सफलता मिली है। इन प्रयोगों में वे ऐसे नयी किस्म के—नई नसल के मेंढक पैदा करने में समर्थ हुए जो अपने पूर्वजों की तुलना में कहीं अधिक सुन्दर, बलिष्ठ, सौम्य एवं बुद्धिमान थे। वैज्ञानिक मण्डली ने इसी प्रकार के प्रयोग अन्य छोटे-छोटे जीवों पर भी किये हैं और उनमें से प्रायः सभी में सफलता मिली है।

संसार भर में चल रहे प्राणियों की नस्ल सुधारने के प्रयत्नों में भारी दिलचस्पी ली जा रही है और भरपूर कोशिश की जा रही है। पेड़-पौधों पर यह प्रयोग बहुत पहले से ही सफल होता रहा है। कलमी फलों की नस्ल सर्वविदित लोकप्रिय और लाभकारी सिद्ध हो रही है। अब प्राणियों को भी अधिक उपयोगी बनाने के प्रयत्न उसी उत्साह से चल पड़े हैं जैसे कि कुछ समय पूर्व फूलों और शंकर जातियाँ उत्पन्न करने के लिए चले थे।

वंशानुक्रम विज्ञान के महा मनीषी राबर्ट एम् शेस्पीरे ने भविष्य वाणी की है। अगले दस साल मनुष्यों की कलम लगाने और आज की तुलना में अधिक समुन्नत पीढ़ी पैदा करने में सफलता मिल जायेगी।



संयोग कहकर अविज्ञात को कुठलाइये नहीं

आर्थर कोसलर ने एक पुस्तक लिखी है—'रूट्स आफ काँइन्सीडेन्स'। लेखक ने यह बताने और समझाने की कोशिश की है कि विराट् सृष्टि में सर्वत्र नियम और व्यवस्था का सिद्धान्त काम कर रहा है। 'संयोग' प्रकृति नियमों का एक अपवाद है जो यदा-कदा ही प्रस्तुत होता है। यस्तुतः वह भी किसी न किसी अविज्ञात नियमों द्वारा ही परिचालित है। उन नियमों से अपरिचित होने के कारण ही रहस्यमय घटनाओं को 'संयोग' की संज्ञा दे दी जाती है। अन्यथा सत्य यह है कि सृष्टि के प्रत्येक जड़ चेतन घटकों—लघुतन अणु-परमाणुओं में भी मुख्यवस्था का नियम काम करता दिखायी पड़ता है।

जीवन मरण का गतिचक्र भी उस स्वसंचालित व्यवस्था का एक अंग है। यह गतिचक्र अपने सामान्य क्रम में चलता रहता है तो किसी तरह का तात्त्विक प्रश्न नहीं खड़ा होता है। प्रकृति के नियमों से सुपरिचित होने तथा घटनाओं के कारण का बोध रहने से सब कुछ स्वाभाविक-सा लगता है। कोतूहल तब उत्पन्न होता है जब जात प्रकृति नियमों को तोड़ती हुई ऐसी रहस्यमय घटनाएँ प्रस्तुत होती हैं जिनका कोई कारण समझ में नहीं आता। बुद्धि और उसका आविष्कार विज्ञान दोनों ही उन घटनाओं की विवेचना करने में जब अपनी असमर्थता व्यक्त करता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि अदृश्य घटनाक्रमों के कुछ मूल ऐसे हो सकते हैं जो इनकी एकड़ सीमा के बाहर हैं। मन और बुद्धि के सामान्य स्थूल परतों द्वारा उन घटनाओं को समझ पाना मुश्किल ही नहीं असम्भव है। इनकी सूक्ष्मतर चैतन्य परतों को हरेदकर ही उन विलक्षण घटनाओं का रहस्योद्घाटन कर सकना सम्भव हो सकता है।

उदाहरणार्थ कितनी ही बार ऐसे अवसर आते हैं जब नुप्य का कुरूपार्थ प्रस्तुत संकेतों के निवारण में असमर्थ रह जाता है। कहीं से किसी प्रकार कोई सहयोग की सम्भावना नहीं नजर आती। असहाय और असमर्थता की

स्थिति में ऐसा लगता है कि जीवन का अन्त सन्निकट है। पर परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष सहयोग की आकस्मिक परिस्थितियाँ ऐसे आ खड़ी होती हैं जैसे उनके लिए सुनियोजित ढंग से पूर्व तैयारी की गयी हो। मृत्यु के मुख से कितने ही व्यक्ति देवी सहयोग पाकर बच निकलते हैं। ऐसी घटनाओं को मात्र संयोग कहकर टाला और सन्तोष नहीं किया जा सकता। समय-समय पर ऐसी कितनी ही घटनाओं के समाचार मिलते रहते हैं जो यह सोचने को बाध्य करती हैं कि विराट् सृष्टि में ऐसी कोई समर्थ सत्ता है जिसकी नजर ब्रह्माण्ड की प्रत्येक घटनाओं पर है। वह न केवल विश्व का संचालन और सुनियोजन करती है, वरन् आवश्यकता पड़ने पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष माध्यमों द्वारा सहयोग देकर अपनी करुणा का भी परिचय देती है।

इंग्लैण्ड के एक गिरजाघर के विनाप—'राइटरेवेरेण्ड विलियम मैकक्रोट' हैरिडट काउपर नामक एक जलपोत से २५ यात्रियों तथा कर्मियों के सदस्यों के साथ समुद्री यात्रा पर निकले। एक दुर्घटना में जहाज ध्वस्त हो गया। निकटतम श्वेतीय प्रदेश से वह स्थान हजारों मील दूर था। जलपोत चालक सहित तीन व्यक्तियों के अतिरिक्त किसी को तैरना नहीं आता था। पर समुद्र की तूफानी लहरों में उनकी शक्ति भी साथ नहीं दे रही थी। बचने का अन्य कोई उपाय नहीं नजर आ रहा था। असहाय स्थिति में समुद्री तरंगों की थपेड़ों के साथ बहते जा रहे थे। इतने में एक आश्चर्यजनक घटना घटी। एकाएक समुद्र से आग का एक विशाल गोला फूटा जो ज्वालामुखी फटने जैसा था और लगभग ५० फीट की ऊँचाई तक उठ गया। इसके साथ ही एक नया द्वीप पानी से ५० फीट ऊपर उभर आया। बहते हुए सभी व्यक्ति एक-एक करके उस द्वीप पर चढ़ आये। उन्होंने इस नये द्वीप का नाम 'टाइमली आइलैण्ड' रखा। तीन दिनों बाद एक दूसरा ब्रिटिश जहाज उन्हें खोजता हुआ

पहुँचा। नये द्वीप और सबको सुरक्षित देखकर उन्हें भारी अचरज हुआ। एक स्वर से हर व्यक्ति ने कहा किसी अदृश्य शक्ति ने सहायता न की होती तो मृत्यु सुनिश्चित थी। ब्रिटिश सरकारी रिकार्ड में इस घटना का विस्तृत वर्णन मौजूद है।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ की एक घटना है। 'सेन्टीएन' नामक एक बजती जहाज 'हेलीफाक्स', नौवा स्काटिया से बारगूडा जा रहा था। तूफान के कारण अचानक वह उलट गया। नौ व्यक्ति जहाज पर सवार थे। सभी बहने लगे। अचानक अप्रत्याशित घटना घटी। एक दूसरी समुद्री लहर ने नाव को सीधा कर दिया। एक दूसरी लहर ने बहते हुए सभी यात्रियों को नाव के भीतर उछाल दिया। ऐसा मालूम पड़ता था कि समुद्र की लहरों को कोई शक्ति नियन्त्रित कर रही हो। यह दुर्घटना द्वारा बचाव का कार्य कुछ ही मिनटों में सम्पन्न हुआ। नाव का उलटना, अचानक सीधा हो जाना विपरीत दिशा में बहते यात्रियों को एक साथ नाव के भीतर बिना किसी दुर्घटना के उछाल दिया जाना, इन सभी घटनाओं को मात्र संयोग नहीं कहा जा सकता।

१९१७ में प्रथम विश्व युद्ध चल रहा था। जर्मन वायु सेना का लेफ्टीनेण्ट बोहर्ले प्रथम विश्व युद्ध में फ्रान्सीसी सीमा के ऊपर निरीक्षण करने के लिए जहाज से उड़ान भर रहा था। अकस्मात् जहाज का इंजन बन्द हो गया। बोहर्ले तेरह हजार फुट की उँचाई से जहाज के बाहर उछल गया। नियन्त्रण के अभाव में जहाज नीचे गिरने लगा। इंजन बन्द हो जाने से चालक रोजेन गार्ड भी कुछ कर सकने में असमर्थ। तभी हवा का एक तीव्र झोंका महसूस हुआ और बोहर्ले को उसने जहाज के भीतर ला पटका। आश्चर्य यह कि ठीक उसी समय जहाज का इंजन भी अपने आप चालू हो गया। इस तरह दोनों ही बच गये। बोहर्ले ने एक पत्रकारों की भेंट वार्ता में कहा कि "मुझे पहली बार यह अनुभव हुआ कि अदृश्य जगत में कुछ अदृश्य शक्तियाँ भी काम करतीं तथा दूसरों को संकट की हालत में सहयोग करती हैं।"

'विन्नीव इट थार नाट' पुस्तक में ऐसी ही एक और घटना का उल्लेख है। पोर्टे रायल जर्मका का लुइस-

गैलंडी नामक एक व्यक्ति एक भयंकर भूकम्प में जमीन के नीचे दब गया। दिन भर वह असहाय स्थिति में पड़ा रहा, पर एक दूसरा भूकम्प का झटका आया जिससे जमीन पुनः फट गयी। भूकम्प के झटके ने गैलंडी को उछालकर बाहर फेंक दिया। इस तरह उसके जीवन की रक्षा हो गयी।

इसी पुस्तक में एक दूसरी घटना का उल्लेख है। माटसेन्स, फ्रान्स की एक १८ माह की बच्ची 'रिनी निवरनास' का अपहरण आठ व्यक्तियों ने मिलकर कर लिया। एक बड़ी रकम वे बालिका के अभिभावक से हड़पना चाहते थे। उसे अपहरणकर्त्ताओं ने एक समुद्री नौका पर रखा। लड़की के अभिभावक को एक निश्चित धनराशि लेकर पहुँचने की सूचना दी। सूचना के साथ यह धमकी भी दी गयी थी यदि निर्धारित समय पर धन नहीं पहुँचा तो बालिका को समुद्र में डुबाकर मार दिया जायेगा। पर सम्भवतः प्रकृति को ऐसा मंजूर नहीं था "जाँको राखे साइयाँ मार सके ना कोय, बाल न बाका हो सके, जो जग बैरी होय।" यह उक्ति अक्षरशः चरिताथे हुई। प्रकृति का आक्रोश उल्टा अपहरणकर्त्ताओं के ऊपर ही फूट पड़ा। तूफान ने नौका को डुबो दिया जिसमें आठों अपहरणकर्त्ता मारे गये। पर छोटी बच्ची पैकिंग के बने तख्ते पर तैरती हुई 'कासिस' फ्रांस के समुद्र तट पर सकुशल आ लगी। तब तक वह निद्रा मग्न रही जब तक कि तैरता हुआ लकड़ी का तख्ता समुद्र के किनारे न जा लगा। किनारे पर कुछ मछुआरों ने जाकर स्थानीय पुलिस को सूचना दी। रिपोर्ट पुलिस को पहले ही मिल चुकी थी। उस आधार पर बालिका को उसके माता-पिता के पास पहुँचा दिया गया।

यदि इस घटना को मात्र एक प्रकृति संयोग मान जाय तो कुछ समाधान नहीं निकलता। समुद्री तूफान की चपेट में आना और उसमें अपहरणकर्त्ताओं का मार जाना, बालिका का लकड़ी की तख्ती में अपने आप बचना तथा सकुशल समुद्र के किनारे निद्रावस्था में बचना आदि घटनाओं का तारतम्य 'संयोग' के सिद्धान्त द्वारा कैसे विठा जा सकता है। दुर्घटना एक संयोग थी उसकी चपेट में बालिका को भी आना चाहिए था।

बिना किसी शक्ति के सुरक्षित भयंकर तूफान से निकलकर समुद्र के किनारे बालिका के जा पहुँचने की घटना यह बताती है कि किसी अदृश्य सत्ता द्वारा बालिका के जीवन रक्षा की व्यवस्था बनायी गयी।

२४ दिस० १९२३, न्यू कैलेंडोनिया के निकट एक ऐसी विलक्षण घटना घटी जो यह बताती है कि सृष्टि में सर्वत्र कोई ऐसी शक्ति काम कर रही है जो असमर्थता की स्थिति में मनुष्य को सहयोग भी देती है। एडोल्फ पान्स नामक एक फ्रान्सीसी व्यापारी अपने एक अन्य साथी के साथ मोटर बोट से समुद्र में बिहार करने के लिए निकला। अचानक एक समुद्री लहर के कारण मोटर बोट अनियन्त्रित हो गयी। पान्स समुद्र में गिर पड़ा। उसके दूसरे साथी ने स्वयं भी पान्स के बचाव के लिए समुद्र में छलांग लगा दी। लगभग आठ मील दूर दोनों ही को शार्क मछलियों के बीच छोड़कर मोटर बोट जा पहुँची। मृत्यु अब सन्निकट थी। अचानक बिना किसी सवार की नौका पीछे की ओर मुड़ने लगी। ऐसा प्रतीत होता था कि किसी अदृश्य शक्ति ने मोटर बोट का नियन्त्रण अपने हाथों में ले लिया हो। आठ मील दूर जा पहुँची मोटर

बोट तीव्र रफतार से ठीक वहाँ जा पहुँच गयी जहाँ कि दोनों व्यक्ति अब मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहे थे। दोनों ही नौका पर जा चढ़े और सुरक्षित समुद्र के किनारे जा लगे। व्यापारी पान्स का कहना था कि "मुझे विश्वास नहीं होता यह सब कैसे हुआ, पर जो कुछ हुआ वह संयोग नहीं था। किसी अदृश्य शक्ति ने ही हमें मृत्यु के मुँह से बचाया और नया जीवन दिया।

किन्हीं-किन्हीं को इस तरह के अप्रत्याशित सहयोग मिलते हैं जबकि कितने ही दुर्घटनाओं में मारे जाते हैं। इन्हें वंसी सहायता क्यों नहीं मिलती? क्या कर्म फल सिद्धान्त से ऐसी घटनाओं का कुछ तारतम्य है? कितने ही ऐसे प्रश्न उभर कर सामने आते हैं, जिनका उत्तर सामान्य तार्किक बुद्धि देने में असमर्थ प्रतीत होता है। सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर तथा दैवीय अनुग्रह सिद्धान्त की जानकारी के लिए पिण्ड के चेतन अन्तराल में प्रविष्ट करना होगा। उन सूत्रों को ढूँढना होगा, जिनके द्वारा व्यष्टि चेतना, समष्टि चेतना से सम्बन्ध जोड़कर परस्पर दिव्य आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त करती है।

जिह्वाधो नाडी संचिन्तां रसनां चालयेत्सदा ।
दीहहेन्नवती तेन लोहयन्त्रेण कर्षयेत् ॥
एवं नित्यं समभ्यासाल्लम्बिका दीर्घताम् व्रजेत् ।
यातन्दच्छेद् भ्रवोर्मध्ये तथा गच्छति खेचरो ॥
रसना तालुमध्ये तु शनैः शनैः प्रवेशयेत् ।
कपालं कुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ॥
भ्रवोर्मध्ये गतां दृष्टिमुद्रा भवति खेचरी ॥

मावायः—जिह्वा के नीचे और उसकी जड़ को गिलाने वाली जो नाड़ी है, उसका छेदना हुआ निरन्तर रसना के अग्रभाग को परिचालित करे, प्रतिदिन ऐसा करने से जिह्वा बड़ी हो जाती है। क्रम से अभ्यास द्वारा जिह्वा को इतना लम्बा करे वह भोंह के मध्य तक पहुँच जाय, जिह्वा को क्रमशः तालुमूल में ले जाय। तालु के बीच के गड्ढे को कपाल-कुहर कहते हैं। जिह्वा को इस कपाल-कुहर के मध्य में ऊपर को उल्टी करके ले जाय और दोनों भोंहों के मध्यस्थल को देखता रहे, इसे खेचरी मुद्रा कहते हैं।

(धेरण्ड संहिता—तृतीयोपदेश)

धेरण्ड-उपदि



दुर्भाग्य ग्रस्तों की दुनिया

महापुरुषों, ऋषि कल्प व्यक्तियों के प्रयोग में आने वाली वस्तुएं सुरक्षित रखी जाती हैं। भगवान बुद्ध के दांत, हजरत मुहम्मद साहब के बाल, ईसा के वस्त्र इस लिए सुरक्षित रखे गये हैं कि उन दिवंगत आत्माओं के साथ सम्बद्ध रहने के कारण वे पदार्थ भी विशिष्ट पवित्रता और प्रखरता युक्त समझे गये हैं। महामानवों के हाथ का प्रसाद ग्रहण करके भी लोग कृत-कृत्य होते हैं। इसमें प्रसाद के खाद्य पदार्थ की नहीं उन स्पर्शकर्ताओं की प्राण प्रतिभा का समावेश रहने से ही विशेषता उत्पन्न होती है।

इसी प्रकार दुरात्माओं के दुष्कृतों से भी स्थान, उपकरण आदि पर भी उनका प्रभाव देखा जाता है। बूचर-खानों, वैश्यालय, मद्यशालाओं के भीतर तथा इर्द-गिर्द ऐसा वातावरण रहता है जिससे सौम्य सज्जनों का मन भी विक्षुब्ध होने लगे। इसलिए ऐसे स्थानों से दूर रहना ही श्रेयस्कर माना जाता है।

कईबार कुछ मकान, आभूषण, वस्त्र, उपकरण आदि में भली-चुरी विशेषताएं सम्बन्धित लोगों के सम्पर्क से उत्पन्न होती देखी गई हैं। जहाँ अचिन्त-चिन्तन का—अकरणीय कृत्यों का बाहुल्य रहा है। जहाँ उत्पीड़न शोषण अन्याय आतङ्क का दौर चला है वहाँ ऐसी विभीषिकाएं जम जाती हैं जिनके सम्पर्क में आने वालों का अहित अनिष्ट होने लगता है। ऐसे स्थान अभिशप्त कहलाते। भुतहे मकान, मरघट आदि में डेरा डालने पर जिस प्रकार भय, आतङ्क की अनुभूति होती है उसी प्रकार अभिशप्त मकान या पदार्थ भी उपयोग करने वालों का अनिष्ट करते देखे गये हैं। इसे चेतना के चुम्बकत्व का प्रभाव प्रमाण ही समझना चाहिए।

मिशिगन की विशाल काय झील में मुसाफिर और सामान इधर से उधर होने के लिए सन् १८८८ में एक स्टीमर बना। उसका आदि, मध्य और अन्त सभी दुर्भाग्य से जुड़ा रहा। जल प्रवेश को एक वर्ष भी न होने पाया

था कि वह टकरा कर क्षतिग्रस्त हो गया। १८९० में वह हूबकर तली में बैठ गया। बड़ी कठिनाई से उसे निकाला और तैराया गया। चलाने वाली कम्पनी भी मुसीबत में पड़ी और ढोये गये मुसाफिर तथा अस्वाव भी क्षतिग्रस्त होते रहे। १८९३ और १९०२ में वह हूबते-हूबते बचाया जा सका। १९१७ में एक पुल से जा टकराया। १९२० में एक बर्फीली चट्टान से जा टकराया और उलट गया। अन्त में इस आये दिन की क्लेश से पीछा छुड़ाने के लिए १९२१ में उसे कबाड़ियों के हाथ बेच दिया गया।

पेरु की सेंट्रल रेलवे का एक इन्जन जिस दिन से बना उसी दिन से दुर्घटना करने लगा। आये दिन कभी अपने कलपुर्जे तोड़ लेता कभी दूसरों के प्राण संकट खड़ा करता। वह पांचवार पटरी से उतरा, जमीन में घुसा और क्रेन पर लादकर यथास्थान लाया गया। संचालकों को उसका दुर्भाग्य मिटाने के लिए एक उपाय सूझा। उसका नम्बर ३७ था। बदल कर ३३ कर दिया गया। प्लेट उसी नम्बर की। कागजात में इन्दराज उसी नम्बर का। तो भी उसका दुर्भाग्य छूटा नहीं वरन् और भी उग्र हो गया। ब्रेक फेल हुआ और एक दूसरी ट्रेन से जा टकराया। टक्कर बहुत भयानक थी उसने समूचे रेल के पुल को ही उखाड़ दिया। उखड़ा पुल नीचे नदी में गिरा और धन जन की बहुत क्षति हुई।

सन् १९८५ की बात है। जापान के एक फ्रेन्सी ड्रेस विक्रेता ने एक बहुमूल्य-किमोनो—महिला परिधान तैयार किया। उसे देखने तो अनेकों लड़कियां आईं पर मूल्य को देखते हुए खरीदने की हिम्मत किसी की न पड़ी। एक धनी लड़की ने उसे खरीदा। घर ले जाने के बाद वह उसे पहनने भी न पाई थी कि मर गई। घर वालों ने कुछ कम मूल्य पर उसी विक्रेता को लौटा दिया। दूसरी जिसने खरीदा वह भी इसी तरह मरी और पोशाक वापिस लौटी। तीसरी बार भी ठीक यही

हुआ। इस अभागे परिधान की सुन्दरता, कीमत के साथ-साथ उसके अभागी होने की चर्चा पूरे जापान में फैल गई। देखने कौतूहल वश बहुत आते, पर उसे खरीदना तो दूर कोई छूता तक नहीं था।

मामला राज दरबार तक पहुँचा। पोशाक कचहरी में पेश हुई। विवरण सुनने के बाद धर्मगुरु ने उसे आग में जला देने की दण्डाज्ञा सुना दी। परिधान जिस समय जलाया जा रहा था। ठीक उसी समय भयंकर आँधी आई। चिनगारियाँ उड़-उड़कर दूर-दूर तक पहुँचीं और उससे भयंकर अग्निकाण्ड खड़ा हो गया। उससे इतनी बड़ी अति हुई जितनी कि उससे पूर्व कभी भी नहीं हुई थी। प्रायः तीन चौथाई टोकियो शहर जल गया। इस अभूत पूर्व अग्निकाण्ड में ३०० मन्दिर, ५०० शाही मटल, ६००० स्टोर, ६१ पुल और हजारों लाख घर झोपड़ी जलकर स्वाहा हो गये। इतना ही नहीं उस अग्निकाण्ड में लगभग एक लाख मनुष्य भी जलकर खाक हो गये।

ब्रिटिश म्यूजियम में एक अभिशप्त ममी रखी हुई है। यह ममी सन् १८६४ में अरब देश की एक खुदाई से प्राप्त हुई थी। आकर्षण से प्रभावित होकर वाब-सिसरो नामक एक पूँजीपति ने उसे खरीद लिया। दो माह के भीतर उसे व्यापार में इतना बड़ा घाटा हुआ कि वह अपने को सन्तुलित न रख सका। हृदय की घड़कन रुक जाने से उसकी मृत्यु हो गयी। ममी की देख-रेख करने वाले दो नौकर भी बिना किसी रोग के बिस्तर पर सोये हुए मृत पाए गए। उक्त पूँजीपति का इकलौता बेटा ट्रक दुर्घटना की चपेट में आ गया और उसे अपनी दोनों टाँगें कटानी पड़ीं। अभिशप्त जानकर घरवालों ने बिना कोई मूल्य लिए एक फोटोग्राफर को वह ममी सौंप दी। फोटोग्राफर जे० एस० सैक्सन ने अधिक कीमत प्राप्त करने के उद्देश्य से ममी का फोटो लेना चाहा जिससे विभिन्न पत्रिकाओं में उसे प्रकाशन के लिए दिया जा सके। फोटो साफ करने पर यह देखकर विस्मित रह गया कि उसमें मिश्र की अघेड़ महिला का स्पष्ट चित्र आ गया है। चित्रलेने के दूसरे दिन ही वह पागल हो गया तथा कुछ ही दिनों में मर गया। उसकी पत्नी

अखण्ड-ज्योति

ने परेशान होकर लन्दन स्थित ब्रिटिश म्यूजियम को ममी को वापस सौंप दिया। ममी को म्यूजियम में पहुँचाने वाले दो मजदूरों में से एक तो एक सप्ताह के भीतर ही मर गया दूसरा कार दुर्घटना में हाथ-पैर गँवा बैठा। म्यूजियम में पहुँचने के बाद भी अभिशप्त ममी का प्रकोप कम नहीं हुआ। शहर की मशहूर फोटोग्राफर कम्पनी मेसर्स डब्ल्यू० ए० मैन्सल ने इस ममी का चित्र लेने का प्रयास किया। उक्त कम्पनी मालिक का लड़का फोटोग्राफर को लेकर ममी का निरीक्षण करने आया। निरीक्षण के उपरान्त वापिस लौटते समय कार दुर्घटना में उसका हाथ टूट गया। फोटोग्राफर का लड़का घर में खिड़की के पास बैठा था। इतने में खिड़की में लगा काँच अपने आप निकलकर उसके ऊपर गिर पड़ा। फलस्वरूप वह बुरी तरह घायल हो गया। फोटोग्राफर इन संकेतों को न समझ सका। दूसरे दिन म्यूजियम से उक्त ताबूत का चित्र खींचकर वह लौट ही रहा था कि कहीं दूर से एक काँच का टुकड़ा उसकी नाक में आकर टकराया। नाक कट गयी। उक्त संकेतों को देखकर म्यूजियम के अधिकारियों ने उसका चित्र लेना ही बर्जित कर दिया। इन घटनाओं को देखकर म्यूजियम के अधिकारियों ने ममी के इतिहास का पता लगाने का कार्य पुरातत्व वेत्ताओं को सौंपा। पर्यवेक्षण करने पर मालूम हुआ कि ताबूत मिश्र की एक ऐसी महिला का है जो अथाह सम्पत्ति की मालकिन थी। अनैतिक कार्यों द्वारा उसने यह सम्पत्ति एकत्रित कर ली थी। जीवन के अन्तिम दिनों में कुछ व्यक्तियों ने उसके साथ पड़्यन्त्र करके सम्पत्ति हड़प ली। वह विक्षिप्तावस्था में मरी। विशिष्ट सूत्रों द्वारा जानकारी मिली कि वह ताबूत पहले भी अनेकों व्यक्तियों की मृत्यु का कारण बन चुका है। उसकी आत्मा निरन्तर ताबूत के साथ बनी रही। जो भी उसे छूता अथवा छेड़छाड़ करने का प्रयत्न करता उसके कोप का भाजन होता।

ब्रिटेन के एक अपराधी के घर से एक ऐसा चित्र बरामद हुआ जो विल्ली का था तथा नीले पेपर पर काले चाक से बनाया हुआ था। ध्यान से देखने पर इस अस्पष्ट चित्र में खूँवार जानवर की आँखें चमकती

दिखाई देती थीं। सर्वप्रथम वन विभाग के एक अधिकारी ने उसे प्राप्त किया। उसने उसे अपने शयन कक्ष में लगाया। अभी कुछ ही दिन बीते होंगे कि वन अधिकारी ने आत्महत्या कर ली। चित्र आकर्षक था, पर उसे दुर्भाग्यशाली जानकर पत्नी ने काउण्ट अलेक्जेंडर नामक व्यक्ति के हाथों बेच दिया। जिसे उसने अपने ड्रेसिंग रूम में सजाया। काउण्ट अलेक्जेंडर जब भी ध्यान से चित्र को देखता उसे दो हिंसात्मक आँखें घुरती दिखाई पड़तीं। एक दिन विक्षिप्तावस्था में उसने स्वयं को गोली मार ली। इस चित्र ने अपना तीसरा शिकार काउण्ट अलेक्जेंडर के युवा पुत्र को बनाया। दुर्लभ वस्तुओं को एकत्रित करने के शौक को पूरा करने के लिए वह उस चित्र को अपने घर ले आया। चित्र को एक दिन वह ध्यान से देख रहा था। अचानक डरने लगा कि किसी व्यक्ति की खूनी आँखें उसे घूर रही हैं। असन्तुलन की स्थिति में उसने भी आत्म-हत्या कर ली। चौथा शिकार उस युवक का एक रिश्तेदार बना। चित्र की पेंटिंग बनाने के लिए वह उसे अपने घर ले आया। दूसरे दिन वह अपने विस्तर पर मृत पाया गया। इसके साथ ही यह रहस्यमय चित्र भी न जाने कहाँ गायब हो गया।

जिस अपराधी के घर से उक्त चित्र बरामद हुआ उसकी विस्तृत जानकारी एकत्रित करने पर कई रोचक तथ्य सामने आए। इन्टेलिजेन्स डिपार्टमेंट के विवरण में वर्णन था कि वह रहस्यमय चित्र एक अपराधी गिरोह का कोई संकेत था। जिस घर से वह प्राप्त हुआ उसका मालिक उक्त गिरोह का सरदार था। वह चित्र उसे अत्यधिक प्रिय था तथा सदा अपने पास रखता था। उसके ऊपर अनेकों हत्याओं एवं अपराधों का आरोप बज था।

इटली का एक जहाज द्वितीय विश्वयुद्ध के समय एटलांटिक महासागर से होकर जा रहा था। नाविकों को सागर की लहरों पर कोई चीज तैरती दिखी। जाल डालकर खींचने पर वह काठ की एक आदमकद बुवती की प्रतिमा निकली। प्रतिमा के जहाज पर आते ही नाविक एवं यात्री चारों ओर एकत्रित होकर देखने लगे। नारी सौन्दर्य की इतनी सुन्दर अभिव्यक्ति उस

काष्ठमूर्ति में हुई थी कि सभी मन्त्रमुग्ध बने देखते रहे। प्रतिमा की लकड़ी की चौकी पर नाम अंकित था 'एटलांश'। प्रतिमा पर आसक्त दो नाविक अपना सन्तुलन गँवा बैठे उन्होंने अथाह समुद्र में छलांग लगा दी। नाव के कप्तान ने इस आकस्मिक घटना के फलस्वरूप प्रतिमा को केबिन में मजबूत ताले के भीतर बन्द कर दिया। इटली बन्दरगाह पर पहुँचकर जहाज के कप्तान ने प्रतिमा को निकटवर्ती अजायबघर को सौंप दिया। प्रतिमा में आकर्षण इतना अधिक था कि वहाँ भी दर्शकों की भीड़ जमा हो गयी। कितने ही व्यक्ति तो देखकर पागल हो गए। जर्मन सेना के एक लेफ्टिनेण्ट ने १३ अक्टूबर १९४४ को प्रतिमा के समक्ष सीने में गोली मारकर आत्महत्या कर ली। एक अन्य व्यक्ति ने भी

भविष्य का भरोसा मत करो, वह चाहे जैसा सुखद प्रतीत हो, मृत भूत काल को अपने मुँह गाढ़ने दो। जीवित वर्तमान में कार्य करो, दिल में साहस और ईश्वर पर भरोसा रखो।

—लांगफेलो

इसी प्रकार गोली मार ली। अजायबघर के अधिकारियों ने यह स्थिति देखकर विचार किया कि उस प्रतिमा को हटा देना चाहिए। पर दुर्लभ एवं अनोखी कलाकृति होने के कारण उसे हटाया न जा सका। हाँ, अधिकारियों ने उसके प्रदर्शन पर रोक अवश्य लगा दी। प्रतिमा के कलाकार का नाम पता नहीं मालूम हो सका पर ऐसा अनुमान लगाया गया कि प्रतिमा किसी द्वीप की राजकुमारी की है जो अपने समय की अद्वितीय सुन्दरी थी एवं जीवनकाल में ही राजकीय दुष्चक्रों के कारण उसकी मृत्यु हो गयी थी।

ऐसे प्रसंग घटते हैं तो दुर्भाग्यग्रस्तों एवं उनसे जुड़ी वस्तुओं के अभिशापों का स्मरण दिला देते हैं। यह तथ्य अपनी जगह अटल है कि अभिशप्त वातावरण चेतन जगत के प्रवाह का ही एक निषेधात्मक पहलू है। इनसे बचना व सुसंस्कारी वातावरण के सान्निध्य आना ही श्रेयस्कर है, भले ही तुरन्त आकर्षण पहल ही ओर घसीटता हो।

(क्रमशः)

म

संस्था
बाध
अध्या
माना
करना
साथ
काम
ज्ञान
शिक्षा
किन्तु
ऐसे प्र
सूक्ष्म
हो स

रिक
ताओं
शास्त्र

व
अथवा
फिल्म
का दृश
ट्रान्सम
किया

वि
के आध
तो ध्या
की गई
अथवा
टेड का
अजीब
है।

अखण्ड

अखण्ड-ज्योति

मनुष्य की अदृश्य सत्ता अति समर्था

अतीन्द्रिय क्षमताएँ परामनोविज्ञान के अनुसार मनः-संस्थान का ही एक अंग हैं और उनका कारण एवं आधार मस्तिष्कीय संरचना में खोजा जा सकता है। अध्यात्म शास्त्र में रहस्य लोक को सूक्ष्म शरीर का विषय माना है। इस सूक्ष्म शरीर का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करना ही तो उसे मानसिक चेतना की गहरी परतों के साथ जुड़ा हुआ देखा जा सकता है। शरीर यात्रा में काम आने वाली—दैनिक जीवन की गुत्थियों को सुलझाने वाली—क्षमता व्यवहार मस्तिष्क में है। उसे शिक्षा, अनुभव अभ्यास से विकसित किया जा सकता है किन्तु सूक्ष्म शरीर की क्षमताएँ विकसित करने के लिए ऐसे प्रयोग अपनाने पड़ते हैं जो मनःसंस्थान में सन्निहित सूक्ष्म चेतना केन्द्रों को सजग सक्रिय कर सकने में सफल हो सकें।

अब विज्ञान मनुष्येतर विभिन्न प्राणियों की शारीरिक एवं मानसिक संरचना में जुड़ी हुई अद्भुत विशेषताओं को खोजने में संलग्न है। इसका एक स्वतन्त्र शास्त्र ही बन गया है—जिसका नाम है—‘बायोनिक्स’।

वैज्ञानिकों का कहना है कि—दूर की फोटो लेना, अथवा दूरवर्ती वस्तुओं का फोटो लेना, केवल माइक्रो फिल्म द्वारा ही सम्भव है और वह भी जबकि उस तरह का दृश्य किसी निश्चित फ्रीक्वेंसी पर निश्चित माइक्रो-ट्रान्समीटर द्वारा शक्तिशाली विद्युत तरंगों द्वारा प्रेषित किया गया हो।

किन्तु शिकागो के टेडसीरियस ने मानसिक कल्पना के आधार पर ध्यान में लाए गये चित्र कैमरे से खिंचाये तो ध्यान कर्ता टेड सीरियस के फोटो के स्थान पर ध्यान की गई वस्तु के साफ-साफ फोटो थे। जैसे ध्यान में घोड़ा अथवा शेर है तो स्पष्ट घोड़ा और शेर का ही फोटो था टेड का चित्र क्यों नहीं आया यह एक विचित्र उलझन अजीब पहली है। विज्ञान के लिए चुनौती और चैलेंज है।

अखण्ड-ज्योति

वैज्ञानिक इसे न ट्रिक मानते हैं न हिप्नोटिज्म और टेड ने कभी भारत आकर किसी योगी से भी ऐसा प्रशिक्षण नहीं लिया।

१९६२ में टेड सीरियस ने भारत का नक्शा देखकर फतेहपुर सीकरी, के मुख्य द्वार “बुलन्द दरवाजा” दिल्ली के लाल किले के दीवाने आम की कल्पना कर कैमरे के चित्र खिंचाए तो हूबहू वैसे ही थे जैसे कि दिल्ली और फतेहपुर सीकरी के। किन्तु टेड तो कभी भारत भी नहीं आये जो अतीत में देखी कल्पना मस्तिष्क में उभर सके। नवम्बर १९६८ की कादम्बिनी में टेड के कल्पना चित्रों का फोटो भी छपा था। आश्चर्य है कि अमेरिका में बैठा व्यक्ति हिन्दुस्तान के कल्पना चित्र का फोटो उतरवाकर भारतीय उपासना दर्शन की प्रामाणिकता सिद्ध करता रहा है।

गुप्त या अप्रकट बातों को जानने की जिसे शक्ति प्राप्त होती है उसे “डिवाइनिंग” कहा जाता है।

अंग्रेजी सेना के प्रसिद्ध सेनापति और बाद में इंग्लैण्ड के युद्ध मंत्री लार्ड किचनर इस विद्या में पारंगत थे। जब वे अंग्रेजी सेना में लेफ्टिनेन्ट पद पर कार्यरत थे तब कोरस्को के रेगिस्तान में २५० मील लम्बी रेल लाइन बनाई जा रही थी, जहाँ पानी का भारी संकट और अभाव था। वहाँ लार्ड किचनर ने अपनी इस क्षमता का उपयोग कर भयंकर रेगिस्तान में दो कुँए बनवाये, जिनमें मीठा स्वच्छ जल निकला। इस तरह रेल लाइन बनने में जो पानी की कठिनाई आ रही थी वह दूर हो गई।

प्रथम विश्व युद्ध के अवसर पर इंग्लैण्ड के प्रधान मंत्री लार्ड जॉयज ने बुढ़ापे में बगीचा लगाया तो उनके फार्म के पास जल साधनों के अभाव में बगीचा सूख रहा था किन्तु पड़ोसी किसान के खेत हरे-भरे देखकर वे उस किसान के पास पहुँचे तो उन्होंने उसके खेतों को पानी मिलने के साधनों की जानकारी करनी चाही। उस किसान ने बताया कि इस भूमि में सभी स्थानों पर जल

महीं मिलता मेरी स्त्री को एक ऐसी विद्या (डिवाइनिंग) आती है जिससे वह पानी के स्रोतों का पता लगा लेती है। लाड जायज को जहाँ-जहाँ उस महिला ने बताया वहाँ खोदने पर अपार जल भण्डार मिले जिससे ३ लाख गैलन पानी प्रतिदिन निकाला जा सकता था।

कोलोरोडो प्रान्त के लेडीवली रगर में के० डब्लू० पी० जोन्स नाम का एक ऐसा व्यक्ति हुआ है जो जमीन पर चलकर यह बता देता था कि जिस भूमि पर वह चल रहा है उसके बीच किस धातु की—कितनी बड़ी खदान है उसे जमीन में दबी भिन्न धातुओं का प्रभाव अपने शरीर पर विभिन्न प्रकार के स्पन्दनों से होता था। अनुभव ने उसे यह सिखा दिया था कि किस धातु का स्पन्दन कैसा होता है। अपनी इस विशेषता का उसने भरपूर लाभ उठाया। कड़्यों को खदान बताकर उनसे हिस्सा लिया और कुछ खदानें उसने अपने धन से खरीदीं और चलाईं। अमेरिका का यह बहुत धन-सम्पन्न व्यक्ति अपनी इसी विशेषता के कारण बना था।

गेविन मेक्सवेल ने अपने अनुसन्धानों में एक अस्सी वर्षीय अन्धे का वर्णन किया है जिसने समुद्र में डूबी हुई एक मछलहारे की लाश का सही स्थान बताने और उसे बाहर लाने में सहायता की थी। उन्होंने पच्छिमी पठार के द्वीप समूहों के लोगों में यह क्षमता विशेष रूप से पाये जाने का उल्लेख किया है। समुद्र फियारना द्वीप में एक मछुआ मछली पकड़ते समय गांव के समीप की खाड़ी में डूब गया। उसकी लाश निकालने और विधिवत् दफनाने के लिए सारा गांव उत्सुक था। सभी नावें कई दिन तक लगातार खाड़ी में चक्कर काटती रहीं, पर किसी के कांटे में लाश फँसी नहीं। निराशा छाई हुई थी। तभी एक अस्सी वर्षीय अन्धे कैलम मैकिनन ने कहा आप लोग मुझे नाव में बिठा कर ले चले और खाड़ी में डूमाते रहें। सम्भवतः मैं लाश को तलाश करा दूंगा। वैसे ही किया गया। सही जगह मिलने पर बुढ़ा चिल्लाया—कांटा डालो लाश ठीक नीचे है। वैसे ही किया गया। फलतः मृतक को बाहर निकाल लिया गया और उसे विधिवत् दफनाया गया।

आयरलैंड के प्रो० वैरेट। भूमिगत जल स्रोतों एवं

खदानों का पता लगाने के संदर्भ में प्रख्यात था। वहाँ के विकलो पहाड़ी क्षेत्र में दूर-दूर तक पानी का कहीं नामो-निशान नहीं था, कड़ी एवं पथरीली जमीन पर प्रो० वैरेट खदान विशेषज्ञों के सामने उस क्षेत्र में कई घण्टे डूमाते रहे, अन्ततः एक स्थान पर रुककर बोले—यहाँ १४ फुट गहराई पर एक अच्छा जल स्रोत है। खुदाई के पश्चात् वहाँ मात्र १५ फुट जमीन खोदने पर पानी की एक जोरदार धारा फूट पड़ी।

भारत के राजस्थान प्रान्त में “पानी वाले महाराज”, अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर कई सफल कुएँ बनवा चुके हैं, उन्हें माधवनन्द जी के नाम से जाना जाता था।

चेकोस्लोवाकिया के एक शिल्पी ब्रितिलाव काफ़्थ में अतीन्द्रिय दर्शन की अद्भुत क्षमता थी। उसके द्वारा उत्तरी ध्रुव की ऋतुओं और परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करने में महत्वपूर्ण सहयोग मिला तथा दूसरे महा-युद्ध के समय उसने युद्ध के मोर्चे की हलचलों के बारे में जो विलक्षण जानकारी दी, वे आश्चर्यजनक रूप से सत्य सिद्ध हुईं। इतना ही नहीं उसकी इस क्षमता का लाभ भी युद्ध में उठाया गया। ‘इन साइक्लोरीडिया ऑफ ऑकल्ट’ जो तन्त्र विद्या के विश्वकोश के रूप में प्रसिद्ध हैं, में एण्टोन मेसकर नामक एक ऐसे व्यक्ति का उल्लेख मिलता है जो नेट के माध्यम से अप्रत्यक्ष एवं अदृश्य वस्तुओं का विवरण बताया करता था। फ्रांसीसी वैज्ञानिक और कवि जूलस ने इस व्यक्ति की जाँच करके यह लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति की त्वचा में ऐसे कोशाणु उपस्थित रहते हैं जो देखने की क्षमता रखते हैं। मेसकर में ये कोशाणु अधिक विकसित स्थिति में विद्यमान हैं। यह कोश स्पर्श के आधार पर देखने का बहुत कुछ प्रयोग पूरा करते हैं। स्मरणीय है अन्धे व्यक्ति अपनी त्वचा और कानों द्वारा ही नेत्रों के अभाव की बहुत कुछ आवश्यकता पूरी कर लेते हैं।

वैज्ञानिक अलेक्जेंडर किताई गोरोरस्की ने कई परा-मनोवैज्ञानिक शोधों का निकट से अध्ययन किया और अतीन्द्रिय क्षमता को पूरी ईमानदारी के साथ स्वीकार किया है। उन्होंने वूल्फ मेसिंग नामक एक व्यक्ति का उल्लेख किया है जिसमें अनायास ही ऐसी क्षमता उत्पन्न

हो गई जिससे वह दूरस्थ घटनाओं एवं विचारों का परिचय प्राप्त कर लेता था। गोरोरस्की के अतिरिक्त अन्य कई व्यक्तियों ने भी उसका परीक्षण किया और पाया कि टेलीपैथी कोई जादूगरी अथवा धोखाधड़ी नहीं बल्कि एक ध्रुव सिद्ध सत्य है।

विचार संचालन विद्या भी अतीन्द्रिय क्षमताओं के अन्तर्गत आती है। एक व्यक्ति दूसरे के मन की बात जान सकता है। अपने मन की बात बिना वार्त्तालाप किये ही दूसरों को जता सकता है। इतना ही नहीं इस क्षेत्र में आग्रह करने और दबाव डालने की भी गुंजायश है। यहाँ तक कि किसी पर चढ़ बैठने और पछाड़ देने की बात भी तन्त्रिकों द्वारा प्रयुक्त की जाती रहती है। उतना आगे तक न बढ़ा जाय तो भी विचार शक्ति की जानकारी के आदान-प्रदान से आगे बढ़ाकर दूसरों की सेवा सहायता करने में तो निश्चित रूप से लगाया जा सकता है। इस तथ्य की प्रामाणिकता का परिचय देने वाले कितने ही प्रमाण सगय-समय पर मिलते रहते हैं।

टेलीपैथी के एक प्रयोगकर्त्ता इंग्लैण्ड के ए० एन० क्रीरी ने बहुत समय तक वह प्रयोग चलाया कि बन्द कमरे में क्या हो रहा है इसकी जानकारी प्राप्त की जाय। इस प्रयोग में एक महिला अधिक दिव्यदृष्टि सम्पन्न सिद्ध हुई।

क्रीरी ने अपने प्रयोगों की सचाई जाँचने के लिए अनेक प्रामाणिक व्यक्तियों से अनुरोध किया। जाँचने वालों में डबलिन विश्व-विद्यालय के प्रो० सर विलियम वैरट इंग्लैण्ड की 'सोसाइटी फार साइकिकल रिसर्च' के प्रधान प्रो० सिजविग जैसे मूर्धन्य लोग थे। उन्होंने कई तरह से उलट-पलटकर इन प्रयोगों को देखा और उन प्रयोगों के पीछे निहित सचाई को स्वीकारा।

परा मनोविज्ञान अनुसंधान की दिशा में विधिवत् प्रयत्न लगभग एक शताब्दी से चल रहे हैं। इसका श्री-गणेश लन्दन सोसाइटी फार साइकिकल रिसर्च के रूप में हुआ। इसके तीन वर्ष बाद वैसी ही शोध सभा अमेरिका में भी गठित हुई उसका नाम रखा गया— 'अमेरिकन सोसाइटी फार साइकिकल रिसर्च' इंग्लैण्ड में हेनरी लिजविक, सर कानन डायल, सर अलीवर लाज,

सर विलियम क्रुक्स जैसे मनीषियों ने इन प्रयोगों में गहरी दिलचस्पी ली। अमेरिका में हुए शोध प्रयत्नों में पिछली पीढ़ी के मनीषियों में विलियम जेम्स, मैकडगल का नाम अग्रिम पंक्ति में है। रूस के शरीर शास्त्री वी० एम० वेख्तेरेफ की खोजों ने परा-मनोविज्ञान शोध को आगे बढ़ाने में भारी प्रयत्न किये हैं।

फाउण्डेशन आफ रिसर्च आन दि नेचर आफ मेन से सम्बद्ध 'इन्स्टीट्यूट फार पैरासाइकोलोजी' ने परा मनःशक्ति के सन्दर्भ में अति महत्वपूर्ण शोध सामग्री एकत्रित की है।

इयूक विश्व विद्यालय के डा० जे० वी० राइन द्वारा लिखित पुस्तक न्यू फ्रन्टियर्स आफ माइण्ड में मस्तिष्कीय विलक्षणता पर गम्भीर प्रकाश डाला गया है। इनको विकसित करने पर प्राप्त हो सकने वाले लाभों की ओर मात्र निर्देश किया है।

स्विट्जरलैण्ड के सेन्ट पेरुस नगर में बड़े गिर्जे के पादरी ऐलाक्सिस मर्मेट अपनी दिव्य दृष्टि के लिए प्रसिद्ध रहे थे। उन्होंने उस क्षमता का उपयोग जमीन के छिपे जल स्रोतों की जानकारी देने और सिचाई की सुविधा बढ़ाने में की। बिना किसी भूमि पर जाये वे उसके नक्शा को देखभाल करके ही नीचे के पानी का विवरण बता देते थे। उनके ऐसे चमत्कारी कृत्यों में कोलम्बिया के पोपापन नगर को जल सुविधा प्रदान करने की घटना बहुत प्रसिद्ध है। वहाँ उनसे मात्र नक्शा देखकर ८८ फुट से १ इंच नीचे जल स्रोत होने की सूचना दी जो खोदने पर विलकुल सही निकली। इतना ही नहीं उनसे पानी के दबाव की सही स्थिति भी पहले ही बता दी थी। प्रति मिनट ५०० लीटर का बहाव होने की बात उनसे बताई थी। खोदने पर वह दबाव भी ठीक उतना ही निकला।

कैलीफोर्निया के पुलिस अधिकारी 'रिचमाण्ड' ने अचानक फोन पर किसी व्यक्ति की सूचना सुनी— "पैनपाब्लो के मैकडोल्ड एवेन्यू में स्टीम लाइनर से टकराकर एक दुर्घटना-ग्रस्त हो गया। चालक के सीने में गम्भीर चोट लगी है और दूसरे व्यक्ति घायल हो गये हैं— वहाँ जल्दी पहुँचिये"।

अखण्ड-ज्योति

फोन पर प्राप्त सूचना के अनुसार अधिकारी ने एक पुलिस दल को तुरन्त वहाँ भेज दिया। वहाँ पहुँचाकर करने पर पता चला कि इस तरह की कोई घटना अभी नहीं घटी है। पुलिस कर्मचारियों ने समझा कि किसी ने यों ही मजाक में उन्हें तंग किया है।

पुलिस दल लौटने ही वाला था कि उसके सामने ही एक स्टीम लाइनर सामने से आ रहे एक ट्रक से टकरा गया। ड्राइवर की छाती चूर-चूर हो गयी और कई अन्य व्यक्ति बुरी तरह घायल हो गए।

विसेट तथा मारग्रेट नामक दो वैज्ञानिकों ने सैकड़ों जुड़वाँ बच्चों पर शोध कर अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं। जुड़वाँ बच्चों में कुछ सामान्य अन्तर होते हुए भी उनकी आदतों, विचारों एवं स्वभाव में पर्याप्त साम्य पाया गया है। इस सन्दर्भ में उक्त वैज्ञानिकों ने कई घटनाक्रमों का उल्लेख किया है। पार्टों में सम्मिलित एक डॉक्टर की पत्नी डॉंग मार्टिन अपने मित्रों से हँस-हँसकर बोल बतिया रही थी, अचानक वे उदास हो गईं और फूट-फूटकर रोने लगीं। तत्काल तो उनका कोई कारण न ढूँढा जा सका परन्तु कालान्तर में ज्ञात हुआ कि उसी समय उसकी जुड़वाँ बहन अचानक बीमार पड़ गई थी।

बर्किंगहम शहर की एक और घटना इसी प्रकार आश्चर्यचकित कर देने वाली हुई। मारग्रेट एक परिवार में अतिथि बन कर गये हुए थे। उस परिवार की महिला रसोई में, खूब प्रसन्न और स्वस्थ स्थिति में काम कर रही थीं। अचानक रसोई से कराहने की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। मारग्रेट सहित परिवार के अन्य सदस्य दौड़ आये। कराहने का कारण पूछने पर महिला ने बताया कि अचानक उसके चेहरे, पीठ और पैरों में इस प्रकार दर्द होने लगा था, जैसे वह किसी दुर्घटना से आहत हो गई हो। तत्काल तो उसका कारण पता न चला, पर बाद में ज्ञात हुआ कि उसी समय जब महिला कराह रही थी उसकी बहन 'बैक्स' एक कार दुर्घटना से बुरी तरह घायल हो गई थी और उसके चेहरे, पीठ और पैरों पर काफी चोटें आई थीं।

ब्रिटेन की लेबर पार्टी के संसद सदस्य डगलस की बेटी कैथरीन ने जिस समय एक बच्चे को जन्म दिया, उसी समय उसकी जुड़वाँ बहन हेलन के पेट में भी सख्त पीड़ा हो रही थी।

प्रो० जे० एच० कैमरान ने लिबरपूल के एक मैकेनिक का विचित्र विवरण दिया है, जिसे न कहीं चोट आई न कोई बीमारी हुई फिर भी वह एक सप्ताह तक चलने-फिरने में असमर्थ रहा, कारण कि उसके एक जुड़वाँ भाई की टाँग एक दुर्घटना में टूट चुकी थी।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ प्रकाश में आती रहती हैं, जिससे जुड़वाँ बच्चों को एक ही व्यक्तित्व के दो विभ्व कहा जाये तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। कई ऐसे व्यक्तियों में तो सुदूर प्रवेश में रहने पर भी एक दूसरे तक अपने विचार और सम्बेदना सम्प्रेषित करने की अद्भुत क्षमता पाई जाती है।

इन साम्यों का कारण ढूँढना वैज्ञानिकों के लिए चुनौती सट्टा है। अमेरिकी विशेषज्ञ विसेट का कथन है कि 'उन बच्चों का विकास गर्भाशय के भीतर ही एक-सी ही स्थितियों में होता है। उस समान स्थिति में पलने के कारण अलग-अलग देहधारी होते हुए भी उनके व्यक्तित्व तथा आचरण में समानता आ जाती है।'

लन्दन हास्पिटल के 'साइकी आर्टी इन्स्टीट्यूट' के डॉ० जेम्स शील्ड ने जुड़वाँ बच्चों पर काफी अनुसन्धान कार्य किया और उनमें पाई जाने वाली समानताओं के वैज्ञानिक कारण प्रस्तुत किये हैं। उनका विचार है कि एक ही परिवेश में पले और विकसित हुए बच्चों के शरीर, स्वभाव, आदतों, व्यवहार, रुचियों एवं मस्तिष्कीय क्षमताओं में पर्याप्त समानता आ जाती है। इसका प्रधान कारण गर्भ में एक ही प्रकार का पोषण मिलना है।

वुडलैण्ड (अमेरिका) के डॉक्टर जियो वर्नहाट ने अपना अनुभव परामनोविज्ञान की एक प्रसिद्ध पत्रिका में प्रकाशित कराया है। वे लिखते हैं कि 'सन् १९७१ की

(शेष भाग पृष्ठ ३३ पर)

स्वप्न सार्थक भी होते हैं !

इसमें सन्देह नहीं कि स्वप्नों का अधिकांश भाग निरर्थक होता है। सोते समय जो चित्र-विचित्र दृश्य दीखते, विचार उठते और भाव उभरते हैं उनकी तर्क, तथ्य के साथ संगति नहीं बैठती। कोई कारण समझ में नहीं आता कि जाने-अनजाने सन्दर्भ लेकर यह विना पैसे का सिनेमा कौन दिखाता है और किस लिए दिखाता है। इस गुत्थी को सुलझाने के लिए चिरकाल से प्रयत्न चलता रहा है, पर अभी तक कोई सार गर्भित निष्कर्ष निकल नहीं सका। स्वप्न फल बताने वाले रहस्यवादी कुछ तुक तो विठाते रहे हैं, पर अभी तक कोई ऐसी सुनिश्चित संगति वैठी नहीं, जिसके आधार पर स्वप्नों की सही समीक्षा या विवेचना की जा सके। अपच की उत्तेजना, अर्धनिद्रा, परिणत, त्रिभुज मानस की बाल क्रीड़ा स्मृति भण्डार की झाड़-बुहार जैसे कुछ कारण मनोवैज्ञानिक बताते तो हैं, पर इन प्रतिपादनों से न तो वे स्वयं ही सन्तुष्ट हैं और न विश्वास पूर्वक जिज्ञासुओं का समाधान कर सकने में ही समर्थ हैं।

अनिश्चितता का असमंजस रहते हुए भी कुछ तथ्य ऐसे हैं जो यह दवाव डालते हैं कि इसे भ्रम-जंजाल ही नहीं मानते रहना चाहिए, वरन् गहराई में उतर कर यह पता लगाना चाहिए कि स्वप्नों में कुछ सार होता है क्या? वे प्रत्यक्ष जीवन में किसी प्रकार सहायक समाधानकारक हो सकते हैं क्या? इस पक्ष के पास बहुत कुछ ऐसे कारण प्रमाण विद्यमान हैं जो कहते हैं कि सभी न सही, कुछ स्वप्नों में उपयोगी सार संक्षेप छिपा रहता है। उतने भर को भी यदि समझा और काम में लाया जा सके तो इससे मानवी सुविधा, सन्तुष्टि, प्रगति और सम्भावना में उत्साहवर्धक कड़ियाँ जुड़ सकती हैं।

स्वप्नों में सारगर्भित अंश भी विद्यमान है, भले ही वह थोड़ा-सा ही क्यों न हो, भले ही वह यदा-कदा ही दृष्टिगोचर क्यों न होता हो। उनमें से कुछ के द्वारा

अपनी वर्तमान शारीरिक मानसिक स्थिति को समझने में सहायता मिल सकती है। निदान उपलब्ध हो तो उपचार सरल पड़ता है इसे सभी जानते हैं। स्वप्नों के सहारे मनःस्थिति ही नहीं, परिस्थिति का विश्लेषण वर्गीकरण करने में सहायता मिल सकती है। इतना ही नहीं उनमें भविष्य दर्शन कराने वाले, भवितव्यता का पूर्वाभास देने वाले तथ्य भी जुड़े रहते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वे दिव्य-लोक के बहने वाले प्रवाह तक जा पहुँचते हैं और उस धारा के हाथ बहते हुए उस ओर चल पड़ते हैं जिस ओर चलने के लिए आत्म विज्ञानियों को शोध परिष्कार के लिए कठिन योग तप का आश्रय लेना पड़ता है।

बाइबिल में वर्णित 'गॉस्पेल ऑफ सेंट मैथ्यू' के अनुसार यीशु के पिता जोसेफ को जब इस बात की जानकारी मिली कि उसकी अविवाहिता पत्नी मेरी तुरन्त ही एक बच्चे की माँ बनने वाली है तो उसे बड़ा धक्का लगा और उसने अपनी पत्नी को त्याग देने का निश्चय किया। जब वह ऐसा सोच रहे थे उसी समय एक दिन रात में सोते समय उन्हें स्वप्न में एक देवदूत दिखा। वह बोला "ओ डेविड के पुत्र! तुम मेरी को अपने साथ रखने में डरो मत। तो तुम्हारा सौभाग्य होगा। क्योंकि उसके गर्भ से परम पवित्र आत्मा ईसा का जन्म होगा। उस पुत्र का नाम जीसस रखा जाएगा। यही सब मनुष्यों को पाप से बचायेगा।"

उस समय के क्रूर यहूदी राजा हेरोड के खोफ से जीसस को बचाने के लिए जोसेफ को फिर स्वप्न में देवदूत आया और संकेत दिया कि बच्चे को लेकर भिस चले जाओ। इसी प्रकार यीशु से मिलने के लिए तीन प्रज्ञा पुरुष आये थे। उन्हें भी रात्रि में स्वप्न के माध्यम से देवदूतों ने कहा कि—"हेरोड को जीसस के जन्म की भनक दिये बिना ही आप लोग चुपचाप यहाँ से प्रस्थान कर जायें।"

अखण्ड-ज्योति

कुछ वर्षों बाद हेरोड की मृत्यु हो जाने पर जोसेफ को स्वप्न के माध्यम से देवदूतों द्वारा बताया गया कि आप वापस इजरायल लौट आयें। लेकिन आते समय अपना रास्ता बदलकर आयें तथा हेरोड की राजधानी में नहीं अपितु गैलीली नामक स्थान में अपना निवास बनायें।

इजराइल पहुँचने पर देवदूतों ने बताया कि रहने के लिए सर्वाधिक निरापद स्थान गैलीली ही है। उन दिनों अविवाहिता संतान को अवांछनीय माना जाता था और राजा से लेकर धर्माध्यक्ष तक सभी ऐसे प्रसंगों में कठोर क्रूरता का परिचय देते थे। ईसा का जन्म ऐसी विपत्ति से जुड़ा हुआ था इसलिए देवदूतों को उसकी सुरक्षा के उपाय इस प्रकार दिव्य स्वप्नों के माध्यम से बनाने पड़े। जो बाद में बहुत ही सही और उपयोगी सिद्ध हुए।

बुद्ध के जन्म के समय उनकी माता माया ने अपने एक सांकेतिक स्वप्न के बारे में अपने पति शुद्धोदन को बताया—

“वरफ या चाँदी जैसा शुभ्र, सूर्य और चन्द्र से भी अधिक तेजस्वी, वज्र सदृश छह दाँतों वाला हाथी मेरे गर्भ में प्रवेश कर गया। इस ‘सांकेतिक स्वप्न को मुझे समझना है। ज्योतिषियों को बुलाया गया। उनसे बताया कि—“आपके गर्भ से एक ऐसे महाप्रतापी पुरुष का जन्म होगा जो अपने करुणा और त्याग से सब राजाओं का राजा और सब इच्छाओं का परित्यागी भ्रमणशील सन्त होगा।”

इस्लाम धर्म में भी स्वप्न के माध्यम से अनेक चमत्कारी घटनाओं का वर्णन है। पहली बात तो यह है कि कुरान का सन्देश भी खुदाने मुहम्मद साहब को स्वप्न में ही दिया था। दूसरे एक स्वप्न के अनुसार उन्हें मक्का से भागते समय बताया गया कि—“डरो मत। तुम फिर यहीं बसोगे तथा यहीं से इस्लाम का प्रसार-विस्तार होगा। पैगम्बर को भी स्वप्नों पर बहुत भरोसा था और इस्लाम के प्रारम्भिक साहित्य में हजरत की रात्रि चर्या के सम्बन्ध में चौदह अध्यात्म लिखे गये हैं जिनमें दृष्टि-गोचर हुए स्वप्नों के रहस्य का विस्तार वर्णन है। पैगम्बर साहब स्वप्नों से इतने प्रभावित थे कि अपने

अनुयायियों से प्रायः पूछते थे कि आज रात में तुम्हें कैसा स्वप्न आया।

इतिहास से सम्बन्धित प्रमुख व्यक्तियों के बारे में भी स्वप्न की अनेक घटनाएँ बतायी जाती हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

प्रथम विश्व-युद्ध के तृतीय वर्ष में जर्मन सेना में हिटलर एक वरिष्ठ अधिकारी था। बावेरिया प्रदेश और फ्रांस की सीमा पर उसे तैनात किया गया था। एक रात्रि को उसे स्वप्न आया कि ‘एक विस्फोट के कारण उसकी छावनी तहस-नहस हो जाती है और पिघला हुआ लोहा उसके चारों ओर उड़ रहा है। बहता हुआ खून उसकी छाती को स्पर्श कर रहा है। जगने पर उसने देखा कि कहीं कुछ ऐसी घटना नहीं घटी थी। सब कुछ शान्त था। फिर भी उसके अचेतन मन ने उसे सचेत कर दिया था। अतः वह अपनी छावनी छोड़ दुश्मन की छावनी की ओर भागने लगा। तभी उसके अन्तर्मन से चेतावनी आई कि वहाँ जाने की बेवकूफी क्यों कर रहे हो? दुश्मन तुम्हें गोलियों से भून डालेंगे। परन्तु इसके बावजूद भी वह किसी अदृश्य शक्ति से खिंचा हुआ वह अपनी छावनी से काफी दूर निकल गया। ज्योंही उसने पीछे मुड़कर देखा तो पाया कि सपना सत्य बन चुका था। दुश्मन की गोलावारी से छावनी तथा उसके आस-पास को सभी व्यक्तियों, वस्तुओं का सफाया हो चुका था। बच रहा केवल अकेला वही हिटलर। उसे आगे भी तो अभी और बहुत कुछ पापड़ बेलने शेष थे।

फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक और गणित वेत्ता रेने डेस्कार्टेस जिसने आधुनिक वैज्ञानिक युग के सिद्धान्त उसकी कार्यपद्धति और मूलभूत दर्शन का प्रतिपादन किया। एक स्वप्न में मिली प्रेरणा का ही प्रतिफल समझा जा सकता है। अपनी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक समस्याओं तथा पत्नी व सम्बन्धियों की जटिल परिस्थितियों के बीच यह समझ नहीं आ रही थी कि आखिर क्या किया जाय। उसी समय १० नवम्बर १६१६ की रात को उसे तीन स्वप्न आये। इनमें से पहले दो तो परिवार एवं घरेलू प्रसंगों से सम्बन्धित थे। अन्तिम स्वप्न में उसको निर्देश दिया गया कि

अखण्ड-ज्योति

तुम्हें

ारे में
में से

ना में

और

एक

कारण

हुआ

खून

उसने

व कुछ

वेत कर

न की

तर्जन से

कर रहे

तु इसके

हुआ वह

ही उसने

चुका

के आस-

हो चुका

उसे आगे

।

त्ता रेने

सिद्धान्त

प्रतिपादन

प्रतिफल

रेवारिक,

स्वन्धियों

आ रही

मय १०

न आये।

से सम्ब-

गया कि

इ-ज्योति

सत्य के अन्वेषण के लिए गणित सब विज्ञानों का खजाना है। गणितीय पद्धति के विकास में जीवन सम्पित करने की प्रेरणा इस स्वप्न के माध्यम से उन्हें प्राप्त हुई। इस स्वप्न के बाद उसने अपना सम्पूर्ण जीवन उस उद्देश्य में ही लगाया और एक ऐसा दर्शन-शास्त्र का विस्तार किया जो विज्ञान के दृष्टिकोण से बुद्धि गम्य हो और धार्मिक गूढ़ तत्वों का समन्वयन करता हो। जिस दर्शन से पश्चिमी दुनिया विगत तीन सौ वर्षों से प्रभावित रही है। यह एक पहली ही है कि यदि वह स्वप्न न आया होता तो उसकी जीवन-दिशा क्या होती?

इसी प्रकार कई लेखक कलाकार, कवि, विज्ञानी एवं आविष्कर्ताओं ने अपने मौलिक विचार, वेधक दृष्टि और सूक्ष्म-बुद्धि अपने-अपने जीवन में स्वप्नों के संकेत के माध्यम से पाया है।

प्रसिद्ध जर्मन रसायनविद् केकुले ने बैजिन के सूत्र का आविष्कार करके जैव रसायन में क्रान्ति मचा दी। यह जानकारी उन्हें एक स्वप्न के माध्यम से प्राप्त हुई। जब वह अपने अनुसंधान कार्य को करते-करते अपनी प्रयोगशाला में निराश बैठे थे। ठंड से बचने के लिए सिगड़ी को कुर्सी के नजदीक खींच लिया। आराम महसूस होने पर उन्हें झपकियाँ आने लगीं। नींद में एक स्वप्न आया। “रसायनिक सूत्रों के परमाणु नृत्य करने लगे और जैसे साँप टेढ़ी-मेढ़ी लकीर बनाता है उसी प्रकार नाचने लगे। थोड़ी देर में एक साँप ने अपनी पूँछ मुँह में ले ली।” जैसे ही यह स्वप्न दीखा यह स्फुरणा जगी कि रासायनिक सूत्र को एक सीधी लकीर में लिखने की अपेक्षा क्यों न बहुमितिक बहुकोणीय आकारों में लिखा जाय? इसी परिकल्पना के आधार पर सूत्र बनाने की उनने अपनी कार्य पद्धति बनाई और अप्रत्याशित सफलता पाई।

परमाणुओं के परिभ्रमण की रचना की जानकारी देने पर नेल्स बोर को नोबल पुरस्कार मिला था। उस जानकारी ने बीसवीं सदी में विज्ञान जगत में हाइड्रोजन परमाणुओं के सम्बन्ध में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। १९१३ में नेल्स बोर को एक स्वप्न के माध्यम से इस थ्योरी

का संकेत मिला था।

स्वप्न विशेषज्ञ विज्ञान वेत्ता मनोविज्ञानी वासिली निकोलायेविच कासात्किन का कहना है कि—“सपने बीमारियों की भी सूचना देते हैं।” उनने अपनी जानकारी को कुछ घटनाओं का उल्लेख किया है। एक प्रसंग प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं—एक लड़के को कई रातों से यह स्वप्न आ रहा था कि वह किसी अजगर की चपेट में आ गया है तथा उसके कसान से उसका सारा शरीर दर्द करने लगता है। कुछ दिनों बाद वह सचमुच में बीमार हो गया। जाँच करने वाले डॉक्टर ने कहा कि तुम्हें कोई रोग नहीं है। फिर भी, एक माल के अन्दर ही उसकी रीढ़ की हड्डी में भयंकर व्रण हो गया।

“एक महिला को स्वप्न में ऐसा लगता था मानो वह मिट्टी के दबाव से दबी जा रही है तथा उसकी साँस बेतरह घुट रही है। डॉक्टर से जाँच कराने पर किसी रोग का पता नहीं चला लेकिन दो माह बाद जाँच कराने पर उसे ट्यूबरकुलोसिस का मरीज पाया गया।” “इसी प्रकार एक महिला को स्वप्न में दम घुटने जैसा अनुभव उसके फेंफड़े की टी० ब्री० का पूर्वाभास देता था।”

डॉ० कासात्किन का कहना है कि हमारे मस्तिष्क की ऊपरी सतह में एक ड्रीम बैंड है जिसमें शरीर में होने वाले रोगों की पूर्व सूचना दिखाई पड़ती है। हमारे स्वस्थ शरीर की स्थिति में किसी प्रकार की सूक्ष्मतम गड़बड़ी भी यहाँ अंकित हो जाती है। यो स्वप्न तो हमेशा आते ही रहते हैं। वे अजीबों गरीब भी हो सकते हैं। पर यदि एक ही तरह का स्वप्न बार-बार आता रहे तो समझना चाहिए कि उसमें किसी विशेष जानकारी के सूत्र सन्निहित होने की सम्भावना है।

स्वप्नों का विश्लेषण भी एक विज्ञान है। यदि उसका समुचित अनुसंधान हो सके तो किसी ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है जो अनेक रहस्यों पर से पर्दा उठा सकने में समर्थ होने के कारण मनुष्य जाति के लिए असाधारण रूप से उपयोगी सिद्ध हो सके।



अखण्ड-ज्योति



मात्र जीवट के बल पर जीवित-हिम-मानव

मानवी प्रगति के इतिहास वेत्ता यही कहते हैं कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। पारस्परिक सहयोग से ही उसने प्रगति के विभिन्न सोपान पार किये और आदान-प्रदान की रीति-नीति अपना कर सुविधा साधनों का उपार्जन किया। यह प्रतिपादन बहुत हद तक सही भी है। किन्तु इसे पत्थर की लकीर नहीं मानना चाहिए। यह मानने के भी कारण हैं कि जीवधारी का अपना निजी जीवट भी उसका अस्तित्व बनाये रहने, प्रकृति प्रतिकूलताओं से जूझने और निर्वाह के साधन जुटाने में बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। पारस्परिक सहयोग वाली बात उतनी ही महत्वपूर्ण सचाई मनुष्य के निजी जीवट में भी केन्द्रीभूत है।

बर्फीले प्रदेशों में रहने वाले हिरन, भालू कुत्ते अनादि काल से उन्हीं विकट परिस्थितियों में रहते चले आ रहे हैं। बर्फीले समुद्रों में पाई जाने वाली मछलियाँ तथा अन्य जल जीव उसके प्रमाण हैं। मनुष्यों में ध्रुव क्षेत्र के निवासी 'एस्किमो' इसके प्रमाण हैं। आदिवासी बनवासी प्रजापतियों में अनेकों ऐसी हैं जिन्हें पारस्परिक सहयोग पर कम और अपने निजी जीवट पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है।

वानर वर्ग से मिलता-जुलता विशालकाय हिम-मानव इसका प्रमाण है। इसके अस्तित्व के सम्बन्ध में समय-समय पर अनेक प्रमाण मिलते रहते हैं। साथ ही यह भी पता चलता है कि वह स्वभावतः एकाकी रहता है। वंश वृद्धि की आवश्यकता से विवश होकर ही वे कभी जोड़ा खोजते होंगे और कुछ ही क्षण उपरान्त नर मादा अपना-अपना रास्ता नापते होंगे। जीव जन्तुओं में से अनेकों की एकाकी प्रकृति एवं जीवन चर्या समझ में आती है किन्तु मनुष्य एवं उसके सजातियों के सम्बन्ध में उस तथ्य को गले उतारना कठिन पड़ता है। हिम-मानव इसका अपवाद है। उसके अस्तित्व को प्रामाणित करने वाले यह भी सिद्ध करते हैं कि वह मनुष्य का निकटवर्ती

है। आकृति प्रकृति में बहुत कुछ मिलता-जुलता है। फिर भी वह हिम क्षेत्रों की कठिन निर्वाह परिस्थितियों में अपने आपको ढाले हुए है और बिना झुण्ड बनाये, अपने जीवट के बलवृत्ते चिरकाल से निर्वाह करता चला आता है। हिम मानव के अस्तित्व और निर्वाह क्रम के सम्बन्ध में समय-समय पर जो जानकारीयाँ मिलती रहती हैं। वे सभी असाधारण रूप से आश्चर्यजनक हैं।

२५ मार्च सन् १९७० को ब्रिटिश पर्वतारोहियों का एक दल अन्नपूर्णा शिखर की सबसे ऊँची चोटी पर अपनी विजय पताका फहराने के उद्देश्य से दुस्साहस भरी यात्रा कर रहा था। चन्द्रमा की चाँदनी से आलोकित हिमाच्छादित प्रदेश में पर्वतारोही दल के सदस्य रात्रि विश्राम के लिए कैम्प लगाकर सोने की तैयारी में थे। अचानक सामने हाथी जैसी भयानक आकृति वाली लम्बी परछाई के साथ एक वन्य जीव इधर-उधर घूमते दिखाई दिया। छतरे की आशंका से उन लोगों ने बाहर निकलकर राइफलें तान लीं। निरीक्षण करने पर पाया कि दूसरे जीव की आकृति प्रकृति बहुचर्चित हिम-मानव जैसी है। आधा घण्टे बाद वह उछल-कूद करता पर्वत शृंखलाओं की ओट में गायब हो गया।

बर्नार्ड होवेल मेन्स ने अपनी यात्रा, पुस्तक 'आन दि ट्रंक आफ अननोन एनिमल्स' में 'येति' नामक मानवा-कृति का वर्णन किया है। जिसका सारा शरीर घने लम्बे वालों से आच्छादित रहता ऊँचाई ५ मीटर या इससे अधिक रहती है। येति के अतिरिक्त दो अन्य जीव-धारियों का वर्णन है। 'रिमि' नामक प्राणी ३ से ४ हजार मीटर की ऊँची पहाड़ियों में रहते हैं जिनकी ऊँचाई करीब ३ मीटर बताई गयी है। दूसरा है 'न्यालमो' जो ४ हजार मीटर से अधिक ऊँचे बर्फीले स्थान में रहते हैं जिनकी ऊँचाई ४ से ५ मीटर होती है। न्यालमो के चेहरे की त्वचा सफेद और सम्पूर्ण शरीर काले घने वालों से ढँका रहता है। उसके हाथ इतने लम्बे होते हैं

जो घुटने से नीचे तक जाते हैं। मुखाकृति मानव से मिलती-जुलती है। पैर बहुत बलिष्ठ हाथों के बल से बड़े-बड़े पेड़ उखाड़ना और चट्टानें उठा फेंकना जिसके लिए कोई बड़ी बात नहीं।

ता है।

स्थितियों

बनाये,

ता चला

ह क्रम के

मिलती

नक है।

हियों का

पेटी पर

दुस्साहस

से आलो-

के सदस्य

तैयारी में

ति वाली

धर-उधर

लोगों ने

करने पर

वत हिम-

द करता

'आन दि

मानवा-

घने लम्बे

या इससे

य जीव-

४ हजार

ऊँचाई

लमों' जो

रहते हैं

मालमों के

काले घने

वे होते हैं

-ज्योति

१९२१ में एवरेस्ट चढ़ाई करने वाले दल के अध्यक्ष सी० के० हावर्ड वरी ने इस प्रकार के मानव के अस्तित्व के बारे में पुष्टि दी। लन्दन के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'डेली मेल' में १९५४ व ५७ में ऐसे मानवों के पदचिह्नों के फोटोग्राफ छपे थे। १९५४ में हावर्ड वरी द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में बताया गया, इसी प्रकार की पहाड़ी शेरपा ने ७ हजार मीटर पर मानवाकृति दिखाई। तब उन्हें विश्वास नहीं हुआ, उसे भेड़िया समझा लेकिन पदचिह्न मनुष्य जैसे थे। १९५७ में किसी वैज्ञानिक ने ५ हजार मीटर की ऊँचाई पर मानव आकृति वाला दो पैरों से चलने वाला विशालकाय जीव देखा। जो चलते-चलते एक-एक कर घासपात की तरह पेड़ उखाड़ रहा था। चेहरे का रंग हल्का पीला शरीर पर घने बाल सिर पर बाल जटाओं जैसे लम्बे थे।

१९४४ में बुड क्रिकलैंड एवं मैक्स ने अपनी यात्रा वर्णन में बताया कि ४ हजार मीटर की ऊँचाई पर मनुष्य जैसी ऊँचाई के लंगूर रहते हैं। दो पैरों से चलते हैं।

१९७० में प्रसिद्ध पर्वतारोही डॉन विलन्स ने नेपाल में ४ हजार फुट की ऊँचाई पर बर्फ के पहाड़ पर रहस्यमय पद चिह्न देखे और चन्द्रमा के प्रकाश में पर्वत की तलहटी पर मानवाकृति को देखा।

ऐसी अन्य अनेक घटनाओं को तो वैज्ञानिकों ने निराधार सिद्ध कर दिया लेकिन १९५१ में माउण्ट एवरेस्ट पर ६ हजार ५०० मीटर की ऊँचाई पर लिये गये पदचिह्नों के फोटोग्राफ अब भी रहस्यमय बने हुए हैं। एरिक सिप्टन और माइकेल वाड दोनों शेरपा तेनसिह के साथ माउण्ट एवरेस्ट पर गये थे उस समय की यह घटना है।

स्मिथ सोनियल इन्स्टीट्यूट अमेरिका के प्रिमेटोलॉजी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो० जॉन नेपियर ने ऐसी अनेकों घटनाओं के साथ उपर्युक्त घटना का

अखण्ड-ज्योति

अध्ययन किया और बताया कि "माउण्ट एवरेस्ट की घटना को निराधार नहीं कह सकते। लेकिन फलहाल यह अनिर्णित ही बनी है।"

'तास' की खबर के अनुसार कुछ रसियों ने उत्तरी साइबेरिया के याकुत इलाके में 'छछना' (यती) देखा है। १९८० में समाचार पत्रों में खबर छपी कि केन्द्रीय चीन में ४८ से० मी० लम्बे पैरों के निशान मिले। १९७४ में नेपाली न्यूज एजेन्सी की रिपोर्ट के अनुसार नौजे (नामचे बाजार) में लगभग तीस किलोमीटर फेरिचे गाँव की १० साल की लाक्पा नाम की शेरपाणी ने यति देखा। वह अपने पाँच याक चरा रही थी कि एकाएक यति ने उसे उठाया और खड्डे में डाल दिया और उसके पाँचों याकों को गले से पकड़ कर मार दिया। बेचारी दहशत के मारे बाद में चार महीनों तक विक्षिप्त-सी रही।

चीन के हुबेई प्रान्त में हाल के वर्षों में कई 'वनमानुष' देखे गये जिनकी लम्बाई दो मीटर से भी अधिक तथा अंग वालों से ढँके हुए थे।

शंघाई के दैनिक 'वेनहुई वाओ' में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार १९७६ में हुबेई के निवासियों ने १४ बार वनमानुष देखे। अगले वर्ष उनकी खोज के लिए ११० सदस्यीय खोजी दल का गठन किया गया। ये वनमानुष मानवों की भाँति पैरों के बल चलते हैं और ताली बजाने, चिल्लाने, हँसने व छड़ी आदि लेकर चलने की क्रियाएँ करते हैं। उन्हें मनुष्यों के साथ रहना अच्छा लगता है।

उनके चेहरे भी बालों से ढँके होते हैं। मुँह बड़ा होता है तथा चेहरे का ऊपरी हिस्सा चोड़ा व निचला हिस्सा संकरा होता है।

पत्र के अनुसार इन वनमानुषों के पूँछ नहीं होती और कान मनुष्यों से बड़े होते हैं तथा आँखें बड़ी व गहरी होती हैं। शंघाई विश्व विद्यालय के जीव विज्ञान विभाग के प्रोफेसर श्री लिङ मिन हुआंग के अनुसार ये वनमानुष मानव तथा ओरंगउटांग के बीच के जीव हैं।

यों तो हिमालय में ३००० मीटर से ६००० मीटर की ऊँचाई तक जहाँ-तहाँ पर्वतारोहियों, चत्वाहों और

शेरपाओं को इसके पद चिन्ह दिखाई दिये हैं, किन्तु इसका मुख्य क्षेत्र है—एवरेस्ट—श्रेणी की हिमानियाँ और तलहटियाँ। इसलिये नेपाल में एवरेस्ट-श्रेणी के लिए 'महालंगूर हिमाल' शब्द का प्रयोग मिलता है। महालंगूर शब्द से यही रहस्यमय हिम-मानव यती अभिप्रेत है।

इसके अतिरिक्त अमेरिका में भी उसके अस्तित्व के प्रमाण मिले हैं। १९६६ की ३० जून को 'नेशनल बुलेटिन' में प्रकाशित घटना का विवरण इस प्रकार है—एक अमेरिकी लड़की ने बताया कि अमेरिका के मिने-सोटा जंगल में एक भीमकाय 'हिम मानव' ने मुझ छोड़ा किसी तरह मैंने उसकी दाहिनी आँख में गोली मारी और छुटकारा पाया। इस हिम मानव का फ्रॉक डी० हेन्सन प्रदर्शन के लिए उपयोग करता था। सामान्यतः जंगली जानवरों को पिंजरो में रखा जाता है लेकिन इसे बर्फ के कटघरे में रखा जाता था प्रदर्शन के समय हेन्सन सबको इसका परिचय इस प्रकार देता था कि साय-बेरिया के पास आखोटस समुद्र में तैरते हुए ६ हजार पाँड के हिमशैल पर मैंने इसे पकड़ा था। उसके मर जाने के बाद वैसे ही कृत्रिम हिम मानव प्रदर्शन हेतु बनाया। लेकिन आश्चर्य की बात है कि प्रसिद्ध जीव-शास्त्री इवान सेंडरसन और बर्नार्ड होवेलमेन ने "बुलेटिन ऑफ दि रायल इन्स्टीट्यूट आफ नेचरल साइन्सिस बेल्जियम" नामक पत्रिका में एक लेख प्रकाशित किया जिसके अनुसार—उन्होंने विशालकाय आकार के प्राणियों की वैज्ञानिक जाँच भी की, यह रहस्यमय मानवाकृति 'होमोपोंगाइड्स' नामक प्राणी से मिलती है।

१९२० में स्वीट्जरलैण्ड के जिओलोजिस्ट फ्रॉकोइस डी० लोइस ने एक महाकाय बन्दर जैसे प्राणी को गोली से मारा था। जिसकी लम्बाई २ मीटर थी। इस प्रकार के अनेकों बन्दर दक्षिणी अमेरिका में देखे गये हैं।

१९२४ में लॉयस नामक वैज्ञानिक ने बन्दर की आकृति से मिलते-जुलते भीमकाय प्राणी को देखने और उसके पदचिन्हों फोटो के प्रस्तुत किये थे।

१९३३ में एक रिपोर्ट समाचार पत्रों में छपी थी। ४५०० मीटर ऊँचाई के हिमान्छादित पहाड़ों पर दो पर्वतारोही बैठे थे वहाँ से उन्होंने मानवाकृति के विशालकाय प्राणी को ४०० मीटर नीचे पहाड़ की तलहटी में फल खाते देखा था। बाद में पदचिन्हों को देखकर मालूम हुआ कि वे रीछ के पैर से भिन्न थे।

१९४० में छपी रिपोर्टनुसार चैपमैन परिवार की दो महिलाएँ खेत में काम कर रही थीं। उन्होंने ३-४ मीटर ऊँचाई का घने वालों वाला राक्षसाकृति व्यक्ति देखा। उसे देखकर दोनों डरकर भागने लगीं, नदी के उस पार उनका घर था। वह व्यक्ति पीछा करते हुए नदी के किनारे आया वहाँ लकड़ी की पेटी में मछलियाँ रखी थीं। उसने वह पेटी उलट दी।

१९५५ में एक व्यक्ति ने एक महाकाय शरीर वाली स्त्री को स्वयं से २० मीटर दूरी पर कुछ खाते हुए देखा। पेड़ की टहनियाँ तोड़कर उसके पत्ते खा रही थी। जब वह चली गयी, उस स्थान का निरीक्षण करने गया। वहाँ उसके मल में भी पत्तियों के टुकड़े थे।

१९५८ में एक बिल्डिंग का निर्माण कार्य चल रहा था। एक कारीगर ने जंगल की ओर का दरवाजा खोला। घने वालों से ढँके विशालकाय मनुष्य को देखा मजदूर के हाथ में खाने की वस्तु थी उसने उसे दे दी लेते ही वह चला गया।

१९६३ में एक मकाम के निर्माण का कार्य चल रहा था। काँकरीट के बड़े-बड़े ब्लाक पड़े थे। एक ट्रक भी वहीं खड़ा था। रात्रि में एक विचित्र घटना घटी। दूसरे दिन प्रातः लोगों ने मनुष्य की पदाकृति के बड़े आकार में पद चिन्ह देखे वजनी काँकरीट ब्लाक इस तरह बिखरे पड़े थे जैसे किसी शक्तिशाली हाथों ने इधर-उधर का दिया हो, ट्रक भी उल्टा पड़ा था।

१९६७ की घटना इस प्रकार है—शीतकाल में जंगली चूहे शीत निद्रा में सो जाते हैं। उन जंगलों में लोगों ने दो विशालकाय मानवाकृति एवं एक बच्चे के पत्थर में टटोलते कुछ देखा। कुछ पत्थरों के नीचे उन

जंगली बूहे मिल गये। इतने बड़े झूहों को वे केले की तरह खाने लगे।

१९६६ में अमेरिका ब्रोस वर्ग नामक शहर से बाहर जहाँ शहर के कूड़े का ढेर रहता था। वहाँ बड़ी आकृति के असंख्य पद चिन्ह देखे गये। गिनने पर उनकी संख्या १००८६ थी।

१९७० में जंगल में रात्रि के समय एक शिकारी ने मानवाकृति जैसे डरावने विशालकाय प्राणी को देखा। उसकी आँखें लाल प्रकाश से चमकती दिखाई दे रही थीं वह ऐल्फ नामक जंगली जानवर को खा रहा था। पीछा करने पर वह भाग गया। ऐल्फ का अधछाया शरीर वहीं पड़ा था। उसके बड़े-बड़े पैरों के निशान भी देखे गये।

१९७२ में एयर की नाव में समुद्र यात्रा करने वाले दो यात्रियों ने समुद्र की आकृति जैसे बड़े प्राणी देखे। एक की ऊँचाई १.५ मीटर और दूसरे की १.२ मीटर थी। इन दोनों प्राणियों ने सन्तुष्टतापूर्ण चेहरे से समुद्री यात्रियों को देखा। उनकी आँखों में प्रयानकता नहीं थी।

प्रस्तुत घटनाएँ अपवाद रूप में ही सही, हिममानव का अस्तित्व अथवा अपनी जिजीविषा के बल पर उसकी दुर्गम स्थानों पर धीमे रहने की सम्भावनाएँ उजागर करती हैं। यही सामर्थ्य मनुष्य में भी विद्यमान है। 'हिममानव' हमें इसप्रश्न तो करता है पर श्रुता ही काफी नहीं। मनुष्य ऐसे प्रतिबलताओं में भी जीने की चुनौती मानकर स्वीकार करे तो ही इस अधिज्ञात की खोज की सार्थकता है।



(पृष्ठ २६ का शेष भाग)

घटना है—एक दिन बैठे-बैठे लगा कि उनका पुत्र जॉन बियतनाम के बुद्ध मोर्चे पर बुरी तरह आग में फँस गया है और उसके तम्बू की आग फैल रही है। वह बड़े सन्दूक के नीचे दब गया है। उन्हें लगा कि जैसे उन्होंने जान को सन्दूक के नीचे से उठाया और तम्बू से बाहर धसीट लाये और खड़ा कर दिया। इसके बाद मुझे अपना शरीर पूर्ववत् महसूस होने लगा। अखिं बोलीं तो मालूम पड़ा कि तन्त्रा-सी आ गई है। इतनी तबज टटोल रही थी मैंने पूछा कि क्या बात है तो वे बोलीं ऐसा लगा कि आप “एब नॉर्मल” हैं मैंने पत्नी को बह सपने की-सी बात कह सुनाई उन्होंने हँसकर टाक दिया। बात आई गई हो गई छः माह बाद जॉन मोर्चे से वापस आया तो सर्वप्रथम उसने अग्निकाण्ड में फँसने और अचानक किसी अनजान शक्ति की मदद से निकलने की बात ने पुनः उस घटना की स्मृति तरोताजा कर दी और रहस्य पर से पर्दा

उठा दिया।”

परामर्शोद्दिष्टान की परिधि बड़ी विशाल है। यह अधिज्ञात का क्षेत्र है। मानवी चेतना की रहस्यमयी परतों में ऐसी व खाने कितनी विशलणताएँ छिपी पड़ी हैं। अध्यात्म धारण में हमें सामान्य मन की प्रसुप्त सामर्थ्य माना जाता है। यह कोई मिथि अथवा विलक्षण उपलब्धि नहीं, प्रकृति प्रदत्त क्षमता है जो सबमें एक समान रूप से विद्यमान है। कोई हमें साक्षना पुरुषार्थ से व कोई-कोई पूर्व अर्जित सुसंस्कारोंवश अस्वी जगा लेते हैं। पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्री व शोध कर्त्ता इन्हें आश्चर्य से देखते हैं जबकि यह मनःसंस्थान के सूक्ष्म शक्ति केन्द्र के जागरण की प्रतिक्रिया मात्र है। मनुष्य असीम सामर्थ्यों से भरपूर है। अपने आपको पहचानने का प्रयास तो किया जाय। फिर तो असीम उपलब्धियों का क्षेत्र खुल जाता है।

अखण्ड-ज्योति

काया में जल की प्रधानता - एक अद्वितीय अनिवार्यता

काया को पंच तत्वों से बना हुआ माना जाता है। अब तत्वों की संख्या एक ही से ही ऊपर चली गई है और पदार्थों की संख्या में अनेकानेक रूपाइयों का अस्तित्व सिद्ध किया गया है। रासायनिक पदार्थ एक दूसरे के संयोग से बनते हैं और उच्च अभिव्यक्ति में मात्रा तथा घटकों के समानान्तर को देखते हुए उनकी संख्या इतनी जा पहुँचती है जिसे प्रकारान्तर से अगणित कहा जा सके।

जीवन निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाले प्रारम्भिक तत्वों के अतिरिक्त जीवधारियों में कुछ धातुओं के धातुत्व का आयन भी पाये जाते हैं। इनमें सोडियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, कैल्शियम मुख्य हैं। ऋणात्मक आयनों क्लोरीन (क्लोराइड) प्रमुख है। इनके साथ ही मैग्नीशियम, लोहा, कोबाल्ट, ताँबा, जिंक की अल्प मात्रा विद्यमान रहती है। कभी-कभी दुर्लभ रूप में बोरान, ऐल्यूमीनियम, वैनेडियम, सैलैनिम एवं आयोडीन भी पाये जाते हैं।

शरीर में सबसे अधिक मात्रा पानी की है। यह जलीय अंश ही कोशसत्ता, स्फूर्ति एवं लचीलता का प्रतीक है। यह अंश जैसे-जैसे घटके लक्ष्यता है वैसे ही मनुष्य कठोर कुत्तर बालसी एवं जरायवी होने लगता है। एक नियत मात्रा से अधिक कमी के आते पर तो दुर्बलता, रुग्णता बढ़ती और मरण की दृष्टि निकट आ पहुँचती है।

भिन्न-भिन्न जीवों में पानी की प्रतिशत मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। पूर्ण रूप से विकसित मानव शरीर का ७० प्रतिशत भाग उसके पाये जाने वाले पानी के कारण होता है। उसी प्रकार बड़े एवं बड़े जीवों में क्रमशः ७३ एवं ८० प्रतिशत भाग उनके शरीर से विद्यमान जल के कारण होता है। सीलन्ड्रेट में जल का भार कुल भार का ९८ प्रतिशत से भी अधिक होता है। विकसित एवं जटिल जीवधारियों में का अंग अधिक उपयोग में आते हैं उसमें जल की मात्रा अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक होती

है जबकि कंकाल माध्य २२ प्रतिशत ही जल रखता है। मांशपेशियों में ७६.६ प्रतिशत हृदय में ७९.३ प्रतिशत, मस्तिष्क के सेरीब्रल हेमी-स्फीयर में ८३.३ प्रतिशत पानी की मात्रा पायी जाती है। गर्भस्थ शिशुओं में जब उनके विभिन्न अंगों का निर्माण कार्य चल रहा होता है, जल की मात्रा ९० प्रतिशत से भी अधिक होती है जबकि वयस्कों में घटकर यह ५० प्रतिशत हो जाती है।

जल में ताप ग्रहण करने की बहुत ही अधिक क्षमता होती है, परन्तु इसकी ताप परिवहन क्षमता अत्यन्त कम होती है। इसके इसी गुण के कारण सागरों-महासागरों का तापक्रम स्थिर रहता है। जल की इसी विशेषता के कारण विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तुओं में उनके शरीर का तापमान प्रायः सबैध स्थिर रहता है।

प्रसिद्ध रूसी जीवशास्त्री एम० एम० कामशिलोव का कहना है कि जीवन की उत्पत्ति में जल का निश्चय ही महत्वपूर्ण योगदान रहा होगा। उनका कथन है कि जीवों की उत्पत्ति के आरम्भिक काल में जब कि उनके चलने-फिरने के अंगों का विकास नहीं हुआ होगा जब विभिन्न लक्षणों एवं पोषक तत्वों के साहक के रूप में अपनी भूमिका निभा रहा होगा। जीवधारियों में इसका मुख्य काम विभिन्न प्रकार के लक्षणों एवं पोषक तत्वों को एक अंग से दूसरे अंग में पहुँचाने का एवं हानिकारक और अनुपयोगी पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने का है।

कैपिलरी ऐक्शन जल का एक प्रमुख गुण है। इसकी इस प्रक्रिया के माध्यम से ही पौधे विभिन्न प्रकार के खनिज लक्षण एवं पोषक तत्व पृथ्वी से प्राप्त करते हैं। इसकी प्रकाशीय विशेषता के कारण इसके हजारों फीट नीचे भी फोटो-सिन्थेसिस (प्रकाश संश्लेषण) की क्रिया यथावत् हो सकती है। ये सारे तथ्य इस बात के प्रमाण हैं कि जल जीवन का एक महत्वपूर्ण घटक है। इसके बिना जीवन सम्भव नहीं हो सकता। जीवोत्पत्ति में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होना संदिग्ध नहीं लगता।



मनीषा के भविष्य का शोध निमन्त्रण

जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक जानकारी भगवान ने सभी प्राणियों को समान रूप से दी है। उदर पोषण, वंशवृद्धि, आत्म रक्षा, क्रीड़ा विनोद की जीवनचर्या के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति सभी जीवधारी कुशलतापूर्वक करते रहते हैं। इस परिधि से आगे बढ़ने पर ज्ञान विज्ञान का क्षेत्र कहते हैं। मनुष्य ने आरम्भ से ही इसमें प्रवेश करने का प्रयत्न किया है और उस पुरुषार्थ का समुचित प्रतिकूल भी पाया है।

सुविधा सम्पादन को प्रधानता देते हुए ज्ञान विज्ञान की खोज होती रही है। अब तक की प्रगति उसी प्रयास का प्रतिकूल है। इतने पर भी यह सोचना बाकी है कि प्रकृति के अनन्त रहस्यों में से ऐसा कुछ अधिक उपलब्ध कर सकने के लिए किस प्रकार प्रयत्न किया जाय तो सुविधा सम्पादन तक ही सीमित न हो, बरन् मानवी गौरव के अनुरूप उसे विशिष्टता एवं वरिष्ठता भी प्रदान कर सके।

भगवान महान है। उसका संसार भी एक से एक अद्भुत शिक्षताओं और महानताओं से भरा दूरा है। प्रश्न खोज श्रवण और रहस्योद्घाटन के निमित्त किये जाने वाले प्रयत्न पुरुषार्थ का है। यदि वह जुट सके—अपने क्षेत्र को व्यापक बना सके तो भ्रष्टता का अन्तराल फुरेदने के लिए अभी असंख्य क्षेत्र सूने पड़े हैं। उनमें से प्रत्येक ऐसा है जो विकसित स्थिति में पहुँचने पर न केवल सुविधा सम्बर्धन की—अभावों को पूर्ण करने की—संकटों को निरस्त करने की आवश्यकता पूर्ण करता है बरन् मनुष्य की उस वरिष्ठता तक भी पहुँचाने में समर्थ है जिसका कि वह युवराज होने के नाते अधिकारी भी है।

शरीर के विभिन्न अवयव एक दूसरे से भिन्न प्रकार की आकृति प्रकृति के हैं। साधारणतया वे जिस निमित्त बने हैं उसी कार्य को पूरा करते हैं। किन्तु कई बार

ऐसा भी होता है कि एक अवयव का कार्य दूसरा अंग करने लगे। सामान्य क्रम से भिन्न होने के कारण यह आश्चर्य तो लगता है किन्तु शरीर संरचना के मर्म को जानने वाले इसे असम्भव नहीं मान्य प्रतिक्रम मानते हैं। उनका कहना है कि हर जीव कोश में स्वतन्त्र शरीर बनाने की क्षमता है। इस क्षमता में यह तथ्य भी सम्मिलित है कि सभी अवयव एक ही मूल चेतना के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। अतएव किसी अंग से दूसरे अंग वाली क्षमता जग पड़े और द्वाप पेरों का काम करने लगे तो असम्भव नहीं कहला चाहिए। इस तथ्य को प्रमाणित करने वाली अनेकानेक घटनाएँ जहाँ-तहाँ प्रकट होती रहती हैं।

मिशिगन, अमेरिका में एक ऐसा व्यक्ति है जो मुँह से साँस खींचकर आँखों से निकाल सकता है। इन सज्जन का नाम है—एल्फ्रेड लागेदेन। इस तरह की अनुभूति उन्हें अपने आप तब हुई जब एक दिन उन्होंने मुँह में हवा भर दाँत कुलाया तो अनायास ही ऐसा लगा कि वह हवा आँखों से निकल रही है। आँखों के आगे हाथ लाकर देखा तो हवा की स्पष्ट अनुभूति हुई। इसे वहाँ उपस्थित अन्य लोगों ने भी अनुभव किया।

एक अवयव के द्वारा हो जाने पर दूसरे काम में लगाने पर उसकी संख्यायण पूर्ति दूसरे अवयव से कराई जा सके तो उसे शारीरिक विशिष्टता की दृष्टि से अतीव उपयोगी समझा जा सकता है।

कान कुछ सीमित सम्बर्धन के ध्वनि प्रवाह ही सुन पाते हैं किन्तु शरीर में ऐसे अत्यन्त कलपुर्ज विद्यमान हैं जो ध्रुवण शक्ति से ऊँची या नीची आवाज सुनकर संसार के अनेक क्षेत्रों में, अनेक शब्दों में, अनेक स्तर की पकती रहने वाली खिचड़ी का रसास्वादन कर सके। रेडियो यन्त्र के माध्यम से मात्र प्रेषण केन्द्रों से—निर्धारित फ्रीक्वेन्सी पर, निर्धारित ऊर्जा के साथ प्रेषित ध्वनि प्रवाह ही सुना जा सकता है किन्तु शरीर में ऐसे पुर्ज

अखण्ड-ज्योति

भी विद्यमान हैं जो यदि बच सके तो अपनी आवश्यकता एवं रुचि वाली ध्वनियों को अपनी ध्वनि में से पकड़ना और उस आधार पर बड़ी-बड़ी योजनाएँ पूर्ण कर सकना सम्भव हो सकता है।

चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग के दो नवयुवकों के बारे में एक बड़ी विचित्र बात सुनने को आई। जब दोनों जोर-जोर से साँस ले रहे हैं तो उनके शरीर के अन्दर से विचित्र प्रकार की ध्वनियाँ और संगीत आने लगता है, जो किसी समीपवर्ती रेडियो स्टेशन की ब्रॉड कास्टिंग भी हो सकती है। दोनों धुधुका जोर-जोर से साँस लेते समय किसी साउथव्हीकर के सिर का स्पष्ट करते थे तो आवाज इतनी ऊँची हो जाती थी कि सुनने वालों को ऐसा लगता था, जैसे कोई रेडियो पूरा खोल दिया गया हो।

पशु पक्षी और पेड़ पौधे भी अपने सहचर हैं। सबके समन्वित सहयोग से मानवी दृष्टिकोण शरीर और तिष्ठ रही है। इस क्षेत्र में ही एक से एक बड़ी-बड़ी अलौकिकताएँ विद्यमान हैं। अभ्यस्ता ध्यानकारी के अतिरिक्त भी बहुत कुछ ऐसा ही है जो प्रकृति के अन्तराल में ही नहीं पशु पक्षियों में ही पाया जाता है। उन रहस्यों का समझना और अधिज्ञातों को हस्तगत करना, अगले दिनों विज्ञान का प्रयास पक्ष प्रोत्साहित है।

साथी जानवरों में कुत्ते का भूमिचर स्थान है। उसे अभी मात्र चौकीदारी के लिए प्रयुक्त किया जाता है। पर उसकी विशिष्ट ध्यान क्षमता और बड़बुद दृष्टि गई तो चोरों का, चोरी के सामान के पता लगाने के लिए उनसे जासूसों जैसा काम लिया जा सकता है। आगे चलकर उसकी अन्य अतीन्द्रिय क्षमताओं का भी उपयोग किया जा सकता है।

एक घटना आस्ट्रेलिया की इससे भी विचित्र है। अपने मृत मालिक की ताबूत में रखी हुई आध की पहरेदारी उसके पालतू कुत्ते ने आरम्भ कर दी। किसी को भी यह पक्ष पटक नहीं देता। जो भी व्यक्ति ताबूत के नजदीक जाता उसे वह बड़काट खाता। तीसरे दिन जब ताबूत कब्रिस्तान ले जाया जा रहा था तो कुत्ते ने कंधा देने वालों के पैर काट लिए। इस पर ताबूत उनके हाथों

से छूटकर नीचे गिर पड़ा और टूट गया। देखा गया कि मृतक की साँसें चल रही हैं। उसे वापस घर ले जाया गया। तब लोगों ने समझा कि कुत्तों को अपनी अतीन्द्रिय शक्ति से मालिक के जीवित होने की बात पहले ही मालूम हो गई थी।

पर्वतारोही मनुष्य अनेक हुए हैं, पर एक कुत्ता भी ऐसा हुआ है जो अपने मालिकों के साथ जीवन भर आश्चर्यजनक ऊँचाई की हिमाच्छादित चोटियों पर चढ़ता रहा। यह अल्पाइन निवासी कूलिज का पालतू था। नाम था उसका 'तिशिन'। वह मात्र ११ वर्ष जिया पर इसी अवधि में उसने ३० ऊँची चोटियाँ चढ़ीं और ३६ दर्रे पारकिये। कुत्ता जब तक अल्प वयस्क ही था वह तिशिन दर्रे पर चढ़ जाने में सफल हुआ। इसी आधार पर उसका नाम भी रखा गया।

मनुष्य की तरह पालतू कुत्तों को भी बुद्धिमान, जीवन वाला, पराक्रम, साहसी बनाया जा सके तो वे एक समर्थ साथी सहयोगी का काम दे सकते हैं।

पशुओं के श्रम एवं शरीर का ही अब तक लाभ उठाया जाता रहा है। किन्तु उनकी विशेषताओं में से भावना वाला अंश अभी कार्यान्वित न होने के कारण प्रसुप्त ही पड़ा है। यदि उसे उभारा जा सके तो इस परिकर से भी स्नेह सौजन्य का—स्नेह सद्भाव का वैसा ही आनन्द उपलब्ध हो सकता है जैसा कि घनिष्ठ आत्मीय जनों की मित्रता सद्भावना से पाया जाता है।

बर्दमान जिले के चाँदमारी कॉलोनी, आसनसोल के एक अध्यापक श्री रामनारायण सिंह के यहाँ ३० अक्टूबर, १९६६ को एक गाय ने एक बछड़े को जन्म दिया। बछड़ा बड़ा ही विलक्षण प्रकृति का था। उसमें मानवी बच्चे के से गुण विद्यमान थे। बछड़े के मानवैतर व्यवहार व स्वभाव को देखकर लोग उसे पूर्व जन्म का शायद मनुष्य बताते थे।

बछड़ा आदमी की गोद में बच्चे की तरह सोने का प्रयत्न करता था। जब कोई उसे प्यार से सुलाता तो आनन्द विभोर होकर ऐसी मुद्रा में चला जाता मानो होश-हवास खो गहरी नींद सो रहा हो। अपने मालिक की गोद में किसी बच्चे को बैठा देखता तो उसे उतार-

गया कि
ले जाया
नी अती-
पहले ही

कुत्ता भी
गीवन भर
टियों पर
पालतू
११ वर्ष
टियाँ चढ़ीं
वयस्क ही
था। इसी

बुद्धिमान,
तो वे एक

क लाभ
आँखों में से
के कारण
के तो इस
भाव का
क घनिष्ठ
गता है।

सासनसोल
यहाँ ३०
को जन्म
। उसमें
मानवेतर
जन्म का

सोने का
मुलाता तो
गता मानो
ने मालिक
से उतार-

ज्योति

कर ही छोड़ता और उसकी जगह खुद बैठ जाता। यों खाता तो घास भी था, पर जब थाली में मनुष्य का भोजन दिया जाता तो खाने की तरकीब और सलीका देखते ही बनता। पास बैठे मनुष्य को हल्का धक्का देकर यह इशारा करता कि उसे घास या रोटी हाथ से खिलाई जाये। बिना दाल-साग के साथ बड़ रोटी कभी नहीं खाता। गृह स्वामिनी उसके प्रति आवेश प्रकट करती तो घर के एक कोने में सटकर बैठ जाता और आँसू बहाने लगता। यों प्रसाद में तुलसी के पत्ते वह प्रसन्नता पूर्वक खाता किन्तु आँगन में लगे तुलसी के गमले पर उसने कभी मुँह नहीं लगाया। पूजा के समय शांति पूर्वक आकर बैठ जाता। उस वक्त रस्सी से बँधा होता तो उसे तोड़ने का प्रयत्न करता और देव स्थान तक पहुँचने की कोशिश करता।

पक्षियों से न जाने क्या-क्या काम लिये जा सकते हैं। प्राचीन काल में कबूतर संदेश वाहक का काम करते थे और पत्रों को इधर से उधर पहुँचाते थे। उनकी गतिविधियों को देखकर शुक-विद्या के आधार पर भावी सम्भावनाओं का पूर्वाभास प्राप्त किया जाता था।

वनस्पति जगत में सर्वत्र उपलब्ध होने वाली और सबसे छोटी समझी जाने वाली इकाई घास है। पशुओं का प्रमुख आहार वही है। वह प्रचुर परिमाण में सर्वत्र उपलब्ध भी है। अगले दिनों मनुष्य के लिए आहार जुटाने में—खाद्य समस्या के समाधान में उसकी महती भूमिका हो सकती है। पशुओं की तरह मनुष्य भी उस पर भली-भाँति निर्वाह कर सकते हैं। अन्न, शाक आदि वस्तुतः एक विशेष प्रकार की घास ही हैं। चिकित्सा उपचार में काम आने वाली जड़ी-बूटियों में धरती के अतिरिक्त और क्या कहा जाय ?

साधारणतया २०० ग्रास घास से उतनी शक्ति मिलती है, जिससे किसान आधा घण्टा फावड़ा चला सकता है, यात्री डेढ़ घण्टे तक पैदल चल सकता है, लुहार आधा घण्टा कुल्हाड़ी चला सकता है और स्त्री कोई भी काम तीन घण्टे तक करती रह सकती है। प्रयोग से देखा गया है कि ७७० बीघे जमीन की घास सूर्य से एक दिन में जो शक्ति प्राप्त कर लेती है वह २०,००० टन टी०

एन० टी० अर्थात् पूरे एक परमाणु बम के बराबर होती है।

सूर्य की ऊर्जा और धरती की रासायनिक उर्ध्वता से घास का कलेवर भरा पूरा है। उसका उत्पादन अभिवर्धन भी कठिन नहीं। प्रश्न केवल इतना ही है कि उसे गले में उतारने योग्य स्वादिष्ट और पेट के द्वारा अपनाये जा सकने योग्य सुपाच्य किस प्रकार बनाया जा सकता है। विज्ञान के लिए इसका मार्ग खोज निकालना कठिन नहीं होना चाहिए।

वन्य पशुओं को दूध श्रम परिवहन से लेकर सरकस के विचित्र क्रिया-कलापों तक के लिए प्रशिक्षित कर लिया गया है। अन्न और फल प्राकृत रूप में वैसे नहीं थे जैसे कि इन दिनों अपने विकसित स्वरूप में हैं। पेड़ों में कलम लगी है और एक में ही अनेक रंगों के पुष्प अनेक स्वाद आकारों के फल उगा सकना सम्भव हो गया है। नारियल और पपीटे पर जड़ में ही फल लदने लगे हैं। इस कौशल को वृक्षों का प्रजातियाँ सुधारने में प्रयुक्त किया जा सकता है। कई वृक्ष पाये जाते हैं जिनकी विशेषता यदि अन्यान्यों में भी उत्पन्न की जा सके तो वे अब की अपेक्षा कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

शीत ऋतु में आमतौर पर सभी बड़े वृक्ष पतझड़ के शिकार होते और ठूठ जैसे दीखते हैं। फूलता तो उन दिनों कोई भी नहीं। किन्तु इटली का काले कांटे वाला 'ब्लैक थान' वृक्ष इसका अपवाद है। वह जब अत्यधिक ठण्डक का मौसम होता है उन्हीं दिनों पूरी तरह फूलता है और उसकी सभी टहनियाँ सुन्दर फूलों से लदी दीखती हैं।

दक्षिण अफ्रीका के वेलाविस्किदा क्षेत्र में पाया जाने वाला एक वृक्ष ऊँचा कम और मोटा अधिक होता है। वह सौ बरसों से भी अधिक समय तक जीवित रहता है और पशुओं के चरने योग्य घास जैसी पत्तियों से लदा रहता है। एक दिन तोड़ने पर उसकी पत्तियाँ दूसरे दिन फिर ज्यों की त्यों हरी भरी बन जाती हैं।

आम का पेड़ १५-२० फीट ऊँचा बढ़ने के बाद ही बौराता और फल देता है। लेकिन जबलपुर में किसी व्यक्ति ने कुछ माह पूर्व आम का एक पौधा लगाया।

अखण्ड-ज्योति

१७

सितम्बर १९८२

यह पौधा दो फीट ऊँचा बढ़कर ही आम के फल देने लगा। कुछ महीनों की आयु वाले इस पौधे में ८० आम लगे। इस आम के पौधे को देखने के लिए दूर-दूर से हजारों लोग आये। कोई भी यह नहीं समझ सका कि इतने छोटे पौधे में फूल-फल कैसे लग आये।

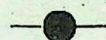
पशुओं को अधिक उपयोगी बनाने का मनुष्य ने असाधारण लाभ अर्जित किया है उस कौशल को कुछ वनस्पतियों के क्षेत्र में प्रयुक्त करने का ठीक यही समय है।

मानवी काया का मात्र एक ही कलेवर सूक्ष्म शरीर काम में आता है, शेष छँ कलेवर अविज्ञात एवं प्रसुप्त स्थिति में उपेक्षित अशक्त स्थिति में पड़े रहते हैं। उन्हें समझा और परिपुष्ट बनाया जा सके तो मनुष्य अब की अपेक्षा कम से कम सात गुना अधिक समर्थ हो सकता है।

शरीर बाहर से एक दीखते हुए भी उसके भीतर

सन्तरे की तरह पाये जाने वाले स्वतन्त्र घटकों की तरह सात शरीर पाये जाते हैं। इन्हें ब्रह्माण्ड व्यापी प्रकृति के सात शरीर भी कह सकते हैं। (१) दैवीय-डिवाइन (२) एष्टिक के प्रथम जीव से सम्बद्ध-मोनेडिक (३) परमाणु-एटमिक (४) आत्मिक-स्प्रिचुअल (५) मानसिक-मेन्टल (६) सूक्ष्म-एस्ट्रल (७) भौतिक-फिजीकल—इन सातों के भीतर ही समस्त अगणित सिद्धियाँ समृद्धियाँ समाविष्ट हैं।

ज्ञान और विज्ञान को भूतकाल की तरह मात्र सुविधा सम्पादन के इर्द-गिर्द परिभ्रमण नहीं करते रहने देना चाहिए वरन् उन असंख्य कार्य क्षेत्रों को खोजने उभारने में लगाना चाहिए जो अब तक की उपलब्धियों की तुलना में असंख्य गुने अधिक सशक्त समृद्ध एवं समुन्नत हैं।



कल्प साधना एवं युग शिल्पी सत्रों के अतिरिक्त मथे लेखन सत्र का शुभारम्भ

नव सृजन के युग शिल्पियों को परिष्कृत, परिपक्व एवं प्रवीण करने की दृष्टि से इन दिनों शान्ति कुञ्ज में कई महत्वपूर्ण शिक्षण सत्रों का कार्यक्रम चल रहा है। कल्प साधना सत्रों में शारीरिक मानसिक परिशोधन तथा आत्मिक परिष्कार के लिए जो आवश्यक है उसका समावेश करके प्रयत्न को समग्र बनाने का प्रयत्न किया गया है।

युग शिल्पी सत्रों में वाणी को सुखद करने और उस आधार पर लोक मानस की गहराई में बुद्ध चेतना को उतारना लक्ष्य है। भाषण कला—सम्भाषण कौशल, सरल संगीत एवं आसन प्राणायाम, जड़ी-बूटियों पर आधारित स्वास्थ्य सम्बर्धन, रोग निवारण आदि के कई महत्वपूर्ण विषयों का उसमें समुचित समावेश है। यह दोनों ही सत्र उत्साहवर्धक वातावरण में सन्तोषजनक सफलता के चल रहे हैं। दोनों ही एक-एक महीने के हैं। पहली तारीख से आरम्भ होकर ३० तक चलते हैं।

अब इस शृंखला में एक-तीसरे सत्र का शुभारम्भ किया गया है—वह है एक महीने का लेखन सत्र। वाणी की तरह लेखनी का भी युग चेतना को व्यापक बनाने के लिए समान रूप से प्रयोग होना चाहिए जागृत लोक मानस की बौद्धिक भूख बुझाने और परिवर्तन का स्वरूप उद्देश्य एवं प्रतिफल समझने समझाने के लिए अगले दिनों लेखनी को भी महती भूमिका निभानी पड़ेगी। इसके लिए सुयोग्य प्रतिभाओं को प्रशिक्षित करना भी इन्हीं दिनों आवश्यक हो गया है। ग्रेजुएट स्तर की शिक्षा प्राप्त, अध्ययन में गहरी रुचि रखने वाले छात्र ही इसमें प्रवेश पा सकेंगे। यह सत्र भी हर महीने १ से ३० तक चलेंगे। शिक्षा निःशुल्क है। अन्य सत्रों की तरह भोजन व्यय इन कक्षाओं के छात्रों को स्वयं ही वहन करना होता है जिन्हें रुचि हो आवेदन पत्र मांगलें और भरकर भेजें। स्वीकृति प्राप्त होने के उपरान्त ही आने की तैयारी करनी चाहिए।

की तरह
प्रकृति के
आइन (२)
परमाणु-
क-मेन्टल
सातों के
या समा-

रह मात्र
रते रहने
ने खोजने
पलब्धियों
मृद एवं

मारम्भ
दिनों
रीरिक
प्रयत्न

गहराई
आसन
विषयों
फलता
ते हैं।
ीने का
रूप से
य एवं
इसके
तर की
भी हर
क्षात्रों
वीकृति

-ज्योति

ज्योतिर्विज्ञान की चुनौती भौतिकी स्वीकार करें

शरीर के किसी भाग पर आघात पहुँचता है तो उसकी प्रतिक्रिया से शरीर का रोम-रोम कांप उठता है। मन और मस्तिष्क भी उद्विग्न और बेचैन हो उठते हैं। समूचा ध्यान शारीरिक पीड़ा पर केन्द्रित हो जाता है। मनःसंस्थान असन्तुलित हो तो शरीर भी स्वस्थ एवं नीरोग नहीं रह पाता। शरीर के प्रत्येक अवयव मनःसंस्थान परस्पर एक-दूसरे की स्थिति से प्रभावित होते हैं। यह शरीर की चैतन्यता एवं एकता के प्रमाण हैं। दृश्य और अदृश्य प्रकृति समूचा ब्रह्माण्ड भी इसी प्रकार एक चेतन पिण्ड है जिसके सभी घटक परस्पर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। जिसके एक सिरे पर जो कुछ भी घटित होता है तो अन्यान्य स्थानों पर उसकी प्रतिक्रिया परिलक्षित होती है।

इस तथ्य को प्रतिपादित करने एवं रहस्योद्घाटन करने का जो विज्ञान भारत में प्राचीन काल से प्रचलित था उसे ज्योतिष विज्ञान के नाम से जाना जाता है। इसका लक्ष्य था अन्तर्ग्रही सम्बन्धों की वैज्ञानिक विवेचना करना तथा एक-दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों से अवगत करना। फलतः इस विद्या के सहारे पृथ्वी से इतर ग्रह-नक्षत्रों के अनुदानों से लाभ उठा सकता एवं दुष्प्रभावों से बचाव कर पाना सुलभ था जो आज विकसित भौतिक विज्ञान द्वारा भी सम्भव नहीं है। कालान्तर में यह विज्ञान विलुप्त होता गया और उसका स्थान फलित ज्योतिष की मूढ़-मान्यताओं एवं भ्रान्तियों ने लिया। जिसे देखकर विज्ञानियों द्वारा इस विद्या की उपेक्षा हुई।

इसके बावजूद भी विज्ञान ने जब से प्रौढ़ता की ओर कदम रखा है उसका ध्यान अन्तरिक्ष की खाजगीन की ओर आकर्षित हुआ है। साथ ही ग्रह-नक्षत्रों सौर-मण्डल की गतिविधियों, आपसी सम्बन्धों एवं परस्पर एक-दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों को जानने के लिए छुटपुट प्रयास भी चल रहे हैं। प्रकारान्तर से भौतिक विज्ञान अब उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँच रहा है जिस पर

सदियों पूर्व तत्त्ववेत्ता ऋषि जो ज्योतिर्विज्ञान के मर्मज्ञ भी थे पहुँच चुके थे।

ज्योतिर्विज्ञान के आचार्यों ने सौर-मण्डल के ग्रह-नक्षत्रों को देवशक्तियों के रूप में प्रतिष्ठापित किया था। नौ ग्रहों की नौ देवताओं के रूप में प्रतिष्ठापना की गई है ज्योतिर्विज्ञान की यह मान्यता सदियों से चली आ रही है कि सौर मण्डल का अधिपति सूर्य मात्र अग्नि का धक्कता पिण्ड नहीं है अपितु जीवन प्राण और सक्रिय अग्नि का पुञ्ज है। जो पल-प्रतिपल अपने सौर-मण्डल के सदस्यों को अपनी गतिविधियों से प्रभावित करता है। न केवल सूर्य बल्कि मंगल, बृहस्पति, बुध आदि भी पृथ्वी के वातावरण को प्रभावित करते हैं।

इस तथ्य को विश्व के प्रसिद्ध भौतिक विद् भी स्वीकार करने लगे हैं कि सौर-मण्डल की गतिविधियाँ पृथ्वी के वातावरण एवं जविक परिस्थितियों पर प्रभाव डालती हैं। यूगोस्लाविया के नाभिकीय भौतिकविद् प्रो० 'स्टीवेन बेडीजर' जैसे विद्वानों का कहना है कि विज्ञान को अपनी अन्तरिक्षीय खोज की सफलता के लिए प्राचीन ज्योतिर्विज्ञान का अवलम्बन लेना होगा। प्राकृतिक घटनाओं की अभी भी कितनी ही गुत्थियाँ ऐसी हैं जिनको सुलझाने में आज का विकसित विज्ञान भी असमर्थ है। आधुनिक विज्ञान अन्तरिक्ष एवं सन्न्यूक्लीयर क्षेत्र में अपनी शानदार सफलता के बावजूद भी ब्रह्माण्ड सम्बन्धी घटनाओं की व्याख्या कर पाने में अपनी अक्षमता व्यक्त कर रहा है, क्योंकि इसका क्षेत्र सीमित है। इसके विपरीत ज्योतिष विज्ञान का ब्रह्माण्डीय ज्ञान अन्तरिक्षीय रहस्यों का उद्घाटन करने में पूर्णतया सक्षम है।

भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तानुसार हर पदार्थ कण इस ब्रह्माण्ड में एक-दूसरे के सापेक्ष गतिशील है। वे अपना स्थान भी परिवर्तित करते रहते हैं। फलतः जिस पर्यावरण में वे गतिशील रहते हैं, वह बदलता रहता है और एक अविच्छिन्न ब्रह्माण्डीय शृंखला में बँधे होने

अखण्ड-ज्योति

के कारण कणों का सन्दोह विशेष प्रभाव उत्पन्न करता है। जो अन्यान्य ग्रहों तथा पृथ्वी, चर, अचर पदार्थों एवं खगोलीय पिण्डों को प्रभावित करता है। इस तथ्य से परिचित होते हुए भी विज्ञान ग्रह-नक्षत्रों की गति-स्थिति और प्रभावों की स्पष्ट जानकारी देने में असमर्थ है। उपरोक्त टिप्पणी देते हुए भौतिक विद्स्टीवेन्ड डेडीजर का कहना है कि समग्र जानकारी के लिए ज्योतिर्विज्ञान के विलुप्त ज्ञान को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

प्रख्यात आस्ट्रियाई वैज्ञानिक एरनेस्ट मेक का मत है कि ब्रह्माण्ड के अनन्त कण एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा उनमें घना सम्बन्ध है। सौर लपटें जो कि ग्रहों की निकटता एवं चन्द्रमा की गति से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित हैं, पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के व्यतिरेक उत्पन्न करती हैं। ग्रही योग पृथ्वी एवं जैविकीय चुम्बकत्व पर अपना प्रभाव डालते हैं। ग्रहों के असन्तुलन से उत्पन्न होने वाली चुम्बकीय आधी प्रकृति प्रकोपों एवं पृथ्वी के जीवधारियों में अनेकों प्रकार के मानसिक एवं नर्वस सिस्टम के रोग उत्पन्न करती है। सूर्य चुम्बकत्व में होने वाले हेर-फेर से मानवी आचरण और स्वभाव भी अछूता नहीं रहता है।

रूस के वैज्ञानिक चीनेवस्की ने इस क्षेत्र में लम्बे समय तक खोजबीन करने के उपरान्त महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं। उनका कहना है—सौर मण्डल की हलचलों से पृथ्वी के वातावरण एवं षटनाक्रमों का घना सम्बन्ध है। हर ग्यारहवें वर्ष सूर्य में आणविक विस्फोट होता है। इन वर्षों में पृथ्वी पर युद्ध और क्रान्तियाँ जन्म लेती हैं। प्रकृति प्रकोप एवं महामारियाँ बढ़ती हैं।

जियोजार्जी गिआरडी नामक वैज्ञानिक ने ज्योतिर्विज्ञान से प्रेरणा लेकर विज्ञान की एक नवीन शाखा को जन्म दिया—ब्रह्माण्ड रसायन शास्त्र। गिआरडी का कहना है कि समूचा ब्रह्माण्ड एक शरीर है इसका कोई भी घटक अलग नहीं वरन् संयुक्त रूप से एकात्म है। इसलिए कोई भी ग्रह तारा पिण्ड कितना भी दूर क्यों न हो पृथ्वी के जीवन को प्रभावित करते हैं।

प्रो० ब्राउन का मत है कि पृथ्वी सौर-मण्डल का

ही एक सदस्य है और चन्द्रमा उसका ही एक उपग्रह। वैज्ञानिक दृष्टि से पृथ्वी और चन्द्र की उत्पत्ति सूर्य से हुई है। न केवल चन्द्र और सूर्य वरन् मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि की गतियाँ भी पृथ्वी को प्रभावित करती हैं। उन्होंने अन्तर्ग्रही प्रभावों को 'समानुभूति' नाम दिया है।

३ फरवरी १९६६ को अहमदाबाद में तीसरी अन्तर्राष्ट्रीय विषुवतीय वायु विज्ञान गोष्ठी का उद्घाटन हुआ। अहमदाबाद भौतिक अनुसंधानशाला के दो वैज्ञानिकों, प्रो० के० आर० रामनाथन और डा० एस० अनन्त कृष्णन ने यह घोषणा की है कि पृथ्वी सौर मण्डल की अभिन्न घटक है। आकाशीय पिण्डों के स्पन्दन धरती को भी व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं। अपनी एक खोज में इन वैज्ञानिकों ने पाया कि वायु मण्डल के 'डी' क्षेत्र में शक्तिशाली एक्स-किरणों के स्रोत स्कोपिओं-११ के गुजरने से वनस्पति एवं जीव जगत की हलचलें बढ़ जाती तथा उनका हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

परमाणु शक्ति आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष और विश्व विख्यात भौतिकविद् डॉ० सारा भाई ने विभिन्न देशों से आये वैज्ञानिकों की एक गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए कहा कि सूर्य के अतिरिक्त भी अन्य आकाशीय पिण्डों का प्रेक्षणीय प्रभाव धरती पर आता है यदि ज्योतिर्विज्ञान के सूत्रों को ढूँढ़ा जा सके और अन्तरिक्षीय ज्ञान में श्रुत किया जा सके तो अनेकों महत्वपूर्ण जानकारीयों काथ लग सकती हैं।

रूसी वैज्ञानिक ब्लादीमोर देस्यातोव ने इस सम्बन्ध में व्यापक शोध कार्य किया है उनका कहना है कि पृथ्वी पर समय-समय पर आने वाले चुम्बकीय तूफानों से धरती के निवासियों में स्नायविक एवं मनोरोगों की बहुलता देखी जाती है। धरती पर चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता या फीक्वेन्सी बदलना आकाशीय पिण्डों के ऊर्जा प्रवाह के परिणाम हैं। अपनी आरम्भिक खोजों में ब्लादीमोर ने यह पाया कि जब सूर्य पर एक विशेष प्रकार के ज्वाला प्रकोप (फ्लेयर) फूटते हैं तो धरती पर प्रचण्ड चुम्बकीय तूफान आते हैं जिनसे प्रभावित तो

सभी होते
उनकी प्र
हत्याएँ
अधिक ह
है कि म
इनर्जी ध
भू-चुम्बक
इसलिए
शक्तियों
रिक्त में प
प्रकृति, म
प्रसि
सूर्य और
सभी परि
करते हैं।
हैं। पार
समष्टिगत
हैं फिर
से अप्रभा
में यह तथ
पर विद्यम
सम्बन्ध है
प्रदान का
प्रौढ
निष्कर्षों
तत्वेत्ता ज
चैतन्य श
प्रभावित
वरण वन
काल में
प्रमाण जु
में सचेष्ट
समय पर
विज्ञान क
टोह लेने
है। फिर

अखण्ड-

क उपग्रह।
त सूर्य के
वृहस्पति
वेत करतों
'ति' नाम
सरी अन्त-
उद्घाटन
संधानशाल
रामनाथन
की है कि
आकाशीय
प्रभावित
ने पाया
नी एकस-
वनस्पति
का हाति-
और विश्व
भन्न देशों
धित करते
तीय पिण्डों
तिविज्ञान
ज्ञान में
नकारियां
स सम्बन्ध
है कि पृथ्वी
फूफानों से
रोगों की
क्षेत्र की
ओं के ऊर्जा
खोजों में
क विशेष
तो धरती
भावित तो

सभी होते हैं, पर कमजोर मनःस्थिति वाले व्यक्तियों पर उनकी प्रतिक्रिया अत्यधिक दिखाई पड़ती है। आत्महत्याएँ हत्याएँ, एवं असन्तुलन के फलस्वरूप सड़क दुर्घटनाएँ अधिक होती हैं। इसी आधार पर वैज्ञानिकों का कहना है कि मस्तिष्कीय क्रिया-क्षमता का मूलभूत स्रोत-अल्फा-इन्जर्जी धरती के चुम्बकीय क्षेत्र से जुड़ा हुआ है और भू-चुम्बकत्व का सीधा सम्बन्ध आकाशीय पिण्डों से है। इसलिए मानवी जीवन अन्तरिक्षीय घटनाक्रमों एवं शक्तियों से विलक्षण रूप से सम्बन्धित है। अस्तु अन्तरिक्ष में पैदा होने वाली हर हलचल पृथ्वी, मानवी, प्रकृति, मन, बुद्धि एवं चेतना को प्रभावित करती है।

प्रसिद्ध खगोल शास्त्री पास्कल का कहना है कि सूर्य और चन्द्रमा के द्वारा आरोपित सशक्त खिंचाव से सभी परिचित हैं जो समुद्रों-सागरों में ज्वार-भाटे उत्पन्न करते हैं। ये जीवधारियों पर भी अपना प्रभाव छोड़ते हैं। पास्कल के अनुसार समस्त जीवधारी कम्पायमान समष्टिगत ऊर्जा के एक विशाल समुद्र में निवास करते हैं फिर विभिन्न ग्रहों से उत्सर्जित होने वाली ऊर्जा तरंगों से अप्रभावित कैसे रह सकते हैं। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में यह तथ्य अगले दिनों सप्रमाण पुष्ट होगा कि पृथ्वी पर विद्यमान जीवन का अन्तरिक्ष के ग्रह-नक्षत्रों से घना सम्बन्ध है और अविज्ञात होते हुए भी सूक्ष्म आदान-प्रदान का क्रम चलता रहता है।

प्रौढ़ता को प्राप्त करता हुआ विज्ञान अब उन्होंने निष्कर्षों पर पहुँच रहा है जिन पर सदियों पूर्व भारतीय तत्वेत्ता ज्योतिर्विद पहुँच चुके थे। समूचा ब्रह्माण्ड एक चैतन्य शरीर है जिसका प्रत्येक स्पन्दन हर घटक को प्रभावित करता है जिसमें पृथ्वी और सम्बन्धित वातावरण वनस्पति एवं जीवधारी भी सम्मिलित हैं। प्राचीन काल में ज्योतिष विज्ञान इसी दिशा में अनुसंधान करने, प्रमाण जुटाने और अन्तर्ग्रही तथ्यों की खोजबीन करने में सचेष्ट था, जिसकी अनेकानेक उपलब्धियों से समय-समय पर मानव जाति लाभान्वित होती रहती थी। विज्ञान का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और अन्तर्ग्रही टोह लेने का सिलसिला आरम्भ हुआ है, यह शुभ चिन्ह है। फिर भी ज्योतिर्विज्ञान के बिना अन्तरिक्षीय खोज-

बीन करने में विज्ञान उतना सक्षम नहीं है। इस दिशा में प्राचीन भारतीय ज्ञान सहायक सिद्ध हो सकता है। इस विषय पर भारतीय प्राचीन ज्योतिर्विदों ने गहन अनुसंधान किए एवं निष्कर्ष निकाले हैं। आर्यभट्ट का ज्योतिष सिद्धान्त, कालक्रियापाद, गोलपाद, सूर्य सिद्धान्त और उस पर नारदेव, ब्रह्म गुप्त के संशोधन, परिवर्धन, भास्कर स्वामी का महाभास्करीय आदि दुर्लभ और अमूल्य ग्रन्थ अनेकानेक रहस्यों एवं निष्कर्षों से भरे पड़े हैं। ज्योतिष सिद्धान्त पुस्तक के प्रथम पाद में अंक-गणित, बीजगणित और रेखागणित के सिद्धान्त समझाये गये हैं। मात्र तीस श्लोकों में दशमलव, वर्ग क्षेत्रफल घनमूल, त्रिभुजाकार शंकु का घनफल निकालने जैसे

इस वार दो आश्विन मास हैं। नवरात्रियों के सम्बन्ध में इस वार भी पंडिताऊ विवाद चल रहा है। प्रज्ञा परिजनों को ता० १७ अक्टूबर से २५ अक्टूबर तक नौ दिन की नवरात्रि माननी चाहिए। एक तिथि की वृद्धि हुई है तो भी नवरात्रि में कोई अन्तर नहीं आता वह नौ रात्रियों में ही सम्पन्न होता है।

शान्ति-कुञ्ज में नवरात्रि साधना सत्र उपरोक्त तिथियों में होंगे। जो अनुष्ठान के निमित्त मात्र आना चाहें, समय रहते स्थान सुरक्षित करालें। सीमित स्थान भर जाने पर स्वीकृति न मिल सकेगी।

महत्वपूर्ण विषयों की जानकारी सूत्र रूप में आवद्ध है। कालक्रियापाद में खगोलशास्त्र का विशद वर्णन है। इसी तरह उसका अन्तिम पाद ५० श्लोकों का अध्याय 'गोलपाद' अपने में ज्योतिष विज्ञान के महत्वपूर्व रहस्यों पर प्रकाश डालता है। अपने पंच सिद्धान्तिक में बाराह मिहिर ने पोलिश, रोमक, वाशिष्ट, सौर और पितामह नामक पाँच ज्योतिसिद्धान्तों का वर्णन किया है जो ज्योतिर्विज्ञान पर विस्तृत प्रकाश डालते हैं। ज्योतिर्विज्ञान के शोधकर्ताओं के लिए अतीत के महान ज्योतिर्विदों द्वारा संग्रहीत किया गया यह ज्ञान पथ-प्रदर्शन कर सकता है।

अखण्ड-ज्योति

तनाव की स्थिति उत्पन्न होने ही न दें

यह तथ्य न केवल सर्वविदित है वरन् प्रत्येक का अनुभव भी है कि आज का जीवन व्यस्त और तनावपूर्ण है। आजकल सभी लोग तनावपूर्ण जीवन के शिकार हैं। युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, व्यवसायी और नौकर पेशा, गरीब और अमीर हर वर्ग तथा हर स्तर का व्यक्ति तनावग्रस्त है। सड़कों पर भागती हुई जिन्दगी, आपस में बात करने और मिलने-जुलने के लिए समयाभाव की समस्या, जरा सी बात पर दाँत पीसना और बाहें चढ़ाना, व्यापारियों का चीख-चिल्लाकर बात करना, गृहिणियों की बच्चों पर डाँट फटकार आदि सभी इस बात के प्रतीक हैं कि चारों ओर मानसिक तनाव व्याप्त है। यों तनाव से सामान्य अर्थ मानसिक तनाव ही लिया जाता है, पर वस्तुतः तनाव तीन प्रकार के होते हैं, शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनाव। इन्हें आधि भौतिक आधि-दैविक और आध्यात्मिक ताप भी कहा जा सकता है। दैहिक, दैविक और भौतिक चिन्ताओं तापों के रूप में भी इन्हीं की चर्चा की जाती है।

लम्बे समय तक लगातार एक ही प्रकार का काम करने और अत्यधिक श्रम करने के कारण जो थकान उत्पन्न होती है, उसे शारीरिक तनाव कहा जा सकता है। थक जाने या बहुत अधिक श्रम करने के बाद मनुष्य किस कदर लस्त-पस्त हो जाता है कि उसकी और कुछ करने की बात तो दूर रही, कुछ कहने या सुनने की भी इच्छा नहीं होती। यहाँ आवश्यक नहीं है कि बहुत अधिक श्रम करने के कारण ही शारीरिक तनाव उत्पन्न हो। अधिक सोने, दिन चढ़े तक पड़े रहने, ज्यादा खाने आवश्यकता से अधिक आराम करने के कारण भी मस्कुरलरेन्शन उत्पन्न होता है। आहार-विहार की गड़बड़ी और अस्त-व्यस्तता भी शारीरिक तनाव उत्पन्न करती है।

जहाँ तक अधिक श्रम के कारण उत्पन्न हुई थकान से पैदा होने वाले शारीरिक तनाव का प्रश्न है वह

मुख्यतः दो कारणों से उत्पन्न होता है। एक तो अनिच्छा पूर्वक कार्य करना और दूसरे मैं काम कर रहा हूँ—यह भावना काम करते समय विद्यमान रहना। श्रम की यह भावना कि मैंने काम किया यदि मनुष्य किसी प्रकार भूल जाय तो तीन-चार घण्टे का विश्राम कर और एक दो बार भोजन कर आसानी से सोलह घण्टे तक काम कर सकता है।

शारीरिक तनाव के बाद मानसिक तनाव का क्रम आता है। यह बहुत अधिक सोचने विचारने या चिन्ता करने से उत्पन्न होता है। सोचना केवल उसी दिशा और उसी विषय में चाहिए जिसमें कि सोच विचार आवश्यक हो। परन्तु अधिकांश व्यक्ति काम की बातें बहुत कम और व्यर्थ की, बेकार या ऊल-जलूल की बातें ज्यादा सोचते हैं जिनसे वर्तमान जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं होता। पिछली बातें या घटनाएँ जिनको अनहुआ करना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है अधिकांश व्यक्ति उन्हीं की स्मृतियों में डूबते उतराते रहते हैं और सोच-सोचकर परेशान होते रहते हैं। किसी से लड़ाई हो गई, किसी ने गाली दे दी या अपमान कर दिया अथवा कोई दुर्घटना हो गई तो इतने मात्र से लम्बे समय तक मानसिक सन्तुलन अस्त-व्यस्त हो गया। इस तरह के मानसिक तनाव का पहला परिणाम नींद कम हो जाने के रूप में होता है।

स्वास्थ्य के लिए अच्छी, पूरी और प्रगाढ़ निद्रा आवश्यक है यह तो सभी जानते हैं। कोई व्यक्ति एक हफ्ते तक बिना कुछ खाए रह सकता है, पर एक सप्ताह तक नींद के बिना रह पाना सम्भव नहीं है क्योंकि नींद शरीर और दिमाग की क्षति पूर्ति करती है तथा मन मस्तिष्क और शरीर को विश्राम पहुँचाती है। लेकिन जब मानसिक तनाव के कारण नींद में अवरोध उत्पन्न होते हैं तो उसका शरीर और स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। पहले तो चिड़चिड़ापन, थकान, अरुचि

और ऊब उत्पन्न होती है। इसके बाद और कई तरह की मानसिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

अत्यधिक सोच विचार और चिन्ता करने से उत्पन्न होने वाला मानसिक तनाव यदि लम्बे समय तक बना रहे तो "मेंटल रिटाडेशन" नामक स्थिति आ जाती है। इस स्थिति में आने पर मस्तिष्क की शक्तियाँ काम करना बन्द-सी कर देती हैं और मस्तिष्क लगभग सुन्न सा हो जाता है आधुनिक जीवन की यांत्रिक सभ्यता के कारण उत्पन्न होने वाले मानसिक तनावों के परिणाम स्वरूप "मेंटल रिटाडेशन" के लाखों मामले प्रकाश में आ रहे हैं। इस दुःस्थिति का सामना तो मानसिक तनाव सह पाने की क्षमता सीमा टूट जाने के बाद उत्पन्न होती है। प्रथम तो इनके लगातार बने रहने के कारण अवसाद ग्रस्त स्थिति बन जाती है, जिसे डिप्रेशन भी कहा जाता है।

इस प्रकार का तनाव बढ़ जाने पर शिराएँ फटने सी लगती हैं, आँखें कमजोर हो जाती हैं। कब्ज रहती है खाना हजम नहीं होता। नशा पीने की इच्छा होती है और यदि शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार के तनाव एक साथ उत्पन्न हो गए तो काम और क्रोध के आवेग भी बार-बार पैदा होने लगते हैं। शारीरिक व मानसिक तनाव के बाद आता है भावनात्मक तनाव। मनुष्य को अपने जीवन में कई तरह के उतार-चढ़ावों का सामना करना पड़ता है। वह निरन्तर भावनाओं के थपेड़े खाता रहता है।

प्रायः भावनाएँ यथार्थ पर आधारित नहीं होतीं। किन्तु अत्यधिक आसक्ति के कारण मनुष्य उन्हीं से चिपके रहते हैं। किसी का प्रिय मित्र, पुत्र, पति या पत्नी अथवा रिश्तेदार कल आने वाला है तो उसे रात भर नींद नहीं आती। एक घण्टे बाद परीक्षाफल घोषित होने वाला है तो दिल की धड़कन बहुत बढ़ गई। दूर कहीं प्रवास पर है, रात में सहसा किसी की याद आ गई तो नींद गायब; यही है—भावनात्मक तनाव। ये भावनात्मक तनाव प्रायः हमारे जाने-अनजाने व्यवहारों में प्रकट होते हैं। कुछ लोग कन्धे उचकाते रहते हैं; कुछ पैर हिलाते रहते हैं, कुछ गुनगुनाते रहते हैं, कुछ सीटी बजाते हैं। कोई बार-बार

पलकें झपकाते रहते हैं तो किसी के नाक से खूँ खूँ की आवाज आती रही। ये सब भावनात्मक तनाव के ही परिणाम हैं।

इन तनावों की तत्काल प्रतिक्रिया परिणति किसी न किसी रूप में तो देखने को मिलती ही है। इनके दूर-गामी प्रभाव भी होते हैं और शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर इनकी तीखी प्रतिक्रिया होती है, जिनसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। मानसिक तनाव के कारण सिर दर्द रहना तो साधारण सी बात है। कई बार पेट के फोड़े (अल्सर) उच्च रक्तचाप, हृदय रोग तथा अन्य कई बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। समय पर तनावों का यदि नियन्त्रण समाधान नहीं किया गया तो हाइपरटेन्शन, हार्ट अटैक या पैरालिसिम जैसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं और जीवन अस्तित्व को ही संकट ग्रस्त कर देते हैं।

इस प्रकार के रोग किसी भी तरह के तनावों के कारण उत्पन्न हो सकते हैं। कभी मस्कुलर टेन्शन से, कभी मेंटल टेन्शन से, कभी इमोशनल से या कभी तीनों के सम्मिश्रित कारणों से इस प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरण के लिए थके हुए व्यक्ति को बहुत जल्दी क्रोध आता है। क्रोध आने के अलावा जल्दी थक जाने वाले व्यक्ति चिन्तित भी रहने लगते हैं। दिमागी उलझन में फँसे व्यक्ति को सिरदर्द, हृदय की पीड़ा, अम्लता, कब्ज आदि रोग तंग करते रहते हैं। जब व्यक्ति अपने को उपेक्षित समझता है और उसकी भावनाएँ अतृप्त रही आती हैं, तो उसे दमा, यक्ष्मा, आर्थराइटिस, कुष्ठ रोग आदि जैसे रोग उत्पन्न होने लगते हैं।

कहने का आशय यह कि तनाव किसी भी क्षेत्र में संव्याप्त क्यों न हो उससे जीवनी शक्ति का क्षरण होता है। शारीरिक और मानसिक श्रम से थकान आती तो है पर वह उथली रहती है और विश्राम करने एवं बल-वर्धक आहार उपचार लेने से इसकी क्षतिपूर्ति थोड़े ही समय में हो जाती है, किन्तु मानसिक या भावनात्मक तनाव ऐसे होते हैं जिनके मूल में गहरे आघात विद्यमान रहते हैं। आघातों से उत्पन्न हुए ये घाव नासूर बन जाते हैं और समय-समय पर उभरते फूटते रहते हैं। यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि शारीरिक स्वास्थ्य को

अखण्ड-ज्योति

नष्ट करने में केवल आहार-विहार की अनियमितता ही कारण नहीं है। मानसिक शान्ति को नष्ट करने में केवल प्रतिकूल परिस्थितियाँ ही निमित्त नहीं होती, वरन् उनका कारण मनुष्य की भावनात्मक दुर्बलता और मानसिक सन्तुलन का अभाव भी है। क्योंकि बड़े-बड़े संकट सामने होने पर भी कितने ही मनस्वी लोग उन्हें सामयिक चुनौती मात्र मानते हैं और उनका मुकाबला खेल के मैदान में गेंद से जूझने वाले खिलाड़ियों की तरह करते हैं। इसके विपरीत कितने ही व्यक्ति विपत्ति की कल्पना मात्र से घबड़ा उठते हैं और इतने असन्तुलित हो जाते हैं मानो आपत्तियों का पर्वत ही उन पर टूट पड़ा हो।

जो भी हो, तनाव के कारण उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों को जितना विघातक माना जाय उतना कम है। इनके कारण उस जीवनी-शक्ति का बुरी तरह अपव्यय होता है जिस पर स्वास्थ्य, सन्तुलन, शान्ति और आनन्द निर्भर रहते हैं। दीपक का यदि तेल समाप्त हो जाय तो वह मात्र रुई बत्ती आदि के सहारे ही ज्वलन्त नहीं रखा जा सकता। जीवनी शक्ति को मानवीय सत्ता का तेल भण्डार कहा जा सकता है। तनाव का सीधा आक्रमण उसी पर होता है और जितनी तेजी से उस भण्डार का क्षय होता जाता है उतनी ही तेजी से सोचने समझने की क्षमता और व्यवस्थापूर्वक कुछ करने की दोनों सम्भावनाएँ ही अस्त-व्यस्त होती चली जाती हैं। इस स्थिति में फँसकर व्यक्ति खोखला बनकर रह जाता है। उसके शरीर की बनावट भले ही न बदले पर स्थिति अर्ध-विक्षिप्त जैसी बन जाती है। ऐसे व्यक्ति न केवल स्वयं सन्तुष्ट रहते हैं वरन् सम्पर्क में आने वालों को भी अपने व्यवहार से उद्धिग्न करते रहते हैं।

तनाव के कारण मनःस्थिति दिनों दिन दुर्बल होती चली जाती है, उसके साथ ही दुर्बल मनःस्थिति के व्यक्ति छोटे-छोटे कारणों से भी भयंकर तनाव उत्पन्न हो सकता है। अतः तनाव से छुटकारे की युक्ति सभी व्यक्तियों को आनी चाहिए। प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न होने पर विचार करना चाहिए कि उसकी चिन्ता कर असन्तुलित होने के स्थान पर उतार-चढ़ाव को स्वाभाविक मानते हुए सन्तुलन बनाये रखने की दूरदर्शिता अपनानी चाहिए

तथा प्रस्तुत प्रतिकूलताओं के साथ खिलाड़ी की भावना से आँख मिचौली खेलने की दृष्टि रखना चाहिए। इस तरह का साहस, ऐसा दृष्टिकोण रखा जाय तो फिर कोई भी कठिनाई ऐसी नहीं रह जाती जिसका प्रयत्न पूर्वक हल अथवा धैर्यपूर्वक समाधान न किया जा सके।

सर्वप्रथम तो उन स्थितियों को समझने और उनके कारणों को पहचानने की चेष्टा की जानी चाहिए जिनसे तनाव या चिन्ताएँ उत्पन्न होती हैं। चाहे वह परिवार में असामंजस्य के कारण उत्पन्न होने वाला तनाव हो या आर्थिक कठिनाइयों से पैदा हुई चिन्ता हो। कई बार बहुत सी समस्याएँ व्यक्ति को परेशान किए रहती हैं। उन सबको एक साथ सोचने का अर्थ है सब शत्रुओं को एक साथ लड़ने के लिए चुनौती देना। सब समस्याओं पर एक साथ विचार करने के कारण किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो पाता और परेशानियाँ अपने स्थान पर खड़ी रहती हैं। इस स्थिति से निबटने के लिए कारगर उपाय यह है कि एक-एक समस्या को क्रमवार सुलझाया निबटाया जाए।

समस्याओं के समाधान में सन्तुलित और सुलझी हुई नीति अपनाने के साथ यह भी आवश्यक है कि सुखद सम्भावनाओं की आशा लगाने की तरह दुःखद दुर्घटनाओं एवं प्रतिकूल परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए। उस तरह सजग रहने पर डेरों कठिनाइयों से बचा जा सकता है। कम से कम तनाव के बोझ को तो हल्का किया ही जा सकता है। श्रम, सन्तुलन और आहार-विहार की सुव्यवस्था बनाये रहकर शारीरिक तनाव से बचा जा सकता है। मानसिक श्रम को अदलते बदलते रहकर और किये जा रहे कार्यों में दिलचस्पी रखते हुए, उन्हें सुव्यवस्थित बनाने का कला-कौशल प्रस्तुत करने की रीति-नीति अपनाकर मानसिक तनाव से बचा जा सकता है। भावनात्मक तनाव से बचने के लिए आवश्यक है—आत्मबल। उच्चस्तरीय दृष्टिकोण और आदर्शवादी क्रिया-कलाप अपनाकर आत्मबल बढ़ाया जा सकता है। यही वह दिव्य उपलब्धि है जिसके द्वारा मनुष्य तनावों से मुक्त सुख शान्तिमय जीवन जी सकता और आनन्द में निमग्न रह सकता है।



पर
स्थूल अ
अंश है
व्याख्या
ऋषिय
शास्त्रों
परमात्मा
विशद
है। जि
अंशी ह
मिली है
कारण
बोध न
ऋ
उन्होंने
उपनिष
सारे के
में हैं।
सर्वोच्च
पताएँ
मत्य, शि
में है। इ
भूः
का दिव्य
का प्रथम
वही एक
तीनों लो
स्थूल अ
में और
आत्मा के
देना है,
शिक्षा दे



सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति गायत्री मन्त्र में

परमात्मा सत्य है शिव है और सुन्दर भी। उसकी स्थूल अभिव्यक्ति यह सृष्टि है। जीवात्मा भी उसी का अंश है। इन्हीं गुणों से ओत-प्रोत है। इसी तथ्य की व्याख्या करने के लिए धर्म का इतना बड़ा कलेवर ऋषियों ने खड़ा किया। उपनिषद् यही सन्देश देते हैं। शास्त्रों की रचना का मूल प्रयोजन यही है आत्म स्वरूप परमात्म स्वरूप का बोध कराना। शास्त्रों में गूढ़ एवं विषद व्याख्या परमात्मा के दिव्य स्वरूप की ही की गई है। जिसका लक्ष्य है मनुष्य यह जाने कि परमात्मा का अंश होने के कारण विरासत में उसे भी वह विशेषताएँ मिली हैं। दैवी क्षमताओं से वह सम्पन्न है। प्रसुप्ति के कारण अज्ञान के कारण मनुष्य को अपनी दिव्यता का बोध नहीं रहता और अन्धकार में भटकता रहता है।

ऋषियों की यह विशेषता रही है कि गूढ़ रहस्यों को उन्होंने सूत्रों के रूप में व्यक्त किया है। वेद, शास्त्रों, उपनिषदों में जिन तथ्यों की विषद व्याख्या की गई है वे सारे के सारे गायत्री महामन्त्र के छोटे सूत्र में समाहित में हैं। मन्त्र शिरोमणि कहे जाने एवं भारतीय संस्कृति में सर्वोच्च स्थान पाने का कारण गायत्री मन्त्र की विशेषताएँ ही हैं जो सूत्र रूप में आवद्ध हैं। परमात्मा के सत्य, शिव एवं सुन्दर स्वरूप की अभिव्यक्ति गायत्री मन्त्र में है। इसके तीन पद इसी शाश्वत सत्य का बोध कराते हैं।

भूः भुवः एवं स्वः लोक में संव्याप्त ॐ परमात्मा का दिव्य स्वरूप ही वरेण्य है। 'तत् सवितुर्वरेण्यं' गायत्री का प्रथम पद इस गूढ़ रहस्य का उद्घाटन करता है। वही एक मात्र सत्य है। सत्ता-अस्तित्व इसी का है। तीनों लोकों में वह विद्यमान है। मानवी सत्ता में भूः स्थूल अभिव्यक्ति शरीर के रूप में भुवः सूक्ष्म मन के रूप में और स्वः कारण अभिव्यक्ति अन्तःकरण में विद्यमान आत्मा के रूप में है। प्रथम पद सत को जानने की प्रेरणा देता है, प्रेरणा ही नहीं, वरेण्य करने धारण करने की शिक्षा देता है।

आज मनुष्य में वरण करने की क्षमता नहीं रही। वरेण्य शक्ति के अभाव में समस्त मानव जाति अज्ञान के अन्धकार में भटक रही है। हम चयन करते हैं भौतिक वस्तुओं का—जड़-पदार्थों का—नष्ट हो जाने वाले तत्वों का। फलतः अज्ञानान्धकार में आजीवन भटकते रहते हैं। धन, सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए कितना श्रम एवं पुरुषार्थ करते हैं। अपना सम्पूर्ण मनो-योग लगा देते हैं। विभूति के रूप में मिली हुई शारीरिक बलिष्ठता एवं मानसिक प्रखरता की शक्ति को इन्हीं प्रयोजनों के लिए झोंक देते हैं। आकांक्षा की केन्द्र बिन्दु सांसारिक वस्तुएँ ही रहती हैं। पुत्र की, धन की, पद एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए प्रयास चलते हैं। सम्पूर्ण प्रयास असत को—नश्वर आकर्षणों को वरण करने में ही लग जाता है। सत की उपेक्षा बनी रहती है। परमात्मा आत्मा के अस्तित्व एवं सामर्थ्य से अपरिचित बने रहते हैं। गायत्री का प्रथम पद सत को वरण करने—'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की प्रेरणा देता है। वह सर्वत्र संव्याप्त है—शाश्वत है। उसकी दिव्यता ही वरणीय है इसी तथ्य का उद्घोष करता है। नश्वर अस्तित्व रहित वस्तुओं के आकर्षण को ही वास्तविक मामकर मनुष्य सतत् उनके पीछे दौड़ता रहता है। मृग-मरीचिका की भाँति भटकता है। यह भटकाव अपने साथ असन्तोष एवं अतृप्ति का अभिशाप साथ लेकर प्रकट होता तथा मानवी प्रवृत्तियों में काम, क्रोध, और मोह के विकारों के रूप में उतरता है। गायत्री मन्त्र का 'वरेण्यं' साधक को वरण करने—चयन करने की सामर्थ्य देता है। सत्ता जो सत है दिव्यताओं से ओत-प्रोत है उसी का वरण करने में मनुष्य का कल्याण निहित है।

द्वितीय चरण 'भर्गो देवस्य धीमहि' सुन्दरम् की शाश्वत सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है। जो दिव्य है, पाप नाशक-निष्कलंक है, देवतुल्य है—दैवी गुणों से भरपूर है। उसको अन्तःकरण में धारण करें। सौन्दर्य की अनु-

अखण्ड-ज्योति

भूति अन्तःकरण ही करता है। भावनाओं, सम्बेदनाओं का मर्मस्थल यही है। इस केन्द्र बिन्दु से उठने वाली भाव-तरंगें ही वस्तुओं-पदार्थों में टकराकर आकर्षण उत्पन्न करती हैं। दृश्य जगत का सौन्दर्य अपना निज का नहीं है। अदृश्य चेतन तरंगें ही उनमें गति प्रदान कर सौन्दर्य का कारण हैं। चेतना अपनी तरंगें खींच ले तो दृश्य संसार नीरस, आकर्षण रहित दृष्टिगोचर होगा। अपनापन जहाँ भी आरोपित किया जाता है—सौन्दर्य, आकर्षण वहीं दिखायी पड़ने लगता है। चाहे वस्तुओं में किया जाय अथवा व्यक्तियों में। अपना घर अपना सामान, अपना बच्चा, अपनी पत्नी, अपने संगे सभी अच्छे लगते हैं। अपनापन हट जाने पर वे ही वस्तुएँ अप्रिय लगने लगती हैं।

गायत्री के द्वितीय चरण में शाश्वत सौन्दर्य की अनुभूति का भाग प्रशस्त करता है। उसका दर्शन कैसे करें, सुन्दरम् अनुभूतियों में कैसे उतरें, इसका समाधान द्वितीय पद में विद्यमान है। परमात्मा के उस दिव्यतम स्वरूप को हम धारण करें जो दुःखों से रहित, आनन्द-दायक, पापनाशक तथा दिव्य है। हम धारण करते हैं संकीर्ण स्वार्थों से युक्त प्रवृत्तियों को काम, क्रोध, लोभ एवं अहङ्कार की वृत्तियों को, इसी कारण अन्तःकरण मलीनताओं से ढक जाता है। आवरण से अन्तः में निवास करने वाली दिव्य सत्ता के दिग्दर्शन से वंचित बने रहते हैं। देव प्रवृत्तियों को न अपना पाने के कारण अपनी दिव्यता का बोध नहीं हो पाता। फलतः आत्म-सत्ता की गरिमा के प्रतिकूल कृत्य करते हैं। सौन्दर्य का दर्शन पाप रहित दुःख रहित होने पर ही सम्भव है। अनीति अत्याचार करने और उनके ताप-संताप में जलते रहने से सम्भव नहीं है। नीति, सदाचार से युक्त राज-मार्ग ही सौन्दर्य के उद्गम स्थल तक पहुँचा सकता है।

गायत्री महामन्त्र का तृतीय पद मानव मात्र के लिए शिव का—कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। ईश्वर प्रदत्त मनुष्य को सर्वोत्तम विभूति बुद्धि है। उत्थान-पतन, प्रगति-अवगति का क्रम इस पर ही टिका हुआ है। यह मनुष्य को देवता बना सकती है और दानव भी। नर

से नारायण बना सकती है और नर पशु भी। यह बुद्धि की दिशा धारा पर निर्भर करता है।

सामान्यतया यह शरीर एवं मन की ही पक्षधर बनती है। शरीर की पुष्टि एवं मन की तुष्टि ही इसे भी रचती है। फलतः प्रत्यक्ष लाभों का ही समर्थन करती है। उसे त्याग-बलिदान का मार्ग अपनाने—परमार्थ पर चलने से मिलने वाले आत्म-सन्तोष एवं आनन्द का दूरवर्ती लाभ नहीं दीख पड़ता है। बुद्धि की इस प्रवृत्ति से परिचित ऋषियों ने मार्ग दर्शाया। गायत्री महामन्त्र के अवलम्बन की प्रेरणा दी।

गायत्री मन्त्र में अपने लिए किसी वस्तु की कामना नहीं की गई है। 'योनः' समष्टिगत प्रज्ञा के अवतरण के लिए प्रार्थना हुई है। गायत्री मन्त्र व्यक्ति नहीं समूह-व्यष्टि नहीं समष्टि के कल्याण में विश्वास व्यक्त करता है। यहीं कारण है कि कल्याण साधन सद्बुद्धि की प्रार्थना की गई है वह मात्र अपने लिए नहीं वरन् सबके लिए—नः (हम सबकी) की गई है। सद्मार्ग पर चलने में ही मनुष्य का कल्याण निहित है। सेवा, सहयोग परमार्थ का मार्ग प्रत्यक्ष तो घाटे का लगता है, पर परोक्ष में इससे बढ़कर लाभ संसार में दूसरा और कुछ नहीं हो सकता। आत्म-सन्तोष जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि है जिसकी प्रगति के लिए ही सम्पूर्ण भौतिक प्रयास चलते हैं। यह उपलब्धि परमार्थ पथ को अपनाने वाले को सहज ही प्राप्त हो जाती है। शिव का—कल्याण का यही वास्तविक स्वरूप है।

सत्य, शिव एवं सुन्दर की तीनों धाराएँ गायत्री महामन्त्र से फूटती तथा साधक के अन्तःकरण में जाकर एकाकार हो जाती हैं। इस त्रिवेणी में स्नान करने वाला अमृत तुल्य दिव्यताओं का रसास्वादन करने वाला व्यक्ति अपने शाश्वत स्वरूप का—परमात्मा का दर्शन करता है। आत्म स्वरूप सत्य-शिव एवं सुन्दर के दिग्दर्शन के उपरान्त उसे किसी अन्य सांसारिक वस्तु की कामना नहीं रहती।

आत्मा ऊर्जा की अनुपम एवं अद्भुत समर्थता



चेतना जगत की हलचलें जिस ऊर्जा के माध्यम से गतिशील रहती हैं वह है—शब्द। पदार्थ जगत् की क्रियाशीलता के पीछे जिस ऊर्जा का उपयोग होता है वह है—ताप। धरती पर जिस स्तर का जीवन विद्यमान है और जिस प्रकार की हलचलें होती रहती हैं उनमें सूर्य ताप की प्रधान भूमिका है। सौर मण्डल के जिन ग्रह-उपग्रहों में सूर्य ताप की जहाँ असन्तुलित स्थिति है वहाँ आग के गोले जैसी या हिम खण्ड जैसी स्थिति बनी हुई है। धरती को जो सौभाग्य मिला है उसमें उसकी निजी संरचना का उतना महत्व नहीं जितना कि सौर ऊर्जा के सन्तुलित अनुदान का। इसलिए सूर्य को इस पदार्थ जगत की आत्मा कहा गया है—“सूर्य आत्मा जगतस्थुषश्च।”

यों पदार्थ जगत की संरचना में अन्य तत्वों का भी सम्मिश्रण है, पर जहाँ तक क्रियाशीलता का सम्बन्ध है वहाँ अग्नि को ही प्रधानता देनी पड़ेगी। ताप और क्रियाशीलता एक प्रकार से पर्यायवाची ही समझे जा सकते हैं। शरीर का तापमान समाप्त होते ही न कोई अंग अवयव काम करता है न उसमें जीवन के चिह्न ही शेष रह जाते हैं। अन्य जीवधारियों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। पदार्थ जगत की सबसे छोटी इकाई पणु मानी जाती है। अब उसके अन्तर्गत विद्यमान इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन आदि की उपस्थिति एवं मध्यवर्ती ‘न्यूक्लियस’ के सम्बन्ध में भी विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली गई है और अणु विस्फोट के माध्यम से प्रचण्ड ऊर्जा उभारने में सफलता प्राप्त कर ली गई है। अणु क्षेत्र से आगे तरंग जगत् है। पदार्थ की मूल प्रकृति अब परमाणु नहीं तरंग है। तरंगों के कितने ही भेद-उपभेद हैं। इनमें से चेतन क्षेत्र में जिस प्रकार शब्द की प्रमुखता है उसी प्रकार पदार्थ क्षेत्र में ताप को मूर्धन्य कहा जा सकता है। कहा जा चुका है कि ताप और हलचल उसी प्रकार आपस में सम्बद्ध हैं जिस प्रकार

कि शब्द और चिन्तन परस्पर सम्बद्ध हैं। उसी प्रकार ताप और गति को भी अन्योन्याश्रित माना जा सकता है।

यह सब स्मरण इसलिए दिलाया जा रहा है कि आत्मिकी के प्रयोग प्रयोजनों में जहाँ चेतनात्मक उत्कर्ष के लिए शब्द शक्ति का—गायत्री विद्या का महत्व समझाया जा रहा है उसी प्रकार सूक्ष्म विज्ञान में जहाँ कहीं पदार्थ साधनों का उपयोग करना पड़े वहाँ उसके गतिकेन्द्र ‘ताप’ का महत्व भी ध्यान में रखा जा सके। शब्द शक्ति गायत्री विद्या के माध्यम से अनेक प्रयोजनों के लिए अनेक प्रकार से प्रयुक्त होती है। इसी प्रकार ताप शक्ति का दिव्य प्रयोजनों के लिए जब भी उपयोग करना पड़े तब उसके लिए क्या करना होगा? इस प्रसंग का पूर्व निर्धारण यही ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए कि इसके लिए अग्निहोत्र का माध्यम अपनाना पड़ेगा। जिस प्रकार प्रत्यक्ष प्रयोजनों में आग, बिजली, भाप, तेल आदि माध्यमों से ताप उत्पन्न करके दीपक जलाने, रसोई पकाने से लेकर बिजली घर, मिल, कारखाने, यान जैसे अगणित प्रयोजन पूरे किये जाते हैं उसी प्रकार अग्नि-होत्र के माध्यम से ऐसी दिव्य ऊर्जा उत्पन्न की जाती है जो अध्यात्म विज्ञान के आधार पर भौतिक उद्देश्यों के काम आ सके।

अध्यात्मवेत्ता साधना प्रयोजनों में अग्निहोत्र के अनेकानेक प्रयोगों का उपयोग एवं उल्लेख करते रहे हैं। उपासना उपचार में दीपक, अगरबत्ती, धूपबत्ती, अग्नि-होत्र आदि के प्रयोग होते हैं। न केवल भारतीय धर्म में वरन् संसार भर के सभी धर्मों में अपने-अपने ढंग से यह प्रक्रिया काम में लाई जाती है। अगरबत्ती, धूपबत्ती, लोबान, धूनी जैसे उपचार मन्दिर, गिरजाघर, गुरुद्वारे, चैत्य आदि सभी जगह प्रयुक्त होते हैं। पारसी धर्म में तो यह मान्यता और भी अधिक है। उन्हें तो एक प्रकार से ‘अग्निपूजक’ ही माना जाता है। ‘अग्यारी’ का उस

अखण्ड-ज्योति

धर्म में देवता जैसा सम्मान है।

भारतीय धर्म संस्कृति के साथ यज्ञ परम्परा अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त समय-समय पर होने वाले पौड्श संस्कारों का विधान है। इन सभी में अग्निहोत्र अनिवार्य है। विवाह का प्रधान संस्कार परिक्रमा है। यह उस अवसर पर किए जाने वाले यज्ञ की ही होती है। लाश को चिता में जलाने की प्रक्रिया मूलतः अग्निहोत्र का ही जल्दवाजी में किया गया औंठा-सीधा स्वरूप है। अन्यथा यदि उस कृत्य को विधिवत् किया जा सके तो फिर अन्त्येष्टि यज्ञ में ही भूत शरीर का समापन करना पड़ेगा। होली वार्षिक यज्ञ का ही ध्वंसावशेष है। अन्यान्य त्योहारों में भी अग्निहोत्र आवश्यक है भले ही उसे महिलाएँ चूल्हे से अग्नि निकालकर चिह्न पूजा के रूप में ही क्यों न कर लें। देवी, देवताओं में से एक भी ऐसा नहीं जिसकी पूजा प्रक्रिया में अग्निहोत्र का कोई न कोई छोटा-बड़ा रूप अपनाये बिना काम चल जाता हो। यहाँ तक कि भूत-पलीत, जादू-टोना, उच्चाटन-अभिचार में भी किसी न किसी रूप में अग्निहोत्र का समावेश करना पड़ता है। किसी भी मन्त्र की साधना अग्निहोत्र के रूप में पूर्णाहुति किये बिना सम्पन्न नहीं होती।

गायत्री और यज्ञ को एक-दूसरे का पूरक माना गया है। एक को भारतीय संस्कृति की माता और दूसरे को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है। इस प्रतिपादन के आध्यात्मिक, नैतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक पक्ष भी हैं और वे सभी विचारणा एवं भावना को उच्च-स्तरीय बनाने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण भी हैं। इतने पर भी उसका प्रत्यक्ष स्वरूप-‘अग्निहोत्र’ उपयोगिता की दृष्टि से अपनी अतिरिक्त गरिमा विशेष रूप से बनाए रहेगा। गायत्री को प्रज्ञादर्शन कहा जाय तो यज्ञ को उसका सहयोगी वर्चस्व कहा जाएगा। इस आध्यात्मिक वर्चस्व के अन्तर्गत ही शारीरिक तेजस् और मानसिक ओजस् की ऊर्जा भी उभरती है। गायत्री अनुष्ठानों की पूर्णाहुति में ‘अग्निहोत्र’ को अनिवार्य माना गया है। प्रज्ञा को परमार्थ परायण बनाने का संकेत तो इसमें है

ही, साथ ही यह वैज्ञानिक रहस्य भी समाहित है कि आत्मिक और भौतिक प्रगति के दोनों पक्ष परस्पर गुंथे हुए हैं। एक के बिना दूसरे की न तो साधना बनती है और न प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। अतएव ‘शब्द के साथ ताप’ शक्ति का समावेश भी होना चाहिए। अर्थात् गायत्री उपासना में अग्निहोत्र को भी जुड़ा रहना चाहिए। होता भी यही है। अनुष्ठानों की पूर्णाहुति यज्ञ कृत्य के साथ ही सम्पन्न होती है। उन दिनों जप के समय दीपक, धूपवत्ती जलाए रहते हैं। जहाँ श्रद्धा और सद्भावना है वहाँ अखण्ड अग्नि, अखण्ड धूनी, अखण्ड दीपक की भी स्थापना रहती है। नित्यकर्म में पंचयज्ञ, वलिवैश्व की परम्परा है, जिनसे बनता है वे उसे निवाहते भी हैं।

अध्यात्म विज्ञान में पंचाग्नि विद्या का विशेष उल्लेख है। कठोपनिषद् के यम नचिकेता सम्वाद में इसकी सारगर्भित व्याख्या है। श्रोत्रिय अग्निहोत्री पाँच अग्नियों की स्थापना करके उनका विधिवत् यजन करते हैं। प्राण का अपान में यजन करने की रहस्यमय योगसाधना का संकेत गीता में है। जीवन रूपी समिधा को समाज रूपी यज्ञ में होम देने की कई स्तर की प्रेरणाएँ यज्ञ कृत्य के विभिन्न क्रिया-कृत्यों में कितने ही प्रकार से समाविष्ट हैं। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में यज्ञाग्नि को पुरोहित की संज्ञा दी है और वरण करने वालों को देवत्व की, विभूतियों की रत्नराशि उपलब्ध होने का आश्वासन दिया गया है। अध्यात्मदर्शन और विज्ञान के दोनों ही पक्षों में यज्ञ की जितनी चर्चा हुई है, जितनी व्यवस्था बताई, महिमा गाई गयी है उतना ऊहापोह कदाचित् ही किसी अन्य प्रसंग पर हुआ हो। यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण तथा सूत्रों—ग्रन्थों में यज्ञ चर्चा की ही प्रमुखता है। मीमांसा दर्शन एवं कर्मकाण्ड ग्रन्थों पर दृष्टि डालने से उनमें यज्ञ ही सर्वोपरि महत्व का प्रतिपादित दीखता है।

ब्राह्मणत्व की उपलब्धि किस प्रकार हो? जन्मजात रूप से तो सभी अनगढ़ शूद्र होते हैं फिर मनुष्य शरीर में ब्राह्मण का उदय कैसे हो? इसी काया में देवत्व का उदय किस प्रकार सम्भव हो? इन सभी प्रश्नों का उत्तर मनुस्मृति में एक ही दिया गया है—“महायज्ञश्च

अखण्ड-ज्योति

यज्ञं च ब्राह्मीयं कृत्यते तनुः” अर्थात् यज्ञों, महायज्ञों के माध्यम से इसी शरीर को ब्राह्मीय—ब्राह्मण स्तर का— बनाया जा सकता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अग्निहोत्र के माध्यम से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा सम्बद्ध व्यक्ति सत्ता का स्तर बदल सकती है। यह एक प्रकार का आध्यात्मिक उपचार हुआ। शरीर के लिए औषधि उपचार, शल्य कर्म आदि का जो महत्व है वही प्रकारान्तर से विचारणा एवं भावना तन्त्रों में सुधार परिष्कार करने के लिए यज्ञ उपचार द्वारा सम्भव हो सकता है।

प्राणाग्नि को कुण्डलिनी के रूप में और योगाग्नि को ब्रह्मदेवजस् के रूप में प्रतिपादित किया गया है। एक को भौतिक जगत की अधिष्ठात्री और दूसरी को चेतना परिसर की स्वामिनी कहा गया है। इन दोनों के उत्पादन में जो प्रयोग करने पड़ते हैं उनका स्वरूप यज्ञ स्तर का ही बनता है। सर्वतोमुखी ऊर्जा उत्पादन की इस प्रक्रिया के प्रत्यक्ष और परोक्ष, ज्वलनशील और ज्योतिर्मय दोनों ही पक्ष हैं। इतने पर भी उपरोक्त दोनों ही अग्नियों का प्रवर्धन जिस प्रकार होता है उसमें यज्ञ प्रक्रिया किसी न किसी रूप में सम्मिलित ही रहती है। ऐसे-ऐसे अनेकों प्रसंग हैं जिन पर प्रकाश डाला जा सके तो वे तथ्य उभर कर ऊपर आ सकेंगे जिनके आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकेगा कि मनुष्यों के बीच देवात्मा की तरह रहने वाले प्रज्ञा पारंगत ऋषियों ने किन कारणों से ‘यज्ञ’ को आत्मविज्ञान के प्रतिपादन निर्धारण में क्यों मूर्धन्य स्थान दिया? आर्ष ग्रन्थों और आप्त वचनों के पीछे कल्पनाओं की मनगढ़न्त उड़ानें नहीं चिरकाल के प्रत्यक्ष अनुभवों का सार निष्कर्ष ही प्रस्तुत करने की परम्परा रही है। ऐसी दशा में यह मानना होगा कि यज्ञ तत्त्व के सम्बन्ध में जो कहा गया है वह सारगर्भित ही होना चाहिए।

यह भूत कालीन देवयुग की चर्चा हुई। आज के परिप्रेक्ष्य में देखना यह होगा कि क्या वे प्रतिपादन आज की स्थिति में भी सही हैं। क्या इन दिनों भी उस प्रक्रिया का उपयोग पुरातन काल की तरह अर्वाचीन भी हो सकता है? इस सन्दर्भ में नये सिरे से खोज करनी होगी। कारण यह है कि इन दिनों यज्ञ विद्या का एक अखण्ड-ज्योति

प्रकार से लोप हो गया ही माना जा सकता है। मात्र आग जला देना और उसमें सुगन्धिग सामग्री होम देना ही यज्ञ नहीं हो सकता। उसका प्रयोजन वायु को सुगन्धित करना भी नहीं है। यदि ऐसा ही होता तो उसमें मन्त्रोच्चार एवं अत्यन्त सतर्कतापूर्वक बरते जाने वाले विधि-विधानों एवं अनुबन्धों को उसके साथ न जोड़ा गया होता। आग में सभी सुगन्धित द्रव्य एक साथ ही झोंक देने से भी वह कार्य बिना किसी झंझट के अत्यन्त सरलतापूर्वक सम्भव हो सकता था। वस्तुतः ‘यज्ञ’ प्रक्रिया के अन्तर्गत उन अनेकानेक संस्कार उपचारों का समावेश है जो गर्मी, रोशनी भर देने वाली आग को दिव्य प्रयोजनों में काम आ सकने वाली उच्चस्तरीय ऊर्जा के रूप में परिणत कर सके। यह संस्कार प्रकरण ही यज्ञ का प्राण है। उसे न अपनाया जा सके तो अग्नि समारोह के माध्यम से प्राचीनकाल के राजसूय, अश्वमेध आयोजनों की तरह राजनैतिक न सही सामाजिक कार्यों के लिए समारोह स्तर की आवश्यकता ही पूरी हो सकती है। यज्ञ के साथ जुड़े हुए दिव्य प्रयोजन पूरे नहीं हो सकते। यज्ञाग्नि को दिव्य ऊर्जा में परिणत करने की विधि-व्यवस्था एक प्रकार से विलुप्त ही हो गई। कर्मकाण्ड की पुस्तकों में तो पूजा उपचार में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों एवं विधानों भर का उल्लेख है। उससे क्रिया-कृत्य तो विधिवत् हो सकता है किन्तु यज्ञाग्नि की प्राण-प्रतिष्ठा के रहस्यों को भूल जाने के कारण कोई महत्त्वपूर्ण कार्य सधते नहीं। उस खोई हुई कड़ी को ढूँढ़ा न जा सका तो स्थिति ऐसी ही उपहासास्पद बनी रहेगी। जैसी कि आज विज्ञ समाज में उपेक्षा, अवहेलना एवं भर्त्सना के रूप में सर्वत्र उभरी दृष्टिगोचर होती है। आज तो उसे खाद्य पदार्थों की बर्बादी तथा समय, श्रम की होली जलाने की बात कहकर व्यंग्य वचनों की वर्षा ही सुशिक्षित वर्ग में होती दीखती है। परिस्थितियों की प्रतिक्रिया को देखते हुए इसे अनुचित भी नहीं ठहराया जा सकता।

अपूर्णता, अस्त-व्यस्तता और अव्यवस्था के रहते कोई भी प्रक्रिया अपना सही और समुचित परिणाम

उत्पन्न नहीं कर सकती। फिर निहित स्वार्थों द्वारा लाभ संचय के लिए मूढ़-मान्यताओं की भरमार किए जाने पर तो रही बची बात भी समाप्त हो जाती है। खंडहर भी यथावत् बने रहने पर पूर्व स्मृतियों का प्रतिनिधित्व करते और सम्मानास्पद बने रहते हैं, पर यदि उन स्थानों पर दुष्प्रवृत्तियों के केन्द्र बनकर खड़े हो जाएँ तो पुरातन इतिहास के आधार पर मिल सकने वाला गौरव भी हाथ से चला जायगा। यही हो भी रहा है। यज्ञ एक समूचा विज्ञान सम्मत उपचार है।

अन्य वैज्ञानिक प्रयोजन के खोज अन्वेषणों में विपुल धन राशि खर्च होती रहती है। यदि 'यज्ञ' विज्ञान की पुरातन गरिमा बनी रहती तो वह स्थिति न आती जो इन दिनों भर्त्सना के रूप में सुननी पड़ती है। सिक्का खोटा होने पर तो परखते वाले उसका तिरस्कार करेंगे ही।

बात निन्दा-प्रशंसा की, मान्यता-अवहेलना की नहीं बरन् यह है कि जिस तथ्य की आत्म-विज्ञान में मूर्धन्य भूमिका रही और जिसकी प्रतिक्रिया मनुष्य समुदाय को हर दृष्टि से कृत-कृत्य करती रही, उसकी अपने ही हाथों अन्त्येष्टि किस प्रकार कर दी जाय? उस विद्या के महान आविष्कारकों को सनकियों या आडम्बरियों की संज्ञा में सम्मिलित किया जाना किस प्रकार स्वीकार कर लिया जाय? आग, बिजली, पाक शास्त्र, संगीत, कला, शिक्षा,

चिकित्सा आदि की जो उपलब्धियाँ अजित की गईं वे सुधार परिवर्तनों की प्रक्रिया से होकर गुजरते हुए भी निरन्तर उन्नतिशील बन रही हैं। फिर यज्ञ तत्त्व जैसी उपलब्धियाँ निरूपयोगी, बर्बादी समझे जाने की स्थिति में क्यों पड़ी रहीं? प्राचीनकाल में उससे जो लाभ उठाए जाते रहे इस प्रगतिशील एवं साधन सम्पन्न युग में उससे हर क्षेत्र की तरह इसमें भी उन्नति अभिवृद्धि होनी चाहिए थी। पर यदि ऐसा नहीं हो सका तो इसमें दोषी उन्हीं को ठहराया जायगा जो उस कृत्य को करते तो हैं पर लोक भर्त्सना से उसे बचाने के लिए कोई सुरक्षात्मक प्रयत्न नहीं करते। समय आ गया कि अब वस्तुस्थिति को तथ्यों की कसौटी पर खरे-खोटे की यथार्थता प्रकट होने का अवसर मिले। आवश्यक नहीं कि पुरातन के नाम पर अनुपयुक्तता को भी मान्यता मिलती रहे। यदि यज्ञ वस्तुतः निरूपयोगी है तो उसकी न केवल उपेक्षा भर्त्सना होनी चाहिए वरन् उसे बन्द करने कराने का भी उपक्रम चलना चाहिए। यदि वह वस्तुतः उपयोगी है तो फिर आवश्यकता इस बात की होगी कि अध्यात्म विज्ञान का पक्षधर यज्ञ समाज उसे उस स्तर पर पहुँचाए, जिसमें उपयोगिता पर उँगली न उठ सके और लाभों को देखते हुए उसे अपनाने के लिए सहज उत्साह उठ पड़े।



यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वा स्मिँल्लोके जुहोति यजते ।

तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राव्यन्तवदेवास्य तद् भवति यो ॥

वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात् प्रैतिस कृपणोऽथ ।

य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात् प्रैतिस ब्राह्मणः ॥

(बृहदारण्यक ० ३।५।१०)

हे गार्गि जो इस ब्रह्म को न जानकर इस जगत् में बहुत वर्षों तक होम, यज्ञ, या तपस्या करता है, उसका फल अन्तवाला होता है। एवं जो अक्षर ब्रह्म को बिना जाने इस जगत् से प्रयाण करता है, वह दीन होता है और जो उसको जानकर इस जगत् से प्रस्थान करता है, वह ब्राह्मण (ब्रह्मविद) होता है।

यज्ञसंन्यस्तानामग्निं न्यायितुं वा निराकरणं

यज्ञ विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य मानवी अन्तराल का परिष्कृतीकरण तथा अदृश्य वातावरण का अनुकूलन है। साथ ही उस माध्यम से कितने ही भौतिक प्रयोजन भी सिद्ध होते हैं। शरीरगत प्राण ऊर्जा से जीवन स्थिर रहता है और प्रकृतिगत ऊष्मा से कच्चे को पकाने के अनेकानेक प्रयोजन सम्पन्न होते रहते हैं। दोनों अग्नियाँ मूलतः एक हैं। चेतना क्षेत्र में काम करते समय उसे प्राणाग्नि और पदार्थों के साथ गुँथने पर उसे पावक कहते हैं। यज्ञ तत्व का मूल प्रयोजन चेतना में प्रखरता भर देने के अतिरिक्त आरोग्य लाभ जैसे लौकिक लाभ भी जुड़े हुए हैं।

श्रम अग्नि है। पराक्रम अग्नि है। साहस अग्नि है। प्रतिभा अग्नि है। उमंग अग्नि है। श्रद्धा अग्नि है। समर्पण अग्नि है। इन अर्थों की बोधक अनेकों ऋचाएँ उपलब्ध हैं। संक्षेप में मानवी सत्ता के अन्तर्गत जितनी पवित्रता और प्रखरता दृष्टिगोचर होती है उसे दिव्याग्नि का अनुदान कह सकते हैं। ब्रह्म अर्थात् ब्रह्म सम्बन्ध वर्चस्व अर्थात् तदनुरूप पराक्रम। दोनों के मिलने से ब्रह्मवर्चस्व शब्द बनता है। इस समन्वय को ब्रह्म-यज्ञ या विश्व-यज्ञ कह सकते हैं। यही ब्रह्माग्नि है। चाहें तो उसी को ब्रह्माण्डीय ऊर्जा भी कह सकते हैं। यज्ञ का यह विराट् स्वरूप है। अग्निहोत्र तो उसका प्रतीक प्रतिनिधि भर है।

भौतिक प्रयोजनों के लिए यज्ञाग्नि के अनेक प्रयोगों में एक आरोग्य रक्षा के लिए किया जाने वाला प्रयास 'भैषज यज्ञ' के नाम से प्रख्यात है। व्यक्तिगत दुर्बलता एवं रूग्णता को निरस्त करने के लिए एवं वायुमण्डल की व्यापक विषाक्तता के कारण उत्पन्न होने वाले रोग उपद्रवों के शमन में ऐसे आयोजन का प्रयोग होता रहा है। यज्ञ की अनेक उपलब्धियों में एक आरोग्य उपचार विधि भी है। इसमें शारीरिक और मानसिक रोगों के निवारण की विधि व्यवस्था है। यज्ञ चिकित्सा का सीमा

बन्धन मानवी रोग निवारण ही नहीं, मानसिक अस्त-व्यस्तताओं को दूर करना तथा अन्तर्दिश में संब्याप्त विषाक्तता से उत्पन्न होने वाली विपत्तियों का निराकरण भी है। इस प्रकार यज्ञ चिकित्सा प्रचलित सभी चिकित्सा पद्धतियों की तुलना में अधिक व्यापक और अधिक श्रेयस्कर ठहरती है।

'भैषज यज्ञ' के सम्बन्ध में अनेकों सूत्र संकेत शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं।

अग्निष्कृणोतु भैषजम् ।

अथर्व ६।१०६।३

यज्ञाग्नि औषधि का काम भी करती है।

तनूपा अग्नेऽसि तन्वां मे पाहि ।

आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि ।

वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ।

अग्ने यन्मे तन्वा अन्तं तन्म आपृण ॥

—यजु० ३।१७

अर्थात्—हे अग्नि ! तुम शरीर के रक्षक हो, मेरे शरीर की रक्षा करो। तुम दीर्घायु प्रदान करने वाले हो, मुझे दीर्घायु बनाओ। तुम तेजस्वी हो, हमें तेजस्विता प्रदान करो। मेरे शरीर की कमी और विषमता को दूर कर उसे पूर्ण बनाओ।

यदि क्षितायुर्यदि वापरेतो यदि,
मृत्योरन्तिकं नीत एव ।

तमा हरामि निऋतेरुपस्था-
दस्यार्थं मेन शतशारदाय ॥

अर्थात्—अग्निहोत्र के माध्यम से, आयु क्षीण हुए जीवनी-शक्ति नष्ट हुए तथा मृत्यु के समीप पहुँचे हुए व्यक्ति रोग के चँगुल से छूटते हैं। रोगी मृत्यु के मुख से पुनः आते हैं और १०० वर्ष जीवित रहने की शक्ति प्राप्त करते हैं।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैन शपथको अश्नुते ।
यं भैषजस्यं गुग्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥

अखण्ड-ज्योति

विष्वञ्चस्तमाद् यक्ष्मा मृगाद्रश्ला द्रवैरते आदि ॥

—अथर्व० का० १६ सू० ३८ मं० १, २

अर्थात्—जिसके शरीर को रोग-नाशक गूगल का उत्तम गंध व्यापता है, उसको राज-यक्ष्मा की रोग पीड़ा नहीं होती। दूसरे का शाप भी नहीं लगता। उससे सब प्रकार के यक्ष्मा-रोग शीघ्रगामी हरिणों के समान काँपते हैं, डर कर भागते हैं।

बदि क्षितायुर्यदि वा परे तो यदि,

मृत्योरन्तिकं नीत एवं।

तमा हरामि निऋते रूपस्था-

पस्पर्शमेनंशतशारदाय ॥

—अथर्व० का० ३ सूक्त ११ मन्त्र २

अर्थात्—यदि रोग के कारण न्यून आयु वाला हो, अथवा इस संसार के सुखों से दूर हो, चाहे मृत्यु के निकट आ चुका हो, ऐसे रोगी को भी महारोग के पाश से यज्ञ छुड़ाता है। साथ ही दीर्घ जीवन भी प्रदान करता है।

प्रयुक्तया यथा चेष्टया राजयक्ष्मा पुराजिता।

तां वेद विहिता मिष्टमारोग्यार्थी प्रयोजयेत् ॥

—चरक चि० स्थान अ० ८ श्लोक १२

अर्थात्—जिस यज्ञ के प्रयोग से प्राचीनकाल में राजयक्ष्मा रोग नष्ट किया जाता था, आरोग्य चाहने वाले मनुष्य को उसी वेद-विहित यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए।

सन्तान न होने पर पुत्रेष्टि यज्ञ किए जाते थे। जो जन्म ले चुके उनकी स्वस्थता एवं प्रतिभा निखारने में भी यज्ञ का उपयोग है—

एष एतत्करोति याश्य त्वेवास्य प्रजा जाता याश्चाजातास्ता उभयी रुद्रियात्प्रमुञ्चति अस्यानमीवाः अकिल्बिषाः प्रजाः प्रजायन्ते तस्माद्वाऽएष एतं रयजते ॥

—शतपथ० २।६।२।२

अर्थात्—यह यज्ञ, उस सन्तान को जो उत्पन्न हो चुकी है और उस सन्तान को भी जो उत्पन्न नहीं हुई है—रोगमुक्त रखे रहता है।

‘भैषज यज्ञ’ ऋतुओं के सन्धिकाल में होते थे क्योंकि इसी समय व्यापक स्तर पर व्याधियों का प्रकोप होता था। ‘शतपथ-ब्राह्मण’ में इनका इस प्रकार उल्लेख है—

‘भैषज्य यज्ञा वा एते। ऋतु सन्धिषु व्याधिर्जायते तस्माद्ऋतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते।’

अर्थात्—ऋतुओं के सन्धि-काल में—ग्रीष्म और सर्दी के बीच तथा सर्दी और गर्मी के बीच—व्याधियों का प्रकोप बढ़ जाता है अतः इन ‘भैषज्य-यज्ञ’ से उनका निराकरण किया जाता है।

लगभग ऐसा ही प्रतिपादन ‘छान्दोग्योपनिषद्’ का भी है। वहाँ भैषज्य-यज्ञ के विषय में लिखा हुआ है—

भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्तैर्विद् ब्रह्म भवति।’ (छान्दो० ४।१७।१८)

अर्थात्—आरोग्य शास्त्र का ज्ञाता, जिसमें ब्रह्म होता है, उस यज्ञ को ‘भैषज्य-यज्ञ’ कहा जाता है।

वनस्पति ही मनुष्य का खाद्य है। उसी से शरीर बनता और बढ़ता है। यह वनस्पति अंश शरीर में न्यूनाधिक पड़ने में कई प्रकार के रोग उठते हैं। उनकी पूर्ति विशेष गुण वाली वनस्पतियाँ (जड़ी बूटियाँ) करती हैं और खोये आरोग्य को फिर से प्रदान करने का अवसर प्रदान करती हैं। यज्ञाग्नि में वनस्पतियों को होमने से वही लाभ मिलता है जो उनसे बनी हुई औषधियाँ प्रदान करती हैं। यज्ञ प्रयोजन में प्रयुक्त होने वाली औषधियों की अभ्यर्थना करते हुए कहा गया है—

‘शमिता नो वनस्पतिः।’ (यजु० २१।२१)

अर्थात्—‘वनस्पतियाँ हमें शान्ति-प्रदान करने वाली हैं।’ वे औषधियाँ से रोगों को दूर करके शक्ति प्रदान करने वाली होती हैं—

सहस्व मे अरातीः सहस्व पृतनायतः।

सहस्व सर्व पाप्मान ११ सहमानास्योपधेः ॥

—यजु० १२।६६

अर्थात्—‘हे औषधि (वनस्पति) तू रोगों को दूर करने वाली है, अतः मेरी शक्ति हरने वाले रोगों को दूर कर। युद्ध की तरह शरीर में हलचल मचाने वाले सब रोगों को पराजित कर। दूर कर।’

भैषज यज्ञों में होमी गई वनस्पतियों में वैयक्तिक और सामूहिक आरोग्य रक्षा के उपरोक्त सूत्र संकेतों के अतिरिक्त और भी बड़ी बात यह है कि उस प्रयोग से मनोविकार दूर होते हैं। कषाय-कल्मष कटते हैं और

अखण्ड-ज्योति

व्यधि- क्तियों को सत्प्रवृत्तियों में भर देने वाले उभार उमंगते ऐसी सर्वतोमुखी प्रखरता उपलब्ध होने का आश्वासन देती है। प्रार्थना शैली वेदों की अपनी प्रतिपादन है। उसे मात्र मनुहार न माना जाय वरन् समझा जाय कि अमुक अवलम्बन अपनाने में अमुक लाभ प्राप्त होने का आश्वासन है। यज्ञ से समग्र व्यक्तित्व विकसित होने का एक आश्वासन इस प्रकार है—

‘प्राणश्च मेऽपानश्च मेऽव्यानश्च मेऽसुश्च मे
तं च म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे
ब्रह्माश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन
(यजु० १८।२)

मेरा प्राण, मेरा अपान, मेरा व्यान, मेरे अन्य प्राण, मेरा चित्त, मेरे विचार, मेरी वाणी, मेरा मन, मेरा नेत्र, मेरा कान, मेरी दक्षता और मेरा बल यज्ञ से सम्पन्न यज्ञीय ऊर्जा से युक्त होकर अधिक प्रखर बनी हो।

सविता प्रसुव यज्ञं प्रसुवयज्ञपतिं भगाय ।
य्यो गन्धर्वः केतपूः केतनः पुनातु वाचस्पतिर्वाच नः ।
स्वदतु ॥—यजु० ३०-१

अर्थात्—मन, वाणी, बुद्धि की उन्नति तब होगी यज्ञ एवं यज्ञपति की उपासना की जाय।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्य-
ज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन
यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पताम् ॥

अर्थात्—यज्ञ से आयु, यज्ञ से प्राण, यज्ञ से दर्शन-
शक्ति, यज्ञ से श्रवण-शक्ति, यज्ञ से वाक्-शक्ति यज्ञ से
मन, तथा यज्ञ से आत्मा, बलवान्, समर्थ व प्रखर बने।

विपत्तियाँ मात्र शारीरिक रुग्णता के रूप में ही नहीं
होती वरन् उनकी आधि भौतिक, आधि दैविक एवं
आध्यात्मिक कारण एवं स्वरूप भी हैं। ‘प्रारब्धजन्य,
कृत्यों के फलस्वरूप न केवल रोग वरन् अन्य प्रकार के
कष्ट भी उत्पन्न होते हैं। उनके निराकरण में यज्ञ विधि
अत्यन्त फलप्रद सिद्ध होती है उतनी और कोई नहीं।
स सन्दर्भ में कितने ही शासन वचन उपलब्ध होते हैं।
जन्म में यज्ञानुष्ठान जैसे अन्य धर्मकृत्यों को अपनाने से

अखण्ड-ज्योति

उज्ज्योति

रुग्णता तथा दूसरी व्यथाओं के निराकरण की बात कही गई है—

मन्तोषधि, मणि मंगल, वत्युपहार होम, प्रायश्चित्तोपवास, स्वस्त्ययन, प्रणिपातगमनादि। युक्तिव्यपाश्रयं—पुनराहारोषधि द्रव्याणां योजना। सत्वावजयः पुनरहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रहः ।”

अर्थात्—मन्त्र, यन्त्र, होम, यज्ञ, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, प्रणिपात (साष्टांग प्रणाम) तथा तीर्थाटन आदि के द्वारा इसमें कायिक, मानसिक एवं महामारी रोगोपचार होता है।

प्रशाभ्यत्यौषधैः पूर्वं देवयुक्तिव्यपाश्रयैः ।

मानसोज्ञान विज्ञानधैर्यस्मृति समाधिभिः ॥

—चरक सूत्र १।१।५६

अर्थात्—पूर्व जन्माजित भोग भक्ष्यवा देव एवं ग्रह जनित रोगोपचार के लिए जो यन्त्र, मन्त्र, यज्ञ, हवन, दान पूजन एवं व्रतोपवास किया जाता है, आशु फलदायक हाने के कारण इसे प्रथम कहा गया है।

रसायन तपो जाप योग सिद्धैर्महात्मभिः ।

कालमृत्युरपि प्राज्ञं जीयते नालसै नरैः ॥

—चरक सूत्र १।६१

अर्थात्—रसायन, महौषध, मृत्युञ्जय आदि जप-तप ब्रह्मचर्यादि एवं योग की सिद्धियों से काल-मृत्यु भी टल जाता है।

इस प्रकार भौषज यज्ञ से आरोग्य लाभ होने की तरह ही अन्य समस्याओं के समाधान एवं उत्थान अभ्युदय के अनेक प्रयोजनों में यज्ञ का आश्रय लेने से भारी सहायता मिलती है।

स्वास्थ्य रक्षा एवं जीवनी शक्ति सम्बर्धन के लिये यज्ञ प्रक्रिया द्वारा मानव मात्र की तथा पर्यावरण की चिकित्सा का प्रावधान आर्षकालीन महामानवों द्वारा बनाया गया है। इस पूरे प्रकरण के हर पहलू को वैज्ञानिक पद्धति से जाँचना-परखना मनीषा का कर्तव्य है। ब्रह्मवर्चस्व शोध संस्थान ने इस दुष्कर कार्य को अपने हाथ में लिया है अगले दिनों सारा विश्व इस ऋषि प्रणीत विद्या के रहस्यों को व उसके महत्त्व को जानकर कृतकृत्य होगा, इसमें रत्ती मात्र भी सन्देह नहीं। ●

नींव और शिखर

सब शिखर के स्वप्न-दृष्टा ही बने यदि,
तो भवन की नींव का पत्थर बनेगा कौन।
सब पवन-प्रेरित पताका ही बने यदि,
नींव की चट्टान जैसा फिर तनेगा कौन ॥ १ ॥

नींव पर ही भवन को विश्वास होता है।
नींव में ही शिखर का इतिहास होता है।
शिखर की चर्चा हुआ करती महोत्सव पर,
नींव में चिर-प्राण का आवास होता है।
सब महोत्सव की प्रतीक्षा ही करें यदि,
महोत्सव अनुकूल दिनचर्या बनेगा कौन ॥ २ ॥

उच्चतम शिखरें उठाना 'लक्ष्य' अच्छा है।
क्योंकि सृष्टा की यही तो प्रबल इच्छा है।
सुशोभित करना शिखर पर है पताका भी,
'श्रेष्ठतम' के वरण की ही तो प्रतीक्षा है।
किन्तु ! सब ही कीर्ति के किकर बने यदि,
कर्म की महिमा उजागर फिर करेगा कौन ॥ ३ ॥

जिस नये युग का कि नव निर्माण होना है।
हमें उसकी नींव का पाषाण होना है।
सीढ़ियों पर सीढ़ियाँ धरते चले आओ,
अवतरण तब स्वर्ग का आसान होना है।
उदय ही देवत्व का हममें न हो यदि,
इस धरा पर स्वर्ग का सृष्टा बनेगा कौन ॥ ४ ॥

नींव बनने से अगर कतरा गये तो।
शेख चिल्ली की तरह इतरा गये तो।
मनुजता का फिर कहाँ आवास होगा,
मनुज के ही आचरण पथरा गये तो।
'व्यष्टि का निर्माण' ही पीछे रहा यदि,
'सृष्टि का आदर्श' फिर निर्मित करेगा कौन ॥ ५ ॥

—मंगल विजय

सम्पादक—भगवती देवी शर्मा प्रकाशक व मुद्रक—मृत्युञ्जय शर्मा अखण्ड-ज्योति संस्थान द्वारा
जन-जागरण प्रेस मथुरा २५१००३ में मुद्रित।

अखण्ड ज्योति

कले ने प्राप्त संख्या 100
14.10.82



अक्टूबर १९८२

—«●»—

अक्टूबर	—	१६८२
वर्ष	—	४५
अङ्क	—	१०
वार्षिक चन्दा	—	१५)
आजीवन	—	१५०)

—«●»—

पढ़ें और पायें

१ सृजन चेतना की समर्थता और गरिमा		१
२ वर्तमान की विपन्नता का पर्यवेक्षण		२
३ विभीषिका से जूझने कौन आगे आये ?		५
४ दो हाथों से ताली बजेगी—दो पहियों की गाड़ी चलेगी		८
५ धर्मतन्त्र की उपेक्षित किन्तु मूर्धन्य शक्ति सामर्थ्य		११
६ मुहीम युग मनीषा को सम्भालनी होगी		१४
७ महत्व लोक-मानस के परिष्कार का भी समझे		१७
८ झकझोरने वाली वाणी मुखर करें		१८
९ तथ्य, तर्क और प्रमाणों से भरे-पूरे युग साहित्य		२१
का सृजन		२१
१० लोकरंजन के साथ लोकमंगल का समन्वय		२५
११ जागृत आत्माओं की समयदान अंशदान श्रद्धांजलि		२८
१२ मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का		३१
अवतरण		३१
१३ नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्र की समग्र क्रान्ति		३५
१४ युग मनीषा कहाँ पायें, कहाँ खोजें, कहाँ पुकारें ?		३८
१५ सृजन प्रयासों में धर्मतन्त्र का शासन के साथ सहकार		४१
१६ नव सृजन का पूर्वार्ध जो हो चुका		४३
१७ युग-परिवर्तन प्रक्रिया का उत्तरार्ध जो अभी ही		४६
क्रियान्वित होना है		४६
१८ हमीं एक कदम और आगे बढ़ें		४८
१९ युग मनीषा के कन्धों पर इन्हीं दिनों एक छोटा		५१
किन्तु महान उत्तरदायित्व		५१

पता—अखण्ड-ज्योति संस्थान, मथुरा

14.10.82

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

अखण्ड स्योनि

प्रज्ञायोग

अध्यात्म विज्ञान

99

वर्ष ४५

अङ्क १०

अक्टूबर १९८२

वार्षिक चन्दा १५)

आजीवन १५०)

सृजन चेतना की समर्थता और गरिमा

ध्वंस सरल है, सृजन कठिन । पतन सहज है उत्थान कष्ट साध्य । उथली बाल क्रीड़ा कोई भी कर सकता है, पर समुद्र की गहराई में उतर कर मोती बटोरना किन्हीं साहसी गोताखोरों द्वारा बन पड़ता है । वातावरण में अवांछनीयता का समावेश करने में उथले लोग भी बहुत कुछ कर गुजरे हैं । विषैली घुटन उत्पन्न करने में कूड़े-करकट की छोटी ढेरी भी तनिक-सी चिनगारी का सहयोग पाकर सहज समर्थ हो सकती है, किन्तु वातावरण में शान्ति शीतलता भरने की बात तो अन्तरिक्ष में व्याप्त बादल सोचते और कर-गुजरते हैं । धरती की उर्वरता वर्षा के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । मानवी गरिमा को अधुण और प्रखर बनाये रखने में युग मनीषा ही पावस की भूमिका निभाती है । सुखद सम्भावनाओं का फला-फूला माहौल बनाने और वातावरण को नयनाभिराम उल्लासमय बनाने में वसन्त का अवतरण ही सफल होता है ।

कभी कार्तिकी अमावस्या को तमिस्रा से छुटकारा दिलाने के लिए गुहार की गयी थी । सूरज, चन्द्रमा ने समर्थ होते हुए भी उसे अनसुनी कर दिया । तब छोटे दीपकों ने अपनी तुच्छता का संकोच न करते हुए अन्धकार से जूझने का संकल्प प्राण हथेली पर रख कर किया था । दीप पर्व उसी आदर्शवादी बलिदानी साहसिकता को अनन्तकाल तक जीवन्त रखने वाला और अनुकरण की प्रेरणा देने वाला स्मारक है । सृजन शिल्पियों को कुछ ऐसा ही सोचना और करना होता है ।

वर्तमान की विपन्नता का तात्त्विक पर्यवेक्षण

इन दिनों प्रवाह कुछ ऐसा चल रहा है जिसमें लोक-मानस को अचिन्त्य चिन्तन, कुकृत्य कर्तृत्व में निमग्न देखा जा सकता है। पेट और प्रजनन से आगे की बात किसी को सूझती ही नहीं। संकीर्ण स्वार्थपरता की खुमारी ऐसी चढ़ी है कि लोभ और मोह की खाई पाटने के अतिरिक्त और कोई लक्ष्य सामने रह ही नहीं गया है। वड़प्पन की एक ही परिभाषा है—दूसरों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करके अपनी विशेषता सिद्ध करना और अहंता की, दर्प की आत्म प्रवंचना से मन बहलाना। नीति और अनीति का विचार छोड़कर जिस प्रकार भी जितना भी संग्रह सम्भव हो करते रहना, उसे ठाट-बाट के प्रदर्शन, वैभव विलास एवं दुर्व्यसनों में जी खोल कर उड़ाना। इतने पर भी कुछ बच रहे तो मात्र वंशजों के लिए छोड़ मरना, भले ही उनके पास निर्वाह की कोई कमी न हो। प्रस्तुत परिवार के प्रति उत्तरदायित्व न निभाने पर भी आये दिन सन्तानें जनना अपना अर्थ सन्तुलन, पत्नी का स्वास्थ्य, बच्चों का भविष्य और देश का व्यवस्था-क्रम मटियामेट करना।

इस आसुरी रीति-नीति को अपनाने पर मनुष्य का अन्तराल निष्ठुर निकृष्ट होना स्वाभाविक है। पिछड़ापन इसी को कहते हैं। स्तर का गया-गुजरापन-शिक्षित अशिक्षित—धनी निर्धन किसी में भेद-भाव नहीं करता और सब पर समान रूप से लदा रहता है। इस सड़न भरे वातावरण में धिनीने व्यक्तित्व वाले अपराधी, निर्मम दुष्ट और भ्रष्ट स्तर के लोग ही पनपते हैं। या फिर हेय, हीन, आलसी, प्रमादी ऐसे नर-पशुओं की संख्या बढ़ती है जिनके भार के सहन करने में धरती भी बहुत कष्ट अनुभव करती है। वे जिस समाज में जन्मते हैं उसके लिए भारभूत होकर रहते हैं। विग्रह और विशोभ उत्पन्न करने—अव्यवस्था फैलाने—घृणा जुगुप्सा का वातावरण बनाने—चैन की साँस न लेने देने की विडम्बना ही वे रचते हैं। उनके जीवित रहने से समाज

और राष्ट्र का सन्तुलन बिगड़ता और गौरव नष्ट होता है।

गहराई के साथ पर्यवेक्षण करने पर चित्र-विचित्र कलेवरों में इस निकृष्ट स्तर के व्यक्तित्व अपनी विविध विधि गतिविधियों में संलग्न पाये जाते हैं। ध्रुव लोगों का उद्देश्य रहित चिन्तन और आदर्श रहित चरित्र ही ऐसे घृणित वातावरण का सृजन करता है जिसे पुरातन भाषा में नरक कहा जाता था। नरक की परिणति पीड़ा और पतन में ही होती है। जहाँ वरिष्ठ और कनिष्ठ सभी मानवी गरिमा को तिलाञ्जलि देकर भूत-प्रेतों जैसे उद्धत आचरण में निरत हों, वहाँ शान्ति कहाँ—प्रगति कहाँ—स्नेह कहाँ? सौजन्य कहाँ—न्याय कहाँ, औचित्य कहाँ? जहाँ दैवी विभूतियों को बहिष्कृत कर दिया गया हो वहाँ समस्याओं, विपत्तियों, विभीषिकाओं की भी कमी कहाँ रहने वाली है। पतन की ढलान ही ऐसी है जिस पर लुढ़कने वाले त्रास देते, त्रास सहते, अन्ततः महाविनाश के गर्त में गिरते, आत्म-हत्या का कलक ओढ़ते हैं।

आश्चर्यचकित करने वाली विडम्बना यह है कि एक ओर भौतिकी, औद्योगिकी और बौद्धिकी की तूफानी प्रगति ने सुविधा साधनों के पर्वत खड़े कर दिये हैं। इतने पर भी मनुष्य क्रमशः भीतर से खोलता और बाहर से ढोल-ढकोसला मात्र क्यों बनता जा रहा है। उसकी जीवट, उमंग, तुष्टि, तृप्ति, शान्ति का बेतरह पलायन क्यों होता चला जा रहा है। अणु आयुधों की सैन्य सज्जा ने इन्द्रवज्र को पीछे छोड़ दिया फिर सर्वत्र असुरक्षा का आशंका का—अनिश्चितता का—आतंक का—वातावरण क्यों? प्रगति के लिए हर दिशा में बनने वाली योजनाओं तैयारियों और व्यवस्थाओं और उपलब्धियों को देखकर लगता है कि अब अभाव दारिद्र्य का कहीं कोई अस्तित्व रहने वाला नहीं है। फिर भी निष्कर्षों तक पहुँचते-पहुँचते प्रतीत हो गया है कि किसी बेताल ब्रह्म राक्षस

अक्टूबर १९८२

२

अखण्ड-ज्योति

ने आशाओं के अम्बार फूँक से उड़ाकर अन्तरिक्ष में धिलीन कर दिये ।

नष्ट होता उपचार अपनी जगह पर—क्षरण और मरण का क्रम अपनी गति पर, दोनों के मध्य कोई तालमेल नहीं । इसे अनहोनी ही कहना चाहिए । यह बेवृद्ध पहेली—पकड़ से बाहर की भूल-भूलैया किसी तिलस्म महल-सी लगती हैं । प्रतीत होता है कि मानवी अस्तित्व अभिमन्यु की तरह किसी ऐसे विचित्र चक्र-व्यूह में फँस गया है, जहाँ से बच निकलना कदाचित् अवश्य रह नहीं गया है । आये दिन भविष्यवक्ताओं, मनीषियों, वस्तुस्थिति के आकलनकर्ताओं, दूरदर्शियों के कथन प्रतिपादन सुनने को मिलते रहते हैं कि दुर्दिन तेजी से बढ़ता आ रहा है और अपने विकराल मुख में इस धरातल की संचित शोभा सुषमा को निगल जाने की तैयारी पूर्ण कर चुका है । बढ़ता हुआ प्रजनन, प्रदूषण, पर्यावरण, विकरण, प्रकृति सम्पदा के असन्तुलित दोहन के फलस्वरूप पदार्थ सम्पदा का समापन ऐसे तथ्य हैं जो निकट भविष्य में जीवन मरण जैसे संकट की पूर्ण सूचना देते हैं । प्रत्यक्ष सुविधा सम्पादन के लिए जब आदर्शों और भावनाओं को तिलाञ्जलि देने की परम्परा चल पड़ी तो फिर स्नेह-सौजन्य का क्या काम ? उदार आत्मीयता को जीवन्त रखने के लिए तो आत्म संयम और सेवा साधना करनी पड़ती है । जहाँ स्वार्थान्धता का बोलवाला हो वहाँ इन श्रद्धा सिक्त सत्प्रवृत्तियों के पैर कैसे टिकें ? उनका अस्तित्व समाप्त हो जाने पर जिस प्रकार सोचा जाता है; जो किया और कराया जाता है उसकी तुलना पिशाच कृत्यों से ही की जा सकती है । जहाँ पिशाचों की भरमार हो, उसे मरघट ही कहा जायगा । वहाँ जलने-जलाने, डरने-डराने, रोने-रुलाने के अतिरिक्त और किसी माहौल की आशा कैसे की जाय ?

यही है उन विसंगतियों का रहस्योद्घाटन जिनके कारण एक हाथ से भौतिक उत्कर्ष दूसरी ओर आत्मिक अपकर्ष का जादुई हेर-फेर चलता दृष्टिगोचर होता है । जब तक यही स्थिति बनी रहेगी प्रवाह, माहौल, वातावरण ऐसा ही बना रहेगा जिसमें घुटन, संकट, असन्तुलन, विभ्रम, विग्रह के अतिरिक्त और कहीं कुछ न दीखे, न

सूझे । फिर किया क्या जाय ? अच्छा तो यही लगता है कि अपने काम से काम रखा जाय । दुनिया का लेखा-जोखा लेकर सुधार सम्माल की चिन्ता का भार सिर पर न लादा जाय । किन्तु कठिनाई यह है कि बात इस प्रकार भी तो नहीं बनती । चारों ओर अग्निकाण्ड की लपटें उठें, सारा मुहल्ला धूँ-धूँ जले तो अपने मध्यवर्ती घर की सुरक्षा कहाँ बन पड़ती है । गाँव में महामारी फैले तो अपने परिवार का निश्चिन्त रहना कैसे सम्भव ह ? गुण्डे बद्माशों का समुदाय किसी क्षेत्र में छाया हो तो अपने घर के लोगों को उनके कुचक्र से कैसे विरत रखा जाय ? गेहूँ के साथ घुन पिसता है । दुर्जनों का बाहुल्य हो तो मुट्ठी भर सज्जनों की भी खैर नहीं । प्रश्न समृद्धि की कमी का नहीं भावनाओं के दुर्भिक्ष का है । मनुष्य हाडमांस का पुतला नहीं भावना और आस्था का पुंज है । उसका जैसा भी अन्तराल होगा वैसी ही उसकी आदतें ढलेंगी, इच्छाएँ उठेंगी, गतिविधियाँ चलेंगी । फलतः मनःस्थिति के अनुरूप ही वह परिस्थितियाँ सृजन करता और उनमें जकड़ता चला जायगा । यही है आज की वस्तुस्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण, शवच्छेद और विश्लेषण ।

विपन्नता को उलटने के लिए एक ही प्रयास करना होगा कि व्यक्तित्व सम्पन्न मानवों को ढूँढ़ा, उभारा, उछाला और लोक-मानस को प्रभावित करने वाली भूमिका निभाने के लिए अग्रिम मोर्चे पर खड़ा किया जाय । इतना बन पड़े तो उन समस्त समस्याओं का हल सम्भव और सरल है जो लाख प्रयत्न करने पर भी मुलझने का नाम नहीं ले रहा है । सबाल न तो सम्पदा की कमी का है और न साधनों के बिना कोई काम रका पड़ा है । मनुष्य का श्रम और कौशल ही सम्पत्ति का उत्पादन उपार्जन करता है । वह पिछड़े स्तर का हो तो दरिद्रता से विपन्नता से छुटकारा नहीं । वह प्रखर हो तो बालू से तेल निकालने, लात मार कर पाताल से पानी निकालने की बात सम्भव हो सकती है । फरिहाद का कोह खोद कर नहर निकालना एकाकी संकल्प के सहारे सम्भव हो सका । कल-परसों एक हजार किसान ने बिहार में एक हजार आम्र उद्यान लगाकर उस इलाके

को हजारी बाग का श्रेयाधिकारी बना दिया।

महामानवों की समूची इतिहास शृंखला इसी प्रकार की है। शंकराचार्य, बुद्ध, गान्धी, विवेकानन्द, दयानन्द, कबीर, दादू, नानक, समर्थ, केशव, प्रताप, सुभाष आदि की गाथाएँ यही प्रामाणित करती हैं कि सफलताएँ सदा मनस्वी के चरण चूमती रही हैं। ओजस् आगे बढ़ा है जो उसके तूफानी पराक्रम के साथ अनुयायियों के अनगिनत पत्तों-तितके अनायास ही पीछे दौड़ते चले आये हैं। प्रवाह उत्पन्न करने में व्यक्तित्व ही समर्थ रहे हैं—हैं और रहेंगे। आज के पतन पराभव का सृजन भी उन्होंने किया है।

उदाहरण के लिए साहित्य, कला, अभिनय, संगीत को ही लें। इस अकेली धारा में कोटि-कोटि मानवों के मनःक्षेत्रों को कलुष कालिमा से भर दिया है। पतन प्रवाह को सर्वनाश की भूमिका निभाने के लिए स्वच्छन्द गति से बढ़ते चलने—जो भी लपेट में आये उसे निगलते चलने के लिए स्वच्छन्द छोड़ दिया है। यदि इस कला समता को सृजन प्रयोजन में—आदर्शों के लिए प्रोत्साहन में प्रयुक्त किया गया होता, तो उसकी स्थिति से आज से सर्वथा भिन्न होता। लोक मानस के पतनोन्मुख बनाने में कला क्षेत्र के मूर्धन्यों की सम्पदा, बुद्धि और कुशलता नियोजित हो सकी होती तो निश्चित रूप से आज सत-युग के दृश्य उपस्थित हुए होते। शक्ति तो शक्ति है। उसे दुधारी तलवार की संज्ञा दी गई है। वह सुरक्षा—दुष्ट दमन, बाल बध, आतंक, आत्महत्या आदि किसी भी भले-बुरे काम में प्रयुक्त की जा सकती है। जो बात कला के सम्बन्ध में कही जा रही है, वही विज्ञान, शिक्षा, शासन, उत्पादन, व्यवसाय, गठन, प्रचलन आदि सभी क्षेत्रों के लिए समान रूप से लागू होती है।

न प्रकृति सम्पदा की कमी है न बुद्धि कौशल की। मानवी, पशु समुदाय का—भाप, तेल, विद्युत का—बल वैभव भी कम नहीं। उन उपलब्धियों का यदि सही दिशा में सुनियोजन सदुपयोग किया जा सके तो विश्वास किया जाना चाहिए कि वर्तमान साधनों से ही व्यक्ति का—समाज का—विश्व का—काया-कल्प हो सकता है। संव्याप्त हाहाकारी विपन्नता का स्थान सुख-शान्ति

से भरी-पूरी सुसम्पन्नता ग्रहण कर सकती है। इसके लिए किसी विप्लव विद्रोह जैसी भयावह मारकाट या उथल-पुथल की भी आवश्यकता न पड़ेगी। दुर्बुद्धि को सन्मति में बदल लेना इतना कठिन काम नहीं जितना कि महायुद्धों का नियोजन। जब अन्तरिक्ष युद्ध से महाप्रलय के नियोजन की—अणु-आयुधों से धरती को धज्जियाँ उड़ा देने की—प्रदूषण विकरण से प्राणि समुदाय का दमघोट देने की—श्रम साध्य, व्यय साध्य असम्भव जैसी लगने वाली योजनाएँ—सम्भव हो सकती हैं तो कोई कारण नहीं कि मानवी संकल्प दुर्बुद्धि को सद्बुद्धि में बदल देने—अवांछनीय की दिशा में बहने वाले प्रचलन प्रवाह को मोड़ने-मरोड़ने में सफल न हो सके। संकल्प साहस और पुरुषार्थ का समन्वय जब भी—जहाँ भी—जिस प्रयोजन के लिए भी हुआ है, वहाँ असम्भव को सम्भव में बदलने का चमत्कार उत्पन्न होता रहा है। यदि सृजन सोचा गया होता, उत्कर्ष लक्ष्य रहा होता—दूर दर्शी विवेक को प्राश्रय मिला होता तो आज वह स्थिति सामने न आई होती जिसमें कुछेक को छोड़कर हर व्यक्ति खिन्न, असन्तुष्ट, विपन्न, निराशा एवं भयभीत दिखाई पड़ रहा है।

यो धरती पर सदाशयता भी विद्यमान रहती है। बीज नाश तो प्रलयकाल में भी नहीं होता। सज्जन अक्षय भी मौजूद हैं। सत्प्रवृत्तियों की इतिश्री हो गई हो सवात भी नहीं है। सृजन की बात सोचने वाले और उसके लिए अपनी नगण्य-सी सामर्थ्य से छुटपुट—कुछ-कुछ करते रहने वाले भी ढूँढ़ने पर मिल ही सकते हैं, पर उनकी गणना लंका में विभीषण की—दाँतों के बीच जी जितनी ही हो सकती है। बाहुल्य और बहुमत को ही प्रधानता देनी होती है और मूल्यांकन उसी का होता है। इस दृष्टि से आज की मनःस्थिति और परिस्थिति पर से चमकदार पर्दा उठाते ही जो दीखता है उसे एक शब्द में विघातक ही कहा जा सकता है। प्रश्न एक है कि आधारभूत कारण को समझने-समझाने—प्रवाह को मोड़ने-मरोड़ने—गुत्थी की सुलझाने के लिए कटिबद्ध होने की तैयारी की जाय या जो हो रहा है—होने ज रहा है—उसे मूकदर्शक की तरह देखते रहा जाय ?

विभीषिका से जूझने कौन आगे आये

विश्व विचित्रताओं में एक अद्भुत विडम्बना यह भी है कि पतन सरल है और उत्कर्ष कठिन। कुकृत्यों के सूत्र-संचालक और सहभागी अनेकानेक बनते, गिरोह बनाते, षडयन्त्र रचते और बड़े-बड़े दाँव चलाने में सफल रहते हैं। जब कि सत्प्रवृत्तियों के पक्षधर अपनी एकाकी टन्ट-चट करते रहते हैं। सन्त सज्जनों का समुदाय इस संसार में न हो ऐसी बात नहीं, पर न जाने क्यों उनमें मिल-जुलकर बड़े प्रयास करने की उत्कंठा ही नहीं जगती है। ऐसी दशा में अकेला चना क्या भांड-फोड़े—डेढ़ चावल की खिचड़ी कैसे पके—ढाई ईंट की मसजिद कैसे बने ? प्रवाह तो सामुदायिक प्रयत्नों से ही बनते हैं। सज्जन भी यदि दुर्जनों की तरह एकत्रीकरण का महत्व समझे और मिलजुल कर सृजन, उत्थान की योजना बनायें—उपलब्ध साधनों को जुटायें तो कोई कारण नहीं कि पतन का महौल बनाने वालों की तुलना में उत्थान का सरंजाम जुटाना सम्भव न हो सके।

सृष्टा की इस अनुपम कलाकृति विश्व-वसुन्धरा पर जब-जब भी महाविनाश की घटाएँ छाई हैं तब असन्तुलन को सन्तुलन में बदलने की प्रतिक्रिया अदृश्य अन्तरिक्ष से अवतरित होती रही है। परिवर्तन के ऐसे क्रान्तिकारी तूफान आये हैं जिनने सज्जनता को सृजनात्मक पराक्रम के लिए उत्साहित किया है। वे कटिबद्ध हुए हैं तो “सत्य में हजार हाथी की बराबर बल होता है, यह उक्ति अक्षरशः सत्य सिद्ध होती रही है। पाप दुर्बल है, पर वह पराक्रम के कन्धे पर बैठकर उचकता-मचकता रहता है। पुण्य समर्थ है, पर वह किसी कोने में न निरहंकारिता, अनाशक्ति आदि की चादर ओढ़कर मात्र कल्पना लोक की बिना पंखों वाली उड़ानें उड़ता रहता है। लोक हित के लिए पुरुषार्थ क्षेत्र में उतरने की माँग होती है तो बँगलें झाँकने और किसी बहाने जान बचाने का उपक्रम करता देखा जाता है। यों पुण्य की यह मूल प्रवृत्ति नहीं है, पर जब वह सज्जनता का लवादा ओढ़कर भीरुता से

आक्रान्त लोगों के पल्ले बँधता है तो उसकी भी दुर्गति होती है। आज पुण्य और पलायन लगभग एक ही वस्तु के दो नाम माने-जाने लगे हैं, पर वस्तुतः वैसा है नहीं पुण्य में तथ्यतः प्रचण्ड पराक्रम का भी समावेश है, जो समय आने पर अपने वास्तविक रूप में प्रकट भी होता है।

विघातक विपन्नता की परिस्थितियों को उलटने की विश्व-व्यवस्था का नाम ‘अवतार’ है। व्यापक असन्तुलन को निरस्त करने में उस परम्परा का प्रकटीकरण बार-बार समय-समय पर होता रहा है। ‘यदा यदा हि धर्मस्य’ की परिस्थितियों में उसकी प्रतिमा ‘तदात्मिन सृजाम्यहम् ...’ की पूरी होती रही है। उस तूफान ने “परित्राणाम् साधूना...” वाली परिवर्तित परिस्थिति उत्पन्न करके ही चैन लिया है। यदि यह प्रतिक्रिया विश्व-व्यवस्था का अंग न रही होती तो अब तक यह दुनिया न जाने कब की—दुष्कृतों और दुष्प्रवृत्तियों की असुरता निगल गई होती।

अतीत का इतिहास ऐसी महाक्रांति से भरा पड़ा है, जिनमें साधनों का—समर्थों का अभाव रहते हुए भी ऐसे उत्साह उभरे हैं जिनने विपन्नताओं को देखते-देखते उलट कर रख दिया। अनौचित्य की भी प्रतिक्रिया होती है। शरीर में उभरने वाले भयानक रोग—शरीर में संचित विषाक्तता को उखाड़ फेंकने की प्रतिक्रिया—नियति व्यवस्था के अनुरूप उभरने वाले विद्रोह ही हैं। समाज, शासन, अर्थ व्यवस्था, मान्यता, परम्परा आदि के क्षेत्रों में भी ऐसी प्रतिक्रियाएँ समय-समय पर उभरी हैं जिनमें प्रचलित अवांछनीयताओं को उखाड़ फेंकने में आश्चर्यजनक कीर्तिमान स्थापित किये गये हैं। अब राजसिंहासन कहाँ बचे हैं ? दाम दासियों का क्रय-विक्रय कहाँ होता है ? सामन्तों का पड़ोसियों पर चढ़ दौड़ना और जो हाथ लगे हाऊ हड़प कर जाना आज की न्याय व्यवस्था में उतना सरल नहीं रहा। अब भूमि और प्रजा किसी राजा की व्यक्तिगत सम्पदा नहीं समझी जाती। मृत

अक्टूबर १९८२

धखण्ड-ज्योति

५

राजाओं के साथ न तो जीवित रानियाँ, बाँदियाँ, नौकर चाकरों, विपुल सम्पदा के साथ दफनाये जाने का प्रचलन ही अब रहा है। विधवा को मृत पति के साथ सती होने के लिए भी अब विवश नहीं किया जाता। स्वर्गनिवास का प्रमाण पत्र अब धर्मावलम्बी पुरातन काल की तरह बेचते नहीं है। यहाँ तक कि जन्म जाति के आधार पर चलने वाली ऊँच नीच प्रथा भी मात्र पिछड़े क्षेत्रों में ही अपनी साँसें गिन रही है। यह सब अनायास ही नहीं हो गया। इनके विरुद्ध विद्रोह उभरे हैं, माहौल बने हैं, और छोड़ने के लिए दबाव पड़े हैं। भले ही वे मारकाट की प्रधानता न होने के कारण घटनाओं के रूप में ऐतिहासिक अभिलेखन में स्थान न पा सके हों।

अवतार इसी रूप में होते हैं। उन्हें अनौचित्य के विरुद्ध औचित्य का नियति समर्थित विद्रोह कहा जा सकता है। वे तूफान की तरह आते हैं और अपने साथ असंख्यों तिनके पत्ते और धूलिकण साथ उड़ाते ले चलते हैं। जो पद दलित थे वे आसमान पर छाये दीखते हैं। साथ ही गर्वोन्त मस्तक वाले विशालकाय वृक्षों को बात की बात में धराशायी होते देखा जाता है। युग अवतार ऐसे ही होते हैं। उनमें भी अग्रगण्यियों को स्वाभाविक श्रेय मिलता है इतने पर भी वह प्रचण्ड प्रतिक्रिया किसी व्यक्ति विशेष पर केन्द्रित नहीं मानी जा सकती। अवतार को व्यक्ति के रूप में मानना भूल है। वह एक औचित्य के पक्षधर प्रचण्ड प्रतिक्रिया भर होती है जो अनौचित्य की उस प्रकार कमर तोड़ देती है कि देखने-सुनने वालों को सहसा अपने आँखों और कानों पर विश्वास नहीं होता। किशोर कृष्ण का—दुर्दन्त कंस को उसके चारुण, कुवल्यापीड जैसों को धराशायी कर देना ऐसी घटना है जिस पर सामान्य विधि-व्यवस्था को देखते हुए सहसा विश्वास नहीं होता। गोवर्धन का उँगली पर उठाना—समुद्र का पुल बाँधना ऐसे ही कथानक हैं जिनमें अवतारी क्रान्ति प्रवाह द्वारा असम्भव को सम्भव कर दिखाने के तथ्य पर विश्वास करने के लिए कहा जाता है। यह आश्चर्य तब और भी अधिक बढ़ जाता है जब वह साधन विहीन स्वल्प शक्ति सामर्थ्य के द्वारा—हलके दर्जे के—थोड़े से सहयोगियों के सहारे कर दिखाये गये। ग्वाल-

वालों और रीछ, वानरों का मूल्यांकन इसी रूप में हो सकता है।

जिन्हें पौराणिक गाथाएँ अविश्वास और अरुचि कर लगती हों वे इन्हीं प्रतिपादित तथ्यों को इतिहास के पृष्ठों पर महान क्रान्तियों के रूप में पढ़ सकते हैं। उनमें भी स्वल्प साधनों से मनस्वी लोगों द्वारा आगे बढ़कर ऐसी चिनगारी जलाने का उल्लेख है जो आगे चलकर विशालकाय दावानल के रूप में परिणति हुई और यह सिद्ध करके रही कि एक सत्य में एक हजार हाथियों की बराबर बल होता है। सृष्टा अपनी इस अनुपम कलाकृति विश्व वसुधा का सौन्दर्य नष्ट कर डालने—अस्तित्व मिटा डालने की छूट किसी दैत्य-दानव को नहीं दे सकता। यहाँ दैत्य-दानव का तात्पर्य ऐसे कुप्रचलन को समझा जाना चाहिए जिसमें भ्रष्ट-चिन्तन एवं दुष्ट आचरण का बोल वाला रहता है।

यह पंक्तियाँ प्रस्तुत अवांछनीयता के निराकरण को ध्यान में रखते हुए लिखी जा रही हैं और कहा जा रहा है कि परिस्थितियों की विपमता को देखते हुए किसी को निराश होने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे अवसरों पर सहज ही क्रान्ति प्रतिक्रान्ति का नियत चक्र चलता है और अनाचार के विरुद्ध न्याय पक्ष सीना तानकर मोर्चे पर आखड़ा होता है। साधनों की कमी वाली आशंका एक कोने पर रखी रह जाती है और सृष्टा की इच्छा नियति व्यवस्था अपना सन्तुलन आप बिठा लेती है। हाँ, इतना अवश्य होता है वह कृत्य कुछेक अग्रगामी व्यक्तित्वों के हाथों सम्पन्न होता है। वे साधन हीन होते हुए भी हनुमान, अर्जुन की तरह श्रेयाधिकारी भी बनते हैं।

इतिहास चक्र का हर प्रकरण इस बात का साक्षी है कि समय-समय पर असन्तुलन को सन्तुलन में बदलने वाली प्रक्रिया उभरी है और स्वल्प साधनों के रहते हुए भी सफल होती रही है। इस बार भी—इन दिनों भी—उसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति होने जा रही है। हो रही है। यदि वैसा न होता तो मात्र सर्वनाशी—महाप्रलय जैसा विनाश ही शेष रह जाता है। इस सम्भावना की आगाही प्रामाणिक सूत्रों से समय-समय पर मिलती भी रही है। इसाई, धर्म में “सेविन्थ टाइम्स” की—इस्लाम

धर्म में—‘चौदहवीं सदी’ की, भविष्य पुराण में ‘खण्ड प्रलय’ की विभीषिका का इन्हीं दिनों दैवी प्रकोप के रूप में उबरने की चर्चा है। सूरदास की भविष्य वाणी प्रसिद्ध है। संसार भर के मूर्धन्य दिव्यदर्शी और खगोल वेत्ता अपने-अपने कारणों को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते हुए विनाशकारी सम्भावनाओं की पूर्व सूचना देते रहे हैं। धरातल के ऋतु चक्र का पर्यवेक्षण करने वाले ध्रुव क्षेत्र की वर्ष पिघलने से समुद्र में बाढ़ आने और उससे थल क्षेत्र का बड़ा भाग पानी में डूब जाने की आशंका व्यक्त करते हैं। दूसरी ओर पृथ्वी की धुरी में अन्तर पड़ने से हिम युग की सम्भावना इन्हीं दिनों साकार होने की बात कही जाती है। परिस्थितियों के आंकलन कर्त्ता बढ़ती हुई जनसंख्या, खनिज-सम्पदा की इतिश्री, भूमि की उर्वरता का समापन, बढ़ते हुए प्रदूषण, विकिरण, कोलाहल के आधार पर विषाक्तता की घुटन जैसे संकटों की भयावह परिणति समीप बताते हैं। अणु युद्ध की नंगी तलवार किस प्रकार कच्चे धागे पर झूल रही है इसे सभी जानते हैं। सामान्य नागरिक से लेकर शासनाध्यक्षों द्वारा अपनाई गई संकीर्ण स्वार्थपरता और आक्रामक उद्दण्डता का अन्त कहाँ जाकर होगा इसका अनुमान लगाना किसी भी दूरदर्शी के लिए कठिन नहीं है। विकल्प सुनिश्चित रूप से यही है, यदि समय रहते रोक-थाम के कारगर उपाय न किये गये।

सन्तुलन बनाने वाले सृजनात्मक सङ्कल्प एवं प्रयोग कब होंगे, किस रूप में होंगे? कौन करेगा? इसकी प्रतीक्षा न करके हममें से प्रत्येक जागृत आत्मा को ‘युग प्रहरी’ के नाते अनिष्ट से जूझना चाहिए और प्रसुप्तों द्वारा सौंपी गई या अनायास ही कंधे पर आई जिम्मेदारी को वहन करना चाहिए। ‘जागृत आत्मा’ से तात्पर्य उन सभी भावनाशीलों से है जो अन्तराल की वरिष्ठता उपलब्ध होते ही—युग धर्म को समझने और उसके निर्वाह का कष्ट साध्य साहस करने से चूकते नहीं। ऐसे लोग कहाँ हैं? कौन हैं? कब क्या करेंगे? यह ढूँढ़ने की अपेक्षा यही अच्छा है कि अखण्ड-ज्योति परिवार के प्रज्ञा परिजन अपने आपको इसी वर्ग में सम्मिलित कर लें और वर्तमान परिस्थितियों में पतन पराभव से जूझने,

अखण्ड-ज्योति

उज्ज्वल भविष्य की हरीतिमा का बीजारोपण करने के उभयपक्षीय प्रयत्नों में जितनी सम्भव हो उतनी भूमिका निभाने के लिए कमर कस लें।

इस सन्दर्भ में अपनी साधनहीनता अयोग्यता, व्यस्तता, अनुभवहीनता आदि अनेक व्यवधान सामने आते हैं और लगता है कि उतना बड़ा बोझ उन लोगों के लिए वहन करना कठिन है जो अपनी निजी समस्याएँ तक सुलझा नहीं पा रहे हैं। तर्क की दृष्टि से असमंजस ठीक है, पर तथ्य पर ध्यान तो वह अशक्तता, असमर्थता काल्पनिक कृपणताजन्य ही प्रतीत होती है। ऐसे ही असमंजस महाभारत में अर्जुन के सामने—समुद्र लांघते समय हनुमान के सामने भी थे। उन दिनों उसका समाधान तत्कालीन मार्ग-दर्शकों ने किया था। कृष्ण ने अर्जुन से कहा—कौरव मर चुके महाभारत जीता जा चुका—तुझे तो मात्र श्रेय भर लेना है। यही बात प्रकारान्तर से जामवन्त ने हनुमान से कही थी और छलांग लगाने के लिए उन्हें साहस से भर दिया था। जिन्हें सृष्टा की सन्तुलन प्रक्रिया का तूफानी प्रवाह के सामयिक अवतरण होने पर विश्वास है, वे जानते हैं कि नियति को परिवर्तन अभीष्ट है। वह होकर रहेगा। प्रश्न उस दूरदर्शिता के होने न होने का है जो समय का लाभ लेने के लिए श्रेयाधिकारी अग्रगामियों को पक्ति में ला खड़ा करती है। यदि वह अपने भाग्य में हो तो फिर समझना चाहिए कि सभी असमंजसों का समाधान निकल आया। जागृत आत्माओं की—युग सृजेताओं की भूमिका हममें से प्रत्येक अपने-अपने ढंग से निभा सकता है। इसमें न व्यस्तता बाधक होगी न अभावग्रस्तता न अयोग्यता न अधमता।

शवरी, केवट, गिलहरी, गिद्ध से अधिक अशक्त हम में से कोई नहीं। ग्वाल-वालों से अधिक अयोग्यता किसी की नहीं। टिटहरी का समुद्र सुखाने का सङ्कल्प अगस्त के सहयोग से पूरा हो सका, भागीरथ गंगा को धरती पर उतारने में शिव का समर्थ सहयोग अर्जित कर सके तो कोई कारण नहीं कि अखण्ड-ज्योति परिवार के प्रज्ञा परिजन प्रस्तुत युग विभीषिका से जूझने में अपने को अक्षम समझें और कुछ भी न कर सकने की कृपणता व्यक्त करें।

दो हाथों से ताली बजेगी - दो पहियों की गाड़ी चलेगी.

युग विभीषिकाएँ जिन स्रोतों से उभरी हैं, उन सभी को दृष्टि में रखना होगा और सभी छिद्रों को बन्द करने की बात को महत्व देना होगा। उपचार का श्री गणेश कहाँ से किया जाय, यह बात दूसरी है, पर अन्ततः छेद तो सभी बन्द करने होंगे अन्यथा एक द्वार भी खुला रखने से चोरों के आवागमन का क्रम यथावत् बना रहेगा।

अबांछनीयता से जूझने और औचित्य की प्राण-प्रतिष्ठा नये सिरे से करने के दुहरे मोर्चे पर लड़ने वालों को यह देखना होगा कि प्रस्तुत विभीषिकाओं को इस स्तर तक पहुँचाने में किन क्षेत्रों की कौन-कौन विकृतियाँ, किस अनुपात में किस प्रकार क्या भूमिका निभाती रही हैं। निदान सही बन पड़े तो उपचार में सरलता होती है, अन्यथा चिकित्सा पर हुआ व्यय और श्रम निरर्थक ही चला जायगा।

यों एक शब्द में बात समाप्त करनी हो तो इस प्रकार भी कह सकते हैं कि व्यक्ति के मन में दुर्बुद्धि, उपजी, कुकर्माँ पर उतारू हुआ—दुष्प्रवृत्तियाँ पनपी और परिस्थितियाँ विषम होती चली गईं। इसलिए परिस्थितियों को सुधारने के लिए समाज-व्यापी दुष्प्रवृत्तियों को उखाड़ना चाहिए। चूँकि समाज व्यक्तियों के समुच्चय का नाम है। इसलिए जन-जन की नीति-निष्ठा बनाने के लिए चिन्तन को परिष्कृत किया जाय। इसके लिए लोक मानस में उत्कृष्ट आदर्शवादिता को प्रतिष्ठित करने वाली विचार-क्रान्ति को प्रखर किया जाय। इसके लिए नव-जागरण का अलख घर-घर जगाया जाय। जन-जन के मन-मन तक नव चेतना का आलोक पहुँचाया जाय। मान्यताओं और परम्पराओं का नये सिरे से दूरदर्शी विवेकशीलता के सहारे नया निर्माण निर्धारण किया जाय। इसी सार संक्षेप को प्रकारान्तर से युग निर्माण योजना द्वारा पिछले लम्बे समय से कहा और लिखा जाता रहा है।

समय आया है कि बरीकी में उतरा जाय और ध्वंस

को निरस्त करने और सृजन को गति देने के लिए नये सिरे से—व्यापक दृष्टिकोण लेकर सम्बन्धित सभी पक्षों पर विचार किया जाय, और देखा जाय कि व्यक्ति के स्वाभाविक प्रगतिक्रम को अप्रगामी बने रहने में व्यवधान कौन उत्पन्न करता है। किस प्रकार अड़चनें खड़ी करता और गतिरोधों की चट्टानें अड़ता है। साथ ही कौन से ऐसे क्षेत्र हैं जो मानवी व्यक्तित्व, वर्चस्व, कौशल, स्वभाव, वैभव एवं बल विवेक को प्रखर बनाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इस सन्दर्भ में शिक्षा साहित्य कला, विज्ञान, उत्पादन, चिकित्सा, खेल, विनोद आदि अनेकों की उपयोगिता और क्षमता का उल्लेख किया जा सकता है और यह सिद्ध किया जा सकता है कि उनमें सुधार परिष्कार बन पड़े तो व्यक्ति और समाज की स्थिति आज की तुलना में कल कहीं अधिक अच्छी हो सकती है।

उपरोक्त सभी आधारों की बरिष्ठता स्वीकार करते हुए भी यदि यह वर्गीकरण छोटा करना हो और जिनके अंचल में अनेक प्रसंग समिट सकते हैं उन्हें खोजा जाय तो फिर शक्तिमान तथ्य दो ही रह जाते हैं। अन्य सन्दर्भ उनकी शाखा प्रशाखा के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। इन दो में से एक है—शासन। दूसरा है—धर्म। दोनों ही क्षेत्रों में विकृतियाँ तो अंगणित घुस पड़ी हैं फिर भी अन्ततः आश्रय उन्हीं का लेना होगा। सुधार समीक्षा के लिए कोसने, खोजने में हर्ज नहीं किन्तु तथ्यतः यही दो शक्तियाँ हैं जो मनुष्य के भाग्य भविष्य को बनाने-बिगाड़ने की भूमिका निभाती हैं और निभाती रहेंगी। इनमें से एक को भी निषिद्ध नहीं ठहराया जा सकता है और किसी भी स्थिति में इनसे विमुख रहने, पीछा छुड़ाने की बात बन पड़नी सम्भव नहीं। इसलिए अच्छा हो कि इन दो की खामियों को सुधारने की बात सोची जाय और उनके परिष्कृत स्वरूप के साथ उत्पन्न होने वाले प्रभाव की परिस्थितियाँ सुधारने में प्रयुक्त किया जाय।

अक्टूबर १९५२

५

अखण्ड-ज्योति

मानवी सत्ता दो भागों में विभक्त है—एक पंच भौतिक प्रकृति पदार्थों से विनिर्मित शरीर। दूसरा आस्था—भावना, विचारणा वाला चेतन। उसकी प्रेरणा का अनुगमन करते हुए काया विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ कठपुतली की तरह सम्पादित करती रहती है। जड़ और चेतन के सम्मिश्रण से यह समूचा संसार बना है। ब्रह्माण्ड की ही छोटी अनुकृति पिण्ड भी है। उसका प्रत्यक्ष रूप पदार्थ से बना है—वह पदार्थों की सहायता से ही जीवित रहता है—पदार्थों में ही रमण करता है। उसका दूसरा परोक्ष रूप चेतन है जिसमें भाव-सम्बेदनाएँ, आस्थाएँ, और विचारणाएँ अपने-अपने ढंग से काम करती हैं। इन्हें भी तृप्ति, तुष्टि, शान्ति चाहिए। वे कर्तव्य पालन, मर्यादा निर्वाह एवं स्नेह-सौजन्य अपनाने से उपलब्ध होती हैं। दूसरे शब्दों में इन्हीं को उत्कृष्ट चिन्तन—आदर्श कर्तृत्व के नाम से जाना जाता है।

शरीर का अस्तित्व और उसका निर्वाह भौतिकी द्वारा होता है। भौतिकी के इस पक्ष का नियमन निर्धारण राज्य सत्ता द्वारा होता है। उत्पादन, वितरण, परिवहन, संचार, स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा, नियमन, व्यवस्था, अनुशासन, न्याय, सुरक्षा जैसे विषय मनुष्यों के निर्वाह क्रम के साथ ही जुड़े हैं। इसलिए शासन को मनुष्य की वैयक्तिक एवं सामूहिक निर्वाह व्यवस्था के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ समझा जा सकता है। अभाव, अशक्ति, अज्ञान जसी कठिनाइयों का समाधान करने की आशा अपेक्षा शासन में रखी जा सकती है।

यों अब पुरातन वर्गीकरण ढीले पड़ गये और शासन के हाथ में चिन्तन को प्रभावित करने वाली प्रचार क्षमता भी चली गई है। फिर भी उसका प्रमुख विषय प्रजाजनों के निर्वाह क्रम में सन्तुलन बिठाये रहना ही है। रेडियो, टेलीविजन, सरकारी प्रेस, प्रकाशन, समाज कल्याण, जन-सम्पर्क, स्कूली पाठ्यक्रम आदि विभागों के माध्यम से यों सरकारें लोक चिन्तन को भी एक सीमा तक प्रभावित करती हैं फिर भी उनका वह मूल विषय है नहीं। जहाँ तक नैतिक प्रश्नों का—व्यक्तित्व का—परिष्कृत करने वाले सन्दर्भों का—परम्पराओं के प्रवाह का सम्बन्ध है

वे किसी नीति-निष्ठ तन्त्र से प्रसारित होने पर ही प्रभावी बनती हैं। अन्यथा चिन्ह पूजा जैसी विडम्बना बन कर रह जाती है। शासन तन्त्र और अर्थ तन्त्र दोनों ही लगा-लपेटों से भरे, कुचक्रों से सने रहते हैं। उनकी कूट-नीति प्रमुखता को सभी जानते हैं इसलिए इस मंच से किये गये प्रचार को सही होने पर भी सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और किसी प्रयोजन विशेष के छिपे होने की गन्ध सूँघते हैं। स्पष्ट है कि सरकारी प्रचार तन्त्र लोगों को उपयोगी जानकारीयों देने तक अपनी प्रभाव क्षमता की इतिश्री कर लेता है उसमें इतना दमखम नहीं है कि व्यक्ति या समाज की पतनोन्मुख दिशा धारा को उलट कर उसे आदर्शवादिता के अन्तरिक्ष में उछाल सके। यह कार्य विशुद्ध रूप से धर्म तन्त्र का है।

धर्म का स्वरूप आज पूजा-पाठ, रीति-रिवाज, कर्म-काण्ड, कथा-प्रवचन, जप तप, तक सीमाबद्ध होकर अनेकानेक सम्प्रदायों में बंट गया है। पूर्वाग्रह ही उसकी पूँजी है। अपनी बात सच दूसरे की झूठ मान बैठने की हठवादिता उन्हें परस्पर एकत्रित तक होने नहीं देती। विचार विनिमय से किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की—मिलजुल कर धर्मोद्देश्य की दिशाधारा अपनाने की बात तो दुराग्रह के रहते बनती ही नहीं। धर्म ध्वजों, निहित स्वार्थों ने भावुक जनता को अपने-अपने जाल-जंजालों में इस प्रकार जकड़ रखा है कि वे शोषकों के शोषण बने रहने वाले निरीह प्राणियों से अधिक कुछ रह ही नहीं जाते। औंधी सीधी रंग-विरंगी कल्पनाओं में उड़ते रहने—निरर्थक विडम्बनाओं में धन और समय गँवाकर स्वर्ग मुक्ति झटक लेने—देवताओं को उँगली के इशारे पर नचाने के मनसूबे ही यह तथाकथित धर्म प्रेमी बाँधते रहते हैं। “राम मिलाई जोड़ी। एक अन्धा एक कोढ़ी।” की उक्ति इन धर्म ध्वजों और स्वर्ग प्रेमी लोगों के साथ इसी प्रकार बैठी रहती है जैसे रिश्वत देने लेने वाले—जुआ खेलने-खिलाने वाले—नशा पीने पिलाने वाले, रंडी मडुए आपास में तालमेल बिठा लेते हैं। उनके व्यवसाय निषिद्ध होने पर भी चिरकाल से अपनी पटरी पर निर्वाध गति से चल रहे हैं। ठीक इसी प्रकार धर्म व्यवसाय भी अपनी मंडी में—अपने ग्राहकों के सहारे सर्वत्र लुढ़कता

दोड़ती देखा जा सकता है।

राजतन्त्र अधिकारियों में घुसी हुई विकृतियों को छीछलेदारी अखबारों—हिस्सेदारी से वंचित राजनीतियों द्वारा किस प्रकार होती रहती है। इसे अखबारों के पाठक और वैसी सभाओं में पहुँचने वाले—सम्पर्क में आने वाले भाये दिन पढ़ते-सुनते रहते हैं। ऐसी दशा में भी कोई यह नहीं सोचता कि शासन को समाप्त कर दिया जाय। यह और भी बुरी बात होगी। भला-बुरा जैसा भी कुछ डाँचा बना हुआ है उसे मान्यता तो मिली हुई है। अनु-शासन का लकीर तो बनी हुई है। सुधार की आशा तो है, पर यदि शासन तन्त्र रहा ही नहीं तो अराजकता फैलेगी जंजाल का कानून चलेगा और बड़ी मछलियाँ सभी छोटी कमजोरों को उदरस्थ करके रहेंगी। इसलिए शासन की खापियों को कोसते हुए भी कोई यह नहीं सोचता कि उस ढाँचे को समाप्त कर दिया जाय। ठीक यही बात धर्म तन्त्र के सम्बन्ध में भी है। उसे सुधारने की बात ही सोची जानी चाहिए। अभी वह स्थिति नहीं आई कि फोड़े वाले हाथ को ही काट कर फेंक दिया जाय। अभी छोटे आपरेशन और मरहम फ्लूटिस से काम चलने की गुंजायश है। शासन और धर्म दोनों ही रुग्ण हो गये हैं। उनका उपचार होना चाहिए और बीमारी को मारने, बीमार को घबाने की गति अपनानी चाहिए। संव्याप्त व्यवस्था को नियन्त्रण में लाने के लिए उज्ज्वल अविष्य का उद्घात उगाने के लिए जिस मार्ग पर चलना है उसके लिए शासन तन्त्र और धर्म तन्त्र के दोनों कदम क्रमबद्ध सुनियोजित रूप से तालमेल बिठाते हुए—उठने चाहिए। विभीषिकाओं से मुक्ति पाने और सुनहरे लक्ष्य तक जा पहुँचने के लिए इन्हीं दोनों कदमों को प्रगति-पथ पर अग्रसर करना होगा। दोनों असम्बद्ध रहेंगे—एकाकी बहम्मन्यता में हूवे रहेंगे तो एक पहिये की गाड़ी किस प्रकार परिवहन का उद्देश्य पूरा करेगी? लंगड़ी दोड़ से कितनी दूरी कितनी गति से पार हो सकेगी? यों काम तो एक हाथ वाले भी चलाते हैं, पर छेनी, हथोड़ेका कारगर प्रयोग करने वाले जानते हैं कि दोनों हाथों के बिना कुछ कारगर परिणाम बन नहीं पड़ता। कोसने झिड़कने की भी उपयोगिता है, पर उनका सन्तुलित प्रयोग होना

चाहिए। सम्बन्ध सूत्र तोड़ बैठने की बात सोची जाय तो पति-पत्नी का विश्व घर-परिवार की सारी व्यवस्था ही गड़बड़ा देगा। दोनों की अपनी भमता उपयोगिता है, उसका चमत्कार तभी देखा जा सकता है जब सघन सहयोग का आधार बना रहे। विजली के दो तार मिलने से ही करेन्ट प्रवाहित होता है। राज तन्त्र और धर्म तन्त्र का स्वरूप और कार्य क्षेत्र भले ही पृथक् रहे। दोनों अपने-अपने उत्तरदायित्व अपने-अपने ढंग से निवाहें पर साथ में यह भी ध्यान रखें कि एक के बिना दूसरा अपूर्ण रहेगा। उस प्रयोजन की पूर्ति न कर सकेगा, जो सन्तुलन बना रहने पर सरलतापूर्वक सम्भव हो सकता है। हमारा चिन्तन, सब कुछ या कुछ नहीं का रहा है। धर्म और प्रीति के बीच का मध्यवर्ती मार्ग तालमेल बनाये रहना भी हो सकता है उस दिशा में गम्भीरतापूर्वक सोचा ही नहीं जाता। संघर्ष और सहयोग का समन्वय हो सकता है। एक आँख दुलार की दूसरी सुधार की बनी रहे तो विकृतियों का उन्मूलन और सत्प्रवृत्तियों का सम्बर्धन साथ-साथ चल सकता है। कुशल माली यही करते हैं तिराई और सिचाई का परस्पर विरोधी सिलसिला साथ-साथ चलाते रहते हैं और इसे विसंगति नहीं पूरक प्रक्रिया मानते हैं। जिन्हें साथ-साथ जीना-मरना और रहना है उन्हें सुधार और सहकार की रीति-नीति अपनानी चाहिए।

प्रस्तुत विकृतियाँ उपरोक्त दोनों ही क्षेत्रों के गड़-बड़ाने से उत्पन्न हुई हैं। गाड़ी को, फिर से पटरी पर लाने के लिए दोनों ही लाइनों में जो टूट-फूट हुई है उसे सुधारने की आवश्यकता है। सोचा जाना चाहिए कि यह विश्व समाज जनसमुदाय जड़ और चेतन के समन्वय से बना है। जहाँ तक मानवी व्यवस्था का सम्बन्ध है वहाँ भौतिक क्षेत्र को समुन्नत, सुसन्तुलित बनाने का काम शासन तन्त्र को सम्भालना चाहिए और चेतना का—भावना, मान्यता, विचारणा, दृष्टिकोण में उत्कृष्ट आदर्शवादिता को—शालीन सुसंस्कारिता को—प्रखर बनाये रहने का उत्तरदायित्व धर्म तन्त्र को सम्भालना चाहिए। इसके बिना उस लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव न हो सकेगा जिसमें दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन और सत्प्रवृत्तियों का सम्बर्धन अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। ●

अक्टूबर १९८२

धर्मतन्त्र - की उपेक्षित किन्तु मूर्धन्य शक्ति सामर्थ्य

जाय तो व्यवस्था उपयोगिता जब सघन मिलने धर्म तन्त्र में दोनों नवाहें पर अपूर्ण केगा, जो हो सकता रहा है। ल बनाये रतापूर्वक समन्वय धार की प्रवृत्तियों माली विरोधी विसंगति जीना-ने रीति-के गड़-टी पर ई है उसे हिए कि समन्वय सम्बन्ध है माने का र चेतना उत्कृष्ट प्रखर स्थालता मन्त्र न सत्प्रवृ- है। ●

समझा यह जाता रहा है कि धर्म कुछेक भावुक भक्तजनों, पुरातन पंथियों, पूर्वग्रहग्रस्तों की रंग-विरंगी कल्पना उड़ानों का समुच्चय है। व्यक्तिवादी संकीर्णता का, परावलम्बन का, पलायनवाद का दर्शन ही प्रकारान्तर से धर्म धारणा का प्रतिपादन और कार्यक्षेत्र है। उसके प्रभाव चक्र में फँसकर व्यक्ति यथार्थता का पर्यवेक्षण करने में असमर्थ हो जाता है। फलतः अम-जंजालों में उलझता उलझता—ऐसी रीति-नीति अपनाता है जो सार्वजनिक हित साधन की दृष्टि से निरर्थक जैसी बनकर बैठ जाती है। आमतौर से विज्ञ समाज की मान्यताएँ धर्म के सम्बन्ध में इसी से मिलती-जुलती पाई जाती हैं और उसे कूड़ा-करकट समझ कर उपेक्षा से मुँह मोड़ लेते हैं। अच्छा होता वे उसे सुधारने का प्रयास करते और ग्रांथनी, आधिपत्य एवं प्रचलन को निरस्त करके धारक का स्थान ग्रहण करते। पर ऐसा हुआ नहीं, होता नहीं—कारण यह है कि धर्म तन्त्र की शक्ति एवं उपयोगिता के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया और उसे कूड़ा-करकट समझ कर मनीषा और प्रतिभा द्वारा मुँह मोड़ लिया गया। यदि उस क्षेत्र की क्षमता, व्यापकता और उपयोगिता को समझा गया तो ऐसी सड़न और दुर्गति न होने देने के लिए जननों ने निश्चय ही कुछ गम्भीर सोचा और ठोस कर्म उठाया होता।

प्राचीन काल में हर क्षेत्र का विस्तार कार्य क्षेत्र एवं योग तन्त्र समित था। धर्म शब्द के अन्तर्गत ही उन सभी सन्धों का समावेश होता था जो मानवी चेतना परिरक्षित प्रगतिशील बनाये रहने के लिए आवश्यक अब वैसी बात नहीं रही। जब विचारणा और वस्था के सभी क्षेत्रों में विस्तार हुआ है तो धर्म के विस्तार को भी पृथक-पृथक धाराओं में बहते हुए अन्त में एक सरोवर के रूप में जा मिलते हुए देखा

जा सकता है। चेतना को—चिन्तन को—प्रभावित करने वाले मन्त्रों में साहित्य, संगीत, कला की क्षमता सर्व-विदित है। दर्शन से व्यक्ति और समाज के चिन्तन को दिशा मिलती है। भाव-सम्वेदनाओं और आस्था मान्यताओं को किसी बिन्दु पर एकत्रित करना उसी का काम है। उत्कृष्टतावादी दर्शन को—अध्यात्म कहते हैं। धर्म तत्व का बौद्धिक पक्ष यही है।

दूसरा पक्ष कर्म है। इसमें प्रचलन परम्परा का समावेश है। कर्मकाण्डों से लेकर रीति-रिवाजों तक की श्रद्धा इसी में केन्द्रीभूत है। इसी व्यवहार पक्ष को इन दिनों धर्म माना जाता है। वह विभिन्न समयों पर विभिन्न परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप, जहाँ-जहाँ जिस-जिस रूप में पतपा, उस विधि-व्यवस्था को सम्प्रदायों का रूप मिलता चला गया है। कहना न होगा कि मनुष्य की क्षुद्रता जहाँ भी अवसर पाती है, वहीं घुस-पैठ किये बिना नहीं चूकती। धर्मधारणा का सम्प्रदायों का दुराग्रही रूप बना और अध्यात्म स्वरूप चेतना के सुनियोजित आस्था विज्ञान के आधार पर लोक मानस को उत्कृष्टता का पक्षधर बनाने वाला न रहकर देवाश्रित बनाने जैसी विडम्बना में उलझ गया। पर्यवेक्षण से प्रतीत होता है कि धर्म की मूल सत्ता विशुद्ध वैज्ञानिक है उसमें लोक चिन्तन की शालीनता को सहकारिता के प्रति निष्ठावान बनाना है। पूजा, उपासना, शास्त्र, कथा-सत्संग, दान-पुण्य, तीर्थ, भजन आदि क्रिया-कृत्यों के पीछे मूलभूत उद्देश्य एक ही है कि मानवी चिन्तन, पतनोत्मुख प्रवृत्तियों से विरत होकर—पवित्रता और प्रखरता अपनाये, संयमी और उदार चेत्ता बने। चरित्र निष्ठा और समाज निष्ठा के सभी महत्वपूर्ण तथ्य उसमें कूट-कूट कर भरे हैं। चियड़ों में लिपटा हुआ हीरा भी ग्राह्य है। प्रस्तुत विकृतियों के ढकोसले को उधाड़कर यदि अन्तराल तक पहुँचने और वस्तुस्थिति का पता

व्योति

संज्ञाने का प्रयत्न किया जाय तो पता चलेगा कि धर्म मानवी उत्कृष्टता का जीवन प्राण है।

मनुष्य की काय संरचना, पशु वर्ग के अन्य जीवधारियों से भिन्न नहीं है। विकासवादियों के अनुसार वह वानर वंश का है। यदि वंसा है तो मानना पड़ेगा कि पूर्वजों ने एक पेड़ से दूसरे पर उछल जाने की क्षमता भी क्रमशः गैवा दी और लम्बी वाली सुशोभित पूँछ से भी हाथ धो बैठा। इस प्रकार पूर्वजों की तुलना में उत्तराधिकारी घाटे की दिशा में ही चले हैं, पर वस्तुतः बैसा है नहीं। निश्चित रूप से हम आगे बढ़े हैं। इस अभिवृद्धि में उसका बौद्धिक पक्ष ही प्रमुख भूमिका निभाता रहा है। व्यक्ति आचार संहिता, समाज संगठन, शिक्षा, परिवार, विज्ञान, अर्थ तन्त्र, शासन, चिकित्सा आदि अगणित उपयोगी अवलम्बनों के सहारे ही मनुष्य समर्थ, सुसम्पन्न एवं सुसंस्कृत बन सका है। प्रकृति पर उसके आधार की चर्चा गर्व पूर्वक की जाती है।

वैज्ञानिक आविष्कारों ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। यह सारा चमत्कार मानवी चेतना के प्रगतिशील दिशाधारा में बढ़ने का मत्परिणाम है। तत्पर्य एक ही है मानवी सत्ता में प्रमुखता उसके चेतना पक्ष की है। शरीर तो ओजार उपकरण, वाहन मात्र माना जाता है। शरीर की सुडीलता, समर्थता, सक्रियता का भी आधार-भूत कारण चिन्तन-चेतना ही है। यदि वह गड़बड़ाने लगे तो भली चंगी काया को रुग्ण, अदक्ष, कुरूप बनने और अकाल मृत्यु का ग्राम बनने में देर न लगे। हर दृष्टि से चेतना की ही गरिमा वरिष्ठता—मिद्ध होती है। इसी दशा में जो विज्ञान-दर्शन निर्धारण—प्रवाह उसे सुनियोजित दिशाधारा प्रदान करता है, उस धर्म-तत्व की महिमा उपयोगिता इतनी ऊँची ठहरती है कि उसे एक शब्द में मनुष्य का—भाग्य विधाना कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है। यदि उसका अस्तित्व उभर कर आगे न आया होता तो शारीरिक संगठन एवं मानसिक संरचना की दृष्टि से अनेक प्राणियों की तुलना में ओछा पड़ने वाला आदमी इतना ऊँचा न उठ सका होता जितना कि इन दिनों जा पहुँचा है।

साधना सामग्री का अपना महत्व है, पर वह है

शरीर के लिए, सुविधाएँ उसी को चाहिए। पंच तत्वों का बना शरीर पदार्थों पर ही निर्वाह करता है। पदार्थों में ही मोद मनाता है। उसकी सत्ता एवं प्रकृति अपने सजातीय को चाहती समेटती है तो यह स्वाभाविक है। वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, अर्थ तन्त्र के आधार पर मिलने वाली सुविधाएँ और शासन द्वारा की जाने वाली व्यवस्थाएँ मिल-जुलकर काय-कलेवर का—सामुदायिक विकास का आधार खड़ा करती है। यह आवश्यक तो है, पर पर्याप्त नहीं। अन्तःचेतना का स्तर गया-गुजरा हो। उसमें आदर्शों का, मर्यादाओं का समावेश न हो तो पशु जगत की तरह हर समर्थता—अपने से छोटों के लिए संकट ही उत्पन्न करती चली जायगी। पशुओं में प्रकृति ने मर्यादा अनुशासन की चेतना रखी है इसलिए वे विनाश भी सीमित ही कर पाते हैं। यों समर्थ स्वच्छन्द मनुष्य की उच्छृंखलता तो सर्वनाश ही करके रख सकती है। उद्दण्ड मनुष्य अपना और दूसरों का अहित ही अहित करेगा। पशुता पेशाचिकता की दुष्प्रवृत्तियों से विरत करने और उसे पवित्रता, प्रखरता प्रदान करते हुए सर्वजनीन विकास में सहभागी बनने की प्रेरणा धर्मतत्व के अतिरिक्त और कहीं से नहीं मिल सकती।

साधनों के उत्पादन में विज्ञान, अर्थ तन्त्र, शासन को समन्वित भूमिका ने मनुष्य को साधन सम्पन्न बनाया है। उपभोग में विग्रह खड़ा न हो—समृद्धि का सही उपयोग हो। यह उत्तरदायित्व शासन वहन करना है। इन पर भी मूल प्रश्न जहाँ का तहाँ बना रहता है कि यदि चेतना का स्तर गया-गुजरा रहा तो फिर जो कुछ हाथ में होगा, उसे दुर्व्यसनों में, दुष्प्रयोजनों में ही नियोजित किया जा सकेगा। फलतः परिणाम ऐसे भयंकर होंगे, जो दरिद्रता की तुलना में कहीं अधिक कष्टकारक सिद्ध होंगे।

इन पक्तियों में यह कहा जा रहा है कि मानवी चिन्तन के साथ उत्कृष्टता का जुड़ा रहना ही साधनों को सार्थक बना सकता है। चिन्तन ऊँचा हो तो ऋषियों की तरह स्वल्प साधनों में भी वादशाहों से बढ़कर सुखी सम्पन्न एवं शानदार जीवन जिया जा सकता है। इसके विपरीत यदि आन्तरिक निकृष्टता का बोलवाला तो

समझना चाहिए वैभव का वैसा ही दुष्परिणाम होगा जैसा कि रावण, कंस, हिरण्यकश्यपु, जरासिन्धु, वृत्तासुर आदि को अपने समुदाय समेत भुगतना पड़ा था। महत्ता सम्पदा को अपने समर्थता को तो मिलनी चाहिए पर यह नहीं भुला दिया जाना चाहिए कि दूरदर्शी, विवेकशीलता मेधा प्रज्ञा के अनुभव से वह सारी विभूतियाँ बन्दर के हाथ पड़ने वाली तलवार का काम करेंगी और उस पुरुषार्थ सोभाग्य का परिणाम हितकर न बनकर विनाशकारी ही सिद्ध होगा। तथ्य को समझा जा सके तो चिन्तन की उत्कृष्टता ही सर्वोपरि ठहरती है उसे विकसित करने के एक मात्र अवलम्बन धर्म तन्त्र को इस विश्व व्यवस्था में सर्वोपरि स्थान सम्मान मिलता है।

फिर उसकी उपेक्षा क्यों हुई? उत्तर एक ही है कि उसका स्वरूप, प्रभाव एवं विनियोग ठीक प्रकार समझा नहीं गया। यदि वैसा होता तो शासन सत्ता को, अर्थ-व्यवस्था को, वैज्ञानिक उपलब्धियों को महत्व देने वाले यह भी सोचते हैं कि यदि चेतना को परिष्कृत कर सकने में एक मात्र समर्थ सत्ता धर्म की पिछड़ी स्थिति में छोड़ दिया गया तो फिर अन्यान्य सभी उपलब्धियाँ निरर्थक बनकर ही नहीं रह जायगी वरन् उनका दुरुपयोग होने पर वे विघातक भी सिद्ध होंगी।

बुद्धि तन्त्र को बहुत महत्व दिया जाता है। शिक्षा के स्कूली, अभ्यासी, परामर्श प्रधान अनुभव सम्बन्धित कितने अवलम्बन अपनाये जाते हैं और समझा जाता है कि जो जितना बुद्धिमान होगा वह उतना ही उपयोगी सिद्ध होगा, उतना ही समर्थ सम्पन्न होगा। यह मान्यता भी आंशिक रूप से ही सत्य है। बुद्धि के सहारे वैभव कमाया जाता है, उसमें सन्देह नहीं, पर उस वैभव का श्रेष्ठतम सदुपयोग करके उसका वास्तविक परिपूर्ण एवं श्रेयस्कर लाभ कैसे उठाया जा सकता है इसका निर्धारण उस प्रज्ञा के बिना सम्भव नहीं जो धर्मधारणा के सहारे ही उत्पन्न एवं परिपक्व की जाती है।

यह धर्म तन्त्र की दार्शनिक गरिमा हुई। उसका एक दूसरा पक्ष भी है—धर्म तन्त्र का प्रस्तुत स्वरूप सराजाम का जनता पर प्रभाव और साधनों का बाहुल्य। यह

दोनों ही शक्ति स्रोत ऐसे हैं जिनके सहारे व्यक्ति और समाज की परिस्थितियों को जमीन से आसमान तक उछाला जा सकता है। नरक से विरत करके स्वर्ग के साथ जोड़ा जा सकता है।

आज धर्म के प्रति उपेक्षा अवमानना का दौर है। फिर भी उसके जीर्ण-जीर्ण कलेवर को, यथावत् बनाये रहने में कितनी धन शक्ति और जनशक्ति नियोजित होती है इसे देखकर आश्चर्य होता है। तीर्थ स्थानों के दर्शन, पर्व स्नान, चित्र-विचित्र कर्मकाण्ड, पण्डा पुरोहितों को मिलने वाला दान, साठ लाख साधु बाबाओं का मेहगा निर्वाह, मन्दिर मठों की प्रचुर आजीविका धर्म संस्थानों के भव्य-भवन, उत्सव समारोह, कुम्भ पर्व क्षेत्रीय धर्म स्थानों के मेले, आदि में निरन्तर लगने वाली जन शक्ति और धन शक्ति का यदि लेखा-जोखा तैयार किया जाय तो प्रतीत होगा कि देश में शिक्षा और चिकित्सा पर हाने वाले खर्च की तुलना में वह कहीं अधिक है। इसी प्रकार शादियों पर होने वाले, मृतक भोज में लगने वाले धन का विवरण बने तो पता चले की औसत भारतीय की एक तिहाई आमदनी इन्हीं प्रचलन परम्पराओं में खप जाती है जिन्हें प्रकारान्तर से धर्म प्रथा का अंग ही कहा जा सकता है। यह तो प्रत्यक्ष एवं सामूहिक रूप से धर्म प्रयोजनों के लिए नियोजित होने वाली श्रम, सम्पदा की चर्चा हुई। व्यक्तिगत रूप से कितने लोग कितना जप, तप, पूजा-पाठ, व्रतदान आदि इस निमित्त करते रहते हैं। उस सबका भौतिक आंकलन किया जा सके तो प्रतीत होगा कि राजतन्त्र में नियोजित शक्ति तो दबाव देकर वसूल की जाती है किन्तु धर्म तन्त्र के लिए वह स्वेच्छा श्रद्धा के अन्धार पर समर्पित किया जाता रहता है। विचारणीय है कि जब कलेवर के लिए इतना हो सकता है तो जीवन्त धर्म के लिए कितना कुछ जन सहयोग अर्जित हो सकता है और उसके सुनियोजन से उज्ज्वल भविष्य की संरचना से कितना बड़ा योगदान सम्भव हो सकता है।

मुहीम-युगमनीषाकोसम्भालनीहोगी

कभी व्यक्ति की निर्वाह परिधि छोटी थी, समाज की समस्याएँ भी नगण्य थी। चिन्तन और दर्शन का विस्तार एक सीमित क्षेत्र में ही हुआ था। संसार के सुदूर क्षेत्र संचार एवं परिवहन मध्यमों के अनुरूप इतने निकट नहीं आये थे। भौगोलिक कठिनाइयों ने हर क्षेत्र को अपनी परिधि में सीमाबद्ध कर रखा था। तब धर्म का स्वरूप भी छोटा ही था। शास्त्रों का वाचन पाठन-साधना उपचार-जप-तप पूजा, अर्चा, कर्मकाण्ड, तीर्थ, व्रत आदि का जितना विस्तार था उतने में ही काम चल जाता था। तत्त्व दर्शन प्रायः ईश्वर, जीव, प्रकृति के निरूपण तक ही अपनी दौड़ लगाता था। उतने से ही सली प्रकार काम चल जाता था। निर्धारित आचार संहिता और परम्परा जिनसे निभती थी वे अपने को धर्मात्मा मान लेते थे। पर अब वैसा नहीं रहा। अन्त-रिक्ष विज्ञानियों के अनुसार इस ब्रह्माण्ड का क्रमशः फुलाव विस्तार हो रहा है। ज्ञान-विज्ञान के सम्बन्ध में भी यही बात है। किसी समय आग जलाने, अन्न उगाने, पशु-पालने, वस्त्र बुनने जैसे आविष्कार भी मनुष्य का सिर उतना ही गर्वोन्नत करते थे जितना कि आज अणुशक्ति लँसर, होलोग्राफी एवं रॉकेट कम्प्यूटर निर्माता, अन्त-रिक्षीय उड़ान, पनडुब्बी, रेडियो, टेलीविजनों के निर्माता करते हैं। इस दृष्टि से विश्व के विकास विस्तार की उपलब्धि असंदिग्ध है। असमंजस तो मात्र एक ही स्थान पर अड़ गया है कि बुद्धिमत्ता का पग-पग पर प्रमाण देने वाले मनुष्य का हृदय क्यों सिकुड़ता जा रहा है। उसकी भावना, आकांक्षा, आस्था, विचारणा क्यों पतनोन्मुखी हो रही है। आत्मीयता का सुविस्तृत क्षेत्र क्यों संकीर्ण स्वार्थपरता में बँधता जकड़ता जा रहा है। गतिविधियों में निरुद्धता का समावेश कैसे सहन हो सका और क्यों स्वभाव का अंग बनता चला गया?

धर्म की परिधि में नागरिक कर्तव्य, समाज संगठन, विचार विज्ञान, भाव-सम्बेदना, नीति शास्त्र, शिक्षा,

कला, दर्शन, लोकाचार जैसे उन सभी प्रसंगों को एक साथ समेटकर चलना होगा जो चेतना को प्रभावित करते हैं। चिन्तन और कर्तृत्व की दिशाधारा निर्धारित करते और पृष्ठभूमि बनाते हैं। जब विज्ञान ने मत्स्या-वतार की तरह अपनी परिधि को इतना विशाल व्यापक बना लिया है तो धर्म को सभी सम्प्रदायिक प्रथा-पूजा की सीमाओं में जकड़ कर रखे रहना सम्भव नहीं है। युग धर्म, विश्व धर्म, चेतना धर्म आदि शब्दों में ही धर्म की वर्तमान दायरे की व्याख्या विवेचना करना और उसके भावी स्वरूप निर्धारण के सम्बन्ध में विचार कर सकना सम्भव हो सकता है। इसमें सम्प्रदायों को अपने-अपने ढंग से सोचने और अपनी रूचि को कार्यान्वित करने का नागरिक अधिकार है। उसे मनुष्य के मौलिक अधिकारी के कारण अपने ढंग से अपनी गतिविधियाँ चलाते रहने की छूट है, पर उस क्षेत्र के इस दावे को मान्यता नहीं मिल सकती कि वे जो सोचते हैं वही सत्य, तथ्य या उचित है। ऐसा करने से ही फिर अन्य सभी प्रतिपादन मिथ्या हो जायेंगे और किसी प्रसंग पर नये सिरे से चर्चा, समीक्षा करने की गुंजायश ही नहीं रहेगी। ऐसा गतिरोध उत्पन्न करने का किसी धर्म सम्प्रदाय को इस व्यापक दृष्टिकोण वाले युग में दुस्ताइस नहीं करना चाहिए। वस्तुतः धर्म को ऐसी ही कट्टरता ने बदनाम किया है और इसी कारण अब उसे सम्प्रदाय कहकर काम चलाना पड़ रहा है। अन्यथा पूर्वकाल की तरह अभी भी अध्यात्म दर्शन और आचार धर्म का सम्मिलित स्वरूप 'मानव धर्म', 'विश्व धर्म' के नाम से प्रतिष्ठित होता।

प्रस्तुत समस्याएँ दीखतीं तो पदार्थ परक हैं पर वस्तुतः वे हैं चिन्तन से सम्बन्धित। यदि ऐसा न होता तो वस्तुओं के वर्तमान बाहुल्य एवं स्तर में देखते हुए उसे अभूत पूर्व माना जाता और इतने से ही सर्वत्र सुख-शान्ति का, प्रगति एवं प्रसन्नता का आतावरण बन गया होता।

अक्टूबर १९८२

१४

अखण्ड-ज्योति

विकृतियाँ चिन्तन क्षेत्र में घुसी हैं। दृष्टिकोण गड़बड़ाया है। आस्था क्षेत्र में दुर्भिक्ष पड़ा है। खान में निरुपेक्षा को प्रश्रय मिला है। फलतः संकीर्ण स्वार्थपरता-वासना तृष्णा की-तृती बोलने लगी है। उपलब्धियों का दुरुपयोग हुआ है और अमृत की दुर्दृष्टि ने विष बनाकर रख दिया है। वस्तुओं का बाहुल्य और भी बढ़ सकता है। व्यवस्था और भी कड़ी हो सकती है। शासन के लिए इतना ही सम्भव है, पर बात तो इससे कहीं अधिक आगे की-कहीं अधिक गहरी है। सुधार परिष्कार तो चिन्तन चरित्र का होना है। इसके लिए उत्कृष्टता का पक्षधर जीवन दर्शन पुनर्जीवित करना होगा। उसे जन-जन के व्यवहार में उतारने-प्रचलन में सुनिश्चित स्थान बनाने वाले प्रचण्ड प्रयत्न करने होंगे। यह कार्य विशुद्ध रूप से 'धर्म' का है। अध्यात्म दर्शन की आदर्श निर्वाह की दिशाधारा फिर से इस प्रकार ढालनी होगी जिसमें मानवी गरिमा अक्षुण्ण रह सके और विश्व शान्ति का सुनिश्चित वातावरण बना रहे। यही अपने युग का सबसे बड़ा काम है। इसे 'युग मनीषा' के अतिरिक्त और कोई सम्पन्न नहीं कर सकता। वह न शासन के हाथ की बात है। और न समृद्धि के माध्यम से इसे जुटाया जा सकता है। इन दोनों का समर्थन, प्रोत्साहन, सहयोग, एवं पृष्ठ-पोषण भर मिलता चले तो बहुत है। उत्तरदायित्व तो मनीषा का है। अपना भार उसे ही वहन करना होगा। यहाँ युग मनीषा से तात्पर्य किसी व्यक्ति विशेष या संगठन-समुदाय विशेष से नहीं, वरन् उस समुदाय है जो मात्र निर्वाह को ही सब कुछ नहीं मानता। अपने तक ही चिन्तन और श्रम को नियोजित नहीं रखे हुए। वरन् अपने का समाज को एक अविच्छिन्न घटक मानकर उसके उत्थान पतन की भी चिन्ता करता है। ख बैठने, सुख बैठने में सन्तोष अनुभव करता है। युग मनीषा, जिसे नव सृजन का भार उठाना है, ऐसे ही अनाशील आदर्शवादी लोगों के समुदाय को कहा गया। एक शब्द में इन्हें 'जागृत आत्मा' नाम दिया जाता है। दूसरे तो 'पौत्रामोह मयी मदिरा उन्मत्त वा जगत्' की श्रेणी में आते हैं। जिन्हें अपनी ही पाषाणी से फुरसत नहीं, वे तथाकथित बुद्धिजीवी कह-

लाते हुए भी, इस समुदाय में सम्मिलित नहीं हो सकते। बुद्धिमानों की कमी नहीं, वे ज़िगर भी रस लेते हैं। बातों के बतंगड़ खड़े कर देते हैं। देश, धर्म में उनका मस्तिष्क रस लेने लगे तो समझना चाहिए कि उस सन्दर्भ में धुआँधार बोलते लिखते देखे जा सकते हैं, पर होता यह सब विनोद-व्यसन की तरह ही है। जिसमें करना कुछ न पड़े, वाक् विलास से ही उबाल की इतिश्री हो जाय समझना चाहिए कि खोजलेपन के अतिरिक्त यहाँ कुछ है नहीं। पस्तिष्कीय श्रम करने वाले वर्ग में यह प्रतिभा भी सहज ही हथेली पर सरसों की तरह उग आती है कि वे दिल्लीवाजी की तरह देश धर्म के सम्बन्ध में जी लच्छेदार बकबास करने में अपनी प्रवीणता प्रदर्शित कर सकें। बहु पठित और बहुश्रुत, बातूनी आदमी तो और भी जल्दी इस प्रकार का धुआँधार मचाते रह सकते हैं। यह इसलिए लिखा जा रहा है कि बुद्धि व्यवसायी वर्ग और युग मनीषियों का पृथक्करण सम्भव हो सके। जिन्हें समाज और संस्कृति की समस्याओं में गहरी दिलचस्पी हो और उसके लिए जो उपयुक्त हो वह निजी जीवन में उतारने और दूसरों पर अपनाने के लिए दबाव डालने का उभार अन्तराल में उमंगें तो यह समझा जा सकता है कि युग मनीषा का उदय हुआ। ऐसी ही जागृत आत्माओं को प्राचीन काल में धर्मात्मा कहा जाता था। आज तो कोई भी ऐरा-गैरा नत्थू खैरा-उस पद का दावेदार दीखता है।

शासन और धर्म की तुलना की गई है। उसमें शासन को कनिष्ठ और धर्म को बरिष्ठ माना जाता है क्योंकि धर्म का कार्यक्षेत्र चेतना को सुसंस्कृत बनाना है। जब कि शासन की पहुँच पकड़ सम्पन्नता के क्षेत्र तक ही सीमित रह जाती है। चेतना बरिष्ठ है-सम्पदा कनिष्ठ। व्यक्तित्व का मूल्योक्त अद्वापूर्वक होता है जबकि पुरुषार्थ को सराहा भर जाता है। सर्वतोमुखी प्रगति में शासन से भी बड़ी-चढ़ी भूमिका धर्म को निभानी पड़ती है। अस्तु स्वभावतः शासकों की तुलना में मनीषियों की गरिमा बरिष्ठ मानी गई है। वशिष्ठ-दशरथ, याज्ञवल्क्य-जनक विश्वामित्र-हरिश्चन्द्र, चाणक्य-चन्द्रगुप्त, शंकराचार्य-बान्धाता, समर्थ-शिवा, गांधी-नेहरू जैसे युगों में यह

चण्ड-ज्योति

स्पष्ट है कि धर्म ने नेतृत्व किया है और शासन ने निर्वाह। यह ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणित संस्मरण हैं। दर्शन के क्षेत्र में अध्यात्म और धर्म के परिवार में यह वरिष्ठता और भी स्पष्ट है। जब कभी चेतना को—चिन्तन चरित्र को—प्रखर परिष्कृत करने की आवश्यकता पड़ी है, तब मनीषा को ही आगे आना पड़ा है। अपने समय के अवरोधों में भी इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। शासन अपना काम करे। पर यह उचित नहीं कि मनीषा का उत्तरदायित्व भी उसी पर लद पड़े। इस दिशा में शासन रेडियो, टेलीविजन प्रकाश आदि के द्वारा जो कर लेता है, उतने को भी न कुछ से कुछ कह कर सन्तोष किया जा सकता है। साहित्य और कला की विकृतियों पर अंकुश लगाने का कुछ कारगर कदम भर उठने लगे तो फिल्म एवं प्रकाशन उद्योग की विकृतियाँ फैलने से रोकने का आग्रह भी प्रस्तुत किया जा सकता है। युग दर्शन को शासन का सहयोग न सही समर्थन भर मिलता रहे तो काम चलेगा। अवरोध उत्पन्न न करना भी प्रकारान्तर से समर्थन ही माना जायगा।

लोक शक्ति के उदय की चर्चा समय-समय पर होती रहती है। उसके गुणगान किये जाते हैं और समर्थ बनाने पर जोर दिया जाता रहता है। देखना होगा कि यह प्रत्यक्ष शासन शक्ति के समतुल्य परोक्ष लोक शक्ति आखिर है क्या? उसे जागृत आत्माओं का समुच्चय कह सकते हैं, भले ही वे मुट्ठी भर ही क्यों न हों। लोक-शक्ति का अर्थ जन-साधारण नहीं है। सर्वविदित है कि बहुमत में तो अवांछनीयता ही रहती है। अधिकांश लोगों को भ्रष्ट चिन्तन और दृष्ट आचरण में संलग्न पाया जाता है। यदि समूचे जन समुदाय को समेटने की बात हो तो फिर लोगों का जैसा स्तर है वैसा ही संगठन भी बनेगा। उसके माध्यम से बन पड़ने वाले कार्यों से भी उत्कृष्टता की पक्षधर विधि-व्यवस्था बन पड़ने की आशा नहीं की जा सकती। सृजनात्मक उच्चस्तरीय कार्य तो सदा से बरिष्ठ लोग ही हाथ में लेते और सम्पन्न बनाते रहे हैं। उसी की पुनरावृत्ति इसी विषम बेला में भी होनी है। जागृत आत्माओं को ही नव सृजन की गुह्यी सम्भा-

लनी है, उन्हें ही अग्रिम पंक्ति में खड़ा होना है। आवश्यक नहीं कि वे मतदान से चुने गये ही हों। गणमात्र प्रतिभाएँ जिस मार्ग पर चलती हैं, उस पर अनुगमन करने वालों की भी कमी नहीं रहती। इन्जन चलता है, डिब्बे लुढ़कते हैं। अन्धड़ आता है, तिनके और धूलिकण बिना बुलाये ही साथ उड़ते हैं। प्रतिभावान दुष्ट दुराचारियों ने, समय-समय पर अपने ढंग की परम्पराएँ चलाने में सफलता पाई है तो कोई कारण नहीं कि युग मनीषियों का समुच्चय विचारशील जन-समुदाय को साथ लेकर न चल सके। वस्तुतः भावनाशील आदर्शवादी और परमार्थ परायण व्यक्ति ही वास्तविक लोकशक्ति होते हैं। सृजनात्मक प्रयोजनों में उर्सा की भूमिका प्रमुख होती है। संख्या बल की तुलना में सदा मनोबल का—आत्मबल का पलड़ा भारी रहा है। अल्पमत में रहने पर भी सूर्यचन्द्र असंख्य तारागणों से भरे-पूरे आकाश में अपने गरिमा अक्षुण्ण बनाये रहते हैं। जागृत आत्माओं में पनपने वाली युग मनीषा के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। प्रभाव उनका नहीं पड़ता जो बकबास तो बहुत करते हैं, पर स्वयं उस ढाँचे में ढलते नहीं जिनने चिन्तन और चरित्र का समन्वय अपने जीवन में किया है उनकी सेवा साधना सदा फलती फूलती रहती है। चरित्रवान उपदेष्टा ही जन-मानस पर शासन करने उसे सुधारते और मोड़ते मरोड़ते देखे गये हैं। सेवा करने जिनने सस्ती वाहवही लूटने और दूसरों की आँखों चकाचौंध करने को ही अपनाया है, निराशा उन्हीं हाथ लगती है। जो दूसरों से कहे जाने वाले प्रसंगों में निजी जीवनचर्या की प्रयोगशाला में परख कर खरीब करते हैं, उनके निर्धारण कभी असफल नहीं हुए। प्रज्ञा और प्रखरता—शौलीनता और उदारता के कदम सदा से लक्ष्य तक पहुँच कर ही रुके हैं। युग मनीषा नव सृजन का—समय के परिवर्तन का संकल्प चरित्र करने में कटिबद्ध होती है तो उज्ज्वल भविष्य की सृजना में कोई सन्देह रह नहीं जायगा।

महत्व लोक मानस के परिष्कार का भी समझें !

रोजी-रोटी का प्रश्न कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो पर हर किसी को वही सर्वोपरि मानने और उसी एक प्रयोजन को पकड़कर बैठने से काम नहीं चलेगा। यदि ऐसा ही सीमा बन्धन कस लिया जाय तो फिर चिकित्सा, वैज्ञानिक अनुसन्धान, सैन्य सज्जा, शिक्षा, कला, संगीत, संस्कृति जैसे उन सभी प्रयोगों को तिलाञ्जलि देनी होगी जो प्रत्यक्षतः रोजी-रोटी उपार्जन में सहायता करते प्रतीत नहीं होते। परोक्ष में रोजी-रोटी की समस्या हल करने में तो तत्त्वदर्शन की भी महती भूमिका देखी जा सकती है। श्रमशील, मितव्ययी, सद्गुणी, सुसंस्कृत जीवनक्रम अपनाने से भी रोजी-रोटी के प्रश्न का उतना ही सम्बन्ध है, जितना कि कृषि उद्योगों के माध्यम से दैनिक आवश्यकता की सामग्री उगाने का। दुर्गुणी व्यक्ति तो रोजी-रोटी का बाहुल्य होने पर भी उससे अपने लिए और दूसरों के लिए मात्र संकट ही उत्पन्न करते रहते हैं।

रोजी-रोटी के प्रश्न की उपेक्षा, अवहेलना, अवमानना न करते हुए भी यह समझना होगा कि चिन्तन में उत्कृष्टता का समावेश पेट भरने से कम महत्व का नहीं है। शरीर को जीवित रहना चाहिए, यह ठीक है पर यह भी गलत नहीं है कि आत्मा को तो न मरने सड़ने देना चाहिए और न व्यक्तित्व का पतित पिछड़ा, गया-गुजरा रहना ही सहन होना चाहिए। प्रयत्न होना चाहिए कि दोनों को ही स्वस्थ समर्थ रहने का अवसर मिले।

प्रमुखता व्यक्तित्व को परिष्कृत करने—अन्तराल को सद्गुणों से सम्पन्न करने—जीवनचर्या की आदर्श-वादिता अपनाते हुए गौरवान्वित करने की बात को मिलनी चाहिए। इसलिए यदि कुछ युग मनीषी उसी को अपना कार्यक्षेत्र चुनें और रोजी-रोटी का प्रश्न राजनीतिज्ञों, धनाध्यक्षों, वैज्ञानिक तथा अगणित क्रिया कुशल लोगों के लिए छोड़ दें तो हर्ज नहीं। सैनिक जिस महत्व-

पूर्ण सुरक्षा कृत्य में संलग्न हैं उसे देखते हुए उन पर कोई यह लाँछन नहीं लगा सकता कि वे धन सम्पदा कमाने और कृषि उद्योग बढ़ाने में क्यों नहीं लगते? सैनिक उत्तर भले ही न दें पर दूरदर्शिता कह सकती है कि यदि सैनिकों के अभाव में सुरक्षा पंक्ति कमजोर होगी तो शत्रुओं के आक्रमण अन्तःविग्रह जैसे संकट खड़े होने और जो कमाया जा चुका है वह भी हाथ से चला जायगा। इसलिए उत्पादन बढ़ाने की तरह ही सुरक्षा पंक्ति को मजबूत करने के लिए सेना में भर्ती होना और युद्ध कौशल में प्रवीण होना भी आवश्यक है। ठीक यही बात युग मनीषा पर लागू होती है। उसके लिए लोक मानस के परिष्कार को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाने और एकात्म भाव से उसमें तन्मय तत्पर होने के लिए अनुरोध करने में ही दूरदर्शिता है।

किया क्या जाय? इसका उत्तर एक ही है कि मानवी अन्तराल में आदर्शवादी आस्थाओं का बीजारोपण—अभिवर्धन करने की बात, को सामयिक समस्याओं का समाधान मानकर चला जाय। सड़ी कीचड़ से ही मक्खी, मच्छर, कृमि कीटक, दुर्गन्ध भरे विषाणु उत्पन्न होते हैं। उनमें से एक-एक को बीन-बीनकर मारते रहने का, थकाने और निराश करने वाले काम हाथ में लेने की अपेक्षा यही अधिक अच्छा है कि हिम्मत करके एक बार सड़ी नाली को पूरी तरह बुहार दिया जाय। आहार-विहार का असंयम न छूटा तो रुग्णता और दुर्बलता भी पल्ले बँधी ही रहेगी। भले ही टॉनिकों और इन्जेक्शनों पर पर्वत चितनी धनराशि खर्च की जाती रहे। अन्यान्य प्राणी प्रकृति परायण मर्यादित जीवन जीते और स्वस्थ प्रसन्न जीवन जीते हैं, यही बात यदि मनुष्य के गले उतारी जा सके तो वह गरीबी में भी वनवासी, आदिवासियों की तरह परिपुष्ट दीर्घ जीवन सहज ही उपलब्ध कर सकता है। अन्यान्य समस्याओं के सम्बन्ध में यही बात है। मानसिक असन्तुलन, उद्वेग, तनाव परिस्थितियों

के कारण नहीं मनःस्थिति की विपन्नता के कारण उत्पन्न होता है। दरिद्रता स्वनिर्मित है। आलसी, प्रमादी, अव्ययी ही प्रायः आर्थिक कठिनाइयों का रोना रोते देखे जाते हैं। पुरुषार्थी तो पहाड़ की चोटियों पर घान उगाते और चट्टानें तोड़कर जलस्रोत उभारते देखे गये हैं। पारिवारिक कलह में कुसंस्कारी वातावरण और गलत रीति-नीति का अवलम्बन ही प्रमुख कारण होता है। हर परिजन को यदि आरम्भ से ही सुसंस्कारी, स्वावलम्बी, शिक्षित और कर्तव्य निष्ठ बनाने वाले ढाँचे में ढाला जाय तो कोई कारण नहीं कि कुटुम्बी जन हिल-मिलकर रहने, एक दूसरे को स्नेह, सम्मान, सहयोग प्रदान करने में कोताही दिखाये। समाज में प्रचलित भ्रष्ट परम्पराएँ और अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियाँ जड़ें तभी जमाती हैं, पैर वहीं अड़ाती हैं जहाँ कुकर्मों और कायर लोग उन्हें सहन करते, समर्थन देते हैं। जहाँ चरित्र निष्ठा जीवन्त होगी वहाँ सामाजिक कुप्रचलनों को उगने पलने की नीबट ही न आयेगी।

इस दृष्टि से व्यक्ति और समाज के सम्मुख उपस्थित सभी समस्याओं का एक ही कारण सिद्ध होता है—व्यक्ति का ओछा दृष्टिकोण और घिनौना चरित्र यदि इस मर्मस्थल को सुधारा जा सके तो समझना चाहिए कि समस्त समस्याओं का हल मिल गया। “एक ही साधे सब साधे, सब साधे सब जाय।” वाली उक्ति इस प्रसंग में शत प्रतिशत सही सिद्ध होती है। यदि आस्था संकट से निपटा जा सके तो समझना चाहिए हरक्षेत्र को विपन्न बनाने वाले पतन पराभव से—शोक सन्ताप से सदा सर्वदा के लिए पीछा छुड़ाने वाला हल मिल गया।

इस सन्दर्भ में प्रत्यक्षतः क्या-क्या किया जाना चाहिए? व्यावहारिक कदम क्या उठाने चाहिए? कार्य का बीजारोपण, अभिवर्धन और उपलब्धियों का संग्रह संकलन किस क्रम से होना चाहिए? इन प्रश्नों का उत्तर एक ही हो सकता है कि उन सभी अवलम्बनों को अपनाया जाय जो मानवी चिन्तन को प्रभावित करके, दृष्टिकोण एवं स्वभाव बनाने की भूमिका सम्पन्न करते हैं।

जन-जन को यह सुझाया जाना चाहिए कि वह किसान, विद्यार्थी, व्यापारी, पहलवान से यह शिक्षा ग्रहण

करे कि भविष्य की सुखद सम्भावना को महत्व दिया जाय और इसके लिए प्रारम्भ में कुछ बोना, लगाना, सहना पड़ता है, उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया जाय। वह आतुरता न बरती जाय जिसके कारण चिड़िया जाल में—मछली काँट में—चींटी चासनी में फँसती और बेसौत मरती है। इतने भर के लिए यदि लोक चिन्तन को सहमत किया जा सके और इस कसौटी पर अपनी मान्यताओं—आदतों और गतिविधियों की जाँच पड़ताल करने का उत्साह जग पड़े तो समझना चाहिए कि विचार क्रांति आरम्भ हुई। विघातक अवांछनीयता से पीछा छूटा और सुखद सम्भावना से भरा-पूरा प्रभाव उगा।

यह समझदारी कैसे उगे? इसका एक ही उपाय है कि भले और बुरे दोनों पक्षों को सामने रखकर यह समझने का अवसर दिया जाय कि उनके दूरगामी परिणाम क्या होते हैं? सच तो यह है कि दो में से एक को चुनने का इन दिनों अवसर ही नहीं रहा। सर्वत्र एक ही प्रकार की विडम्बना का साम्राज्य है। आदर्शवाद का सुखद सम्भावनाओं को समझने समझाने का जब कोई आधार ही नहीं रहा तो फिर अभ्यस्त अनाचार के दुष्परिणामों की ओर ध्यान ही क्यों हो। अभ्यास तो ऐसी बुरी बला है कि मनुष्य सड़न और घुटन तक को छोड़ने में ‘आना-कानी करता है। युग मनीषा को अवांछनीयता के प्रति लोक मान्यताओं के दुराग्रह के विरुद्ध व्यापक मोर्चा खड़ा करना है।

चिन्तन को—दृष्टिकोण को—प्रभावित करने के लिए जिन आदर्शवादी प्रतिपादनों की आवश्यकता है उन्हें चार माध्यमों से प्रस्तुत किये जाने की परम्परा है। यदि उनका निर्वाह ठीक तरह बन पड़े तो फिर हृदयंगम करने में भी बहुत हद तक सफलता मिल सकती है। यह चार आधार इस प्रकार हैं—(१) प्रवचन परामर्श (२) साहित्य अध्ययन (३) दृश्य घटनाक्रम (४) अनुरूप कृत्यों में सम्मिलित होने हाथ बँटाने का उपक्रम। यह चारों अपने-अपने स्थान पर अपने-अपने स्तर की महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और व्यक्ति को किसी भी दिशा में मोड़ने-मरोड़ने में बहुत हद तक सफल होकर रहते हैं।

—●—

अनुमोदने वाली वाणी मुरवर करे

मनुष्य कोरे कागज की तरह है वह उसी प्रवाह में बहता है जो उसके इर्द-गिर्द बहता है। मनुष्य स्वच्छ दर्पण की तरह है जिसमें सामने खड़ी छवि अंकित होती चली जाती है। इन दिनों प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में मनुष्य की अवांछनीयता का समर्थन और प्रदर्शन ही चारों ओर घिरा दीखता है। फलतः उसी की छाप उसके अचेतन पर पड़ती है और सहज ही प्रवाह के साथ वह चलना बन पड़ता है। प्रतिपक्षी रोकथाम आड़े आये तो रुकने, ठहरने का—वस्तु-स्थिति पर पुनर्विचार करने का—अवसर मिले। आज ऐसे दबाव का घोर अभाव है जो अपनाई गई रीति-नीति के दुष्परिणाम और युग चेतना के अनुरूप ढलने के सत्परिणाम हलके-फुलके ढंग से नहीं बरन् इस प्रकार समझा सके जिससे दबाव पड़े और परिवर्तन की बात सोचने के लिए बाधित होना पड़े। जन-जन के सामने इन दिनों ऐसे ही प्रखर परामर्श प्रस्तुत करने की प्रथम आवश्यकता है।

प्राचीनकाल में यह परामर्श ही लोक चेतना को जागरूक, प्रबुद्ध, प्रखर, समर्थ बनाये रहने और उसे उत्कृष्टता के साथ जुड़े रहने के लिए सहमत बाधित करता था। यह परामर्श बाजारू नहीं, श्रद्धा सिक्त होता था। धर्म प्रवचन के रूप में—कथा-पुराण शैली से व्यास पीठों पर बैठकर अधिकारी व्यक्तित्वों द्वारा वह दिया जाता था। यह मात्र कथन प्रतिपादन नहीं होता था बरन् श्रद्धा भरे वातावरण का सम्पुट लगने के अतिरिक्त पौराणिक ऐतिहासिक सन्दर्भों के साथ उसे प्रामाणिक भी सिद्ध किया जाता था। यह कथा शैली सुनने वालों को आकर्षक लगी और करने वालों ने पाया कि इस प्रकार का लोक शिक्षण आशातीत परिमाण में सफल होता है।

यहाँ लोक मानस को उत्कृष्टता की दिशा में प्रभावी सत्परामर्श देने की चर्चा हो रही है और कहा जा रहा है कि यदि उसका दूरगामी परिणाम देखना हो तो फिर वह बाजारू ढंग से नहीं चलना चाहिए। चारों ओर

घिरा हुआ वातावरण—अपनी भाषा में—अपने ढंग से अनैतिक चिन्तन और आचरण अपनाने की प्रेरणा देता है। उसकी काटकर सकने के लिए कैंची उस्तरे से नहीं कुल्हाड़े-फरसे से काम चलेगा। सत्परामर्श के लिए प्रामाणिक व्यक्तियों को—श्रद्धासिक्त वातावरण में तर्क और प्रमाण, उदाहरण प्रस्तुत करते हुए ऐसा परामर्श देना होगा जिसमें अपनाई गई अवांछनीयता के दूरगामी दुष्परिणाम गिनाये जा सकें साथ ही शालीनता की रीति-नीति आरम्भ से अनाकर्षण लगाने पर भी व्यक्ति और समाज को सुसम्पन्न बनाने वाले आधार किस प्रकार खड़े करती है, उसका हर पहलू ऐसी शैली में समझाया जाना चाहिए जो अन्तराल की गहराई तक उतर सके, हृदयंगम हो सके और नये सिरे से सोचने के लिए विवश कर सके।

परामर्शों का सिलसिला अभी भी धीमी गति से नहीं चल रहा है। सरकारी तन्त्र में रेडियो, टेलीविजन, प्रकाशन, स्कूली पाठ्यक्रम से जो दिशा दी जाती है। उसमें सत्परामर्शों की न्यूनता और शिथिलता तो पाई जाती है, पर सर्वथा अभाव नहीं होता। कोई चाहें तो उससे भी लाभ उठा सकता है। यह बात पत्र-पत्रिकाओं के सम्बन्ध में भी है। उनके प्रतिपादन में भी आदर्शों का समर्थन पक्ष कुछ न कुछ रहता ही है। इसके अतिरिक्त सभा, सम्मेलनों, गोष्ठियों में धुआँधार भाषण चलते रहते हैं। पंडिताऊ कथा, वार्ता की भी लकीर पिटती रहती है। यह वाणी द्वारा दिये जाने वाले आदर्श-वादी परामर्श का प्रचलित स्वरूप है। यह कुल मिलाकर भी इतना प्राणवान नहीं बन पाता कि कौतूहल मनोरंजन से आगे बढ़कर श्रवणकर्ताओं को तिलमिला दे और वातावरण द्वारा निरन्तर मिलने वाली अवांछनीय प्रेरणा के विरुद्ध तनकर खड़ा हो जाने का साहस उत्पन्न कर सके। प्राचीनकाल में सत्संगों का स्वरूप और स्तर यही रहता था। वे उपस्थित समुदाय का विवेक जगाते थे। ऐसा सम्भव तभी होता था जब कथन कर्ता अपने प्रतिपादन के प्रति निजी निष्ठा का प्रमाण प्रस्तुत कर सके। क्या

कहा जा रहा है, इसका महत्व नहीं। प्रभावोत्पन्न क्षमता के लिए यह आवश्यक समझा जाता है कि उसे कौन कह रहा है। यहाँ आकर गुलबोरे से हवा निकल जाती है। परामर्श दाता प्रवचन कर्ता निजी जीवन क्षेत्र में जब छूँछ होते हैं तो वे सामान्य जानकारी मात्र दे सकते हैं, वैसे कुछ नहीं कर सकते जिससे लोक मानस को पतन प्रवाह से मोड़कर आदर्शवादिता की दिशा में उलटने के लिए भाव-विभोर किया जा सके।

सत्परामर्श आज के लोक मानस को परिष्कृत करने के लिए नितान्त आवश्यक है। पर इसके लिए क्या कहा जाय? हृदयस्पर्शी कैसे बनाया जाय? इसके लिए जहाँ अनेक तथ्यों का समावेश करना होगा, वहाँ एक कार्य और भी करना होगा कि इस सत्संग प्रक्रिया का सूत्र-संचालन करने वाले उसे धर्म मंच से प्रयुक्त करें और अपना स्तर व्यास पीठ पर बैठ सकने जैसा बनायें।

इसके लिए जन-समुदाय को एकत्रित करके सभा सम्मेलन करने का वर्तमान प्रचलन में इतना सुधार और करना होगा कि उसे प्रवचन कर्ता के स्तर तथा श्रद्धा सिक्त वातावरण से भी युक्त बनाया जाय। अन्यथा ग्रामोफोन रिकार्डों की तरह उससे बाजारू जानकारी भर मिलेगी और आयोजन में लगाया गया श्रम, धन एक विशेष प्रकार का मनोरंजन भर बनकर रह जायगा। वातावरण से तात्पर्य कथा-मंच या पुरातन कर्मकाण्डों का समावेश करने से ही नहीं है वरन् उसके लिए उस प्रक्रिया को जोड़ने की ओर भी संकेत है जो प्राचीनकाल में तीर्थ सेवन के रूप में प्रयुक्त होती थी। धर्म प्रेमी घर से दूर प्रकृति की गोद में बने किसी ऐसे शान्तिदायक स्थान में पहुँचते थे जहाँ ऋषि मनीषियों के आश्रम आगन्तुकों की निजी परिस्थिति का पर्यवेक्षण करते और उसे सुधार परामर्श देने के साथ साधनाएँ भी कराते थे। साधना, व्यक्ति जीवन का श्रद्धा समारोह है। उसके द्वारा ऐसी विशेष मनःस्थिति बनती है जिसमें स्वाध्याय सत्संग को चिन्तन-मनन के रूप में विकसित किया जाय और फिर किसी भाव-भरे निष्कर्ष निर्धारण पर स्वेच्छा-पूर्वक पहुँचा जा सके, साधना के माध्यम से ऐसी संकल्प शक्ति उभरती है कि वह उत्कृष्टता का न केवल पक्ष

समर्थन करे वरन् उसे आत्मसात् करने-जीवन व्यवहार में उतारने-के लिए आवश्यक श्रद्धासिक्त साहसिकता भी उभार सके। सूत सौनिक की कथा पुराण शैली की तरह साधना के साथ योग वाशिष्ठ को हृदयंगम कराने वाले तीर्थ सेवन को भी समान महत्व मिलता था। इन दिनों भी पुरातन सतयुग की वापसी के लिए उन चिर परोक्षित प्रयोगों की आज की आवश्यकता एवं प्रक्रिया के साथ नये सिरे से पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। यही प्रयोजन प्रकारान्तर से घरेलू संस्कार प्रक्रिया एवं गाँव मुहल्ले की पर्व परिपाटी के साथ भी भली प्रकार निभना है। जन्म-दिवसोत्सव, विवाह-दिवसोत्सव, विद्यारम्भ, उपनयन, वानप्रस्थ आदि वैयक्तिक संस्कारों का कर्मकाण्ड पद्धति में वे तत्त्व विद्यमान हैं जो उस छोटे आयोजन को पारिवारिक ज्ञान गोष्ठी में परिणत कर सके और वातावरण के धार्मिक होने के कारण उपस्थित लोगों को आदर्शवादिता के पक्ष में सहमत कर सके।

परामर्श क्या दिये जाय? इसके लिए नये निर्धारण करने पड़ेंगे। प्राचीन काल में न नैतिक अनाचार था और न सामाजिक भ्रष्टाचार का बाहुल्य। न विग्रहों की भ्रमर थी न भटकव का व्यामोह। उन दिनों तत्त्व-दर्शन के विभिन्न पक्ष के लाक्षणिक प्रदिपादन भर से काम चल जाता था। पर अब वैसी स्थिति है नहीं। इन दिनों जन संख्या वृद्धि, दहेज जैसी अगणित विकृतियाँ उपजी हैं जिनका उन दिनों अता-पता भी नहीं था। सामयिक अवांछनीयताओं को निरस्त करने वाले और इन दिनों भावनात्मक नव-निर्माण की दृष्टि से जो आवश्यक एवं संभव है उसी को परामर्श प्रवचन का विषय बनाना पड़ेगा। श्रद्धासिक्त वातावरण में, प्रज्ञावानों द्वारा कर्तव्य निष्ठा का उपदेश देना यह पुरातन परिपाटी अक्षुण्ण रखते हुए भी आज का लोक शिक्षण उन तथ्यों से भरा-पूरा होना चाहिए जो समय की विकृतियों से जूझने और उज्ज्वल भविष्य की संरचना में व्यावहारिक योगदान दे सके। इसके लिए मात्र दर्शन नहीं तर्क, तथ्य और प्रमाण, उदाहरण भी चाहिए। वे आधुनिक हों तो भी हर्ज नहीं और यदि पुरातन इतिहास में से उन्हें ढूँढ़ा जा सके तो फिर सोना सुगन्ध जैसी बात बनेगी।

संक्षेप में यही है वह पृष्ठभूमि जिस पर युगान्तरीय चेतना को व्यापक बनाने के लिए धर्म मंच से लोक-शिक्षण की क्रिया-प्रक्रिया सम्पन्न की जानी चाहिए। युग मनीषा को इसके लिए सर्वतोमुखी ऐसा प्रचार तन्त्र खड़ा करना होगा जो उपरोक्त सभी आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकने वाली श्रृंखला की सभी कड़ियाँ ठीक प्रकार से जोड़ सके। बाजारू भाषण प्रक्रिया से इतना भार उठेगा नहीं। जो विडम्बना इन दिनों मंचों और लाउडस्पीकों पर धुआँधार करते सुनी देखी जाती है वह खोखली होने के कारण विनोद कौतुक की ही एक पद्धति बन कर रह जायगी।

इस सन्दर्भ में जहाँ युग मनीषा से बड़े प्रयोजन के लिए बड़े मोर्चे सम्भालने और बड़े संरजाम जुटाने के लिए कहा जा रहा है वहाँ सुझाव के साथ एक छोटा प्रयोग भी सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। इन दिनों शान्ति-कुञ्ज के सृजन शिल्पी अपने-अपने घरों, क्षेत्रों में प्रज्ञा पुराण के प्रथम खण्ड की कथा कहते हैं। कथन के साथ साथ श्रद्धा सिक्त वातावरण भी बनाते हैं। पुराण में कथानक तो पुराने एवं पौराणिक है पर उनमें उन सभी समस्याओं के सामयिक समाधान समाहित हैं जो इन दिनों व्यक्ति और समाज को बेतरह संतस्त, अस्त-व्यस्त किये हुए हैं। युग धर्म को पहचानने वाले क्षेत्रों में पुरातन और नवीन का यह दूरदर्शितापूर्ण प्रतिपादन बहुत ही लोकप्रिय हुआ है। आशा बँधी है कि प्रज्ञा-पुराण के अगले १६ खण्डों में अभीष्ट परिवर्तन की समग्र प्रक्रिया को इस माध्यम से जन-जन के गले उतारना सम्भव हो जायगा।

युग प्रवक्ताओं की वाणी कैसे मुखर हो इसके इसलिए प्रज्ञा पुराण और स्लाइड प्रोजेक्टर की चित्र विवेचना में जहाँ दार्शनिक तथ्यों का समावेश है वहाँ प्रवचन की उस अभिनव शैली का भी प्रशिक्षण है जिसे अपना कर भाषण कला के अनभ्यस्तों को भी मुखर बनने का भी अवसर मिलता है। इस प्रकार जीवन दानी युग शिल्पी, प्रज्ञा-पुत्रों की, युग प्रवक्ताओं की संख्या दिन-दिन बढ़ती जा रही है। वे सत्संग के प्राचीन माहौल को नये परिवेश में पिछड़े देहातों और अशिक्षित देश बान्धवों तक पहुँचाने

का प्राण-पण से प्रयत्न कर रहे हैं। यह छोटा प्रयोग परीक्षण है। इसे बड़े लोगों द्वारा बड़े पैमाने पर व्यापक बनाने का प्रयत्न होना चाहिए। ताकि संसार के पाँच अरब जन समुदाय तक न सही सत्तर करोड़ देशवासियों तक परिवर्तन की अनिवार्यता और सम्भावना से भी प्रकार परिचित प्रभावित किया जा सके।

एकान्त परामर्श को मनन-चिन्तन के माध्यम से हृदयंगम करने वाले तदनुकूल वातावरण और तप साधना का समन्वय भी साथ-साथ चलना चाहिए। यह प्रयोग शान्ति-कुञ्ज की गायत्री तीर्थ के रूप में विकसित करके कल्प साधना सत्रों के रूप में वह प्रयोग चल रहा है जिसमें सम्मिलित होने वाला जीवन-दर्शन बदल सके। भविष्य के लिए आदर्शवादी निर्धारण साथ लेकर वापस लौट सके प्राचीन काल में मात्र तीर्थयात्रा ही नहीं होती थी। उस प्रयास का तीर्थ सेवन प्रमुख अंग था। जिसका अर्थ था तेजस्वी वातावरण में—मनस्वी ऋषियों के संरक्षण में—साधना के साथ-साथ उत्कृष्टता को आत्मसात् करना। इन दिनों तो पर्यटकों की भगदड़ ही तीर्थयात्रा के ध्वंसावशेषों का परिचय देती है। पुरातन निर्धारण तो लगता है तिरोहित ही हो गये। प्रयत्न उसके पुनर्जीवन का किया गया है। इस दृष्टि से शान्तिकुञ्ज की तीर्थ प्रयोगशाला और उसमें चल रही कल्प साधना-जीवन साधना की विधि-व्यवस्था दृष्टव्य है। साधनों के अभाव में छोटे परीक्षण ही सम्भव हैं, वे ही चल भी रहे हैं। यह प्रस्तुतीकरण इसलिए किया गया है कि युग मनीषा को इस प्रक्रिया का स्वरूप और परिणाम समझने की सुविधा मिले। आवश्यक नहीं कि इसे इसी रूप में लिया जाय। उसमें परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक हेर-फेर भी करने पड़ेंगे। इतने पर भी मूल तथ्य यथावत् रहेंगे। अभ्यस्त अवांछनीयता से लोकमानस को विरत करने और दूरदर्शी विवेकशीलता अपनाने के लिए ऐसा प्राणवान प्रशिक्षण चाहिए जो न केवल जन-जन के गले उतर सके वरन् औचित्य के पक्षधर युग चिन्तन को अपनाने में भी साहस भरा उत्साह प्रकट कर सके।

अखण्ड-ज्योति

अक्टूबर १९८२

२१

तथ्य तर्क और प्रमाणों से भरे पूरे युग साहित्य सृजन

सत्परामर्शों की उपयोगी आवश्यकता समझने वालों को यह भी देखना होगा कि जानने वाले भी अनजान क्यों हैं। दूसरों को शिक्षा देने वाले उन्हें स्वयं क्यों अपने व्यवहार में नहीं उतारते। प्रतिपादन ऐसे होने चाहिए जो तर्क, तथ्य, प्रमाण उदाहरण के सहारे यथार्थवादी एवं व्यावहारिक सिद्ध किये जा सकें। इस युग में बुद्धिवाद का दौर है। क्यों और कैसे का प्रश्न हर प्रसंग में किया ही जाता है साथ ही यह भी देखा जाता है कि जो कहा जा रहा है उसमें अवास्तविकता की रंगीली उड़ानें ही तो काम नहीं कर रही? उन्हें अपनाया भी जा सकता है या नहीं? लोग कठिन काम भी कर गुजरते हैं पर उन्हें विश्वास होना चाहिए कि जिस मार्ग पर चलने के लिए कहा जा रहा है वह लक्ष्य तक पहुँचता भी है या नहीं?

विचार क्षेत्र में पिछले दिनों असाधारण उथल-पुथल हुई है। अगले दिनों उससे भी बढ़कर होने वाली है। विज्ञान ने मनुष्य को चलता फिरता पौधा बताया और प्रकृति क्रम से जीवन का क्रम निरुद्ध देश्य भ्रमण करने की बात कही। उसके पक्ष में उनसे विज्ञान, दर्शन और प्रत्यक्ष की साक्षी भी प्रस्तुत की। फलतः नीति मर्यादाओं का—धर्म और आध्यात्मिक का—पक्ष डगमगा गया। संकीर्ण स्वार्थपरता, आपाधापी पनपी और मत्स्य न्याय के समर्थक उपयोगितावाद ने लोक-मानस पर अपना आधिपत्य कर लिया। पशु प्रवृत्तियों का पूर्वाभ्यास इसमें और भी सहायक हुआ। तात्कालिक लाभ भी इसी में लगा। भविष्य को देखने सोचने की दृष्टि एक प्रकार से कुंठित ही होती चली गई। यही वह प्रत्यक्षवाद बुद्धिवाद, स्वेच्छावाद है जिसके प्रवाह में जाने अनजाने, शिक्षित अशिक्षित, पिछड़े प्रगतिशील समान रूप से बहते चले जा रहे हैं। नीति मर्यादा का प्रत्यक्ष विरोध करने पर बदनामी होने के रूप में कोई कुछ कहता तो नहीं, पर उनके पालन का उत्साह दिन-दिन घटता जा रहा है। इस माहौल को नीति क्षेत्र की—आस्था क्षेत्र की—प्रति

क्रान्ति या अराजकता भी कह सकते हैं। यही है अनजाना जाता समय का दार्शनिक विश्लेषण। यही है चिन्तन का प्रमाण, उदाहरण प्रवाह प्रचलन जिसने व्यक्ति और समाज को अनौचित्यकारने की का पक्षधर बनाकर वहाँ ला पटका जहाँ सर्वनाशी सँगी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।

मानवी सत्ता को यदि अपने अस्तित्व की रक्षा कराने के लिए है तो प्रस्तुत निर्धारण प्रचलन पर नये सिरे से पर्यवेक्षण उसे निरकरना होगा और देखना होगा कि अति उत्साह बात असम प्रगतिशीलता के नाम पर जिस कूड़े कचरों को जो सारी बोलने खरोश के साथ गले बाँध लिया गया है वह कहीं भूतक शंभट भर की प्रतिगामिता से भी अधिक अवांछनीय तो नहीं आया। इस लोकमान लिए जिन जो हो, मानवी गरिमा के सनातन केन्द्र तक लौटने लिए जिन अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। विकल्प केवल वह स ज्ञान, तर्क नाश ही है जिसकी घोषणा स्थिति की गम्भीरता पर गाई समझने वाले हर क्षेत्र से कर रहे हैं।

वापसी का रास्ता भी अब सरल नहीं रहा। बुद्धिवाद के सहारे आस्था से अनास्था तक पहुँचा है। उसी सीढ़ी से उलटे पैर रखते हुए नीचे उतर होगा। इन परिस्थितियों में काँटे से काँटा निकालने अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। बुद्धि की बुद्धि से मुठभेड़ कराई जाती है। तर्क को तर्क से ही निर किया जायगा। प्रमाण, उदाहरण मात्र अनाचार सफलता के पक्ष में ही साक्षी नहीं देते उनसे बड़े आध ऐसे प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो आदर्शों की गरि आत्मिक शान्ति से भी बढ़कर भौतिक प्रगति में योगदान करने की बात सिद्ध कर सके। सत्य को तथ्य और अथे स्कर सिद्ध करने पर किसी का आपग्रह हो तो उसे रूप में भी प्रामाणित करने वाली मनीषा ने चुनौती स् कार करने का निश्चय कर लिया है।

धर्म तत्व के शाश्वस्त सिद्धान्तों को बुद्धिवाद कसौटी पर कसे जाने के उपरान्त मान्यता मिले, लगता तो बड़ा अटपटा है, पर बालहठ के सामने

या करे। मचले बच्चे को बहलाने के लिए बाबा को
दि घोड़ा बनना पड़े तो उसे प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं
पही है अनाया जाता। यदि विज्ञान और बुद्धिवाद में तर्क, तथ्य,
न्तन का प्रमाण, उदाहरण के आधार पर ही किसी प्रतिपादन को
ने अनौचित्यकारने की ठान ठानी है तो उसमें शैली बदलने भर
नाशी सही कठिनाई पड़ेगी। नये आधार ढूँढ़ने का झंझट नहीं
। लोक-मानस को यदि आदर्शवादिता की ओर पीछे
रक्षा कीटने के लिए बुद्धिवाद की सवारी चाहिए तो इसके
से पर्यवेक्षण उसे निराश नहीं होना पड़ेगा। थोड़ा झंझट तो है
ते उत्साह वात असम्भव नहीं। एक भाषा बोलने वाले को यदि
रों को जो सारी बोलने शौर सीखने के लिए विवश किया जाय तो
कहीं भूतक झंझट भरा काम भी किसी प्रकार पूरा किया ही
तो नहीं होगा। इसमें असम्भव जैसा तो कुछ है नहीं।

लोकमानस को अभ्यस्त अवांछनीयता से विरत करने
लिए जिन परामर्शों की आवश्यकता है उनका स्वरूप
ज्ञान, तर्क और प्रमाण पर आधारित यदि इतनी छोटी
त पर गाड़ी अड़ गई है तो उसे आस्तीनें चढ़ाकर आगे
केल देने में किसी बड़े असमंजस का सामना नहीं करना
पड़ेगा। युग मनीषा यह कर लेगी। परामर्श के प्रति-
दन चाहिए। वाणी से जो कहा जाता है वह लेखनी के
ध्यम से सुस्थिर होना चाहिए। ऋषियों ने लिखा है,
नियों ने उसे फैलाया है। युग प्रवक्ताओं की मुनि विरा-
री सृजन शिल्पियों के रूप में मोर्चा सम्भालने जा
ही। अब उनकी पेटियाँ कारतूसों से भरने का काम
प है। यह ऋषि को करना होगा। युग साहित्य का
जन इसी प्रक्रिया का नाम है। उसकी अपनी विशेषता
नी ही है जो शास्त्रकार—आप्त पुरुष प्राचीन काल
थेदा शैली को प्रतिपादित करते रहे हैं उसे अब
ज्ञानिक की—वकील की—दार्शनिक की शैली में नये
ग से क्रमवद्ध करना पड़ेगा। युग लेखनी को इस तौर
रीके से व्यक्ति और समाज से सम्बन्धित प्रायः हर
मस्या पर नये सिरे से प्रतिपादन प्रस्तुत करना पड़ेगा।
जर्मनी, एशिया, चीन, ईरान आदि की अधिनायक-
नी सरकारों ने ब्रेतवांशिंग का लक्ष्य रखकर स्कूली
त्यक्रम एक वर्ष की अवधि में बदल दिये थे। साहित्य
र सिनेमा की क्षमता का उपयोग शासकों की इच्छा-

नुकूल हुआ था। उन लोगों ने चिन्तन को प्रभावित करने
वाले हर क्षेत्र को इच्छित प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किया।
अपने देश में वैसा तो नहीं हो सकता और न वैसी आव-
श्यकता ही है। नीति और धर्म का पक्ष इतना सशक्त है
कि यदि उसे बुद्धिवादी शैली में प्रस्तुत करने के लिए युग
मनीषा कमर कस ले तो बिना शासन की सहायता के भी
जन स्तर पर वैसा हो सकता है और जन-जन को युग
चिन्तन के हर पक्ष का समर्थन करने वाला साहित्य मिल
सकता है। जो सत्य है, जो श्रेष्ठ है, जो श्रेय है उसे
उसी रूप में प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर भी खरा सिद्ध
किया जा सकता है। इस प्रकार के लेखन प्रतिपादन में
मात्र मनीषा को संकल्पपूर्वक कटिबद्ध भर होना है।
प्रकाशन और विस्तार का काम भी मनस्वी लोग संभालेंगे
ही। थोड़े दिनों की अड़चन के बाद वस्तुस्थिति को सम-
झने के बाद ऐसा साहित्य प्रकाशन और विक्रय की अपनी
व्यवस्था आप बना लेगा। समर्थ की सहायता के बिना
बुद्ध, शंकराचार्य, मार्क्स, रूसो, तुलसी, सूर आदि के प्रति-
पादन बिना छपे बिना बिके कहाँ रहे।

नवयुग के अनुरूप, मनुष्य की समस्त समस्याओं
और आवश्यकताओं को समुचित समाधान प्रदान करने
वाला बुद्धिवादी साहित्य सृजन आज की महती आवश्य-
कता है। समर्थ लोग उसे ईसाई मिशन की तरह बड़े रूप
से सोचें और करें यह समय की माँग है। इसे पूरा करने
के लिए कौन प्रतिभाएँ कब आगे आयें इसकी प्रतीक्षा न
करके युगान्तरीय चेतना ने इस महान प्रयोजन को अपने
छोटे साधनों का संकोच न करते हुए बिना समय गँवाये
आरम्भ कर दिया है। इस प्रयास में टिटहरी और गिल-
हरी के समुद्र सुखा देने वाले संकल्प से महती प्रेरणा
मिली है।

शान्ति-कुंज के ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान के अन्तर्गत
इसी सन्दर्भ में अनुसन्धान कार्य पिछले दिनों से चल रहा
है। उसका विज्ञान पक्ष जितना सशक्त है उसमें से अधिक
दर्शन को भी महत्व दिया गया है। जहाँ विज्ञान और
दर्शन को अध्यात्म की धुरी के साथ दो पहियों की तरह
जोड़ने और प्रगति रथ को लक्ष्य की दिशा में दौड़ाने में
प्रयत्न चला है, वहाँ इस प्रयास में भी कोताही नहीं की

गई तो धर्मतत्व को तर्क के आधार पर जन-जन के गले उतारने योग्य बनाया जाय। इस सन्दर्भ में अखण्ड-ज्योति का तथा उसकी सहयोगी अन्य पत्रिकाओं का लेखन सामने है। आर्ष साहित्य से लेकर प्रचुर परिमाण में छोटा बड़ा साहित्य लिखा और छपा है। इसकी लाखों प्रतियाँ छपती हैं और करोड़ों की संख्या में पढ़ी जाती हैं। इतने पर भी यह कहा जा सकता है कि मानव समुदाय की व्यापकता और आवश्यकता को देखते हुए यह जलते तवे पर कुछ बूँदें पड़ने के समान नगण्य है।

वाणी के मुखर करने की तरह लेखनी को प्रखर करने के लिए विचार क्रान्ति की सामयिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए तात्कालिक कदम उठाये गये हैं। शान्ति-कुंज की सत्र शृंखला में अब प्रवचन कौशल की तरह साहित्य सृजन के निमित्त लेखन कला की भी अभिनव प्रशिक्षण पद्धति इन्हीं दिनों आरम्भ की गई है। ग्रेजुएट स्तर के छात्र लिए गये हैं और उनका पाठ्यक्रम हर अंग्रेजी महीने की पहली तारीख से तीस तारीख तक का एक-एक महीने का रखा गया है। वे नियमित रूप से निरन्तर चलेंगे। इनमें ब्रह्मवर्चस् की शोध प्रक्रिया के अन्तर्गत विज्ञान तत्व दर्शन के दोनों ही क्षेत्रों की शोध प्रक्रिया का अभ्यास कराया जायगा। अध्ययन, संकलन, वर्गीकरण, मंथन, निर्धारण की अनेक पगडण्डियों को पार करते हुए युग साहित्य सृजन की स्थिति तक कैसे पहुँचा जा सकता है इससे सम्बन्धित अनेकों उतार चढ़ावों की व्यावहारिक जानकारी उस छोटी अवधि में यथा सम्भव अधिक से अधिक करा देने की कार्य पद्धति बनाई गई है। शोध और सृजन से सम्बन्धित एक भी पक्ष ऐसा नहीं छोड़ा गया है जिसका सार संक्षेप इन थोड़े से दिनों में ही करा न दिया जाय। शब्द भण्डार, भाषा विन्यास, व्याकरण ज्ञान, शैली, प्रवाह, भाव संवेदन के समावेश का अच्छा ज्ञान हर लेखक को होना चाहिए। इस सन्दर्भ में यों स्वेच्छा प्रयत्न और सामान्य मार्गदर्शन से भी कुछ न कुछ क्रमिक प्रगति होती है, पर यदि कहीं अनुभव सम्पदा को एक से दूसरे को हस्तान्तरित करने का क्रम चले तो समझना चाहिए कि खस्ता कठिन होते हुए भी सरल हो गया।

प्रस्तुत विचारणा पद्धति की खामियों, भ्रान्तियों और दुःखदायी प्रतिक्रियाओं से जन साधारण को प्रभावी रूप से समझाया जा सके तो दिशा भूल का पता चलने मनुष्य तत्काल लौट पड़ता है। इसी प्रकार उच्च सम्भावनाओं से भरे पूरे तथ्यों का यदि विश्वास लिखा जा सके तो उसे अपनाने के लिए बौद्धिमानों का भी चलता है। युग साहित्य इसी स्तर का लिखा जाय। इसलिए उसकी तैयारी के लिए विश्वकोश का निर्माण करने जैसे मनोयोग और अध्यवसाय की आवश्यक पड़ती है। यही सब उस एक महीने में अधिकाधिक सा और गहराई के साथ शिक्षार्थियों के अनुभव अभ्यास उतारा जा रहा है।

प्रभावी परामर्श प्रवचनों के लिए भी तथ्य चाहिए। विचार क्रान्ति का प्रयोजन पूरा कर सकने वाले तथ्य श्रित साहित्य को तो हर पंक्ति में सन्दर्भ भरे चाहिए। शान्ति-कुंज ने इस प्रक्रिया का छोटा शुभारंभ करके युग मनीषा को उकसाया है कि जब छोटे सा इतना दुस्साहस कर सकते हैं तो जिनके लिए बड़े सा जुटा सकना—बड़े कदम उठा सकना शक्य है वे बड़े की बड़ी बात क्यों न सोचें? बड़ी योजना क्यों बनाये? युग परिवर्तन का अर्थ है—विचार परिवर्तन। इस महाक्रान्ति के लिए लाखों शस्त्र सज्जा संजाने की पर्वत जैसे अवरोधों को कुचल डालने वाली रणनीति अपनानी पड़ेगी। महाप्रज्ञा के वरद-पुत्र समय की माँग को भी पूरा करके रहेंगे।

लेखन की एक मंजिल पूरी होते-होते विशद प्रतन्त्र खड़ा करने की—प्रस्तुत बुकसेलरों के ढर्रे में न बैठ सकने के कारण स्वतन्त्र विक्रय का प्रबन्ध करने योजना भी हाथ लेनी पड़ेगी। प्रस्तुत पत्र पत्रिकाओं माध्यम से भी विचार का यह सिलसिला चल सकता यह साधन पक्ष हुआ। प्रसार की दृष्टि से वह भी महत्व का नहीं है। आशा की जानी चाहिए कि इसका सिलसिला चलाने के लिए युग मनीषी अपनी प्रखर करेंगे तो साधन सम्पत्तियों की दुनियाँ भी निरुपण बनकर न बैठेगी। प्रकाशन और प्रसार की आवश्यकता पूरी कर सकने वाले साधन भी किसी न किसी अस्मान से धरती पर उतरेंगे।

लोकमानस के साथ लोकमंगल का सम्बन्ध

मनुष्य की कोई वास्तविक सेवा हो सकती है तो एक ही है कि उसके दृष्टिकोण, स्वभाव एवं व्यक्तित्व को परिष्कृत करने में सहारा दिया जाय। ऐसा बन पड़े तो अपंग व्यक्ति भी स्वावलम्बी, सम्मानित एवं श्रेयाधिकारी जीवन जी सकते हैं। इस प्रकार के प्रमाणों के लिए इति-हास के पन्ने पलटने की आवश्यकता नहीं, उतना तो अपने इर्द-गिर्द ही दृष्टि दीड़ाकर प्रमाण, उदाहरणों का ढेर ढूँढ़ा जा सकता है। मुसीबत के समय एक-दूसरे की सहायता करना मनुष्य का धर्म है, पर जहाँ तक सेवा सहायता और पुण्य-परमार्थ के स्तर का सम्बन्ध है वहाँ एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि चिन्तन प्रवाह को पतन पराभव से मोड़ कर उसे उत्कृष्टता के साथ नियोजित कर दिया जाय इतने भर से वह अभावग्रस्त परिस्थितियों में रहते हुए भी महानता के उच्च शिखर पर पहुँच सकता है और विपन्न परिस्थितियों में रहते हुए भी असंख्यों के लिए प्रेरणाप्रद एवं अनुकरणीय जीवन जी सकता है।

सामयिक समस्याओं का कारण और निवारण भी इसी क्षेत्र में ढूँढ़ा जाना चाहिए। विपन्न परिस्थितियों के निराकरण के लिए आर्थिक, बौद्धिक, शासकीय प्रयत्न से सुविधा सम्बर्धन का उपक्रम चलना ही चाहिए। किन्तु बात इतने से भी बनने वाली नहीं। फुत्सियों पर मरहम लगाते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि रक्त शोधन के स्थायी उपचार को भी नजरन्दज न किया जाय। वस्तुतः यही समस्याओं का उद्गम है और यही समाधान भी खोजा जाना चाहिए। मूर्धन्यों में से सब न सही कम से कम मनीषा वर्ग को तो अपने जिम्मे लेना ही चाहिए। उनका चिन्तन इस केन्द्र पर केन्द्रीभूत रहना चाहिए कि किस प्रकार लोक मानस में घुसी हुई भ्रान्तियों विकृतियों एवं दुष्टप्रवृत्तियों का उन्मूलन किया जाय। उनके स्थान पर किस प्रकार दूरदर्शी, विवेकशीलता को, शालीन सुसंस्कारिता को प्रतिष्ठित किया जाय? इतना

बन पड़े तो समझना चाहिए कि अर्थशास्त्रियों, वैज्ञानिक, समाज सेवियों, अपराध नियामकों, चिकित्सकों, ग्रामकों, का तीन-चौथाई भार हलका हो सकता है।

लोक मानस को परिष्कृत करना है तो कठिन, पर युग मनीषा की मूलभूत क्षमता को देखते हुए उसे असम्भव किसी भी प्रकार नहीं कहा जा सकता। संकल्प उठते हैं तो साधन भी जुटते हैं इस शाश्वत सत्य पर जिनका अटूट विश्वास है वे 'एकला चलो रे' गुनगुनाते हुए सूर्य, चन्द्र की तरह अपना पथ बनाने और अपने पैरों चल पड़ने से भी हिचकते नहीं। इन विपन्न परिस्थितियों में अनेकानेक विभीषिकाओं से एक ही मोर्चे पर लड़ा जा सकता है। लोकमानस के परिष्कार का—विचार कान्ति का—प्रज्ञा अभियान का—महत्व यदि समझा जा सके तो उस एक ही काम को हाथ में लेने से समस्त समस्याओं का हल सुनिश्चित रूप से निकल सकता है। प्रबुद्ध व्यक्तित्व अपनी सामान्य गतिविधियों से ही कठिनाइयों के घटाटोप को देखते-देखते तिरोहित कर सकते हैं। छोटे से प्रकाश के सम्मुख सुविस्तृत सघन अन्धकार के भी पैर टिक नहीं पाते।

चिन्तन को प्रभावित करने वाले चार प्रयोजनों की चर्चा पिछले पृष्ठों पर हो चुकी है। इस सन्दर्भ में वाणी लेखनी का प्रयोग किस प्रकार होना चाहिए, इसके कुछ सुझाव प्रयासों का उल्लेख भी हुआ है। अब तीसरे 'दृश्य' और चौथे 'कृत्य' प्रयोजन पर प्रकाश पड़ने की आवश्यकता है। वाणी लेखनी का किस पर कितना प्रभाव पड़ा, इसमें वक्ता एवं लेखक की भूमिका ही सब कुछ नहीं है। उसमें श्रोता एवं पाठक की मनोभूमि का, कोमलता, कठोरता को भी अपना रोल अदा करती है। आदर्शवादी प्रतिपादनों का हृदयंगम करा सकता वहीं सफल होता है जहाँ भाव-सम्वेदनाओं की—विवेक एवं औचित्य की—उर्वरता पहले से ही विद्यमान हो, पाषाण हृदय, दुष्ट-दुराग्रही, असुर आतंकवादी श्रेष्ठता का समर्थन सुन तो सकते हैं, पर उसे हृदयंगम करने लिए अहंकारी अहम्न्यता

को लाँघने के लिए सहमत नहीं हो सकते ऐसे लोगों के लिए एक कदम आगे बढ़कर 'दृश्य' उपक्रमों के साथ कड़ई गोली चीनी लपेट कर देनी पड़ती है। स्पर्श का दृश्य का प्रभाव स्वाध्याय और सत्संग से भी अधिक पड़ता है। उसे बाल बुद्धि और कठोर मनोभूमि के लोग भी अपेक्षाकृत अधिक सरलता से हृदयंगम कर सकते हैं।

चित्र कथाएँ बालकों को कितनी प्रिय होती हैं। समूचा फिल्म उद्योग इसी मानवी प्रकृति पर टिका हुआ है कि लोग घटनाक्रम देखना अधिक पसन्द करते हैं। अभिनय नाटकों की लोकप्रियता सर्वविदित है। संगीत समारोहों में समा बँधता है और वान वृद्ध, नर-नारी सभी उन्हें सुनने के लिए दौड़ पड़ते हैं। मँहगे टिकट खरीद कर भी उन्हें स्थान सुरक्षित कनाते हैं। ऐसे आयोजन खुले में, बिना किसी टिकट के हों तो भीड़ का वारापार नहीं रहता। रीछ, वन्दरों का-मदारी, सपेरे और बाजीगरों का तक का तमाशा देखने के लिए रास्ता बनते लोग काम छोड़कर धूप-छाँव की परवा न करते हुए मजमा लगा लेते हैं। जुलूसों में वच्चे तक घुसते हैं और अर्थ न समझने पर भी दूसरों द्वारा चोले गये नारे खुद भी जोर-शोर से लगाते हैं। बाजारों में बारात निकलती है लोग रुककर देखते हैं। मेले, ठेले, रामलीला, नाटक, कठपुतली, ह्याल, स्वांग, दंगल-प्रतियोगिता, कवि सम्मेलन, मुशायरे, प्रदर्शनी, सरकस जब लगते हैं तो उन्हें देखने को कितनों का मन मचलता है और बिना बुलाई भीड़ का जमघट लग जाता है। दर्शनीय स्थानों को देखने लोग पैसा खर्चते और समय निकालते हैं। तीर्थयात्रा, पर्यटन प्रवास की योजना बनाते समय पुण्य का कम और अनदेखे दृश्य देखने का उत्साह अधिक रहता है। मनुष्य की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति यह बताती है कि उसे दृश्य देखने में सहज रुचि होती है। टहलने, घूमने में लोग स्वास्थ्य सम्बर्धन की दृष्टि से कम, चित्र-विचित्र दृश्य देखने का आनन्द लेने की उत्सुकता अधिक रहती है।

दृश्य मात्र विनोद मनोरंजन ही नहीं है। उसका दर्शक पर प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव भी पड़ता है। भूकम्प, बाढ़, अग्निकाण्ड, दुर्भिक्ष जैसी दुःखद दुर्घटनाएँ देखकर

कठोर लोगों का भी हृदय द्रवित हो उठता है और वे सेवा सहायता के लिए अनायास ही अन्तःप्रेरणा से दौड़ पड़ते हैं। विवाह-शादियों की धूमधाम में सम्मिलित रहने का उत्साह सभी को रहता है। घर खाना एक बात है और प्रीतिभोज में सम्मिलित होना दूसरी। सभी सम्मेलनों में लोग मात्र ज्ञानवर्धन के लिए ही नहीं पहुँचते उपस्थित जन-समुदाय की चित्र-विचित्र शकल सूरत को देखने का चोर भी मन में छिपा रहता है। विज्ञापनों में आकर्षक आकृतियों को इसलिए जोड़ा जाता है कि लोग उन्हें देखने के साथ-साथ विज्ञापित वस्तु का परिचय भी प्राप्त कर लें। इन्हीं तथ्यों को देखते हुए स्वाद और यौन कर्म की तरह दृश्य देखने में रस लेने वाली नेत्र इन्द्रिय को भी प्रमुख माना गया है। लोग अपने को वस्त्राभूषणों से, श्रृंगार साधनों से इसीलिए सजाते हैं कि उन पर दृष्टि खिंचने के साथ-साथ अपना परिचय भी लोगों को मिलता या बढ़ता चले। यह तथ्य ऐसे हैं जिन्हें मानव प्रकृति का अंग ही माना जा सकता है। इतना ही नहीं, उनके भले-बुरे प्रभाव पड़ने

गम्भीरता से भी इनकार नहीं किया जा सकता। इस तथ्य को लोक मानस की परिष्कार प्रक्रिया भी सम्मिलित किया जाना चाहिए और अधिक लोगों को अधिक प्रभावित करने की बात को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार के संरंजाम खड़े करने चाहिए। लोक मंगल को गले उतारने के लिए उसके साथ लोकरंजन गुथना चाहिए। इस माध्यम से शिक्षित-अशिक्षित प्रगतिशील सभी को आकर्षित किया और उपस्थित जा सकता है। यह दृश्य तन्त्र यदि उद्देश्यपूर्ण है उसमें वर्तमान विकृतियों से जूझने, सत्प्रवृत्तियों उभारने की ललक हो तो उसे न केवल प्रचार की प्रयुक्त किया जा सकता है वरन् व्यवसाय के स्तर आर्थिक स्वावलम्बन भी रखा जा सकता है। छोटे देह में भी फेरी वाले 'ओटो विजुभल' उपकरण सिर लिये घूमते रहते हैं। नट और मदारी अभी भी जीते हैं। सिनेमा और नाटकों के भारी पूँजी वाली स्थापना अभी भी रामलीला, रासलीला को प्रतिद्वन्दता में नहीं सकी है। भारत पिछड़ी एवं चिरल क्षेत्रों में

हुआ अशिक्षित
शत लोग इस
भारत है।
को अपने क
युग चेतना
माध्यम को
आवश्यक न
पूँजी-पतिय
सरकारी म
प्रतिमाओं के
लित विशा
करते हुए य
है तो कोई
मंगल का स
सके। पान
इस तन्त्र क
देश में पूरी
बड़ी अ
से खड़ी क
नहीं है कि
शील प्रयत्न
छोटे शुभा
के रूप में
की नीति
प्रजा
और छोटा
रहा है।
और प्रवंच
समुदायों क
हजारों युग
से इन प्रेरक
में लोग सु
नितान्त स
सम्बन्ध में
अखण्ड-ज

हुआ अशिक्षित लोगों के बाहुल्य वाला देश है। ७० प्रति-
शत लोग इसी में निवास निर्वाह करते हैं। यही असली
भारत है। शहरों की दर-गुजर की जा सके और देहात
को अपने कल्पना चित्र से प्रमुखता दी जा सके तो उसे
युग चेतना से अवगत प्रभावित करने के लिए इस 'दृश्य'
माध्यम को नये सिरे से गठित किया जा सकता है।
आवश्यक नहीं कि वह फिल्म उद्योग की तरह मुट्ठी भर
पूँजी-पतियों के हाथ में ही रहे। उसे छोटी पूँजी वाले
सरकारी मण्डली की सहायता से हर जगह स्थानीय
प्रतिमाओं के सहारे गठित किया जा सकता है। स्वसंचा-
लित विशालकाय कारखानों की प्रतिद्वन्दता का सामना
करते हुए यदि चरखा और करघा जीवित रह सकता
है तो कोई कारण नहीं कि लोकरञ्जन के साथ लोक
संगल का समन्वय योजनावद्ध रूप से आगे न बढ़ाया जा
सके। पारमार्थिक न सही व्यावसायिक आधार पर भी
इस तन्त्र को खड़ा करने और सफल बनाने की अपने
देश में पूरी-पूरी गुंजायन है।

बड़ी और व्यापक योजनाएँ बड़े लोग, बड़े साधनों
से खड़ी करने में सफल रहते हैं, पर इसका अर्थ यह तो
नहीं है कि बड़े आगे बढ़ें और छोटे रुके रहें। प्रगति-
शील प्रयत्नों से गतिरोध तो नहीं ही अड़ना चाहिए।
छोटे शुभारम्भ से भी चिनगारी की स्थापना ज्वाल माला
के रूप में विकसित हो सकती है। न कुछ से कुछ करने
की नीति अपनाना ही अधिक श्रेयस्कर है।

प्रजा अभियान के अन्तर्गत एक छोटा रेडियो स्टेशन
और छोटा फिल्म उद्योग बड़ी सफलता के साथ चल
रहा है। टैप रिकार्डरों द्वारा सुनाये जाने वाले संगीत
और प्रवचनों के टैप वड्ड संख्या में बनने और उन्हें छोटे
समुदायों को एकत्रित करके सुनाये जाने के प्रयत्न में
हजारों युग शिल्पी लगे हैं। लाउडस्पीकरों की सहायता
से इन प्रेरक टैपों को प्रतिदिन हजारों लाखों की संख्या
में लोग सुनते हैं। यही है अपना छोटा-सा चलता-फिरता
नितान्त सस्ता-सर्वसुलभ मिनी रेडियो स्टेशन। इस
सन्दर्भ में एक छोटा स्लाइड प्रोजेक्टर बना है। इसके

लिए ३६-३६ रंगीन स्लाइडों के दर्जनों सैट बने हैं।
किसी भी गली-मुहल्ले के लोगों को एकत्रित करके प्रकाश
चित्रों की व्याख्या करते हुए भाव-भरा प्रदर्शन होता है।
खर्च कुछ नहीं, टिकट कुछ नहीं। लागत आश्चर्यजनक
रूप से कम। २००) की पूरी मशीन। ३६ स्लाइडों का
एक प्रसंग फिल्म (४५) का। इसे कोई भी लोकसेवी
निजी पूँजी से अथवा मिलजुल खरीद लेता है और हर
दिन मुहल्ले-मुहल्ले में दिखते रहने का उपक्रम चलाता
है। हर दिन पचास की उपस्थिति मानी जाय तो वर्ष में
देखने वालों की संख्या $३६० \times ५० = १८०००$ होती है।
ऐसे पाँच हजार स्लाइड प्रोजेक्टर कार्यक्रम में उतरें तो
उस मिनी सिनेमा से उससे अधिक लोग इस प्रभाव प्रेरणा
की परिधि में आते हैं जितने कि अरबों-खरबों की
लागत वाले फिल्म उद्योग द्वारा होता है। यह है अपना
मिनी फिल्म उद्योग।

छोटी चित्र प्रदर्शनियाँ, छोटी संगीत मण्डलियाँ इन
दिवों प्रजा अभियान के अन्तर्गत देश के कोने-कोने में
पहुँचना और लोकमानस के परिष्कार की भूमिका निभाती
हैं। बाहनों का प्रबन्ध तो नहीं हो सका। कठिनाई से
कुछ जीपें हाथ लगीं। सोचा गया है वह प्रयोजन साइकिलों
से भी पूरा हो सकता है। घर-घर अलख जगने की
प्रव्रज्या के लिए परिव्राजक का विस्तर लाद ले चलने
और कभी-कभी सवारी के रूप में प्रयुक्त हो सकने की
आवश्यकताएँ साइकिल से सधती हैं। इसलिए एक
हजार युग शिल्पियों का लक्ष्य रखकर प्रायः उतनी ही
साइकिलें जुटाने की दौड़-धूप हो रही है। आधे साधन
बन गये। जितना और प्रबन्ध होगा प्रचारकों की वानर
सेना उसी अनुपात से संस्कृति की सीता की खोज के
लिए निकलती और बढ़ती चली जायगी। इस छोटे से
प्रयास को देखकर युग मनीषी यह सोच सकते हैं कि बड़े
विस्तार के साथ, व्यापक रूप में यह प्रयत्न किस प्रकार
अग्रगामी बनाये जा सकते हैं।

अखण्ड-ज्योति

जागृत आत्माओं का समयदान-अंश दान श्रद्धाजलि

यह क्यों किया जाय ? कैसे किया जाय । इसकी एक झलक झाँकी पिछले पन्नों पर पढ़ चुकने के उपरान्त देखना होगा कि क्या इतने भर से काम चल जायगा ? और अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचने पर प्रयोजन सध जायगा ? इसके उत्तर में यही कहा जायगा कि यह सभी प्रयास नितान्त आवश्यक होने पर जिसे साथ लिये बिना अपूर्ण अपंग बनकर रह जाते हैं उसका नाम है 'कृत्य' । उसी को अभ्यास कहते हैं । संचित अनुभव को प्रखर परिष्कृत करना हो तो उसे कृत्य रूप में परिणत करना होता है । अन्यथा जानकारी हवा में तैरती रहेगी—स्वभाव का अंग न बन सकेगी ।

विचार और कर्म मिलकर संस्कार बनते हैं । चेतना को किसी ढाँचे में ढालने और उस ढाँचे में हृदयापूर्वक खिंचे रहने में इन संस्कारों की ही प्रधान भूमिका होती है । वे आदतों के रूप में विकसित होते हैं और जैसे भी मले बुरे हैं, अपने साथ जीवनचर्या और गतिविधियों को घसीटे फिरते हैं । इन संस्कारों का समुच्चय ही व्यक्तित्व है । वह अपनी जगह अड़ा रहता है और प्रतिपक्षी वातावरण में भी अभ्यस्त ढर्रे को यथावत् बनाये रहने के लिए हृदय का परिचय देता रहता है । अन्तराल को इसी स्थिति का पर्यवेक्षण करते हुए किसी व्यक्ति के स्तर का पता चलता है ।

कथन, श्रवण दोनों ही क्षणिक एक हवाई है । वे एक क्षण उत्साह भरते और दूसरे क्षण बबूले की तरह समाप्त होते भी देखे जा सकते हैं कि चिरकाल तक जिस प्रकार के कृत्य किये जाते रहे हैं, स्वभाव का अंग बन जाने पर वे हटने का नाम नहीं लेते । नशेबाजों की विवशता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

मनःसंस्थान की बनावट विचित्र है । वह दुमुही की तरह उबटा और सीधा दोनों तरफ चलता है । आकांक्षाओं के अनुरूप मन और शरीर को काम करने पड़ते हैं इस तथ्य से सभी परिचित हैं । किन्तु इसी रहस्य की एक कड़ी यह भी है कि निरन्तर के कृत्य अपने अनुरूप

मन को ढाल लेते हैं । वातावरण का प्रभाव इसी को कहते हैं । इसमें गतिशील प्रभाव प्रवाह ही नहीं अपना निजी क्रिया-कलाप भी सम्मिलित होता है तो स्वभाव उस ढाँचे में ढल जाता है । आदतें उसी प्रचलन को पकड़ लेती हैं । कसाई कालान्तर में इतनी कठोर मनोभूमि हो जाते हैं कि उनमें दया, करुणा नाम की कोई चीज शेष रह नहीं जाती । अपना कृत्य वे बिना किसी संकोच के करते रहते हैं । वह उन्हें सहज लगता है जबकि दया धर्म की मनोभूमि वाले के लिए उस वीरता को देखने तक में ही दिल दहलता है, साँस रुकती है ।

दुष्ट दुराचारी आरम्भ से ही असमंजस करते हैं । वेश्याएँ कुछ दिन ही सिझकती हैं । डाकुओं, तस्करों, ठगों को अपना व्यवसाय सहज मनोरंजन एवं सामान्य कृत्य जैसा लगता है । कृत्य से अन्तस् ढालने की बात यहाँ प्रत्यक्ष है । यही बात पुण्य परमार्थ के—चरित संयम के—सम्बन्ध में भी लागू होती है । कुछ दिन मार्ग पर चलने वाले अड़चन, अवरोध, असमंजस, विरोध अनख जैसा अनुभव करते हैं किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता है वे उस मार्ग पर चलते रहना स्वभाव का अंग बन जाता है और फिर उसमें शौर्य, साहस, त्याग, बलिदान जैसा विशिष्ट कुछ भी नहीं लगता । पटरी पर गाड़ी अपने क्रम से लुढ़कती रहती है । साधुओं की अपने ढंग की मनोभूमि, और दिनचर्या होती है । दूसरे लोग अपने अपने में भी भारी असुविधा अनुभव करते हैं, अभ्यस्तों के लिए वह ढर्रा ही प्राण प्रिय बन जाता है । इसमें आदर्श की कम और स्वभाव की भूमिका अधिक होती है । देश भक्तों, समाज सेवियों के कई परिवार होते हैं जो अन्य व्यवसायियों की तरह सीधे-साधे अपना को सहज स्वाभाविक रीति से अपनाये रहते हैं । भौतिक आत्मिक सभी क्षेत्रों में यह बात समान रूप से होती है ।

लो-पानस के परिष्कार में व्यक्तिगत पवित्रता प्रयत्न पर जोर दिया जाता है और समाजगत न्याय-निष्ठा

एवं उदार सहकारिता को प्रोत्साहित किया जाता है। यह मात्र चिन्तन ही नहीं कृत्य भी है। ताने-बाने के दोनों धागे मिलकर इस कपड़े को बुनते हैं। आवश्यक है कि जहाँ दूरदर्शी विवेकशीलता अपनाने का समग्र लोक शिक्षण दिया जाय वहाँ यह भी न भुला दिया जाय कि उस स्तर के कुछ न कुछ क्रिया कृत्य भी साथ में जुड़े रहते चाहिए। बीजारोपण को अंकुरित पल्लवित करने के लिए इसी खाद पानी की आवश्यकता पड़ती है।

प्रयत्न यह चलना चाहिए कि देश धर्म को आत्मा परमात्मा का गौरव और उत्तरदायित्व समझने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा कुछ नियमित रूप से करते रहने के लिए तत्पर किया जाय जिसमें लोक मंगल को सत्प्रवृत्तियों में प्रत्यक्ष सहयोग मिलता हो। कार्य छोटा ही क्यों न हो, पर यदि वह नियमित रूप से चलेगा तो उस दिशा में प्रगति होगी और परिपक्वता बढ़ेगी। जैन धर्म की एक तीर्थंकर कथा है कि वे आरम्भिक जीवन में बहेलियों का धन्धा करते थे। दीक्षा लेने आये तो अहिंसा पालन का व्रत लेने के लिए कहा गया। इसमें आजीविका चले जाने का संकट न सह सकने का तर्क देते हुए उनमें स्वल्प अहिंसा की सरलता बना देने का अनुरोध किया। सोच-विचार के बाद में वैसी सुविधा मिली और कौए की हत्या न करने का संकल्प लेकर हल निकाला गया। वे अहिंसा की महिमा पर कौए पर दया दिखाने के माध्यम से विचार करते रहे और अन्ततः अहिंसा धर्म के परिपालक ही नहीं प्रवक्ता भी बन गये। यही अणु व्रत है। थोड़ा शुभारम्भ भी भविष्य की महती सम्भावनाओं का विश्वास दिलाता है।

युगान्तरीय चेतना को अग्रगामी बनाने के लिए हर जागृत आत्मा को स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन, पूजन भजन तक सीमित न रहकर कुछ ऐसा करने के लिए भी कहा जाना चाहिए जिसमें उसे श्रम करना और सहयोग देना पड़ता हो। यही प्रज्ञा अभियान में सम्मिलित होने का व्रत धारण है। प्रज्ञा परिजनों को इस देव परिवार का सदस्य बनने के लिए न्यूनतम एक गण्टा समय और दस पैसा नित्य की अपने क्षेत्र में रचनात्मक प्रवृत्तियों को गतिशील बनाने के लिए नियमित रूप से देना होता है।

इससे कम में किसी को प्रज्ञा परिजन कहलाने का अधिकार नहीं मिलता। यह समय अपने समीपवर्ती क्षेत्र में मिशन की बीस सूत्री योजना में लगाना पड़ता है। प्रौढ़ शिक्षा, वृक्षारोपण, स्वच्छता अभियान, गृह उद्योग, अपव्यय की रोकथाम स्वास्थ्य संवर्धन, नशा निषेध, दहेज विरोध, जाति और लिंग के नाम पर चलने वाली असमानता का उन्मूलन जैसे कितने ही रचनात्मक कार्य इस योजना में सम्मिलित हैं। व्यक्ति निर्माण एवं परिवार निर्माण—समाज निर्माण के लिए नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक क्रांति के लिए बहुत कुछ करने के लिए योजनावद्ध कदम उठाये गये हैं। एक घण्टा नित्य समय इन्हीं कार्यों में हर प्रज्ञा परिजन को लगाना पड़ता है। हर दिन न बन पड़े तो सप्ताह में सात घण्टे या महीने में तीस घण्टे सुविधानुसार लगाने का भी विकल्प रहता है। इसके अतिरिक्त दस पैसा नित्य की राशि भी उन्हें निकालनी पड़ती है। इसका उपयोग युग माहित्य अपने घर परिवार में तथा पास पड़ोस में पढ़ाने के लिए भी इस पैसे का उपयोग होता है।

ब्रात छोटी-सी है, पर उसे एक कृत्य व्रत के रूप में अपनाने और उज्ज्वल सम्भावनाओं से भरे पूरे शुभारम्भ के लिए स्वभाव अभ्यास बनता है। देखने में यह समय-दान अंशदान नगण्य जितना है फिर भी उसका संयुक्त प्रभाव कितना बड़ा होता है इसका अनुमान लगाने पर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। दस लाख प्रज्ञा परिजन एक घण्टा समय निकाल कर दस लाख घण्टे का श्रमदान करते हैं। काम के घण्टे ७ माने गये हैं। दस लाख घण्टे के प्रायः डेढ़ लाख श्रम दिन होते हैं। इतना श्रम समय निरन्तर सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों में संलग्न रहे तो अनुमान लगाया जाता है वे लोग अपने-अपने क्षेत्रों में जितना कुछ उत्साहवर्धक कर रहे होंगे। दस पैसा प्रतिदिन की राशि भी दस लाख व्यक्तियों के लिए एक लाख रुपया प्रतिदिन होती है। इस अंशदान के उपरान्त सत्प्रवृत्तियों के लिए आवश्यक खर्च का—पूरा समय देने वाले कार्यकर्त्ताओं का निर्वाह, स्वाध्याय साहित्य, प्रज्ञा संस्थानों का दैनिक खर्च सरलतापूर्वक चल जाता है। यह ही बूंद-बूंद से धड़ा भरने की कहावत का प्रत्यक्ष

अक्टूबर १९८२

प्रमाण उदाहरण है। उसे व्यापक क्षेत्र में बड़े रूप में चरितार्थ किया जा सके तो नव सृजन के लिए भ्रम साधन जुटाने में कहीं भी अवरोध असमंजस न दीख पड़े। सरकारी सहायता मांगने एवं धनिकों के सम्मुख नाक रगड़ने की फिर कहीं किसी को आवश्यकता न पड़ेगी। भावनाशील परमार्थ परायणों के मुट्ठी-मुट्ठी समय दान अंशदान में नव सृजन की वे योजनाएँ सहज सम्पन्न हो सकती हैं जो आज साधनों के अभाव में अवरुद्ध बनी पड़ी हैं।

भारत की देव संस्कृति का व्यवहार निर्धारण वर्णाश्रमधर्म के रूप में हुआ है। चार आश्रमों में पूर्वार्ध के दो ब्रह्मचर्य और गृहस्थ—निजी प्रयोजनों के लिए हैं और उत्तरार्ध के दो वानप्रस्थ और संन्यास परमार्थ प्रयोजनों के लिए। पचास वर्ष की अघेड़ आयु पूरी कर लेने के बाद प्रायः पारिवारिक उत्तरदायित्व बड़े लड़के सम्भाल लेते थे और पिता को परमार्थ प्रयोजनों के लिए छुट्टी मिल जाती थी। इन चारों में वानप्रस्थ को संस्कृति का मेरु-दण्ड माना गया है। अनुभवों से परिपक्व, भावना से निवृत्त व्यक्ति अपनी निजी खर्च संचित सम्पदा से चलते और निरन्तर लोक मंगल में निरत रहते थे। इस प्रकार सुयोग्य लोक सेवा प्रचुर परिमाण में अवैतनिक रूप से मिलते थे। अपनी निस्पृहता चरित्र निष्ठा एवं परमार्थ भावना से जन-जन का हृदय जीतते और उन्हें सन्मार्ग पर अग्रसर किये रहने में सफल होते थे। यही था प्राचीन काल का गौरव गरिमा का सबसे बड़ा स्रोत और रहस्य। पिछले अन्धकार युग में वह पुण्य परम्परा समाप्त प्रायः हो गई और पलायनवादी तथाकथित साधु संन्यासी त्रिपुल संख्या में भ्रान्तियाँ फैलते, निर्धन जनता पर भार रूप लदते विचरने लगे। दुर्गति के कारणों में एक बड़ा हेतु यह भी है। प्रज्ञा अभियान में उस पुण्य परम्परा को पुनः जीवित किया है और लोकसेवी वानप्रस्थों को परिव्राजक रूप में व्रतशील बनाकर घर-घर अलख जगाने, जन-जन से सम्पर्क साधने और युगान्तरीय चेतना से अनुप्राणित करने के लिए भेजा है। यही प्रक्रिया प्राचीन काल में—तीर्थयात्रा—धर्म प्रचार की पदयात्रा के नाम से प्रख्यात थी। तीर्थों के नाम पर चलने वाली विडम्बना के पीछे जो

निहित स्वार्थ जुड़ गये हैं उन्हें वर्तमान परिस्थितियों में विलग करना कठिन है। दूसरा उपाय एक ही था—युग तीर्थों की स्थापना। प्रज्ञा पीठों के रूप में पिछले दिनों के चौबीस सौ के लगभग बने हैं। उन्हें रचनात्मक गति-विधियों का केन्द्र बनाकर—समयदानी वानप्रस्थों, परिव्राजकों के माध्यम से जन-जागरण का—नव सृजन के उत्साह का—वातावरण बनाया गया है। यह प्रयोग आशातीत ढंग से सफल भी हो रहा है।

कम्बोडिया के बौद्ध मठों में पिछले दिनों एक वर्ष के संन्यास के लिए धर्मप्रेमी लोगों को तैयार किया था। वे मठों में रहकर साधना भी करते थे और योग्यता के अनुसार लोक मंगल के कामों में भी निरत रहते थे। उन दिनों इस परम्परा ने उस क्षेत्र की सुख शान्ति का भण्डार बना कर रख दिया था। प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत एक वर्ष के संन्यास की—घर से बाहर रहकर लोक मंगल के कार्यों में निरत रहने की—परम्परा आरम्भ की जा रही है। यह परिव्राजक दो-दो की टोलियों में साइकिल सवारी के साथ सुदूर देहातों में पहुँचेंगे और जन-जन को संगीत के माध्यम से अनुप्राणित करते हुए—सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए सहमत करेंगे। समय बता-येगा कि लोक मानस के परिष्कार की भूमिका निभाने में शान्ति-कुंज के यह प्रयत्न कितने सफल होते हैं और नवयुग की पृष्ठभूमि बनाने में कितना बड़ा योगदान करते हैं।

यह एक संगठन के सीमित प्रयत्नों की चर्चा है। यह प्रकटीकरण इसलिए आवश्यक समझा गया कि युग मनीषा जन-जागरण का लक्ष्य सामने रखकर जब भाषण, लेखन दृश्य को आधार मानकर योजनाबद्ध बड़े कदम उठाये तब यह न भूलें कि जागृत आत्माओं को नियमित रूप से सेवा कृत्य का भी व्रत लेना पड़ेगा। समयदान और अंशदान का व्यापक उत्साह उत्पन्न करने से ही उस समग्र लोक शक्ति का उद्भव होगा जो प्रस्तुत विपन्नताओं को उलट देने और उज्ज्वल भविष्य का अभिनव सृजन करने में सफल हो सके।

१ मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण

सभी धर्म पुराणों में स्वर्ग की सुखद परिस्थितियों का सुविस्तृत वर्णन है। वहाँ रहने वाले देवताओं का ऐसा आकर्षक उल्लेख है जिसे पढ़ने से प्रतीत होता है कि यदि मनुष्य को उस स्थिति में रहने उस स्तर तक पहुँचने का अवसर मिले तो उसकी चरम मनोवांछा—भक्त-कामना पूर्ण हो सकती है। यह धारणा सर्वथा कपोल, कल्पित नहीं हो सकती। इसके पीछे कुछ आधार अवश्य हैं। मरने के बाद किसी अदृश्य-अविज्ञात-लोक में वैसे परिस्थिति मिलती होगी, ऐसा मात्र श्रद्धा के आधार पर ही सोचा जा सकता है। उसके अस्तित्व का बुद्धिवादी प्रत्यक्ष प्रमाण परिचय नहीं मिलता। ऐसी दशा में भूत और भविष्य पर दृष्टि डालनी होगी और सोचना होगा क्या कभी वैसे परिस्थितियाँ ऐसे क्षेत्रों में रही हैं जिसका प्रमाण परिचय मिल सके? क्या वैसे सुखद सम्भावना है जिसमें मनुष्य को उस स्थिति में रहने का अवसर मिल सके। काम किसी अदृश्य लोक की कल्पना से न चलेगा। क्योंकि ब्रह्माण्ड विज्ञान की अद्यावधि खोजों में वैसे कुछ अता-पता नहीं चलता। भविष्य की आशा भी कम है। क्योंकि ग्रह-नक्षत्र जितनी दूर हैं वहाँ तक धरती के वातावरण में पत्ती हुई चेतना का पहुँच सकना अति कठिन है। फिर उन वर्णित परिस्थितियों के कहीं होने की बात तो गले जरा भी नहीं उतरती। ऐसी दशा में यदि देवताओं के स्वर्ग को तथ्याधारित अन्वेषण करना हो तो चिर अतीत के इतिहास पृष्ठ पलटने पड़ेगे जिसमें मनुष्य में देवत्व के उदय एवं धरती पर स्वर्ग के अवतरण की परिस्थिति उन दिनों बनी होने का उल्लेख है। रामराज्य सतयुग की धारणाएँ उसी स्तर की हैं। तब मनुष्यों की मनःस्थिति देवताओं जैसी थी और परिस्थिति स्वर्ग जैसी।

क्या वैसे समय, वातावरण का पुनः वर्तमान जन-समुदाय को रसास्वादन करने का अवसर मिल सकता है। इस प्रश्न का उत्तर “दूरदर्शी विवेकशीलता” ही

में देती है और कहती है कि वैसे नितान्त सम्भव है। किन्तु उसके लिए पुण्यात्मा होने की वही शर्त पूरी करनी पड़ेगी जिसमें संयम और परमार्थ के दो कदम उठाते हुए लक्ष्य तक पहुँचने की अनिवार्यता है। भूतकाल में यदि सतयुग रहा होगा या भविष्य में प्रजा युग विनिमित्त होगा तो उसके लिए मनुष्य को वही रीति-नीति अपनानी होगी—वही दिशाधारा ग्रहण करनी होगी जिसे व्यवहृत करने पर पौराणिक स्वर्ग में पहुँच सकना सम्भव होता है।

आज की खोज अब से उद्दिग्ध मनुष्य उस सुखद सम्भावना का रसास्वादन करने के लिए सहज जालायित हो सकता है यदि उसे विश्वास हो सके कि वैसे कभी सम्भव रहा है या हो सकता है। इस सन्दर्भ में पौराणिक या ऐतिहासिक प्रतिपादनों की एक बार उपेक्षा करने में भी दूरदर्शी विवेकशीलता के आधार पर यह सुनिश्चित विश्वास हो सकता है कि वैसे नितान्त सम्भव है। गणितीय आधार पर अध्यात्म विज्ञान और उसकी स्वर्ग मुक्ति, सिद्धि जैसी उपलब्धियों पर उसी प्रकार विश्वास किया जा सकता है जैसा कि भौतिक विज्ञान में, सुविधा साधन के क्षेत्र में प्रत्यक्ष कर दिखाया। गणित ही भौतिक विज्ञान का आधार है। उसी के सहारे अध्यात्म विज्ञान की उन विभूतियों के हाथ लगने पर भी विश्वास किया जा सकता है जिसमें सतयुग की पुनरावृत्ति का होना नितान्त सम्भव दीखता है जिसमें मनःस्थिति और परिस्थिति के उच्चस्तरीय बनने पर उस परोक्ष प्रत्यक्ष में परिणति हो सकने की बात विश्वास योग्य दीखती है।

मनःस्थिति ही परिस्थिति को जन्म देती है यह तथ्य मानवी संरचना और मनःशास्त्र के सुनिश्चित सिद्धान्तों के सहारे हस्ताभलकवत् सिद्ध हो चली। अब वह मान्यता झीनी होती जा रही है जिसमें परिस्थिति की अनुकूलता से मनःक्षेत्र की प्रसन्नता मिलने की आशा की जाती है। सुविधाएँ मात्र शरीर को थोड़ा-गुदगुदा

सकती हैं। मनःक्षेत्र तो उस वातावरण में सन्तोष की माँग लेता है जिसमें आदर्श, सिद्धान्तों, मर्यादाओं और कर्त्तव्यों का परिपालन होता है। मानवी गरिमा उत्कृष्टता पर अवलम्बित है। वह जहाँ भी, जितनी भी, जब भी उपलब्ध होगी मनुष्य उतना ही सन्तुष्ट प्रसन्न रहेगा। उतना ही स्वभाव और व्यवहार की दृष्टि से विशिष्ट होगा। व्यक्तित्व का स्तर इसी विशिष्टता के आधार पर आँका जाता है। यही है वह सार संक्षेप जिसे उच्चस्तरीय मनःस्थिति कहा जा सकता है। यह हस्तगत हो तो उन परिस्थितियों के उपलब्ध होने में सन्देह न रहेगा जिसे पुरातन भाषा में बन्धन-मुक्ति या स्वर्गीय उत्थास के रूप में अलंकारिक वर्णनों के साथ प्रस्तुत किया गया है।

इसे प्राप्त करने की आकांक्षा यदि सचमुच ही जगें और जीवन की सार्थकता देखने का उत्साह यदि वस्तुतः उठे तो पुण्य अपनाने व पाप छोड़ने के रूप में उसका मूल्य चुकाना होगा। सभी जानते हैं कि प्रत्यक्ष पाप क्रिया-कृत्यों के रूप में शरीर द्वारा किये जाते हैं। पर यह दृश्य प्रवृत्ति है। शरीर जड़ है उसका प्रेरक मन है। इसलिए कठपुतली के नृत्य में बाजीगरी का कौशल काम करता मानना होगा। मनःक्षेत्र की उत्कृष्टता, दूरदर्शी विवेकशीलता ही पुण्य निर्झरिणी का उद्गम स्रोत है। वहाँ विषाक्तता रहेगी तो जीवन व्यवहार का स्वरूप भी हेय स्तर का बनेगा। शरीर को दोष न देकर विज्ञान सदा किसी के पाप-पुण्य की-उत्थान-पतन की-विवेचना उसकी आस्था आकांक्षाओं की बातें अन्तरात्मा के साथ जोड़ते हैं। स्वर्ग-नरक के सन्दर्भ में यदि पाप छोड़ने और पुण्य अपनाने की आवश्यकता प्रतीत हो तो उसका व्यावहारिक रूप एक ही हो सकता है अवांछनीय चिन्तन से विरत होने और उत्कृष्टता की सदाशयता अपनाने का साहस करना होगा। यही तत्त्व दर्शन का पुरातन निर्धारण रहा है इसी को अध्यात्म विज्ञान के आधार पर वर्तमान प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर भी सर्वथा खरा उतरते देखा जा सकता है।

पाप को अपराधों के रूप में और पुण्य को परमार्थ के रूप में दृश्यमान देखा जा सकता है, पर कुरेदने पर

तथ्य दूसरे ही सामने आते हैं। पाप कर्म मात्र भ्रान्तियों के परिणाम हैं। दुर्बुद्धि जब उचित को अनुचित और अनुचित को उचित सुझा देती है तभी मनुष्य सदाशयता का राजमार्ग छोड़कर पतन पराभव के लुभावने मार्ग में गिरने की ओर कदम बढ़ाता है। इसी प्रकार यदि विवेक जीवित रहे तो दूरगामी सत्परिणामों की सुखद सम्भावनाओं के सुनहरे चित्र सामने प्रस्तुत करता रहेगा और चिन्तन तथा चरित्र को एक कदम भी कुमांग पर न चलने देगा। मानसिक सन्तुलन सौमनस यदि बन पड़े तो उस क्षेत्र में विवेकशील दूरदर्शिता का ही साम्राज्य होगा और फिर मान्यताओं, आकांक्षाओं विचारणाओं का प्रवाह उस दिशा में वह चलेगा जिसमें कृत्यों की पवित्रता प्रखरता के अतिरिक्त और कुछ बन पड़ने की सम्भावना ही नहीं है। पुण्य-पथ इसी को कहते हैं। पापों से आत्यन्तिक निवृत्ति इसी अवलम्बन के सहारे मिलती है। नरक से निवृत्ति और स्वर्ग सोपान में प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि यही है। उस शुभारम्भ-सङ्कल्प और व्रत धारणा की बात बन पड़े तो समझना चाहिए कि पुण्यात्माओं को मिलने वाला स्वर्ग सहज सम्भव होगा। उस स्तर पर पहुँचने वाला या तो देवता बन जाता है अथवा देवताओं को उस क्षेत्र में रहने का अवसर मिलता है। प्रतिपादन दो प्रकार होते हुए भी एक ही तथ्य यथास्थान, यथावत् बना रहता है।

आँखों की बनावट कुछ विचित्र है, बाहर का कूड़ा-करकट देखती हैं भीतर की रत्न-राशि का पता ही नहीं चलता। हाथ भी विलक्षण हैं, धूलि मिट्टी में सने रहते हैं, पर भीतर की गन्दगी कुहारने का नाम नहीं लेते। मनःसंस्थान का क्या कहना दुनिया भर के संकटों से जूझता है, पर न जाने क्यों यह नहीं सूझता कि चेतना पर चढ़े कुसंस्कारों से छुटकारा पाने के साथ-साथ समस्त समस्याओं के समाधान का भी सहज हल ढूँढ़ा जाय। दोष तो दुष्प्रवृत्तियों को दिया जाता है, पर यह कोई विरले ही जानते हैं कि तथ्यतः वह दुर्बुद्धि का अभिशाप भर है। भ्रान्तियाँ ही विकृतियाँ बनती हैं और विकृतियाँ प्रतिकूल परिस्थितियों के रूप में बदलकर अन्ततः विभीषिकाओं की विकरालता बनकर नग्न नृत्य करती हैं।

यदि तथ्य पहुँचना हो के लिए उसका शुभ में करना वातावरण है।

काम सम्भावना निभ्रन्ति, सम्मत व्यक्ति हो है कि समु सफाई, धु हो तो उसे सँजोई जा में रखते प्रज्ञा अमानस के जा सके त शोधन एव सकता है

मनुष्य भारी, दा सजता, अ श्रद्धा, प्रज्ञा अदृश्य इव आदतों का सजी कीच वाटिका में चमत्कार ईश्वर दक्ष हृदय, का से पुकारते है कि अब परिशोधन

अखण्ड-

भ्रान्तियों वत और एय सदा- लुभावने की प्रकार गामों की त करत। भी कुसां नस् यदि शिता का काक्षाओं गा जिसमें कुछ वन को कहते लम्बन के सोपान भ-सङ्कल्प चाहिए ज सम्भव देवता वन रहने का ए भी एक

यदि तथ्य तक पहुँचा जा सके तो एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि नरक से उबरने और स्वर्ग तक पहुँचने के लिए जिस पुण्य-परमार्थ की आवश्यकता होती है, उसका शुभारम्भ उन भ्रान्तियों से छुटकारा पाने के रूप में करना होता है जो अन्तराल, व्यक्तित्व, पराक्रम एवं वातावरण को विपन्न बनाने के लिए एक मात्र उत्तरदायी हैं।

काम की बात वहाँ आकर टिकती है जहाँ सुखद सम्भावनाओं को साकार करने के लिए मनःक्षेत्र को निभ्रन्ति, मान्यताओं का परिमार्जित, आदतों को विवेक सम्मत बनाने के लिए प्रचण्ड साहस जुटाना पड़ता है। व्यक्ति हो या समाज—राहत पाने का यही एकमात्र उपाय है कि समूचे विचार तन्त्र की एक बार नये सिरे से सफाई, धुलाई की जाय और अनुपयोगिता बहुत बढ़ गई हो तो उसे गलाने और नये ढाँचे में ढाढ़ने की हिम्मत सँजोई जाय। युग को इसी महती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इन दिनों महाकाल ने विचारक्रान्ति का—प्रज्ञा अभियान का—ज्ञान यज्ञ के नियोजन का—लोक मानस के परिष्कार का सन्देश भेजा है। इसे अपनाया जा सके तो नदियों में बहने वाली विपाक्तता का परि-शोधन एक काया-कल्प उपचार का सुयोग सहज ही बन सकता है।

मनुष्य प्रायः साढ़े पाँच फुट ऊँचा, डेढ़ सौ पौण्ड भारी, दाढ़ी-मूँछ वाला—सोता, खाता, बोलता, लिखता, सजता, अकड़ता देखता भर है। वस्तुतः उसकी मूल सत्ता श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा के त्रिविध तत्व से विनिर्मित एक अदृश्य इकाई है, जिसे प्रकारान्तर से मान्यताओं और आदतों का पुंज कह सकते हैं। चेतना को निकृष्टता की सड़ी कीचड़ से, उबारा जा सके उत्कृष्टता की पुष्प-वाटिका में बिठाया जा सके तो समझना चाहिए वह चमत्कार हो गया जिसे दार्शनिक आत्म साक्षात्कार, ईश्वर दर्शन—धार्मिक स्वर्ग मुक्ति का जीवन लक्ष्य—कवि हृदय, काया-कल्प और बुद्धिवादी समग्र क्रान्ति के नाग से पुकारते हैं। वस्तुतः इसका मूलभूत स्वरूप इतना ही है कि अवांछनीय मान्यताओं का एक बार पूरी तरह परिशोधन कर लिया जाय। जो विवेक और औचित्य की

कसौटी पर खरी उतरे उन्हें सम्मानपूर्वक, सुरक्षित रखा जाय, यथास्थान प्रतिष्ठित किया जाय साथ ही भ्रम-जंजाल के मकड़ी जाल को साहस के साथ लम्बी झाड़-बुहार करके कूड़े के ढेर में पटक दिया जाय। इतना किये बिना उस दिव्य विचारणा की पुनः प्राण प्रतिष्ठा हो नहीं सकेगी जो मानवी गरिमा को जीवन्त रखती—व्य-वहार से स्नेह-सौजन्य भरती तथा वातावरण को सम्प-न्नता, प्रसन्नता से भर देने में पूरी तरह समर्थ है।

लोकमानस के परिशोधन, परिष्कृतीकरण का महत्व इतना बड़ा है कि उसे सामयिक समाधान और उज्ज्वल भविष्य के अवतरण का सुसम्बद्ध कार्यक्रम कहा जा सकता है। दूसरे श्रेष्ठ कामों की आवश्यकता उप-योगिता अपने स्थान पर बनी रहे—वे प्रयास अपने ढंग से चलते रहें पर साथ ही इस उपेक्षित पक्ष को भी उभरने

वित्ते त्यागः क्षमा शक्तौ दुःखे दैन्यविहीनता ।
निर्दम्भता सदाचारे स्वभावोऽयं महात्मनाम् ॥
'धन में त्याग (धन की स्थिति में श्रेष्ठ कार्यों में नियोजन) शक्तिवान् होकर क्षमा शील रहना दुःख में दीनता का अभाव और सदाचार पान में दम्भ का अभाव—महापुरुषों का स्वभाव होता है।

का अवसर दिया जाय जिसके माध्यम से समय के प्रवाह को पतन के गर्त में गिरने से रोका जा सकता है। विनाश को रोकने और विकास को गतिशील बनाने का यही मार्ग है।

इस महत्वपूर्ण, कठिन किन्तु समय से निपटने के लिए नितान्त आवश्यक कार्य को करे कौन ? उस उत्तर-दायित्व को वहन करने के लिए कन्धा किनका बढ़े ? इसका उत्तर तलाशने के लिए युग मनीषा की ओर ही दृष्टि जाती है। वह उभरे तो ही प्रवाह पलटे। हम बदलेंगे, युग बदलेगा का सत्य और तथ्य जन-जन के गले उतारने युगान्तरीय चेतना को लोक मान्यता में सम्मिलित करने का कठिन काम और किसी के बूते का है नहीं। भागीरथ, दधीचि, बुद्ध, शंकर, गाँधी, विवेकानन्द जैसी प्रतिभाएँ उसे अपने ही क्षेत्र से निकालनी और सुविस्तृत कार्यक्षेत्र में खपानी पड़ेंगी।

अखण्ड-ज्योति

नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्रों की समग्र प्रगति

नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्रों में घुसी हुई भ्रान्तियाँ अपने-अपने क्षेत्रों में चित्र विचित्र प्रथा परम्परा बनकर रही हैं और प्रचलन में इतनी गूथ गई हैं कि उनकी अनुपयुक्तता के बारे में सन्देह करने तक की आवश्यकता नहीं समझी जाती।

मानवी सत्ता, सृष्टि की अनुपम कलाकृति है उसे इसलिए सृजा गया है कि अपनी विशिष्टता और वरिष्ठता के सहारे इस विश्व उद्यान को सुरभित, समुन्नत रखे। औसत नागरिक की तरह सादगी भरा निर्वाह करे—उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श चरित्र की गौरव गरिमा बनाये रहे—पवित्रता एवं प्रखरता पर आधारित व्यक्तित्व समर्थ रखे—तथा ऐसी योजना बनाकर चले जिसका अनुकरण करने वाले निरन्तर ऊँचे उठते आगे बढ़ते रहे। संक्षेप में यही है मनुष्य की नीति मर्यादा का सार संक्षेप। इसका जो जितना परिपालन करता है वह उतना ही नीतिवान है। इस निर्धारण को जो जितना तोड़ता है। जो लोभ, मोह और अहंकार के लिए ही मरता खपता है—जिसे वासना तृष्णा के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं—जिसे संकीर्ण स्वार्थपरता में आगे की बात सोचने की फुरसत ही नहीं—जिसके मन में लोक मंगल के उत्तरदायित्व निभाने के लिए उल्लास उठता ही नहीं उसे अनैतिक कहना चाहिए। उद्धत अपराधों की तरह संकीर्ण स्वार्थपरता भी तत्त्वदर्शियों द्वारा अनीति ही मानी गई है। देखा जाना चाहिए कि अनीति ने व्यक्तिगत रुझान और सामुदायिक प्रचलन में कितनी गहरी जड़ें जमाई हैं। इन्हें उखाड़ने के लिए उतनी ही गहरी खुदाई करने की आवश्यकता पड़ेगी। हर व्यक्ति को समझाया जाना चाहिए कि प्रस्तुत प्रवाह में बहने पर वह किस प्रकार हर दृष्टि से घाटे ही घाटे में रहता है। समझना होगा कि यदि आदर्शवादित्वा अपनाई जा सके तो उसमें पूरी तरह लाभ ही लाभ है।

बौद्धिक क्षेत्र में अन्ध-विश्वासों के उलूकों ने कितने

घोंसले बना रखे हैं और वे कितनी निश्चिन्ततापूर्वक किये गये हैं यह देखकर आश्चर्य होता है। आहार को ही भूना तला, मिर्च मसाले वाला स्वादिष्ट समझा जाने वाला अभक्ष्य ही हम सब उदरस्थ करते हैं। नशे पीते हैं। यह भूलते ही जा रहे हैं कि मानवी आहार में शाक भाजी की प्रमुखता कितनी आवश्यक है। अन्न लेना ही तो उबान लेना ही पर्याप्त है। मांस मानवी आहार किसी दृष्टि से फिट नहीं बैठता। खारी नमक—सोडियम क्लोराइड—एक प्रकार का विष है। इसी प्रकार शीत निचोड़ देने के बाद चीनी भी मीठा जहर सिद्ध होती है पर कौन किसे समझाये कि वर्तमान पाक विद्या एवं स्वाद लिप्सा प्रकारान्तर से धीमी आत्म हत्या ही सिद्ध होती है। यदि आहार क्षेत्र में विचार क्रान्ति का समावेश हो सके तो दावे के साथ कहा जा सकता है कि प्रस्तुत दुर्लभता और रुग्णता से आधा छुटकारा अनायास ही मिल सकता है। इसी प्रकार सोने जागने, श्रम करने, धूप हवा के सम्पर्क में रहने, कम कपड़े पहनने, ब्रह्मचर्य पालने जैसे मोटे-मोटे प्रकृति निर्देशों को पाला जा सके तो मनुष्य अन्य स्वच्छन्द जीवन जीने वाले प्राणियों की तरह निरोग एवं दीर्घजीवी रह सकता है। यदि आहार बिहार प्रचलित प्रवाह उलटा जा सके तो समझना चाहिए कि पीड़ा सहने चिकित्सा में धन गँवाने, अशक्त रहने, उपयोगी बनने, कुसमय बेमौत मरने जैसे अगणित संकटों सहज छुटकारा मिल गया।

मानसिक विक्षोभों का प्रधान कारण है—निषेधात्मक चिन्तन। जो उपलब्ध है उसका सन्तोष आनन्द लेने की अपेक्षा जो नहीं है उसी की सूची बनाये फिरना, अधिक सम्पत्तियों के साथ तुलना करके दरिद्र अनुभव करना तुलना ही करनी हो तो पिछड़ों के साथ करके अपनी सौभाग्य को सराहा क्यों न जाय? चारों ओर उत्साहवर्धक भरा पड़ा है जिसे देखने, सोचने, स्मरण करने से कृतज्ञता, प्रसन्नता की अनुभूति होती है उसी

अक्टूबर १९८२

३४

अखण्ड-ज्योति

ध्यान केन्द्रित क्यों न किया जाय ? मनोकामनाओं के पर्वत शिर पर लादने की अपेक्षा निर्वाह में सन्तोष करने की आदत क्यों न डाली जाय ? अभीष्ट प्रतिफल की लालक में आकुल व्याकुल रहने की अपेक्षा कर्तव्य पालन में निरत रहने और उतने भर में गर्वगौरव अनुभव करने की आदत क्यों न डाली जाय ? हार जीत की परवाह न करते हुए भी खिलाड़ी जब प्रसन्नतापूर्वक खेल का आनन्द ले सकते हैं तो जीवन नाटक में आने वाले उतार चढ़ावों में अपना ही सन्तुलन क्यों बिगाड़ा जाय ? हर कोई हमारी मर्जी पर चले इसका आग्रह क्यों हो ? अपनी जैसी विचार स्वतन्त्रता दूसरों को क्यों न अपनाने दी जाय ? आदि प्रश्न ऐसे हैं जिन पर यदि ठण्डे मन से विचार किया जा सके और चिन्तन के अभ्यस्त ढर्रे में विवेकयुक्त परिवर्तन किया जा सके तो तनाव, खीज, चिन्ता, आशंका, आवेश जैसे कितने ही मनोविकारों द्वारा निरन्तर झुलझते रहना समाप्त हो सकता है।

हँसने हँसाने की हलकी-फुलकी चिन्तन प्रक्रिया एक आदत भर है जिसका अनुकूलता या प्रतिकूलता से कोई गहरा सम्बन्ध नहीं है। मस्तिष्क सभी को उपलब्ध है। भाव सम्बेदना से भरा-पूरा अन्तःकरण किसके पास नहीं है। उस क्षीर सागर, कैलाश जैसे पुण्य क्षेत्र में भ्रष्टता और दुष्टता से सने कषाय-कल्मष भर लेने का ही परिणाम है कि ऋषि कल्प सम्भावनाओं वाली देवात्मा चेतना निष्कृष्ट नारकीयता में आवद्ध होकर रह जाती है। इसे उलटना हर विवेकशील के लिए सम्भव है। वाल्मीकि, अंगुलमाल, विल्व मंगल जैसे जब दृष्टिकोण बदलते ही कुछ से कुछ हो सकते हैं तो अन्य किसी के लिए वैसा आत्म परिवर्तन क्या कठिन हो सकता है।

परिवार एक भला चंगा उद्यान है। उसे सृष्टा की अमानत समझकर कर्तव्य-निष्ठ मां की तरह सुसंस्कृत स्वावलम्बी बनने का प्रयत्न चले। पत्नी के साथमित्र साथी भर मानकर चला जाय। यौनाचार की अति करके उसके शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य को क्षत विक्षत न किया जाय—अनावश्यक प्रजनन से हर किसी के लिए सर दर्द उत्पन्न न किया जाय। लड़की लड़के में भेद भाव करने की कुटिलता से बचा जाय, हर सदस्य के प्रति एक आँख

प्यार की दूसरी सुधार की रखी जाय तो वह भ्रष्टाचार न पनपेगा जिसमें प्रसन्न करने के लिए अनुचित उपहार देने की रीति-नीति अपनाई जाती है। उत्तराधिकारियों के स्वावलम्बी होते हुए उन्हें पूर्वजों की सम्पत्ति मिले यह कानून प्रचलन चोरों ने चोरों के लिए ही बनाया है। हर समर्थ व्यक्ति को अपनी कमाई खानी चाहिए। पूर्वजों का छोड़ा धन—सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन में लगना चाहिए। आलस्य प्रमाद, विलास, अपव्यय, उपेक्षा, असहयोग के विष वृक्ष यदि परिवार के खेत में न पनपने दिये जाय तो कोई कारण नहीं कि अपने इन्हीं घर-घरोदों को तर-रत्नों की खदान के रूप में परिणत न किया जा सके। नये परिवार बनते और पुराने टूटते जा रहे हैं। खण्डहरों और मर-घटों का विस्तार हो रहा है। ऐसी दशा में परिवारों को भटियारों की सराय तथा भेड़ों के बाड़े जैसा कुरुचिपूर्ण देखा पाया जा रहा है तो आश्चर्य ही क्या है।

शरीर, मस्तिष्क, परिवार की तरह ही अर्थ व्यवस्था का भी जीवन तन्त्र पर भारी प्रभाव पड़ता है। आज हर धनी निर्धन हर किसी की आर्थिक आवश्यकता बढ़ी-चढ़ी है और तंगी अनुभव होती रहती है। संचय और अपव्यय के लिए तो कुवेर का खजाना भी कम पड़ता है। अनीति उपार्जन, अपराध, ऋण, रिश्वत बेईमानी का दौर आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के नाम पर चलता है। इस कमी की पूर्ति उस तरह नहीं हो सकती जिस तरह कि लोग चाहते हैं। लोभ लिप्सा को न पटने वाली खाई और न बुझने वाली आग कहा गया है। रावण, हिरण्य-कश्यप, वृत्तासुर, सिकन्दर जैसे धनाध्यक्षों को जब वैभव के पहाड़ हाथ लगने पर भी सन्तोष न मिल सका तो सामान्य स्तर वालों की बात ही क्या है। ऐसी दशा में अर्थ सन्तुलन बिठाने के लिए दृष्टिकोण परिवर्तन का नया आधार अपनाना पड़ेगा। औसत देशवासियों के स्तर का निर्वाह—जितनी लम्बी सौर तेते पाँव—सादा जीवन उच्च विचार वाले, विलास और अपव्यय में कटौती जैसे दूरदर्शितापूर्ण सिद्धान्त अपना लेने पर इस सम्बन्ध की समस्याएँ सहज ही हल हो जाती हैं। आलस्य प्रमाद छोड़ा—श्रमशील बना—काम को प्रतिष्ठा का प्रश्न माना और योग्यता वृद्धि में उत्साह रखा जाय तो स्तर के

अनुरूप आजीविका बढ़ भी सकती है। प्रश्न विस्तार से कम—सदुपयोग से अधिक सम्बन्धित है। थोड़े से साधनों का भी यदि श्रेष्ठतम सदुपयोग बन पड़े तो गरीबी में भी अमीरों से बढ़कर आनन्द के साथ जिया जा सकता है। परिश्रम और ईमानदारी की कमाई ही फाँती फूलती है इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर उपार्जन और उपयोग का सन्तुलन बिठाया जाय तो अर्थ संकट इस तरह किसी को भी न सताये जैसाकि अपव्ययी, दुर्व्यसनी और सामाजिक कुरीतियों की मूढ़ मान्यताओं से ग्रसित लोगों को निरन्तर भुगतना पड़ता है।

इच्छित सम्पदा उपलब्ध कराने के लिए गढ़ा खजाना, लाटरी का नम्बर, लक्ष्मी सिद्धि, ठगी चोरी के फेर में पड़े रहने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा है कि सोचने का तरीका उलट दिया जाय और सामर्थ्य भर कमाने, आवश्यकता भर खर्चने की सुसन्तुलित नीति अपनाई जाय। अध्यात्मवादी और साम्यवादी दोनों इस निर्धारण पर समान रूप से सहमत हैं। लिप्सा और तृष्णा को नियन्त्रित किया जा सके तो निर्वाह में औचित्य की मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए वचन को सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन में लगाया जा सके तो उतने भर से दरिद्रता का युग समाप्त हो सकता है और सीमित साधनों से हर दिशा में हर्ष उल्लास बरस सकता है।

शिक्षितों का असन्तोष देखते ही बनता है। कुछेक को छोड़कर अधिकांश को बेकारी या आत्म आजीविका की शिकायत है। हर कोई ठाट-बाट की नौकरी चाहता है। थम कम से कम आजीविका अधिक से अधिक आमतार से शिक्षितों पर यही भूत चढ़ा रहता है। सभी को ऐसी ही ठाट-बाट की नौकरियाँ चाहिए। वे सभी को मिले कैसे? उन्हें रखे कौन? अभी तो देश में शिक्षा मात्र ३० प्रतिशत है। जब अधिकांश शिक्षित होंगे और सभी ठाट-बाट की नौकरी माँगेंगे तब उनका मनोरथ पूरा होने में और भी विग्रह उत्पन्न होगा। शिक्षा का लक्ष्य मात्र नौकरी ही रहा तो संकट और भी अधिक बढ़ेगा। फलतः उस वर्ग का असन्तोष विग्रह ऐसे संकट खड़े करेगा जैसे कि बिना पढ़े रहने या उत्पन्न न होते।

यहाँ शिक्षा की निन्दा नहीं की जा रही। न उसे अनुपयोगी बताया जा रहा है वरन् कहा यह जा रहा है

कि सामान्य ज्ञान की मेट्रिक स्तर की जीवनोपयोगी प्रारम्भिक शिक्षा सर्वसुलभ हो। उसके बाद कालेज प्रवेश करने से पूर्व हर अभिभावक अपने बच्चों को आजीविका लक्ष्य निश्चित करें। यह मानकर चले कि नौकरी हर वर्ष के छात्रों में से कठिनाई से १०-५ प्रतिशत को मिलेगी। शेष को अन्य आधार अपनाकर अपने कष्ट खड़ा होना होगा। जो भी धारा जिसे अनुकूल पड़े उस स्तर की औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करे। जिन्हें किसी विषय का विशेषज्ञ बनना हो वे उसमें पारंगत होने की दृष्टि से लम्बे अध्ययन की योजना बनायें इसमें हर्ज नहाने पर भोड़िया मसान की तरह नौकरी के लिए कालेज खर्चीली पढ़ाई के लिए धकापेल मचाना सर्वथा अव्यय मत्ता पूर्ण है। नई पीढ़ी के लिए सहकारी उद्योग सहारे उत्पादन तन्त्र खड़े करने और उनमें कठोर करने के लिए उद्यत रहने की बात मस्तिष्क के हर को में बिठा दी जाय तो शिक्षितता की जिस घुटन में घुट और अवाञ्छनीय दिशा में चल पड़ने का जो संकट खड़ा उससे छुटकारे का मार्ग मिल सकता है।

शिक्षा व्यवस्था बनाने वालों का उत्तरदायित्व है कि वे पिछले दिनों से चले आ रहे घपले को बन्द करे असन्तोष उत्पन्न करने वाली शिक्षा पद्धति को बदले और ऐसा कुछ पढ़ायें जिससे जीवनोपयोगी सामान्य ज्ञान के अतिरिक्त आजीविका उपार्जन का भी पथ-प्रशस्त हो हो। कोसने से नहीं—ढरें पर लुढ़कते रहने से भी नहीं बात तब बनेगी जब छात्र, अभिभावक एक शिक्षा तंत्र के निर्माता व्यावहारिक नीति अपनाने और पढ़ने पढ़ाने का समूचा ढाँचा नये सिरे से निर्धारित करें।

व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित समस्याओं में अध्यात्म दर्शन का—आस्तिकता, आध्यात्मिकता धार्मिकता का—मात्र भक्ति और कर्मयोग का धर्म बना रहता है। बौद्धिकता का दायरा तो बहुत बड़ा पर उसे स्वास्थ्य, सन्तुलन, अर्थ परिवार के अतिरिक्त धर्म दर्शन को और जोड़कर जीवन साधना के पंचशील से समेटा जा सकता है। दर्शन क्षेत्र की मान्यताओं को इस कसौटी पर कसा जाना चाहिए कि वे मनुष्य को अधिक सुसंस्कृत अधिक पराक्रमी अधिक उदार सम निष्ठ बनने में किस हद तक सहयोग देती हैं। विविध

धर्म सम्प्रदायों के अन्तर्गत अगणित मान्यताओं और परम्पराओं का ऐसा उलझा हुआ जाल है कि एक को सब ठहराते ही शेष सभी को झूठ ठहराना पड़ता है। एकात्मता की ओर ले चलने वाले नैतिक सूत्र उनमें हैं तो पर प्रत्यक्षतः ऐसी मान्यताओं और परम्पराओं का ही घटा-टोप है जो एक दूसरे से तालमेल बिठाने में सर्वथा असमर्थ हैं। ऐसी दशा में किसी धर्म दर्शन को सर्वांश में मान्यता देने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा है कि उनमें जो भी प्रतिपादित व्यक्ति को पवित्र प्रखर बनाने में समर्थ हों, मनुष्य मात्र पर समान रूप से लागू होते हों उन्हें अपनाया जाय और शेष का खण्डन मण्डन करने की अपेक्षा उसे उपेक्षा में डाल दिया जाय।

देवता को मनुहार उपहार के सहारे प्रसन्न करके बिना उपयुक्त मूल्य चुकाये, कुछ भी मनोरथ पूरा करा लेने की मान्यता का अन्त होना चाहिए। देवत्व का अवलम्बन अन्तरात्मा में दिव्य प्रेरणाएँ उभारने की सम्बेदनात्मक प्रक्रिया के रूप में अपनाया जाय। पूजा उपासना की आत्म परिष्कार की अध्यात्म विज्ञान सम्मत प्रणाली माना जाय। उतने भर से माप-दण्ड भुगतने से छुटकारा मिलने या कोई विलक्षण चमत्कार प्रकट होने जैसी बात कल्पनाओं से निरस्त किया जाय। कथा पुराणों के सुनने सुनाने से नहीं उनमें वर्णित नीति भाव को हृदयंगम करने से बात बनती है। परम्पराएँ अनादि काल से समय-समय पर बदलती रही हैं और भविष्य में भी यह क्रम चलता रहेगा। इसलिए प्रथा प्रचलनों के सम्बन्ध में किसी को भी पूर्वाग्रहग्रस्त नहीं होना चाहिए। नीति मर्यादाओं को छोड़कर सभी प्राचीन निर्धारणों को इसी कसौटी पर कसा जाना चाहिए कि उनमें से कितने तर्क, तथ्य, प्रमाण के अतिरिक्त सामयिक समाधान से किस हद तक सहायक होते हैं। तत्त्वार्थन की असंख्य परस्पर विरोधी धाराएँ और मान्यताएँ प्रचलित हैं। इनमें सब को तो मान्यता नहीं दी जा सकती। विवेक के आधार पर उनकी परिणति को ध्यान में रखते हुए युग दर्शन को नया रूप मिलना चाहिए। बौद्धिक क्रान्ति का प्रयोजन इसी प्रकार पूरा होता है।

सामाजिक क्रान्ति में ऐसे प्रचलनों को निरस्त किया जाना चाहिए जो विषमता, विगठन, अन्याय, अनीचित्य

के प्रष्ट पोषक हैं। पारस्परिक स्नेह, सौमज्य सहयोग का विस्तार करने वाली वसुधैव कुटुम्बकम् की—आत्मवत् सर्वभूतेषु की दृष्टि पोषक प्रथा प्रचलनों को ही मान्यता मिले और शेष को अनीचित्य की कसौटी पर खोटी नज़र होने पर कूड़ेदान में बूझार फेंका जाय।

अपने समाज में नर-नारी के मध्य बरती जाने वाली भेद नीति, जन्म जाति के आधार पर मानी जाने वाली ऊँच-नीच, भिक्षा व्यवसाय, मृतक भोज, वाय विवाह, अनमेल विवाह जैसी अगणित कुप्रथाएँ प्रचलित हैं। इनमें सबसे भयंकर है विवाहोन्माद जिसमें गरीबों द्वारा अमीरों का स्वागत बनाकर अपने वर्तन, कपड़े गैँवा बैठने की मूर्खता की जाती है। सभी जानते हैं कि खर्चीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं। फिर भी बुद्धिमान और मूर्ख उस सर्वनाशी कुप्रथा को छाती में लगाये बैठे हैं। इन सभी कुप्रचलनों में भ्रान्ति और अनीति बेतरह गुथी हुई हैं पर परम्परा के नाम पर उन्हें अपनाया और सर्वनाश के पथ पर बढ़ते चला जा रहा है। यह दुर्बुद्धि रुकनी ही चाहिए।

अपना समाज सहकारी सहायक बने। उसकी अभिनव संरचना में कौटुम्बिकता के शाश्वत सिद्धान्तों का समावेश किया जाय। न जाति लिंग की विषमता रहे और न आर्थिक दृष्टि से किसी को गरीब अमीर रहने दिया जाय। न कोई उद्धत अहङ्कारी घनाध्यक्ष बने न किसी को पिछड़ेपन की पीड़ा भत्सना सहन करनी पड़े। अपराध करने की गुंजायश ही न रहे यदि कहीं कोई उपद्रव उभरे तो उसे लोक शक्ति द्वारा इस प्रकार दबोच दिया जाय कि दूसरों को वैसा करने का साहस ही शेष न रहे। मिल-बाँटकर खाने और हिल-मिलकर रहने की समाज संरचना के अन्तर्गत ही मनुष्य को सुख-शान्ति से रहने का अवसर मिल सकता है।

पाँच अरब मनुष्यों में पाई जाने वाली भ्रान्तियों, विकृतियों, दुष्प्रवृत्तियों से जूझना कठिन लगता भर है। युग मनीषा यदि उसे कर गुजरने के लिए तत्परता प्रकट करे तो सत्य में हजार हाथी का बल होता है इस उक्ति के अनुसार श्रृंखला का वातोवरण भी इसी प्रकार बन सकता है जिस प्रकार कि मुट्ठी भर लोगों ने अग्रगामी होकर दुष्टता भरे प्रचलनों से लोक मानस को भ्रष्ट करके रख दिया है।

अखण्ड-ज्योति

युग मनीषा कहाँ पाये, कहाँ खोजे, कहाँ पुकारें?

धन, शस्त्र, शासन, ज्ञान, विज्ञान और संघ की शक्तियाँ इन दिनों विभिन्न क्षेत्रों में अपने चमत्कार दिखातीं और मोर्चा फतह करती देखी जाती हैं। इनकी महत्ता और उपयोगिता में किसी प्रकार का सन्देह न करते हुए भी सोचना यह पड़ेगा कि समस्त समस्याओं के प्रमुख कारण चिन्तन के भटकाव को रास्ते पर लाने का उत्तरदायित्व कौन सम्भाले? कौन आगे बढ़े और कौन उसका सहयोगी रहकर व्यापक प्रयोजन को पूरा करे?

जहाँ तक आस्था संकट का प्रश्न है वहाँ तक उस गहराई तक पहुँच सकने की क्षमता मात्र धर्म में ही दीखती है। धर्म शब्द से जिन्हें चिढ़-एलर्जी है उन्हें युग मनीषा शब्द से उस तथ्य को समझना चाहिए। अन्तराल के मर्मस्थल तक उपरोक्त छैः प्रमुख शक्तियों में से एक भी—एकाकी बलवृत्ते समर्थ नहीं हो सकतीं। उनका संयुक्त प्रभाव भी सीमित परिणाम ही प्रस्तुत कर सकता।

युग समस्या के समाधान में युग मनीषा को अग्रिम पंक्ति में खड़ा होना चाहिए। कृष्ण आगे थे; पाण्डवों के सहयोग से महाभारत में विजय मिली। राम आगे थे वानर सेना ने लंका को जीता। वशिष्ठों के नेतृत्व में रघुवंशियों की पीढ़ियाँ सतयुगी व्यवस्था बनाती रहीं। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के सहयोग से भारत को चक्रवर्ती बनाया। समर्थ के नेतृत्व में शिवाजी छत्रपति बने। मत्त ऋषियों ने अपने समय में समस्त संसार को प्रगति और समृद्धि की ओर धकेला और जगद्गुरु की भूमिका निभाई। शंकराचार्य को मान्धाता का—बुद्ध को हर्षवर्धन अशोक का समर्थन मिला और बड़े काम सम्पन्न हुए। सहयोग सभी का चाहिए। भौतिक क्षेत्र की हर सामर्थ्य का भी इतने पर भी जन मानस के अन्तस् की भाव श्रद्धा का स्पर्श करते उसे भ्रान्तियों की तमिस्रा से उबार कर अरुणोदय के आलोक से सम्बद्ध करने का काम मनीषा के हिस्से में रहता है। उसके द्वारा उपेक्षा वरतने पर समाधान मिलेगा नहीं और बिल्ली के गले में घण्टी बाँधने में असमर्थ चूहों की सभा बिना किसी निर्णय के

विसर्जित होगी।

पिछले दिनों संसार में चमत्कारी परिवर्तन हुए हैं उसमें दृश्यमान भूमिका किसी की भी क्यों न रही हो—श्रेय किसी को भी क्यों न मिला हो। परोक्ष पृष्ठभूमि बनाने में मनीषा ने ही अपनी गरिमा और प्रखरता का परिचय दिया है। कार्ल मार्क्स की भूमिका के बिना वर्तमान साम्यवादी विस्तार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। नीत्से का दर्शन ही जर्मनी, इटली आदि को नाजी बनाने का निमित्त कारण था। दो महायुद्धों की जिम्मेदारी तत्त्वतः ऐसे ही दार्शनिक प्रतिपादनों के हिस्से में आती है। रूसों के प्रतिपादन ने विश्वमानव के चिन्तन को प्रभावित न किया होता तो प्रजातन्त्र की अभूत पूर्वा कल्पना इतनी तूफानी गति से संसार के अधिकांश भाग को अपनी लपेट में न ले पाती। अपने समय में मेजिनी के प्रतिपादन पीड़ित पक्ष को तन कर खड़ा होने का साहस प्रदान करते रहे हैं। बुद्ध ने विचारक्रान्ति की मशाल का भी तो समर्थ सहयोगियों की कमी नहीं होती, वह नेतृत्व न मिलता, तो अन्य माध्यमों से समर्थ को उलट देने वाले उस बुद्धिवाद का कोई आधार ही खड़ा न होता। प्रश्न श्रेय सहयोग का नहीं वह किसी को भी मिल सकता है, किसी का भी हो सकता है पर उन चिनगारियों को भुलाया नहीं जा सकता जो चमकी-भड़की और अपनी लपेट में वन प्रदेशों को ईंधन बनाकर दावानल की तरह गगनचुम्बी बनती चली गईं।

सुकरात, अफलातून, अरस्तू, जैसे मनीषियों के परोक्ष अनुदानों के गुण गुण मुकुट धारियों जैसे होते तासे बजाकर नहीं होते फिर भी तथ्य बताते हैं कि उनकी भूमिकाएँ शत सहस्र शासकों से बढ़कर रही हैं। जापान के गान्धी कागावी मूलतः समाज निष्ठ सेवा भावी सन्त थे। समय ने सहयोग दिया और वे जापान के पतित वर्ग के मसीहा बन गये। ऐसे तो भारत में भी कबीर विवेकानन्द, दयानन्द, गुरु गोविन्द सिंह, विनोबा आदि की भूमिकाएँ भी अविस्मरणीय हैं। महत्वपूर्ण सेवा

संस्थान खड़े करने बाबा साहब आकटे, हीरा ताल शास्त्री, श्रद्धानन्द, स्वामी केशवानन्द, राजा महेन्द्र प्रताप, महामना मालवीय आदि के व्यक्तित्व और कर्तृत्व को चिरकाल तक स्मरण रखा जायगा। ये प्रतिभाएँ वस्तुतः युग मनीषियों की श्रेणी में ही आती हैं।—लेखनी, वाणी, संगठन आदि जिसे जो उपाय सूझा उसने वह अपनाया किन्तु लक्ष्य एक ही रहा—दिग्भ्रान्त लोक मानस को आदर्श उत्कृष्टता अपनाने के लिए साहसिक उमंगों से भर देना।

धन, कौशल, बाहुबल आदि की कमी पहले भी नहीं थी, अभी भी नहीं है। शासन भूतकाल में भी सामर्थ्य-वान रहे हैं। जनता को लोक शक्ति पहले भी विद्यमान थी, पर उन्हें दिशा न मिलने के कारण भटकाव की स्थिति बनी रही और उपरोक्त शक्ति स्रोतों का अवांछनीय अपव्यय दुरुपयोग होता रहा। उसे विखराव को समेट कर एक बूहारी में कस देने और उसे सुनियोजित सृजन प्रयोजन में लगा देने की व्यवस्था यदि बनी होती तो साधनों के अभाव का—प्रतिकूलता का रोना—रोना पड़ता है और स्वल्प साधनों में ही शान्ति समृद्धि और स्नेह सहकारिता का भरा-पूरा स्वर्गीय वातावरण आज की स्थिति में भी बना हुआ होता। अभाव उस प्रखरता का है जिसे न केवल उच्चस्तरीय प्रतिपादन प्रस्तुत करने पड़ते हैं वरन् निज की आदर्शवादिता का परिचय देते हुए जन-साधारण को आश्वस्त भी करना पड़ता है। युग मनीषा की यह दुहरी भूमिका निभाते हुए ही लोक-शिक्षण की वास्तविक क्षमता अर्जित करनी पड़ती है।

बुद्धिवाद एक बात है और मनीषा दूसरी। बुद्धिवादी तो अपनी प्रखरता और चतुरता के बलवृत्ते धुआधार भाषण देने से प्रदर्शन जुलूस के घटाटोप खड़े करने में देखते-देखते सफल हो सकते हैं। प्रतिभावान सम्पन्नों का गला पकड़ कर इच्छित धन राशि, एकत्रित कर सकते हैं और उसके सहारे आदर्शवादी ढकोसले भी कागजी रावण की तरह खड़े कर सकते हैं। यह चित्र-विचित्र तमाशे रोज ही देखने को मिलते हैं। अहम्मन्यता, यश-लिप्सा साथ ही धन अपहरण के अनेकों क्षेत्रों में यह दरबार लगाये रहने वाले मजमेबाज अपने को अभिनेता

स्तर का नेता सिद्ध करने वाले कौतूहल रचते रहते हैं। यह विडम्बनाएँ सायङ्काल के लाल-नीले अम्बर-डम्बर की तरह सुहावनी तो लगती हैं पर उनके बलवृत्ते वैसा कुछ ऐसा बन पड़ने की आशा नहीं बँधती, जिसमें उज्ज्वल भविष्य के स्वप्न साकार होते हैं।

बुद्धि व्यवसायियों की विरादरी एक है 'युग मनीषियों की दूसरी। बुद्धिवाद मानसिक विलक्षणता है वह नट गायक की तरह अपनी कला का चमत्कार दिखाता और चकाचौंध भरा आकर्षण उत्पन्न करता है। मनीषा न केवल आदर्शवादी प्रतिपादन करती है—न केवल लोक-शिक्षण में निरत होती है, पर साथ ही इस बात की आवश्यकता सर्वोपरि समझना है कि आदर्शवादी लोक-शिक्षण के लिए प्रवक्ता का चरित्र ऋषि-कल्प होना चाहिए। उसे अपनी स्थिति सन्देहों से परे और प्रामाणिकता की हर कसौटी पर खरी सिद्ध करनी होती है। जो दूसरों से कहा जा रहा है उसे अपने निजी चरित्र चिन्तन से पूरी तरह उतारने के उपरान्त ही दूसरों को यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि प्रतिपादन शक्य एवं व्यावहारिक भी है या नहीं। क्या कहा जा रहा है, इस पर मनोरंजन स्तर का ही ध्यान जाता है। प्रभाव तब पड़ता है जब कौन कहता है वाली बात का समाधान मिल सके। भौतिक क्षेत्र में प्रतिभा, सम्पन्नता, सुन्दरता चतुरता, समर्थता एवं कला-कौशल का बखान करने से भी प्रभावोत्पादन बन पड़ता है, पर आस्थाओं को उठालने की सामर्थ्य उन्हीं व्यक्तित्वों में उत्पन्न होती है जो केवल आदर्शवादी प्रतिपादन करते हैं वरन् अपने उज्ज्वल चरित्र सेवा साधना तथा त्याग बलिदान की दृष्टि से ही अपनी वरिष्ठता सिद्ध करते हैं। युग मनीषा के नाम से इसी वर्ग का उल्लेख किया जा रहा है। उन्हें युग ऋषि भी कहा जा सकता है। बकवासी वाचावतार की कीमत बाजार में कुछ भी क्यों न हो, पर जब वह आदर्शवादी लोकशिक्षण के क्षेत्र में प्रवेश करेगा तो अपने व्यावसाय, निर्वाह, संचय, स्वभाव आदि के निजी स्वरूप का वर्हीखाता भी खोलकर जनता के सामने प्रस्तुत करना पड़ेगा। इसके अभाव में नेता अभिनेता की हैसियत प्रायः एक जैसी बनकर रह जाती है।

अखण्ड-ज्योति

महाकाल ने युग मनीषा को पुकारा है। इसे कहाँ पाया, कहाँ बुलाया जाय। यह खोजने पर आँखों के सामने अंधेरा छाता है। धर्मोपदेशकों, देशभक्तों, साधु-संन्यासियों का क्षेत्र ढूँढ़ते हैं—कलाकारों, साहित्यकारों का दरवाजा खटखटाते हैं—धर्म-सम्प्रदायों, मठ मन्दिरों, तीर्थों को खोजते हैं, तो भी कुछ वैसा नहीं मिलता, जिससे युग मनीषा की आवश्यकता पूरी होती हो। सेवा-संस्थानों की कमी नहीं, धर्मस्थान नित नये बनते हैं। इनमें आश्रय पाने वाले लगते तो धर्म-ध्वजियों जैसी आकृति के हैं, पर तंगे उधाड़ कर देखते हैं तो लवादे के नीचे वही सब दीखता है जिससे निराशा ही नहीं होती वरन् मर्मभेदी पीड़ा भी होती है। फिर कहा क्या जाय? किससे पूछा जाय? खोई हुई संस्कृति सीता का अता-पता भी तो कोई नहीं बलता। सभी स्तब्ध हैं। सर्वत्र असमर्थता का महाल है।

ऐसी दशा में एक ही उपाय सूझता है कि अपने निजी परिवार को लेकर समय की माँग को टूटे-फूटे साधनों से पूरा करने के लिए हिम्मत तो दिखाई जाय। सम्भव है इस श्री गणेश के उपरान्त समर्थों का साहस उभरे तो सेतुबन्ध बँधते समय कहाँ से कुशल नल-नीलों का समुदाय आ टपके। गुरुगोविन्द सिंह ने अपने पुत्रों की बलि चढ़ाई थी। “पाँच प्यारे” भी वही थे जिनने बलिदान के लिए तलवार के सामने शिर झुकाया। बुद्ध के सहयोगियों में उनका पुत्र राहुल भी था। अशोक की बेटी संघ मित्रा भी संन्यासिनी बनी थी। विवेकानन्द की शिष्या निवेदिता ने भी हाथ बँटाने का निश्चय किया था। आवश्यक नहीं कि परिवार में वंशजों को ही गिना जाय। आदर्शों के क्षेत्र में हाथ बँटाने वाले—अनुगमन करने वाले सहयोगी भी वंशजों की श्रेणी में गिने जाते हैं। ऋषि गोत्रों का प्रचलन वंश परम्परा से ही नहीं शिष्य परम्परा के आधार पर भी हुआ है।

दूसरों पर अपना क्या बस? विरानों पर अपना क्या अधिकार? उन्हें तो उपदेश ही दिये जा सकते हैं। बहुत हुआ तो अनुरोध आग्रह तक बढ़ा जा सकता है पर अपनों पर तो अपेक्षाकृत अधिकार होता है और आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग भी किया जाता है।

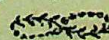
हरिश्चन्द्र ने अपनी पत्नी को भी बेच दिया था। नारद ने अपने चारों पुत्र सनक, सनदग, सनातन और सरत कुमार भक्ति प्रसार के क्षेत्र में धकेल दिये थे। नचिकेता ने अपने पिता वाजिसवा से पूछा कि—गायों के उपरान्त एक मैं ही शेष रह गया हूँ, मुझे भी किसी को दान दे दीजिए न। व्यंग उपालम्ब की परवा न करते हुए पिता ने उसे हाथ पकड़ कर आचार्य यम के हवाले कर दिया। कहीं लोग शिष्य पुत्र होने की बात कहते हैं और “कुछ आदेश कीजिए” पूछते हैं तो इच्छा होती है कि यदि इन पर अधिकार चले तो नचिकेता की तरह इन्हें किसी महान उद्देश्य के लिए समर्पित कर दिया जाय। शुकदेव

सर्व त्याश्व निर्वाणं निर्वाणार्थि च मे मनः ।
त्यक्तव्यं चेन्मना सर्वं वरं सत्वेणु द्रीयलाम् ॥

मेरा मन मोक्ष चाहता है। मोक्ष क्या है? सर्वस्व का त्याग ही मोक्ष है। हे मन ! यदि एक दिन यहाँ सब कुछ को छोड़कर ही चले जाना है तो जो कुछ भी तेरे पास है उसे अभी निम्न कल्याण के लिए क्यों नहीं दे दिया जाय? जिससे सहज ही में मोक्ष प्राप्त हो जावे।

अपने पिता के इकलौते थे। पिता ने उन्हें रोका नहीं, वरन् उकसाया। कुन्ती ने भी अपने पुत्रों को विलास नहीं, देव मानव बनाया और वैसे ही कुछ कराने के लिए कृष्ण के हाथ में सौंपा। नारद के दर्शन तो असंख्यों को किये थे, पर उनके शिष्य ध्रुव, प्रह्लाद, वाल्मीकि जैसे कुछेक ही निकले। रामकृष्ण परमहंस के भी एक शिष्य था। विरजानन्द के भी एक ही। यों वे दो तथाकथित सहस्रों शिष्यों से सदा ही घिरे रहते थे, काम के उन्हें भी कहाँ मिले।

नजर अखण्ड-ज्योति परिवार पर है उसमें आश्रय वानों की संख्या कम नहीं लगती। मन आता है उन्हीं में से कुछ को युग मनीषा की छुटपुट निभाने और रीछ-वानरों के संयुक्त प्रयास से बन महान पुरुषार्थ की पुनरावृत्ति का प्रयत्न किया जाय।



सृजन प्रयासों में धर्मतंत्र का शासन के साथ सहकार

धर्म और शासन की समानान्तर गरिमा का प्रतिपादन करते हुए कहा जा चुका है कि उपलब्ध अनेकानेक शक्ति स्रोतों में यही दो प्रमुख हैं। अतः विधत् स्थिति में होते हुए भी वे कम से कम अपना स्वरूप तो स्थिर रखे हुए हैं और इसके प्रभाव से प्रसित न सही उभय क्षेत्रीय अराजकता की रोकथाम तो हो ही रही है। भौतिक क्षेत्र की शासन और चेतन क्षेत्र की धर्म जिम्मेदारी उठाये यही उनकी अपनी मर्यादाएँ हैं। मनुष्य जड़ शरीर और चेतन अन्तःकरण का समुच्चय है।

शासन की शक्ति असाधारण है। वह चाहे तो अपने तन्त्र का इस प्रकार उपयोग कर सकती है जिससे आदर्शवादी चिन्तन और उच्चचरित्र के निर्माण में कारगर साहसिकता मिल सके। इसके लिए उसे अपने स्वरूप, कार्यक्रम एवं निर्धारण में अपेक्षाकृत अधिक बड़े और तेज कदम उठाने चाहिए। अपने भारतीय शासन से ऐसी अपेक्षा की जाती है कि वे गाँधीजी की परम्परा को जीवन्त एवं अग्रगामी बनाने के लिए उससे भी अधिक प्रयत्न करें, जैसे कि किये जा रहे हैं।

जिन कर्मचारियों के द्वारा शासन तन्त्र चलता है उन्हें केवल क्रिया कुशल वरन् चिन्तन और चरित्र की दृष्टि से भी ऐसा होना चाहिए जिससे उन्हें जन-साधारण का विश्वास, समर्थन और सहयोग मिल सके। उनकी नियुक्ति मात्र शिक्षा पर आधारित नहीं वरन् पिछले अनुभवों और प्रयत्नों की भी वरिष्ठता माना जाय। छोटी आयु के लड़के उच्च पदों पर आसीन न किये जायें। इसके लिए कार्य पद्धति इतनी सरल बनाई जाय कि बिना पेचीदा गियोग में उलझे पारस्परिक सहयोग पर निर्भर बिना समय गँवाये और खीज उत्पन्न किये—सरलता पूर्वक सम्पन्न होते रहें। कार्य पद्धति में प्रस्तुत पेचीदागियों को सरल किया जाना चाहिए ताकि वे लम्बी अवधि न गंवाकर काम को जल्दी निपटा दिया करे। अधिकारियों का हाथ में हैरान करने की क्षमता न रहे तो निश्चय-

खोरी के कारण अपंग बने शासन तन्त्र को नव जीवन प्राप्त हो सकता है और उपयोगी योजनाओं में जनता का सहयोग मिल सकता है। यों यह कार्य दोनों पक्षों का है। अधिकारी और नागरिक दोनों ही अपने-अपने पथ के कर्तव्य निभाने के लिए उत्तरदायी हैं।

चुनाव में सही और श्रेष्ठ प्रतिनिधि चुने जा सकें इसलिए वोट का अधिकार सर्वजनीन न रहकर समझदारी एवं ईमानदारी की कुछ शर्तें पूरी करने वालों को ही दिया जाय। इसी प्रकार प्रतिनिधित्व के लिए हर किसी को खड़ा होने का अधिकार न हो। इसकी वरिष्ठता इससे पूर्व ही प्रामाणित होनी चाहिए। जनता को यह अधिकार रहे कि गुटबन्दी के कारण, भ्रान्त प्रचार के कारण तो नहीं, पर यदि भ्रष्टाचार-रत पाया जाय तो उन्हें वापिस भी बुला सके। चुनाव में इन दिनों जैसा दुष्प्रचार चलता है, जैसा जितना धन व्यय होता है उस पर कड़ा अंकुश लगे।

जनता को भी मौलिक अधिकारों की तो छूट रहे पर उस बहाने स्वेच्छाचार बरतने की गुंजायश न रहने दी जाय। कर्तव्य पालन के लिए हर किसी को वापिस किया जाय। मात्र अधिकार और सुविधा की ही रट न लगती रहे। उच्छृंखलता और अवरोधों का आरम्भ ही न हो सके ऐसा वातावरण बने। गुण्डागर्दी का आचरण भी अपराधों में गिन लिया जाय और उसकी रोकथाम के लिए किसी के द्वारा मुकदमा चलाये जाने की प्रतीक्षा न करके सहकारी हस्तक्षेप का ही विषय बने। अपराधियों को सुधारा तो जाय पर साथ ही दण्ड की कठोरता में कमी न की जाय। इस क्षेत्र में बरती गई सरलता से अपराध घटते नहीं बढ़ते हैं। व्यक्तिगत, पारिवारिक जीवन में अनैतिक आचरण की रोकथाम करने के लिए पुरानी सामाजिक पंचायतों की परम्परा को पुनर्जागृत किया जाय। अवज्ञा करने वालों को वे पंचायतें सरकारी प्रताड़ना भी दिना सकें।

शिक्षा स्वावलम्बी बनाई जाय। मैट्रिक स्तर का जीवनोपयोगी सामान्य ज्ञान सबको सरलतापूर्वक उपलब्ध हो। पर आगे की शिक्षा व्यवस्था में फूँक-फूँक कर कदम उठे। नौकरी उद्देश्य न रहे। स्वावलम्बन के लिए उद्योगों का शिक्षा के साथ समावेश रहे। सरकारी नौकरियों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उतने ही छात्र भर्ती किये जाय जो न केवल स्तरीय हों वरन् खप भी सकें। उपयोगी विषयों के विशेषज्ञ बनने की इच्छा वालों को ज्ञानार्जन की अतिरिक्त सुविधा रहे। पाठ्य क्रम बहुत बोझिल न हो। साथ ही उनमें चरित्र निष्ठा और समाज निष्ठा को आदर्शों की हृदयंगम कराने वाली प्रेरणा भरी रहे।

उद्योगों का विकेन्द्रीकरण हो। वे छोटी इकाइयों में बँटें और सुदूर देहातों तक फैले हों। सहकारिता के आधार पर चलें। बड़े मिलों को कुटीर उद्योगों के प्रति स्पर्धा न करने दी जाय। टूट-फूट की मरम्मत एवं पुराने को नया बनाने की व्यवस्था को अतिरिक्त प्रोत्साहन दिया जाय। शहरों की आबादी बहुत न बढ़ने दी जाय। कस्बों को विकसित किया जाय ताकि वे समीपवर्ती छोटे देहातों की प्रगति एवं सुविधा में सहायक सिद्ध हो सकें। विलासिता के साधनों का उत्पादन घटाया और दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ सर्वत्र सुलभ हों, औद्योगिक नीति का आधार ऐसा ही बने।

सहकारिता का हर क्षेत्र में प्रवेश हो। संयुक्त परिवार की आवश्यकता पूरी करने वाले मुनियोजित कर्म्युत चलें। विवाहों पर सामाजिक नियन्त्रण हो और वे पंजीकृत हों। जाति निरा तथा आर्थिक आधार पर पनपने वाली द्विपमता को देर तक सहन न किया जाय। कुरीतियों पर होने वाले अपव्यय निषिद्ध रहें। विद्यालयों की तरह पुस्तकालयों की भी स्थापना है। साहित्य और कला को उच्छृंखल न बनने देने के लिए उनके निर्माताओं को मुरुचिपूर्ण सृजन की शर्त पालन करनी पड़े। मौखिक अधिकारों के नाम पर किसी को भी ऐसे काम करने की छूट न मिले जिसमें वह सार्वजनिक हित के विरोध में काम करे। नशा उत्पादन जैसे कार्यों की रोकथाम अंकुश कड़े करने से ही हो सकती है। अर्थ संग्रह की सीमा हो। उसी प्रकार निजी खर्च पर भी अंकुश रहे। इसके बिना

दुर्व्यसनो और कुप्रचलों की रोकथाम न हो सकेगी।

ऐसे सुझाव और भी हो सकते हैं जो स्थायी सामयिक एवं स्थानीय आवश्यकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हों। यह चरित्र निष्ठा समाज निष्ठा में सहायक एवं व्यक्तियों को विकसित करने वाली विधि व्यवस्था की ओर कुछ संकेत हैं। इन्हें अपनाने के लिए शासन को सहमत प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि वह पनपने वाली अनीति अव्यवस्था की रोकथाम में अपनी समुचित भूमिका निभा सके।

वस्तुतः यह कार्य राजनीतिज्ञों और उस क्षेत्र की पेचेदगियाँ, वारीकियाँ समझने वालों का है। सुधार और दबाव का कार्य उन्हीं के हाथ छोड़ देना चाहिए। प्रजा आगमन की नीति लोक मंगल के सभी कार्यों में सरकारी प्रयत्नों में सहयोग देने और भाग लेने की है। शिक्षा प्रसार वृद्धारोपण, स्वास्थ्य सम्बर्धन, समाज कल्याण, परिवार नियोजन, वचत आन्दोलन, सहकारिता, कुटीर उद्योग, नशा निषेध, अपराध नियमन जैसे लोकमंगल से सम्बन्धित सभी सरकारी कार्यों में भरपूर सहयोग देने की है। इसके बदले न श्रेय लेना है और न पारिश्रमिक। श्रेय अफसरों को मिले। पुरस्कार अन्य उपयोगी कामों में लगे। इसी में धर्मतन्त्र की गरिमा है। न आश्रित रहा जाय न असहयोग किया जाय, विना टकराये जितना सहयोग सम्भव हो अपनी ओर से करते रहा जाय। साथ ही धर्म क्षेत्र की विकृतियों को देखते हुए किसी अतिरिक्त सहयोग अनुदान की भी आशा न रखी जाय। जब सरकार जनता से वांछित सहायता अर्जित कर सकती है तब कोई कारण नहीं कि अपनी वरिष्ठता और उपयोगिता सिद्ध करके उसी जनता से भावभरा स्वेच्छा सहयोग अर्जित न किया जा सके, जिसकी सहायता से सरकार अपना खर्चीला तन्त्र चलाती है। प्रजा अभियान का तथ्य सृजन है उसमें सहयोग और सद्भावना की ही प्रधान भूमिका हो सकती है। यही अपनी सुस्पष्ट नीति है। जन साधारण की तरह शासन तन्त्र के साथ भी अपनी ओर से सम्बन्ध इसी आधार पर मधुर सम्बन्ध रखने की है, विग्रह की नहीं। अच्छा है शासन भी धर्म के प्रति ऐसा ही सहकारी सद्भाव वरतें।

नवसृजनका पूर्वार्ध जो हो चुका



जन मानस के परिष्कार का प्रज्ञा अभियान आरम्भ करते बापों ने इस तथ्य का पूरी तरह ध्यान रखा है कि लेखनी, वाणी, दृश्य आदि के सहारे लोक शिक्षण करने के साथ-साथ ऐसे रचनात्मक कार्यों का भी समावेश रखा जाये जो पुरोहित और यजमान को साथ-साथ धर्मानुष्ठान में जुटाये रहें। व्यक्ति का निर्माण ही या समाज का उसे परामर्श प्रस्तावों तक सीमित रखा जा सकता है। जो कहा जा रहा है उसे कार्यान्वित करने की योजना भी साथ-साथ जुड़ी रहनी चाहिए। सेवा धर्म की विशेषता यही है कि जहाँ उस माध्यम से परमार्थ होता है वहाँ स्वार्थ भी कम नहीं सधता। अनेकों सद्गुण इस प्रक्रिया के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। स्नेह, सद्भाव, उदारता, त्याग, संयम आदि विषमताएँ सेवा का अवलम्बन लेने के साथ-साथ ही बढ़ने लगती हैं। दूसरों के लिए मेंहदी पीसने वाले के हाथ अनायास ही रच जाते हैं। सदाशयता का बीजारोपण करने वाले अभीष्ट फसल काटने में तभी सफल होते हैं, जब पौधों की सिचाई का सुप्रबन्ध रखें। सेवा को सिचाई कह सकते हैं। ईसाई धर्म के प्रचारकों ने अपने धर्म का विस्तार करने में प्रवचनों का क्रम और सेवा सहायता के माध्यम से सहानुभूति अजित करने के प्रयास को प्रमुखता दी है। प्रज्ञा अभियान को भी लोकमानस के परिष्कार का लक्ष्य पूरा करने के लिए अपनी योजना में जन-सेवा का सघन समावेश करके आगे बढ़ने के अतिरिक्त और कोई चारा है नहीं।

प्रचार प्रयोजनों में हर शिक्षित को घर बैठे नित्य नियमित रूप से युग साहित्य की एक पुस्तिका पहुँचाने, वापस लेने की स्वाध्याय प्रक्रिया व्यापक रूप से चल रही है। इस योजना के अन्तर्गत ३६० दिन के लिए ३६० पुस्तिकाएँ हर वर्ष छपने और जानरथ में सँजोकर घर-घर उन्हीं पहुँचाने का प्रावधान है। इसी की सहयोगी दूसरी योजना है हर मुहल्ले स्टाइड प्रोजे-

क्टर के माध्यमसे मुहल्लों में मनोरंजन चित्र, प्रकाश चित्र प्रदर्शन कार्यक्रम रखना। चित्रों की व्याख्या करते हुए युगान्तरीय चेतना जन-जन के गले उतारना यह सत्संग प्रचलन हुआ। स्वाध्याय और सत्संग की यह समन्वित प्रक्रिया हर दिनों हजारों तबकों को अभिनव प्रेरणा देती और दूरदर्शी विवेकशीलता अपना कर नये ढाँचे में बढ़ने के लिए गरम करती है। तीर्थयात्रा, धर्म प्रचार की पदयात्रा पर निकलने वाली टोपियाँ साइकिलों पर सामान लदा कर खिंची और ढपती, निकान के सहारे युग गायनों को गुंता-गुंता घर-घर, अन्ध जगाती आगे बढ़ती हैं। प्रचार तन्त्र का यह छोटा किन्तु अत्यन्त प्रभावी ढिपक्रम देखने ही योग्य है। उसकी परिणति प्रतिक्रिया को जिनने निकट से—भीतर घुसकर देखा है वे यही कहते पाये गये हैं कि साधन हीन तन्त्र द्वारा जीवट के ब बूते इतना दुस्ताहम कर बैठना और शकट को इतना आगे घसीट ले जाना अद्भुत है। इसे स्वयं-बापों की सहायता से गोवर्धन उठाने जैसा—अपने समय का चमत्कार कहा जा सकता है।

इस प्रचार प्रक्रिया को प्राणवान बनाने में सेवा धर्म का—रचनात्मक कार्यक्रम का—समावेश अनिवार्य रूप से आवश्यक था। इसके लिए कुछ देखने में छोटे किन्तु परिणाम में महान प्रयास हाथ में बंधे गये हैं। निरक्षरता अपने समाज पर लदा गरीबी जैसा अभिशाप है। पिछड़े-पत के कारणों में दरिद्रता एवं अशिक्षा भी कम कष्ट-कारक नहीं है। ७० प्रतिशत देशवासियों को शिक्षित बनाना सरकार के बतबूते से बाहर है। स्कूली शिक्षा में कुछ लाख बच्चे का प्रबन्ध ही उसके लिए कठिन पड़ता है फिर ७० करोड़ में से जहाँ ४७ करोड़ नर-नारियों को पढ़ाने का प्रश्न हो वहाँ उतना भार किसी सरकार पर भी नहीं लद सकता। इसे उदार लोक चेतना द्वारा सम्पन्न किया जाना चाहिए। प्रज्ञा परिजनों की संख्या दस लाख के लगभग है। वे दो-दो घंटा समय

अपने-अपने गली मुहल्ले में छोटी प्रौढ़ कक्षाएँ लगाने में जुटाये गये हैं और आशा की गई है कि निरक्षरता के अभिशाप से इस आधार पर जूझना सम्भव हो जायगा। इस योजना के अन्तर्गत जहाँ व्रतशील युग शिल्पी स्वयं काम करते हैं वहाँ घर-घर जाकर भावनाशील शिक्षितों से सम्पर्क साधते हैं और उन्हें विद्या ऋण चुकाने के लिए थोड़ा समयदान करते रहने के लिए सहमत करते हैं इस प्रकार अध्यापकों की एक बड़ी सेना दिन-दिन सुविस्तृत होती चली जा रही है और उस माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किये गये प्रौढ़ नर-नारियों को साक्षर बनाने की योजना अत्यन्त उत्साहपूर्वक; आश्चर्यजनक सफलता के साथ आगे बढ़ती चली जा रही है।

शिक्षा प्रसार की तरह ही घर-घर में शाक वाटिका उगाने और कुपोषण से राहत पाने के लिए आंगन, छत-छप्पर पर शाक-भाजी, चटनी के लिए धनिया, पोदीना अदरक, हरी मिर्च आदि उगाने की प्रतिस्पर्धा खड़ी कर देना, देखने में तो एक मजाक जैसा काम है पर उतने भर से जो आर्थिक बचत तथा आहार सन्तुलन की आवश्यकता पड़ती होती है उसका व्यापक परिमाण पर्वत जितना बड़ा होता है। सबसे बड़ी बात है हाथ पर हाथ रखे बैठे रहने की अपेक्षा उत्पादन की आवश्यकता अनुभव करने की प्रवृत्ति। यह दिशा पकड़े तो फिर आगे की बात भी सूझेगी और संव्याप्त आलस्य प्रमाद से राहत मिलेगी। दृक्षारोपण तो वही कर सकते हैं जिनके पास भूमि है, पर जिन्हें किराये की कोठरियों में रहना पड़ता है वे भी वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव से बचने के इस प्रयास में तो सम्मिलित हो ही सकते हैं।

इस दिशा में अगला कदम गृह उद्योगों के ऐसे प्रयासों का नम्बर आता है जिन्हें घर के बैठे ठाले लोग खाली समय में चलाते रह सकते हैं और हर हाथ की काम की आवश्यकता किसी अपने-अपने बलवृत्ते आगे बढ़ा सकते हैं। इसे सुचारु रूप से चलाने के लिए सहकारी पद्धति अपनाई जा रही है और हिलमिल कर करने और मिल-बाँट कर खाने के सिद्धान्त का घर-घर में प्रचलन किया जा रहा है।

सामूहिक धर्मदान के सहारे स्वच्छता अभियान चलाना—मलमूत्र से लेकर कूड़े-करकट तक की गन्दगी को बहुमूल्य खाद के रूप में बदलना ऐसा काम है जिसमें सभ्यता, स्वच्छता, सेवा, समाज निष्ठा, नागरिक जिम्मेदारी, सहकारिता जैसी अनेकों सतवृत्तियों को जन-जीवन में विकसित होने का अवसर मिलता है। सामूहिक धर्मदान की तरह आजीविका के एक अंश को नियमित रूप से मुट्ठी फण्ड के रूप में निकालने का जो उत्साह उत्पन्न किया गया है उसके सहारे पुस्तकालय, व्यायामशाला, खेलकूद, पार्क, उद्यान, तालाबों का गहरा करना, रास्ते सही करना, गलियाँ सुधारना जैसे अनेकों प्रयास स्वच्छता सहयोग के सहारे चल पड़े हैं, जिन्हें सहकारी प्रयत्नों द्वारा किये जाने पर लाखों करोड़ों की आवश्यकता पड़ती।

निषेधात्मक प्रयत्नों में नशा विरोध, दहेज, शालियों की धूमधाम, छुआछूत, पर्दा प्रथा, भिक्षा व्यवसाय, मृतक भोज, बाल-विवाह जैसी कुरीतियों का डटकर मुकाबला करना। इनके विरुद्ध वातावरण बनाना, छोड़ने की शपथ लेना, दूसरे करते हों तो उनमें भागीदार न बनना जैसे काम उठाये जा रहे हैं। उसमें सामूहिक रूप से गुण्डागर्दी, मिलावट, आदि अनाचारों के विरुद्ध लोहा लेना भी सम्मिलित है। अन्धविश्वासों की अपने देश में कमी नहीं। भूत पलीत, टोना-टोटका, भाग्यवाद, शकुन-मुहूर्त आदि की इतनी भ्रान्तियाँ अपने समाज में प्रचलित हैं कि उन्हें देखते हुए मूढ़ मान्यताओं पर हँसी आती है और उनके कारण जिस भय, आतङ्क, विद्वेष, अपव्ययजन्य हानि होती है उसे देखते हुए कण्ट होता है। लगे हाथों इन कुप्रचलनों के विरुद्ध भी मोर्चा अड़ा दिया गया है।

प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत हर भावनाशील को दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन और सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन की दृष्टि से दिये गये वे काम हैं जो देखने में छोटे-छोटे होने पर भी बूँद-बूँद से घड़ा भरने की उक्ति को चरितार्थ करते हैं और उनके संयुक्त प्रयत्नों की प्रतिक्रिया दूरगामी होती है। अवसाद एक दुष्प्रवृत्ति है जिसके कारण हीनताजन्य पिछड़ेपन के परिपोषक अनेकों कुप्रचन पनपते हैं। उसे उखाड़ा जा सके और नव सृजन के प्रति उत्साह उत्पन्न

अभियान किया जा सके तो उसमें खला में एक के बाद दूसरी कड़ी जुड़ती जाती है और बात बढ़ते-बढ़ते कहीं से कहीं जा पहुँचती है। इन प्रयत्नों से जुलूस, रैली, हड़ताल, धाराबा, उद्घाटन समारोह जैसी धूमधाम तो नहीं है, पर उनके पीछे रेडक्रास, फस्ट एड, होम नर्सिंग, स्काउटिंग, भूदान, सर्वोदय, एन. सी. सी. जैसी रचनात्मक सत्प्रवृत्तियाँ नर्सरी रूप में उगती देखी जा सकती हैं और विश्वास किया जा सकता है कि उन रचनात्मक प्रयत्नों के शान्त सौम्य रहते हुए भी परिणाम उतने श्रेयस्कर होंगे जिसे सृजन की पक्षधर समग्र क्रान्ति कहा जा सके।

इन्हीं प्रयत्नों को हर क्षेत्र में विस्तृत करने के लिए पिछले दिनों २४०० प्रज्ञा संस्थानों की इमारतें बनी हैं। इन सभी में औसतन दो कार्यकर्त्ता काम करते हैं। एक स्थानीय गतिविधियाँ चलाने के लिए दूसरा समीपवर्ती गाँवों में एक-एक दिन का कार्यक्रम बना कर जन-सम्पर्क साधने और युगान्तरीय चेतना का वातावरण बनाने के लिए। प्रज्ञा संस्थानों की दिनचर्या में प्रौढ़-शिक्षा—बाल शिक्षा की कक्षाएँ चलाने, कथा कीर्तन के माध्यम से लोक मानस में सृजन परिवर्तन की उमंगें उत्पन्न करने का नियमित प्रशिक्षण चलता है। व्यायाम-शाला तथा गाँव में पौध बाँटने की नर्सरी भी इन छोटे संस्थानों में चलती है। इन कार्यकर्त्ताओं का निर्वाह व्यय महिलाओं द्वारा धर्मघटों में नित्य एक मुट्ठी अन्न डाले जाने वाले धर्म घटों के सहारे चलता है। प्रचारात्मक तथा रचनात्मक गतिविधियों में मार्ग व्यय तथा अन्य साधनों का व्यय प्रज्ञा परिजनों के द्वारा ज्ञानघट में डाली जाने वाला नित्य दस पैसा अनुदान की राशि से चल जाता है। कार्यकर्त्ताओं में से अधिकांश समयदानी, आत्मदानी, वानप्रस्थ, परिव्राजक, ब्रह्मचारी ही अधिक हैं जिनमें से अधिकांश अवैतनिक कार्य करते हैं। जिनके पास अपने निर्वाह साधन नहीं हैं ऐसे सृजन शिल्पियों को ही 'ब्राह्मणोचित परिवार निर्वाह' देने की व्यवस्था चलती है।

यह प्रयास के उस पूर्वार्ध का परिचय है जो अब तक हो चुका है। इसे एक शब्द में उल्ताहवर्धक, आशाप्रद और अपने ढंग की अनुपम प्रक्रिया कहा जा सकता है। अनुपम

इसलिए कि अब तक ऐसे-ऐसे प्रयत्न सरकारी या गैर-सरकारी समाज कल्याण संगठनों के अन्तर्गत ही होते रहे हैं। धर्मतंत्र का इस प्रकार के प्रयत्नों में मुहल्लों से कभी कोई योगदान नहीं रहा। ईसाई चर्चों में ही अपने धर्म परिवर्तन योजना में इस प्रकार के प्रयासों में मात्र सेवा सहानुभूति वाला पक्ष कार्यान्वित किया है। लोकमानस के परिष्कार के लिए योजनाबद्ध प्रयास में इस प्रकार का उदाहरण ढूँढ़ने के लिए हमें ढाई हजार वर्ष पुराने इतिहास पृष्ठ उलटने होंगे। बुद्ध का धर्म चक्र प्रवर्तन प्रायः इसी पृष्ठभूमि पर आधारित था जिसे कि अब प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत सामूहिक परिस्थितियों के साथ ताल मेल बिठाते हुए नये परिवेश में नये सिरे से आरम्भ किया गया है।

बौद्ध कालीन धर्म चक्र प्रवर्तन का इतिहास बताता है कि एकाकी प्रयत्न से सीमित साधनों वाली वह प्रक्रिया धीमी गति से छोटे क्षेत्र में चलती रही किन्तु जब उसे समर्थ सहयोगियों और उपयुक्त साधनों का बल मिला तो बात कहीं से कहीं जा पहुँची। वचपन प्रौढ़ता से जा जुड़ा। पुष्प वाटिका सुरम्य उद्यान में विकसित हुई और रिमझिम ने घटाटोप बनकर जल थल एक कर देने वाले ववन्दर की तरह बरसना शुरू कर दिया। नालन्दा और तक्षशिला विश्वविद्यालयों के खण्डहर अपनी भाषा में अभी भी यह बताते हैं कि यह प्रयास देखते-देखते किस द्रुतगति से आगे बढ़े होंगे और किस प्रकार ऐशिया क्षेत्र से आगे बढ़कर समस्त भूमण्डल की नव चेतना प्रदान करने में सफल हुए होंगे। कितनी प्रतिभाओं ने उसमें अपना कितना बड़ा श्रमदान अंशदान प्रस्तुत किया होगा।

इतिहास की पुनरावृत्ति भी होती रहती है। लगता है वैसा ही कुछ इन दिनों भी होने जा रहा है। धम्म शरणं गच्छामि—संघं शरणं गच्छामि—बुद्धं शरणं गच्छामि का बीज मन्त्र जिस धर्मधारणा, देव संगठन एवं प्रबुद्ध विचारणा का उद्घोष करते थे लगभग उन्हीं मन्त्रों का नये वेदी पर नया धर्मानुष्ठान प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत हो रहा है। सम्भव है वंसी ही प्रतिभाएँ, भी उसमें सहभागी बने और नये युग का नया अध्याय नये ढंग से सृजे।

अखण्ड-ज्योति

युग परिवर्तन प्रक्रिया का उत्तरार्ध जो अभी ही क्रियान्वित होना है

पिछले पृष्ठों पर प्रज्ञा अभियान की उस रचनात्मक प्रक्रिया का उल्लेख हुआ है जिसमें भावनाशीलों को छोटे-छोटे सरल सुभ सेवा कार्य अपनाकर अपने समर्थन को जीवन्त स्तर का सिद्ध करने का अवसर मिले। निःसन्देह वे आरम्भिक हैं। सीधे, सरल और स्वल्प श्रमसाध्य हैं। पर उन्हें प्राथमिकता इसलिए दी गई है कि जिनमें आदर्शवादी प्राण प्रतिभा होगी वे न केवल समर्थन करेंगे वरन् सहयोगी बनने के लिए आरम्भिक कदम बढ़ावें। यह युग मनीषा की प्राथमिक परीक्षा है।

अब तक की कार्य पद्धति यों सृजनात्मक वातावरण बनाने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है और उसमें युग परिवर्तन के बीजांकुर पूरी तरह विद्यमान हैं। गाँधी का चरखा और नमक अभियान कितना नगण्य लगता था पर उस शुभारम्भ की परिणति कहाँ से कहाँ पहुँची यह सभी ने प्रत्यक्ष देखा है। प्रज्ञा अभियान के प्रथम चरण में पूर्वार्ध में उन्हीं कार्यक्रमों का समावेश है जो सर्वसाधारण के लिए सरल सुगम हैं। चयन में इतनी-सी जाँच पड़ताल भर से काम चल जाता है। प्रखरता उत्पन्न करने के लिए तो पीछे तेज भट्टी में गलाई डलाई होती है। पूर्वार्ध की सफलता उत्साहवर्धक है। उस प्रक्रिया से परिवर्तन का माहौल बना है, प्रवाह चला है और विश्वास बँधा है कि इस दिशा में चलते हुए कुछ ऐसा बन पड़ेगा जिसे महत्वपूर्ण, क्रान्तिकारी एवं ऐतिहासिक कहा जा सके।

बड़े कार्यों के लिए, बड़े कदम उठाने पड़ते हैं। बड़े साहस जुटाने होते हैं। बड़े साधन जुटाये जाते हैं। उपलब्ध युग मनीषा को उत्तरार्ध में इसी की तैयारी करनी चाहिए। यों इस संसार में एक से एक बड़े विभूतिवान भरे पड़े हैं। वे चाहें तो नव सृजन का विशालकाय तन्त्र देखते-देखते खड़ा कर सकते हैं, पर उन तक पहुँच कैसे हो? वे इस मिशन से परिचित कैसे हों? फिर उनकी अपनी योजनाओं की तुलना में युगावस्थीय चेतना की

गरिमा को वरिष्ठ कैसे सिद्ध किया जाय? अन्यत्र के कुछ दृष्टिगोचर न होने पर भी एकाकी अग्रसर होने के लिए कैसे सहमत किया जाय? यह अति कठिन प्रश्न जिनके कारण नवयुग के जिलान्यास की दृष्टि से निता आवश्यक—अनिवार्य—कार्यों को अविलम्ब अग्रसर करने पर गाड़ी रुक जाती है। लम्बी अवधि के भावभरे प्रयत्न से जिस देव परिवार का सृजन किया गया है उसी के जनों को लेकर अगले दिनों के भारी भरकम कार्यों को हाथ में लिया जायगा। जब विभूतियाँ विश्वास के और बड़े प्रयत्नों के लिए बड़ा साहस करेंगी, अभी समय की दूरी कुछ अधिक लम्बी दीखती है। इस जो हाथ में है—जो साथ है—उसी के सहारे अगले कदमों का श्रीगणेश भी उसी प्रकार किया जाना जिस प्रकार कि छोटे प्रयत्न का ताना-बाना छोटे सह से जुनते हुए—छोटों का बड़ा काम सर्व साधारण सामने प्रस्तुत कर सकने में सफल मनोरथ हुआ गया

कहा जा चुका है कि विचारणा को प्रभावित करने में लेखनी, वाणी और दृश्य शक्ति की प्रमुखता गई है। इनके लिए हमें लेखन प्रकाशन और विक्रम ऐसा समर्थ तन्त्र खड़ा करना चाहिए जो व्यक्ति समाज से सम्बन्धित सभी समस्याओं के निपेधात्मक विधेयात्मक पक्षों से जन-जन को अवगत कराये नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति की सर्वोत्तम पृष्ठभूमि बनाये। इसका विस्तार सभी प्रमुख भाषा क्षेत्र तक इस प्रकार होना चाहिए जैसा कि ईसाई और साम्यवाद के अन्तराष्ट्रीय विस्तार ने किया है।

वाणी को मुखर करने के लिए ऐसे वक्ता गायक संघों में प्रशिक्षित किये जाते हैं। जो जन सम्पर्क घर-घर अलख जगायें, विचार गोष्ठियों में उस तन जन-जन को अवगत करायें जो भले चंगे, सुखी मनुष्य को सामूहिक आत्म-हत्या की दिशा में घसीटें

का रहे हैं। साथ ही यह भी बताया होगा कि किन उपायों के अवलम्बन से विनाश की विभीषिकाओं से बचा जा सकता है। किन प्रयोजनों में मानवी प्रयत्न नियोजित करने पर उज्ज्वल भविष्य का सुनिश्चित सृजन हो सकता है। ऐसे आदर्शवादी प्रचारक—अनुभवी भी हों, सुयोग्य भी, सेवाभावी भी। इसके लिए बानप्रस्थ परम्परा पुनर्जगृत करनी होगी। अंधेड़ों में लोभ, मोह से विरत होकर लोक मंगल में संलग्न होने की भाव चेतना जगानी होगी। थोड़ा-थोड़ा समय देने वाले समयदानियों की दूसरी पंक्ति खड़ी होगी। एक वर्ष का संन्यास लेने और उस अवधि में मात्र सृजन प्रयोजन में संलग्न रहने की एक नई परम्परा चलायी होगी। ऐसे ही प्रयत्नों से युग मनीषा का प्रचारक परिव्राजक वर्ग उभरेगा। उसे कार्य क्षेत्रों में उतरने—और स्थानीय परिस्थितियों को समझते हुए कार्य पद्धति अपना देने के लिए नान्दा और तक्षशिला जैसे विश्व विद्यालय खड़े करने होंगे। छोटे संधाराम और बोद्धे विहारों की अनुकृति भी हर व्यवसायी क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए विनिर्मित करनी होगी।

कहना न होगा कि यह वाणी प्रधान प्रचार तन्त्र भी लेखनी वाले प्रकाशन तन्त्र की तरह खर्चीला है। कार्य-कर्त्ताओं को भोजन, वस्त्र, मकान तो चाहिए ही। बाहर जाने पर मार्ग व्यय भी लगता है। प्रशिक्षण में पुस्तकों तथा संगीत उपकरणों की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार लेखन का न सही प्रकाशन के लिए कागज छपाई की पूँजी तो चाहिए ही। उपरोक्त दोनों ही कार्य साधनों की अपेक्षा रखते हैं। उनके लिए पैसा न मिले तो समझना चाहिए बिना पानी वाले तालाब की स्थिति रही। खिले कमलों वाले सुरम्य शीतल सरोवर का दृश्य देखना है, तो राखी से लेकर सिचाई तक का लाभ उठाना है तो कागजी चित्र सरोवर से काम नहीं चलेगा। उसमें जल-राशि भरते रहते वाले निक्षेपों को भी उस सुखद सम्भावना में भागीदार बनने के लिए सहमत करना होगा। प्रचार प्रकाशन के समतुल्य ही कला का क्षेत्र है। उस पर इन दिनों फिल्म उद्योग का आधिपत्य है। पत्र-पत्रिकाओं के पाठकों से भी कहीं अधिक संख्या सिनेमा दर्शकों की रहती है। अभिनय, संगीत युक्त कथानक अपने

पीछे जो प्रभाव सँजोये रहते हैं उसका प्रभाव रंघे चिन्तन और चरित्र पर पड़ता है। प्रचलित प्रवाह को सिनेमा संस्कृति की देन कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। उसने अपना प्रभाव प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जन-जन के मन-मन पर छोड़ा है उसकी तुलना और किसी माध्यम से नहीं की जा सकती। इस महाशक्ति को पतन पराभव से रोकने में यों उनके निर्माता और सरकारी सेन्सर भी सक्षम हो सकता है फिर भी यह आवश्यकता तो बनी ही रहेगी कि दिशा परिवर्तन की—अभिनय निर्माण की जिम्मेदारी कोई दूसरा उठे। अन्धों को रास्ता दिखाने में कोई आँख वाला भी चाहिए।

आवश्यकता यह अनुभव की जानी चाहिए कि पुरातन सतयुगी वातावरण जो आज की स्थिति में अवतरित कर सकने वाले कथानकों को कम से कम एक फिल्म शृंखला तो चित्र ही पड़े। मार्गदर्शन और पथ-प्रशस्त होने पर दूसरे लोग भी उसका अनुकरण करेंगे। यह ब्रह्मी पूँजी का उद्योग है। एक फिल्म बनाने से नहीं एक शृंखला चलाने से कान बनेगा। इस शृंखला शुभारम्भ के अपने निजी साधन बनाने होंगे। इसमें न्यूनतम पचास लाख की पूँजी चाहिए। करोड़ों की लागत वाले भिन्न कारखाने खड़े कर देने वालों के लिए यह लाभदायक न सही, हानि रहित उद्योग में हाथ डालने का उत्साह उत्पन्न किया जाना चाहिए।

मध्यवर्ती प्रज्ञा परिजन भी राम लीला, राम लीला स्तर की अभिनय मण्डलियाँ खड़ी कर सकते हैं। एकशन साँग, एकाकी नाटक, संगीतमण्डली आदि छोटे तन्त्र बड़ी संख्या में खड़े किये जा सकें तो भी उनका प्रभाव उन देहाती क्षेत्रों में उत्साहवर्धक होता है, जहाँ भी सिनेमा का आधिपत्य नहीं हुआ है। सोनह मिनीमीटर के चलते-फिरते सिनेमा भी जनरेटर की सहायता से उन क्षेत्रों में पहुँच सकते हैं और इस स्तर का एक मिनी सिनेमा उद्योग भी बड़ों के समानांतर से खड़ा हो सकता है। इसमें पूँजी भी कम लगेगी। इसे क्षेत्र में कठपुतली के तमाशे-जादू के रूप जैसे कौशल भी उद्देश्यपूर्ण आधार अपनाकर लोक रंजन के साथ लोक मंगल का आधार खड़ा कर सकते हैं।

कला के क्षेत्र में चित्र प्रकाशन का अपना विशिष्ट स्थान है। चित्र प्रदर्शनियों के इन दिनों कितने ही रूप प्रचलित हैं। उनमें से कुछ को नव सृजन का वातावरण बनाने में प्रयुक्त किया जा सकता है। छोटी चिन्ह पूजा तो आदर्शवाक्य, चित्र वाले प्रकाशन और चित्र प्रदर्शनी आयोजनों के रूप में चल भी रहा है। उपरोक्त सभी प्रयत्नों को बड़े काम में—बड़ी पूँजी में—संगठित रूप में किये जाने की आवश्यकता है। कला को दुष्प्रयोजनों में प्रयुक्त करने के फलस्वरूप लोक प्रवाह में विपात्तता का समावेश हुआ है। यदि उसे सदुद्देश्यों के लिए प्रयुक्त करने वाली कोई बड़ी योजना आयोजित हो सके तो उसका प्रभाव निश्चित रूप से वातावरण में अमृत भर देने के रूप में दृश्यमान होगा।

कृत्यों में प्रगतिशील शिक्षा तन्त्रों जन सहयोग से खड़ा किया जाना चाहिए। जीवन साधना के—लोक व्यवहार के असंख्य पथ ऐसे हैं जिनका अभाव शिक्षितों और अशिक्षितों में समान रूप से पाया जाता है। आदतें, विचारणएँ, प्रथाएँ, गतिविधियाँ अवांछनीय स्तर की होने पर किस प्रकार सर्वनाश रचतीं और विवेकशील दूरदर्शिता युक्त होने पर किस प्रकार दैवी अनुकम्पा की तरह प्रगति और समृद्धि बरसाती है यह विषय मात्र स्वाध्याय का ही नहीं है उसका विधिवत् पाठ्यक्रम एवं पशिक्षण भी होना चाहिए। ऐसे पूरे या अधूरे समय के—कौन बिना फीस के विद्यालय जगह-जगह पर चलने चाहिए जिनमें आजीविका उपार्जन, स्वास्थ्य संरक्षण एवं व्यवहार कौशल की शिक्षा का समावेश है। प्रगतिशील देशों में सरकारी शिक्षा की परिधि सीमित और निजी प्रयासों से चलने वाली शिक्षण संस्थाएँ अपेक्षाकृत कहीं अधिक हैं। इससे वहाँ के नागरिकों को अपनी मर्जी के दिना-अपनी अनुकूलता के समय में पढ़ने की सुविधा उपलब्ध होती रहती है। हमें सरकारी शिक्षा का स्वागत और सहयोग करते हुए भी उन प्रसंगों के पाठ्यक्रम बनाने और विद्यालय चलाने चाहिए जो योग्यता संवर्धन के साथ-साथ प्रतिभा निखरने व्यक्तित्व उभारने और प्रगतिशील सुखी समुन्नत जीवनक्रम बनाने में कारगर सहायता दे सके। ऐसी लोक शिक्षा—सरकारी शिक्षा के समान्तर

चल सकती है और समग्र शिक्षण की पूरक बन सकती है।

इन पंक्तियों में उन प्रयत्नों का उल्लेख नहीं किया गया है जिनसे पिछड़े, दुःखी वर्ग को राहत पहुँचाने, बेकारी गरीबी को दूर करने, अनीति से जूझने की दृष्टि से बहुत कुछ किया जाना बाकी है। इन पृष्ठों पर उनका उल्लेख न करने का तात्पर्य यह नहीं है कि वे महत्वहीन या उपेक्षणीय हैं। उन्हें दूसरे अर्थशास्त्री, समाज शास्त्री शासन अधिकारी अपने ढंग से अपने साधनों से सम्पन्न करें। यहाँ मात्र प्रज्ञा अभियान के उस पक्ष पर प्रकाश डाला गया है जो लोक मानस की दिशा में बदलने के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है। युग मनीषी अपने जिम्मे इस सीमित काम को संभाले और अगणित कार्यों को विभिन्न क्षेत्रों की अगणित प्रतिभाएँ अपने-अपने साधनों और अनुभवों के अनुसार करती रह सकती हैं। शासन सुधार की बात को 'यहाँ' जान-बूझकर छोड़ दिया गया है कि जब उस क्षेत्र की हम काले ही धकापेल मचाये हुए हैं तो अछूते किन्तु अति महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व को युग मनीषा क्यों न अपने कंधों पर उठाये।

उपरोक्त चारों तन्त्रों को छुटपुट रूप से अलग-अलग संगठनों के अन्तर्गत भी किया जा सकता है, पर प्रारम्भिक स्थिति में पूर्व अनुभव और दूर दृष्टि के अभाव में भटकाव की आशंका है। सभी जानते हैं कि जंकशन पर खड़ी गाड़ियों में कोई निर्धारित पटरी के स्थान पर दूसरी पर चढ़ चले तो कुछ ही समय में यह भटकाव हजारों मील का अन्तर पड़ जाता है और शक्ति एवं समय का भारी अपव्यय पल्ले बँधता है। अच्छा हो उपरोक्त चारों प्रयासों का प्रथम चरण शान्ति कुंज के तत्वावधान में हो। इस सुयोग से युग मनीषा को दिव्य प्रेरणाओं से सुसम्पन्न होने का अवसर मिलेगा। उनके उत्तरार्ध प्रयास, पूर्वाध्व प्रयासों की तुलना में असंख्य गुने सत्परिणाम प्रस्तुत कर सकने में समर्थ होंगे। ऐसे सत्परिणाम जिनके सहारे मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का सतयुग इन्हीं आँखों के आगे प्रभातकालीन अरुणोदय के रूप में सुखद सम्भावनाओं के साथ उदीयमान दृष्टिगोचर हो सके।

हमी एक कदम और आगे बढ़ें

युगान्तरीय चेतना से परिचित, प्रभावित, प्रशंसक, समर्थक, प्रज्ञा-परिवार को एक कदम आगे बढ़कर अब सचन सहयोग की भूमिका में प्रवेश करना होगा। उन्हें अपना एक विशिष्ट स्तर एवं स्वरूप विनिर्मित करना होगा। समय के परिवर्तन में उनकी भावभरी भूमिका होनी चाहिए। ऐसी भाव-भरी जो उन्हें महामानवों की—युग पुरुषों की—पंक्ति में खड़ा कर दे। ऐसी भावभरी जिसमें त्याग, बलिदान और सेवा साधना का गहरा पुट हो। जो किंचित समर्थन से आगे बढ़कर कर्मभूमि में उतरे और एक कुछ करे जिससे समूचे सम्पर्क क्षेत्र को नव जीति मिले। ऐसा नव जीवन जिसे उपलब्ध करते रहें। यों ही कर रहे और कृतज्ञतापूर्वक अगणित पीढ़ियों तक स्मरण, नमन, विन्दन करते रहें।

वात दूसरे स्तर के साहस भर की है। मानव जीवन दुस्साहियों से भरा है। इसमें पग-पग पर जोखिम है। त्याग और संयम की विवशता भी बनी ही रहती है। इच्छा से नहीं, अनिच्छा से प्रकृति प्रेरणा से करना तो वही पड़ता है। प्रश्न इतना भर है कि क्या वह सब ढरे से बाधित होकर करने की अपेक्षा विवेकपूर्वक, अन्तः-प्रेरणा से, आदर्शों के निमित्त किया जा सकता है क्या? बाधित होकर या स्वेच्छापूर्वक—व्यामोह के दबाव से या विवेक भरे उत्साह से चयन इन्हीं दो में से एक का करना पड़ता है। जोखिम दोनों में समान है। न चाहते पर भी जो करने के लिए प्रकृति बाधित करती है उसी को यदि अन्तःप्रेरणा से आपत्तिकालीन युग धर्म की पुकार पूरी करने के लिए किया जा सके तो एक शब्द में उसे विवेक भरी साहसिकता और मानवी गरिमा को गौरवान्वित करने वाली साहसिकता ही कहा जायगा। समय आगया कि इस परीक्षा की घड़ी में अपने चयन चुनाव में राजहंसी जैसी उत्कृष्टता का परिचय देना होगा। इस विषम वेला में उन्हें प्रेय का नहीं श्रेय का वरण करना चाहिए।

मुद्देय कमाता बहुत है, पर प्रकृति उसमें से थोड़ा

सा ही खाने की छूट देती है। चार रोटी ही पेट में प्रवेश कर पाती हैं। चाहने पर भी कोई अधिक उदस्य नहीं कर सकता। तन ढकने के वस्त्र, सोने का विस्तर भीसत जम्वाई से अधिक के प्रयुक्त नहीं हो सकते। जो खाया खर्चा उसके उपरान्त का वन्नत भाग किन्हीं दूसरों के लिए छोड़ना ही पड़ता है। तन के पीछे तो सिकन्दर कुछ न ले जा सके, और जूतों से बाहर खुले हाथ निकलवा कर ऐसे ही नेता-नपता चला गया। प्रश्न इतना भर है कि उस अज्ञान की अनावश्यक रूप में कुछ म्बियों पर ही लादा जाय। उस स्वाति-बूँद की तरह असंख्य प्यासों पर बरसा दिया जाय? बुना किसे गया इसी में अपनी सूझ-बूझ है। स्वयं के लिए तो सीमित उपयोग ही सम्भव है। यह संयम साधना यह उदारता, अपनाने के लिए प्रकृति ने हर किसी को बाधित किया है। वात इतनी भर है कि व्यामोह की जकड़न ही सब कुछ रही, या आदर्शवादी विवेकशीलता अपनाने वाली आत्म प्रेरणा से भी कुछ करते-धरते न वन पड़ा।

यह सोचना मात्र भ्रम है कि आदर्शवादी गतिविधियों में भाग लेने से—परमार्थ प्रयोजनों में सहयोग करने से घाटा पड़ता है और घर वालों की सुविधा में कमी पड़ती है। इस चिन्तन के पीछे मिथ्या अपभ्रम मात्र है। महामानवों में से प्रत्येक की जीवनचर्या पर गम्भीरतापूर्वक दृष्टिपात करने से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि बरी बदलते समय की थोड़ी-सी अमुविधा के अतिरिक्त उनमें से किसी को भी घाटे में नहीं रहना पड़ा। बुद्ध ने क्या बोधा? गान्धी को कितना घाटा पड़ा? शंकराचार्य, आणक्य आदि अन्यान्यों की तरह गोरख धन्वे में उलझे रहने को बुद्धिमानी और आदर्शवादी साहस अपनाने की मूर्खता माने बैठे रहते तो उनकी गणना पेट प्रजनन के मोलू में पिलने वाले नर पामरों से अधिक न रही होती। दुनियादार कबीर, नानक दादू, रंदास, ज्ञानेश्वर, चैतन्य, वह न बन सके होते जो कृपणता का परित्याग करने के उपरान्त बन गये।

गीताकार ने योगी की व्याख्या करते हुए उसकी पहचान 'दिन में सोने रात में जगने की' बताई है। इस अलंकारिक निरूपण का तात्पर्य है दुनियादारी की रीति-नीति को मूर्खतापूर्ण मानकर अपने एकाकी विवेक के आधार पर स्वतन्त्र निर्णय करना। भले ही वे लोक प्रचलन के साथ तालमेल न खाते हों। ऐसा कर, गुजरना किसी के लिए भी सम्भव है। न इसमें घाटा है न मूर्खता। बहुत लोगों द्वारा अपनाये गये ढर्रे को उचित मान बैठना सही नहीं है। अन्धी लोगों को पीछे-पीछे चलने की अपेक्षा रवीन्द्र का वह उद्बोधन मार्मिक है जिसमें 'एकला चलोरे' का सूर्य चन्द्र जैसा वात अपनाने और ज्वलन-शील दीपक का अनुकरण का प्रेरणा दी गई है। चिन्तन का यह मर्म बिन्दु ही ऐसा है—जिसको गर्त में गिरने या लज्जा के उछलने की दिशाओं में से किसी एक का वृष्ण किया जा सकता है।

युग मनीषियों की श्रेणी में सम्मिलित होने के लिए किसी उच्च शिक्षित होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। उसके लिए कबीर जितना अधर ज्ञान भी पर्याप्त है। बड़े कुचक्र षड्यन्त्र रचते रहने वाले बहु पशिता को इस देव मानवों की विरादरी में उनकी डिग्री के कारण सम्मिलित नहीं किया जा सकता। जिस विद्यालय में इन मनीषियों को पढ़ना है उसमें अपना उदाहरण प्रस्तुत करने की एकमात्र योग्यता ही काम करती है। बकवासी वाचालता का काम तो अब टैप रिकार्डर से भी मजे में लिया जा सकता है। आवश्यकता तो स्वल्प शिक्षित बुद्धी की है जिनके अनुगमन के लिए कोई-कोई अन्तःकरण उमड़ पड़े। इन दिनों तिलक चाहिए, सुभाष, पटेल, विनोबा, दयानन्द, विवेकानन्द जैसे धुनि के धनी। यहाँ वाचालता या चतुरता की नहीं बड़े दिल, बड़े साहस और उदात्त दृष्टिकोण की आवश्यकता है। वह जितना जिस अनुपात में हूँगा वे उतने ही ऊँचे स्तर के युग मनीषा गिने जा सकेंगे और युग की पुकार पूरी करने में महती भूमिका निभाते हुए अपने को कृत-कृत्य कर सकेंगे। इस दिशा में तथाकथित व्यस्त और अभावग्रस्त लोग भी यदि ईमानदारी का यथार्थता अपनायें तो देखेंगे कि प्रतिकूलताओं के बीच भी

वे बहुत कुछ कर सकते हैं। बड़ा न सही छोटा योगदान तो गिलहरी से भी बन पड़ा था। मनुष्य अपने को सर्वथा असमर्थ कहे यह बात हजार बार दुहराने पर भी किसी के गले नहीं उतरती है। आदर्शवादिता के क्षेत्र में आन्तरिक कृपणता के अतिरिक्त और कोई व्यवधान नहीं है। उसी के कारण तो अजुन, वकीलों जैसी दलीलें प्रस्तुत करता चला जा रहा है। उसी प्रवृत्ति को धमकाते हुए गीताकार ने कहा था—प्रज्ञा वांदाश्च भाष से। वाचालों की छल भरी भाषा मत बोल। वास्तुस्थिति को समझ और मन की आँखें खोल।

प्रज्ञा परिजनों में इन दिनों ऐसे हील असमंजस भरे व्यामोह से जूझना पड़ेगा। अच्छा हो वे अतिभ्रमो विमोह छलांग लगायें और हनुमान जैसा दुस्तरती इस अपनायें। इससे कम में बात बनेगी नहीं, दाग-दल में फँस जावे हई गाँव आगे बढ़ेगी नहीं। परमार्थ के सम्मुख रहन के वक्तोको का ठीक यही समय है। लोभ और मोह में कटीती के ही ऐसा उपाय निकल आता है जिसमें निर्वाह और परिवार की उचित व्यवस्था पर बिना किसी प्रकार का आन्तरिक दबाव डाले युग धर्म की पुकार सुनने वाले—उसके लिए कुछ करने वाले प्राणवानों के साथ-साथ चला जा सके।

इस सन्दर्भ में सबसे बड़ी आवश्यकता भाव-सम्बेदना की है। वह उमंगें तो प्रचलित ढर्रे में हेर-फेर करने का उत्साह उमंगें साहस उभरे। जहाँ ऐसी अन्तःप्रेरणा उठेगी वहाँ बुद्धि के सामने उसकी व्यवस्था बनाने में फिर कोई कठिनाई न रहेगी। अभीष्ट अनुकूलता मिलने पर हाथ खाली होने वाली कल्पना ऐसी है जिसकी कम से कम इस जन्म में तो पूरी होने की आशा नहीं ही की जानी चाहिए। विवेक दूसरे उपाय ढूँढ़ता है और उन प्रस्तावों की लड़ी लगा देता है जिनमें से किसी को भी अपना कर युग देवता के चरणों में भावभरी श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत करने की सुविधा सरलतापूर्वक निकल आती है। इच्छित परिस्थितियों में इच्छित काम की बात सोचते रहना अवास्तविक है। जो सामने है, उसी में हेर-फेर करके तालमेल बिठा लेने का तरीका ही ऐसे अवसरों पर काम देता है। ललक, लिप्सा और महत्वाकांक्षाओं में

होती हो सके परिवार को सुविधाओं से लादने की प्रवृत्ति स्वावलम्बी भर बनाने का विवेक जगे तो इतने पर से हममें से अधिकांश की वह स्थिति हो सकती है जिसमें महाकाल की समयदान याचना का उत्साहवर्धक उत्तर दिया जा सके।

आदर्शवादी बीजारोपणों को संकल्प और साहस का बाद पानी मिले तो उनके उगने, लहराने और देखते-देखते पुष्पित फलित होने में फिर कोई कठिनाई जेष न रहे। संकल्प परिस्थितिजन्य नहीं, मनःस्थिति में घुसी हुई कृपणता का शत्रु। चोर पकड़ा और हटाया जा सके तो समझना चाहिए कि प्रजा परिजनों में से हर किसी को बहुत कुछ कर गुजरने का सुयोग सौभाग्य उपलब्ध हो गया।

श्रम, समय, धन इन तीनों महती आवश्यकता है। जन-जागरण के सदस्यों नि-सम्पर्क साधने और युग चेतना के अवगत औराने वाले प्रयास आरम्भ करने होंगे। यह न पड़े तो जन समर्थन और जन सहयोग की कहीं कोई भी न रहेगी। बीमा ऐजेंटों और वोट बटोरने वालों की सी ललक हो तो जन-सम्पर्क में निकलने में लगने वाले कोच, असमंजस देखते-देखते हवा में उड़ जायेंगे। अपनी और करनी का समन्वय ही प्रजा अभियान की विविधियों को आगे बढ़ाता है। परामर्श देने से ही झटकारा नहीं मिलता कुछ ऐसा भी करना पड़ता है, जिसमें समय लगे और पसीना बहे। ज्ञान रथ चलाने, लाइड प्रोजेक्टर दिखाने जैसे प्रारम्भिक काम तक जब हम माँगते हैं तो उन बड़े कामों के लिए तो और भी प्रयास परिश्रम की आवश्यकता पड़ेगी। खादी प्रचार के दिनों पं० नेहरू और टन्डन धकेल गाड़ी लेकर निकलते और खादी बेचते थे। लगन हो तो हममें से अधिकांश की वह स्थिति है कि स्वाध्याय और सत्संग को सर्वमुलभ बनाने वाले उपरोक्त तीनों उपकरणों को अपने एकाकी बलबूते अपने सम्पर्क क्षेत्र में चलाते और उत्साह-वर्धक आलोक वितरण करते रह सकें। बात एक कदम और आगे बढ़े तो शिक्षा प्रचार, हरितमा सम्बर्धन, चिन्तना अभियान जैसे कितने ही सेवा कार्यों में कुछेक निष्ठ साधियों को लेकर जुटा जा सकता है। स्वयं

संकल्प पूर्व आगे बढ़ने पर सहयोगी अनुयायियों की कभी कमी नहीं पड़ती। इन्जन दौड़ेगा तो डिब्बे भी पीछे-पीछे घिसटते चलेंगे ही। प्रजा अभियान के अन्तर्गत असंख्यों प्रचारात्मक, सुधारात्मक और रचनात्मक कार्यक्रम हैं जिनमें से योग्यता और सुविधा के अनुरूप स्थानीय परिस्थितियों—आवश्यकताओं के अनुसार कुछ भी चुना जा सकता है। लक्ष्य एक ही है—लोकमानस का परिष्कार। सुविधा सम्बर्धन से अधिक महत्व इन दिनों विचार परिवर्तन को दिया जाना है। निष्कर्ष रूप में से किसी को भी भुला नहीं देंगे।

यह सर्व साधारण की बात है। प्रभुत्वानों को—प्रतिभाओं को कुछ बड़े कामों की आवश्यकता है और अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिए। भावनाशील, बुद्धिमान, धनवान, प्रतिभाशाली, प्रभावशाली लोग इन कामों में हाथ बँटा सकते हैं। जो किये जा रहे हैं या किये जाने हैं। उनकी चर्चा पिछले दो लाखों में हो चुकी है। इनमें सच्चे मन से रुचि ली जा सके तो यह खोजने में कठिनाई न पड़ेगी कि स्वयं क्या किया और दूसरों से क्या कराया जा सकता है। कई बार मनुष्य को अपनी क्षमताएँ ही इतनी बड़ी होती हैं कि एकाकी बलबूते महत्वपूर्ण काम करने में उनके लिए साधन जुटाने में कीर्तिमान स्थापित किया जा सके। कईवार स्वयं की तो वैसी स्थिति नहीं होती, पर दूसरे समर्थों को प्रोत्साहित करके उतना कुछ कराया जा सकता है जिसे चमत्कार कहा जा सके। युग साहित्य के प्रकाशन, प्रचारकों के निर्वाह अन्यान्य कार्यक्रमों के लिए साधन उपकरण जुटाने में ढेरों पँसा चाहिए। इसका भी प्रबन्ध हो सके तो ईंधन मिलने पर चिनगारी की ज्वलन्त ज्वाल माला बनने का अवसर मिल सकता है। उमंग उठे, साहस जगे और चिन्तन मुड़े तो हजार उपाय—हजार मार्ग ऐसे सामने अनायास ही प्रस्तुत होने लगेंगे, जिनके सहारे नव सृजन अभियान को आगे बढ़ाया जा सके। स्वयं करने के साथ-साथ दूसरों से कराने की बात का भी उतना ही महत्व है। जामवन्त स्वयं समुद्र लाँघने की स्थिति में नहीं थे पर उतने हनुमान को प्रोत्साहित कर वह कार्य करा लिया। परिणामतः यह प्रयास जामवन्त के स्वयं समुद्र लाँघने के समतुल्य

अखण्ड-उपाति

युग मनीषा

के कर्तव्यों पर इन्हीं दिनों एक छोटा किन्तु महान उत्तर दायित्व

युग परिवर्तन की पृष्ठभूमि लोक-मानस का परिष्कार है। चिन्तन के क्षेत्र में घुसी हुई भ्रान्तियाँ, विकृतियाँ, कुत्साएँ, दुष्प्रवृत्तियाँ ही बाह्य जीवन में विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं, उन्हीं के कारण विपत्तियों विभीषिकाओं का घटाटोप टूटता है। युग की समस्याओं का यही एक कारण है उसका निवारण भी एक ही है—मान्यताओं, शास्त्राओं, भाव सम्बेदनाओं, रत्नानों, आदतों के मर्मस्थल और उत्कर्षण एवं विचार तन्त्र का परिशोधन। परिशोधन के साक्ष्य ही साथ उस क्षेत्र में श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा की उच्च मस्तीय विभूतियों का बीजारोपण अभिवर्धन। नव निर्माण का स्वरूप, लक्ष्य एवं कार्यक्रम यही है। इसी युग के सदस्यों यज्ञ, विचार क्रान्ति, प्रज्ञा अभियान, अलोचन, आलोक वितरण आदि नामों से सम्बोधित किया जाता रहता है। युग शिल्पी इन दिनों इसी कार्य में लगे हैं। युगान्तरीय चेतना को जन-जन के अन्तराल तक पहुँचाने के लिए प्रज्ञा संस्थानों, शाखा संगठनों एवं प्राणवान युग प्रहरियों द्वारा इन्हीं प्रयासों को विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से विश्व के कोने-कोने में पहुँचाया जा रहा है।

लोक मानस के परिष्कार में नैष्ठिक एवं व्रतशील कार्य पद्धति अपनाये जाने की इन दिनों अनिवार्य आवश्यकता अनुभव हो रही है। यह कार्य उथले मन और हलके प्रयासों से नहीं हो सकता। लक्ष्य का मूल स्वरूप समझने और उसी में तन्मय हो जाने की बात मिशन की मूर्धन्य प्रतिभाओं के गले उतारती पड़ेगी।

प्रज्ञा संस्थानों को इन दिनों उनके कर्तव्य का बोध कराने और तद्गुरूप व्यवस्था बनाने में उपेक्षा न करने, आलस्य प्रमाद न बरतने के लिए कहा गया है। पर इतना बड़ा लक्ष्य मात्र कुछ प्रज्ञा संस्थानों से ही तो पूरा नहीं हो सकता। ४५० करोड़ मनुष्यों की चित्र-विचित्र मनोभूमियों का परिमार्जन बड़ा काम है। इतने बड़े क्षेत्र में भरी हुई मलीनता का परिशोधन साथ ही उसमें उत्कृष्ट चिन्तन और चरित्र का बीजारोपण, अभिवर्धन बड़ा काम

है। इसके लिए पूरी तरह प्रज्ञा संस्थानों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। उस प्रयोजन के लिए युग प्रहरियों के व्यक्तिगत प्रयत्नों को भी उतना ही महत्व देना होगा। सामूहिक और व्यक्तिगत प्रयत्नों की उभयपक्षीय प्रक्रिया ही इतना व्यापक और गुरुतर लक्ष्य पूरा कर सकती है। युग मनीषा को इन दिनों इसी प्रकार को सर्वोपरि महत्व का जगनकर उसमें जुट पड़ना चाहिए।

व्यक्तिगत प्रयत्नों के सन्दर्भ में इन दिनों छोटे स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना का नया कार्यक्रम हाथ में लिया गया है। यह मण्डल मात्र पाँच व्रतशील सदस्यों के होंगे। स्वाध्याय का महत्व समझने वाले, उसे चिन्तन और चरित्र की आधारशिला एवं उपासना के समतुल्य ही आत्म-परिष्कार की अनिवार्य आवश्यकता समझने वाले ही इन मण्डलों के सदस्य बनेंगे और प्राणवान हलचलें, भाव भरी उमंगें उत्पन्न करने वाले इस धर्म कृत्य का नियमित रूप से पालन करेंगे। धर्मनिशासन, स्वाध्याय में प्रमाद न करने का है। स्वाध्याय रहित को शास्त्रकारों ने चाण्डाल कह कर धिक्कारा है। जागृत आत्माओं को इस अनुशासन का परिपालन युग धर्म के रूप में भी करना चाहिए। उसे स्नान, भोजन, शयन के समान ही दैनिक नित्य कर्म में सम्मिलित रखना चाहिए। जो इस तथ्य को स्वीकारेंगे, अपनायेंगे वे ही स्वाध्याय मण्डल के व्रतशील सदस्य बनेंगे। निष्ठावान पाँच हों तो वे पचास या पाँच सौ चंचल चित्त उथली आस्था वालों की तुलना में कहीं अधिक प्रखर सिद्ध होते हैं।

इस स्थापना में एक प्रतिभा अग्रणी होगी। वह स्वाध्याय व्रत को समय की महीती आवश्यकता समझकर उसे अपने जीवन क्रम में सम्मिलित रखने और दूसरों तक यह आलोक पहुँचाते रहने का सङ्कल्प करेगी। साथ-साथ ही इस पुण्य प्रक्रिया को सामूहिक रूप देने का प्रयास आरम्भ कर देगी। उसे अपने सम्पर्क क्षेत्र पर वारीकी से दृष्टि डालकर ऐसे चार साथी और ढूँढ़ निकालने होंगे, जिन्हें स्वाध्याय में रुचि हो, जिनमें भाव श्रद्धा के संस्कार

किसी न किसी रूप में विद्यमान हों। पाँच का एक संगठन बन जायगा और वह प्रज्ञा अभियान का एक अति महत्वपूर्ण अंग स्वाध्याय मंडल कहलायगा। यह सदस्य समुदाय एक घण्टा नियमित स्वाध्याय करने का निर्धारण करेगा और उसे निभायेगा। इस प्रकार यह पाँच पाण्डव, पाँच रत्नों की तरह अपनी गरिमा का परिचय देंगे और समीपवर्ती क्षेत्र में वैसे वातावरण बनायेंगे जैसा कि प्रसिद्ध पाँच देवता अदृश्य जगत में अपनी गरिमा का परिचय देते रहते हैं। गुरु गोविन्द सिंह ने सिख धर्म का विस्तार "पाँच प्यारों" के सहारे ही करने में सफलता प्राप्त की थी। इन छोटे-छोटे समुदायों से भी ऐसी ही भूमिका निभाने की आशा की जायगी। व्रतशीलता बहुत बड़ी बात है। सङ्कल्प-दल मानवीय पराक्रमों का उद्गम स्रोत है। निश्चय पूर्वक स्वाध्याय की साधना करने कराने वाला यह ब्रह्म दल यदि निश्चय पर अडिग रह सका तो विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि वह क्षेत्र युग-चेतना से जाज्वल्यमान दृष्टिगोचर होगा।

स्वाध्याय मण्डल के पाँचों सदस्य अपनी ज्ञान साधना के अतिरिक्त एक कार्य और भी करेंगे कि अपने-अपने सम्पर्क क्षेत्र में ऐसे पाँच-पाँच व्यक्ति और ढूँढ़ निकालें, जिन्हें युग साहित्य नियमित रूप से पढ़ते रहने के लिए सहमत कर लें। उन्हें बिना मूल्य युग साहित्य देते रहने और वापस लेते रहने की जिम्मेदारी नैष्ठिक सदस्य ही उठावेंगे। अपने अतिरिक्त पाँच और का विस्तार क्रम भी यह सभी सदस्य चलावेंगे। इस प्रकार पाँच नैष्ठिक सदस्यों के सहयोगी, सहचर पच्चीस हो जायेंगे। पाँच स्वयं। इस प्रकार तीस ज्ञान साधकों की यह मण्डली अपने सीमित क्षेत्र में अपनी व्रतशीलता के आधार पर असंख्यों को प्रभावित, परिवर्तित करने में सफल होगी।

स्वाध्याय मण्डल अपने तीसों सदस्यों के जन्म दिन मनाते रहने की जिम्मेदारी भी उठायेगा। इस प्रकार परिवार निर्माण की तीस ज्ञान गोष्ठियाँ भी एक वर्ष में सम्पन्न हो जाया करेंगी। इसमें सम्मिलित होने वाले युगान्तरीय चेतना का प्रकाश उपलब्ध करेंगे और लोक मानस का परिष्कार क्रम, अधिक व्यापक होता चलेगा।

यह स्वाध्याय समुदाय अब तक के प्रकाशित युग

साहित्य को नये सिरे से, नये दृष्टिकोण से, इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर पढ़ेगा कि वह उसे स्वयं गम्भीरता पूर्वक समझना और समझाना है। इसके अतिरिक्त सन्दर्भ में एक नयी प्रक्रिया और आरम्भ हुई है। वह यह कि पूज्य गुरुदेव ने इन्हीं दिनों अध्यात्म को विज्ञान के आधार पर प्रामाणित करने और प्रबुद्ध वर्ग को अपने चिन्तन उलट देने में समर्थ तथ्य, तर्क और प्रमाणों से पूरा साहित्य लेखन और नये सङ्कल्प के साथ, नये मुहूर्त में प्रारम्भ किया है। यह क्रमशः छपता और स्वाध्याय मण्डल के सदस्यों तक पहुँचता रहेगा। १०० गुरुदेव प्रयासों का यह अन्तिम चरण असाधारण होगा और बड़े प्रवाह को उलटने में काल मार्क्स, ए. ए. हैरियट स्टीनोत्से, टालस्टाय, विस्मार्क जैसी के अनेक प्रभावी साहित्य की तुलना करेगा। यह आठ पुस्तकें हर महीने गुरुदेव जीवन समाप्ति तक लिखी और प्रकाश की जा रही हैं। स्वाध्याय मण्डल के सदस्य ही इन्हें अपने-अपने क्षेत्र में पढ़ा और व्यापक बनाने का प्रयत्न करेंगे।

इस छोटी स्वाध्याय मण्डली का महत्व बड़े प्रसंगों के समतुल्य ही माना गया है। उनके शुभारम्भ को उतना ही मान दिया गया है। इसलिए उनके उद्घाटन समारोह भी किये जायेंगे। बड़े खर्चीले आयोजन तो न बन पड़ेंगे पर प्रयत्न करने पर स्थानीय विज्ञान मण्डल के पाँच सदस्यों को उत्साह मिलेगा और उस क्षेत्र के जन समुदाय को इस पुण्य प्रक्रिया का परिचय प्राप्त होगा। यह दोष भी छूट जायगा। ही लाभ कम महत्व के नहीं है। उनकी परिणति क्षेत्र में युगान्तरीय चेतना का आलोक विस्तृत करने में भी हो सकता है। उद्घाटन समारोह एक दिन का होगा। रात्रि को किसी हाल या अन्धेरे शामयाने इसी प्रयोजन के लिए विशेष रूप से बने स्लाइड प्रोजेक्टर का चित्र प्रदर्शन। दूसरे दिन प्रातः सूर्योदय से लेकर घण्टे में समाप्त होने वाला समारोह। जिसमें सामूहिक जप, प्रतीक यज्ञ, संगीत, प्रवचन, सदस्यों का व्रत धारण धर्म कृत्य सम्पन्न होगा। सदस्य पीले वस्त्र धारण करेंगे स्वस्ति वाचन देव पूजन, स्तवन, व्रत धारण एवं कुमारी काओं द्वारा जल अभिषेक, उपस्थित लोगों द्वारा पु

मैं से अभिनन्दन इस दो घण्टे के आयोजन के प्रधान
या कृत्य होंगे।

इन उद्घाटन समारोहों को सम्पन्न करने के लिए
नित कुंज से दो प्रतिनिधि मोटर साइकिल द्वारा पहुँ-
गे। चूँकि यह समारोह इन एक ही वर्ष में हजारों की
ख्या में होने हैं। वे एक-एक दिन के होने पर भी इतने
धिक हो जायेंगे कि छोटे देहातों तक लम्बी दूरियाँ पार
रहे हुए उन सभी स्थानों पर प्रतिनिधियों का पहुँच
करना सम्भव नहीं था। इसलिए प्रचार अभियान की
अवश्यकता समझते हुए जीप गाड़ियों की तरह इन्हीं
नई मोटर साइकिलों का भी प्रबन्ध किया है। उनके
रा सभी स्वाध्याय मण्डलों के उद्घाटन कार्यक्रम ठीक
कार सम्पन्न हो सकेंगे।

इन स्वाध्याय मण्डलों को साहित्य की व्यवस्था करने
ए.पैसे का प्रबन्ध भी करना होगा। इसका सरल
विधान पाँच सदस्यों के दैनिक अंशदान वाले ज्ञानघटों
ही निकल आयेगा। पैंतीस वर्ष पूर्व के निर्धारण में
स पैंसा और एक घण्टा समय देते रहने वालों को मिशन
स सदस्य बनने का अनुबन्ध बना था। ईमानदारों ने
शुभारंभ इस शर्त को ईमानदारी से निभाया भी है। अब पैंतीस
उनके उपर में मँहगाई कई गुनी बढ़ गई है। ज्ञानघटों की राशि
आयोजन दस पैसे से बढ़कर बीस पैसे करनी होगी। स्वाध्याय
विज्ञान मण्डल के पाँच सदस्य बीस-बीस पैसे नित्य अपने ज्ञान-
है। इस घटों में जमा किया करेंगे। बस इतनी सी स्वल्प राशि से
न समुदाय स्वाध्याय मण्डल का ढर्रा चल पड़ेगा और साहित्य की
यह दोषभीष्ट आवश्यकता पूरी होती रहेगी। इतने पैसों से ही

पुराना साहित्य भी मँगाया जा सकता है और नये प्रका-
शन के नियमित रूप में पहुँचते रहने की व्यवस्था भी हो
सकती है।

हर स्वाध्याय मण्डल इतना ही छोटा होगा। इसके
पाँच नैष्ठिक सदस्य और पच्चीस पाठक सहयोगी रहेंगे।
यह पाठक अपने घर, परिवार एवं पड़ोस के लोग भी हो
सकते हैं। वे सुविधानुसार पढ़ने का क्रम भी चलाते रहते
हैं। अनिवार्यता और व्रतशीलता तो मात्र संस्थापक
सदस्यों के लिए ही है। उन्हें ही स्वयं का स्वाध्याय
नियमित रूप से चलाना होगा। पाँच-पाँच अन्त्यों के पास
साहित्य देने वापस लेने का उत्तरदायित्व सम्भालना होगा।
साथ ही बीस पैंसा अंशदान भी बिना आना-कानी किए
बिना बहाना सोचे नियमित रूप से निकालना होगा। अन्य
सहयोगी पाठकों पर ऐसा अनुबन्ध नहीं है। बिना मूल्य
नियमित रूप से पढ़ें इतना ही बहुत है। जहाँ अधिक
व्रतधारी सदस्य होंगे वहाँ उतने ही अलग मण्डल बन
जायेंगे और उन मण्डलों को व्रत धारण, धर्मकृत्य अलग-
अलग गुटों में एक ही मण्डल के अन्तर्गत सम्पन्न हो
जायेंगे।

स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना युग सन्धि के इस वर्ष
का प्रमुख कार्यक्रम है। इसे अपनाने आगे बढ़ाने के लिए
प्रत्येक प्राणवान युग प्रहरी को आगे आना चाहिए और
अपने क्षेत्र में अन्यान्य स्थानों पर भी ऐसी स्थापनायें करनी
चाहिए। स्थापना के विवरण आने पर शान्ति कुंज द्वारा
उनके उद्घाटनों की तिथियाँ निश्चित की जायेंगी और
उनके लिए प्रतिनिधि भेजने की व्यवस्था बनाई जायेगी।

अगला युग-साधना अंक

अन्तःक्षेत्र की श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठापरक भाव संवेदना का कार्य 'मनीषा' द्वारा
सम्पन्न होता है। उस महान भाण्डागार की देव दानव जैसी अद्भुत शक्तियों की उपलब्धि उद्-
भव साधना की प्रखर ऊर्जा द्वारा सम्भव होती है। भक्ति और शक्ति के समन्वय से ही अध्यात्म
की समग्रता बनती है।

इस अङ्क में युग मनीषा को सम्बोधित किया गया है। अगले अङ्कों में युग-साधना
से सम्बन्धित रहस्यों का अनावरण विज्ञ पाठक देखेंगे और एक अभिनव किन्तु अति पुरातन
शक्ति स्रोत का परिचय प्राप्त करेंगे। अगले मास की प्रतीक्षा करें।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

तम प्रेरक है, दुष्प्रवृत्तियों, दुर्भावों का,
सद्प्रवृत्तियों का प्रेरक, पावन-प्रकाश है।
छाई रहती वहाँ तिमिर की काली छाया,
दुष्प्रवृत्तियों, दुर्भावों का जहाँ वास है ॥१॥

अन्धकार में प्रायः सभी भटक जाते हैं।
सद्प्रवृत्ति के पहिये वहाँ अटक जाते हैं ॥
क्रूर-कृत्य चलते रहते हैं अन्धकार में,
सद्भावों के दर्पण वहाँ चटक जाते हैं।
कुंठाएँ, कुत्साएँ और गहन होती हैं,
पीड़ा और पतन करते रहते विनाश हैं ॥२॥

निर्ममता का नाता रहता सदा ज्योति से,
सद्भावों के सुमनों का विकास होता है।
प्राण प्रफुल्लित हो उठते, भरते उमंग से,
शक्ति जगाना, किरणों का प्रयास होता है।
जहाँ प्राण को नव-प्रकाश मिलता रहता है,
वहाँ प्रगति है, उन्नति है, नूतन विकास है ॥३॥

आओ ! हम जन मानस का तम तोम मिटायें!
कुत्साओं का कुंठाओं का जोर घटायें।
रह न सके कोई भी जन अज्ञानग्रसित अब,
बाहर भीतर के सारे व्यवधान हटायें।
चलो ! उगायें जनमानस में सूर्य ज्ञान का,
जनमानस को नव प्रभात की लगी आश है ॥४॥

घनी-अमावस का तम हम पीने वाले हैं।
दीप मालिका बनकर हम जीने वाले हैं।
परम्परा है चिर प्रकाश की संस्कृति की यह,
निशा, न चुक जाये तब तक जीने वाले हैं।
जलते और जलाते रहना, प्राण-प्रदीपों !
‘युग-परिवर्तन’ नव-विहान का ही प्रयास है ॥

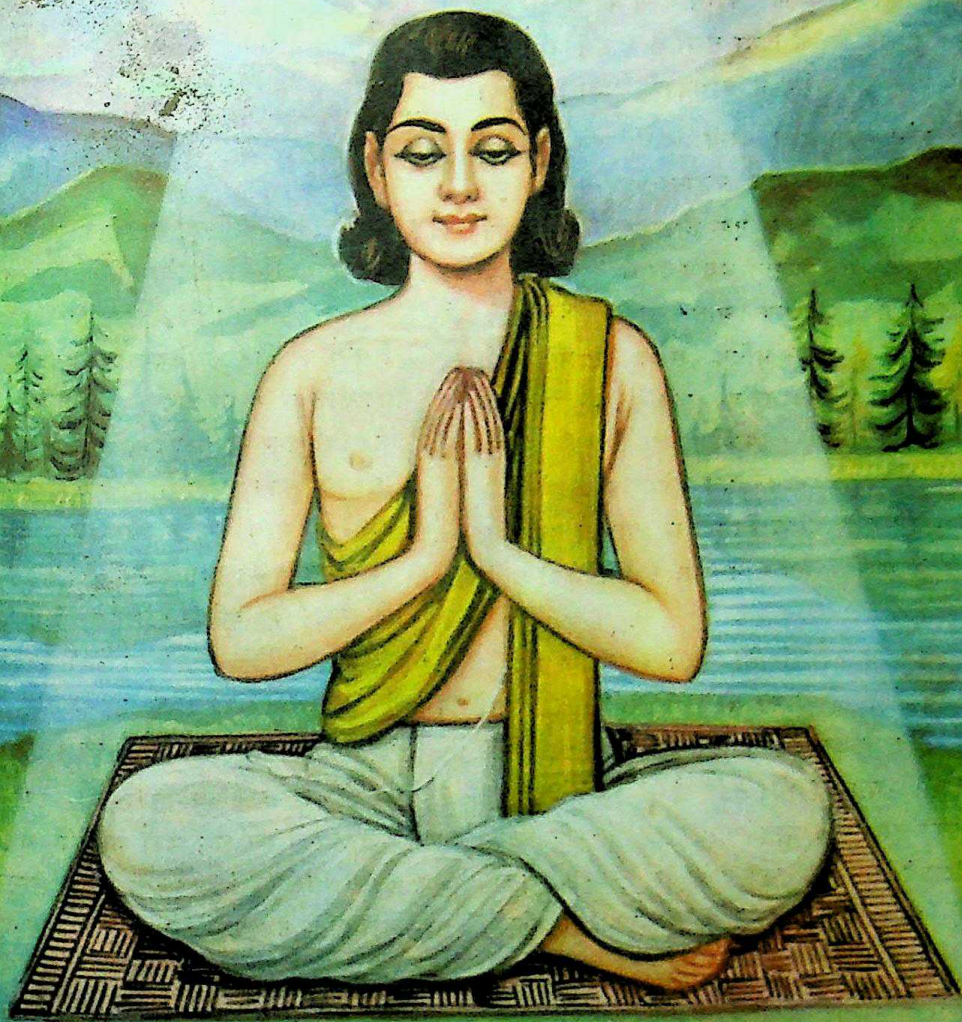
—मंगल विजय

सम्पादक—भगवती देवी शर्मा प्रकाशक व मुद्रक—मृत्युञ्जय शर्मा, अखण्ड-ज्योति संस्थान द्वारा
जन-जागरण प्रेस मथुरा २८१००३ में मुद्रित।

अखण्ड ज्योति

100

11.11.82



नवम्बर १९८२

कल्पसत्रों सम्बन्धी कुछ स्मरणीय तथ्य

प्रस्तुत अंक कल्प साधना सम्बन्धी विस्तृत विवेचन पर ही केन्द्रित करके लिखा गया है। इस प्रतिपादन में पूर्व में किये गये पाप कर्मों के परिशोधन, भावी जीवन की रीति-नीति के निर्धारण तथा सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन हेतु प्रखर तपश्चर्या द्वारा व्यक्तित्व की प्रसुप्त परतों के जागरण की विधि-व्यवस्था का सार संक्षेप दिया गया है। परिजन-सत्र में प्रवेश लेकर एक माह के इस पुण्य लाभ को अर्जित कर सकते हैं। स्थान सीमित हैं, प्रत्येक के लिये अलग-अलग कक्ष निर्धारित हैं। ऐसे में पूर्वानुमति लिये बिना आना न तो मर्यादा के अनुकूल है नहीं कल्प साधना जैसे महत्प्रयोजन को देखते हुए उचित। इस प्रक्रिया का विस्तार अलग से 'आन्तरिक काया कल्प का सुनिश्चित विधान नामक पुस्तक में दे दिया गया है। उसका अवलोकन करके आना हर दृष्टि से लाभकारी होगा। साधना प्रयोजनों में रुचि रखने वाले अन्य अपने परिचितों को भी इस पुण्य प्रक्रिया से अवगत कराना हर परिजन का कर्त्तव्य है। अभी तो इसका एक छोटा-सा ही स्वरूप देखने को मिल रहा है। परन्तु अगले दिनों इसकी फल-श्रुतियाँ निश्चित ही अत्यधिक महान होंगी। प्राणवान जागृतात्माओं के लिये इससे अधिक सुखद संयोग कोई और नहीं हो सकता। अब तो गत जून से यह श्रृंखला शान्ति-कुंज में चल पड़ी है। पूज्य गुरुदेव अपनी संध्या बेला में कुछ विशिष्ट अनुदान अपने प्रिय परिजनों को देकर जाना चाहते हैं। इसके लिए जो पात्रता-प्रखरता अर्जित करनी है, वह इस तप साधना से कम में पूरी नहीं हो सकती।

कल्प-साधना जराजीर्णों को युवा बनाने एवं कष्ट-साध्य रोगों से ग्रसित लोगों का अस्पताल नहीं है। यहाँ असाध्य दमा, गंठिया, श्वास, क्षय जैसे रोगियों के लिये सेनिटोरियम की व्यवस्था भी नहीं है। यह विशुद्धतः आन्तरिक काया-कल्प की भाव साधना है जिसके लिये साधक का शारीरिक-मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होना अनिवार्य है। मात्र साधकों के लिये तपश्चर्या में जिस स्तर की व्यवस्था चाहिए, उतना ही प्रबन्ध यहाँ किया गया है। कहीं कोई गलतफहमी न रहे इसलिये स्पष्ट कर दिया गया है कि कल्प तपस्या व साधना के लिये ऐसा स्वास्थ्य चाहिए जो उस दबाव को सहन कर सके।

वयोवृद्ध, जराजीर्णों के लिये तो पहले भी किसी शिकि व्यवस्था में आने के लिये प्रतिबन्ध ही था। अब इन पंक्तियों द्वारा वस्तुस्थिति को और भी अधिक स्पष्ट किया जा रहा है।

जिन्हें आगामी कल्प सत्रों (दिनांक १ से २६ तक प्रतिमाह) में आना हो वे निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तारपूर्वक लिखकर भेजें और स्वीकृति मिलने पर उपरान्त ही आने की तैयारी करें।

आवेदन-पत्र

- (१) किस मास के कल्प सत्र में आना है ?
- (२) यदि उसमें स्थान भर गया हो तो फिर किस मास के सत्र में आने की स्वीकृति दी जाय ?
- (३) पूरा नाम तथा पत्र-व्यवहार का पता

[४] आयु..... [५] शिक्षा..... [६] जन्मजाति.....

[७] वर्तमान शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य का विवरण स्पष्ट शब्दों में तथा विस्तारपूर्वक। यदि रुग्णता, अशक्तता हो तो उसको बिना छिपाए सत्य स्थिति का विस्तृत विवरण जिसके बारे में फिर पूछताछ न करनी पड़े। स्वरण रहे असाध्य तो जो चिकित्सा के उद्देश्य से आना चाहते हैं, तत्काल वापस लौटाया जा सकता है।

[८] यहाँ की प्रातः ३॥ से प्रारम्भ होकर रात्रि के बजे तक चलने वाली कार्य पद्धति एवं मर्यादा के पालन का सुनिश्चित आश्वासन।

[९] मिशन की किन पत्रिकाओं के नियमित पाठक हैं।
[१०] पिछले दिनों की कोई उल्लेखनीय घटना हो इस परिपेक्ष्य में उसका विवरण।

अपनी व्यय व्यवस्था का प्रबन्ध, ठण्ड के हिंसक कपड़ों आदि का सरंजाम जुटा कर ही घर से चले आना अभावग्रस्त स्थिति में अड़चनों का सामना न कर पड़े। आवेदन-पत्र शान्ति-कुंज हरिद्वार के पते पर भेजें।

उपरोक्त तथ्यों को याद रख सारी पूर्तियाँ आवेदन की स्वीकृति मिलने पर ही आयें। ऐसे कल्प साधना की सार्थकता है।



दीपक
भी अपने क्ष
जिससे वस्तु
उस जानका
और सही
का काम भी
प्रभाव क्षेत्र
कारण भट
वान रखती
यह उत्तरद
टिकने दें।
दें। इतन
समस्याओं
के आक्रम
दुर्घटनाएँ
उठानी
संकटों को
स्याओं क
नहीं कि
चढ़ाई ही
ढलान भ
नहीं रह
युग

ॐ भूभवंः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

अर्या समाज

प्रज्ञायोग

अध्यात्म विज्ञान

92



मनीषा तप-तितीक्षा में तपे और खुशी उतरे

दीपक का काम है—तमिस्रा के व्यापक माहौल में भी अपने क्षेत्र में प्रकाश उत्पन्न करना। ऐसा प्रकाश जिससे वस्तु और स्थिति की सही जानकारी मिल सके। उस जानकारी के आधार पर सही निर्धारण कर सकना और सही कदम उठा सकना सम्भव हो सके। मनीषा का काम भी वही है। वह न भटकती है और न अपने प्रभाव क्षेत्र में किसी को यथार्थता से अनजान होने के कारण भटकने देती है। दीपशिखा जहाँ अपने को प्रकाशवान रखती है, ज्योति का प्रतिनिधित्व करती है, वहाँ यह उत्तरदायित्व भी उठाती है कि भटकाव के पैर न टिकने दें। यथार्थता से किसी को अपरिचित न रहने दें। इतना बन पड़े तो समझना चाहिए—आधी समस्याओं का हल हो गया। अपने कुकृत्यों और दूसरों के आक्रमणों से जितनी होनि होती है इससे कहीं अधिक दुर्घटनाएँ अनजान रहने तथा दिशाभ्रम के कारण उठनी पड़ती हैं। मनीषा का आलोक इस स्तर के संकटों को निरस्त करता है। फलतः उसे आधी समस्याओं का हल करने वाला कहा जाता है। पूर्वार्ध निपटा नहीं कि उत्तरार्ध कठिन नहीं रह जाता। कठिन तो चढ़ाई ही पड़ती है। वह चुक गई तो शेष आधी तो ढलान भर रह जाती है और उसे पार करना कठिन नहीं रह जाता।

युग सन्धि की बेला में सबसे बड़ी जिम्मेदारी मनीषा

की है। उसे अँधेरी निशा में समुद्र के बीच प्रकाश-स्तम्भ की तरह एकाकी जलना होता है। उसे समर्थन किसका? सहायता किसकी? चारों ओर उफनते लहरों के कोलाहल और टकराव से अस्तित्व को चुनौती ही मिलती रहती है। फिर भी प्रकाश स्तम्भ न केवल अपनी सत्ता बचाये रहता है, साथ ही उस क्षेत्र से गुजरने वाले जलयानों की इतनी सेवा भी करता रहता है कि उन्हें इस प्रदेश की चट्टानों से टकराकर उलट जाने की विपत्ति में न पड़ने दें। बेशक, हीरक हार बाँटते रहने की स्थिति न होने के कारण उन्हें दानवीर होने का श्रेय तो नहीं मिलता फिर भी जानकार जानते हैं कि प्रहरी की जागरूकता सुरक्षा का जो प्रावधान करती है उसका कितना मूल्य-महत्व होता है। आलोक बुझ जाने पर जलयानों के उलट जाने की दुर्घटना देखकर ही कोई यह जान सकता है कि प्रकाश-स्तम्भ की मूक सेवा कितनी उपयोगी, कितनी आवश्यक होती है।

प्रज्ञा परिजनों में से जिनके अन्तराल में दूरदर्शी विवेकशीलता का आलोक दीप्तिमान हो उनको समय की चुनौती स्वीकार करनी चाहिए और संव्याप्त अंधकार में अपना साहस दीपक की तरह प्रज्वलित करना चाहिए। प्रत्यक्षतः इससे मन्दिर, धर्मशाला बनाने जैसा दृश्यमान ऐसा आधार तो नहीं बनता जिससे पुण्यात्मा धर्मात्मा कहलाने की ललक बुझ सके और अपनी वरि-

ठोता का बखान सुनने, सुनाने का अवसर मिल सके। तो भी इस सचाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि झटकाव को रोकना और दिशा निर्देशन के लिए जन-जन को इंगित करना भी कोई छोटा काम नहीं है। सच तो यह है कि दिशा निर्देशन के अभाव में भय, आतंक, अनिश्चय, असुरक्षा और आशंका का ऐसा माहौल बन जाता है जिसमें किसी के लिए भी, कुछ भी संकट खड़ा हो सके।

मनीषा है तो श्रेष्ठ और सराहनीय, तो भी उसे आगे बढ़ने के लिए, अपने पराक्रम का परिचय देने के लिए ऐसा आत्मबल चाहिए जिसमें संकल्प और साहस की प्रखरता-प्रचुरता भरी पड़ी हो। इसके बिना सद्ज्ञान भी अपने आप तक सीमित रह जाएगा, दूसरों की सेवा-सहायता के लिए आगे न बढ़ सकेगा। परमार्थ की प्रवृत्ति भी मनीषा की तरह किन्हीं सौभाग्यवानों को ही मिलती है और वह सौभाग्य भी अनायास नहीं मिलता। मनीषा आसमान से नहीं उतरती। दूरदर्शी विवेकशीलता के सहारे सम्मुख उपस्थित हर पदार्थ का पुनर्निरीक्षण, पुनर्निर्धारण करने की निष्पक्षता अपनाये बिना, मनीषा का पुण्य प्रसाद किसी को नहीं मिलता। इससे अगला कदम और भी बड़ा है। उसमें उपलब्ध मनीषा को जन-जन तक पहुँचाने का नया निर्धारण करना पड़ता है। राजहंस दूध-पानी का वर्गीकरण करता है। मोती चुगने और कीड़ों से परहेज करने का औचित्य अपनाता है। यह उसकी व्यक्तिगत विशेषता है। अगली बात तब बनती है जब उस उपलब्धि का लाभ जन-जन को मिले और समूचा समाज उससे लाभ उठाये। यह बादलों जैसा दुस्साहस है जिसमें अपनी पूँजी होने पर भी समुद्र से जल लादकर सुखे घरातल को हरा करने के लिए लम्बी यात्रा करते हुए दूर देशों में बरसना पड़ता है। मनीषा की सार्थकता भी उसी उपक्रम को अपनाने से बनती है।

मनीषा पवित्रता है और तपस्या प्रखरता। दोनों का सुयोग तेल-वाती के समन्वय की तरह कृत-कृत्य करता है। मुनि को ऋषि बनना पड़ता है। मुनि अर्थात् मनीषी। ऋषि अर्थात् वह मनीषी जो तप साधना से अपना आत्मबल बढ़ाए और उपलब्धियों को अभावग्रस्तों की प्यास बुझाने के

लिए उन्हें सुलभ करायें। आत्मबल के अभाव में साहस नहीं उभरता। साहस के बिना परमार्थ कैसा? परमार्थ में प्रयुक्त न होने पर ज्ञान, वैभव, वचस्व आदि की साधना कहाँ? अस्तु, जिस अन्तःप्रेरणा से मनीषा उभरती है देखा यह गया है कि उसी का दूसरा अनुदान तपसा जीवनचर्या के रूप में भी मिलता है। मनीषा यदि सच्ची और गहरी हो तो उसका दबाव व्यक्ति को तपस्वी बनने तक धकेलता कटोचता ही रहेगा।

युग मनीषा अपनी प्रखरता का परिचय युग के रूप में प्रस्तुत करे, यही उचित और यही श्रेयस्क है। युगसन्धि के इस प्रभात पर्व पर युगान्तरीय चेतना को किस तरह सोचना है, चिन्तन-प्रवाह को किस तरफ मोड़ना-मरोड़ना है उसका दिग्दर्शन गत अंक में यथोक्त सम्भव प्रतिपादित हुआ है। वह यदि उज्जित उपयुक्त तो उसे मान्यता तक सीमित न रहने दिया जाना चाहिए। प्रचलन, प्रवाह एवं परम्परा के स्तर तक पहुँचाया जाना चाहिए। यह आवश्यक भी है और कष्टसाध्य भी। इस क्रियान्वयन के लिए भागीरथी की प्रवृत्ति चाहिए। यह उमंगें उठें कैसे? गतिशील कैसे बनें इसके लिए जहाँ प्रोत्साहन की आवश्यकता है, वहाँ इसके लिए एक महत्वपूर्ण पक्ष तप-साधना भी है। ऋषिकल्प बनने के लिए इससे कम तापमान की ऊर्जा में काम भी नहीं चलता।

प्रज्ञा परिजनों में यदि युग मनीषा की भूमिका निर्धारित करने का उत्साह उभरा हो तो उसके लिए आवश्यक पराक्रम उत्पन्न करने वाला संकल्पवान साहस उगाना चाहिए। यह उत्पादन तप-साधना के सहारे ही अर्जित होता है। आवे में ही कच्ची मिट्टी के बर्तन पकते हैं। सदाशिव की उमंगों को भी परिपक्व होने के लिए अन्तराल देना पड़ता है। तपाने वाले साधनात्मक उपक्रम का आश्रय लेना पड़ता है। इसी प्रयोजन की सामयिक आवश्यकता पूरी करने के लिए 'कल्पसाधना' का निर्धारण है। समय का निर्वहण है कि जहाँ भी युग मनीषा उभरे वहाँ उसे युग साधना की दिशा में अगला कदम उठाने का भी प्रयत्न मिले। युग साधना को ही प्रकारान्तर से कल्प साधना कहा गया है। इस अंक में उसी का स्वरूप प्रतिपादन है।

कल्प साधना की पृष्ठभूमि और विधि व्यवस्था

इन दिनों शान्ति-कुंज में एक-एक मास के कल्प साधना सत्र चल रहे हैं। इस सम्बन्ध में सभी परिजनों को कुछ अधिक जानने की इच्छा उत्सुकता स्वाभाविक है। वस्तुतः यह प्राणवान जागृतात्माओं के लिए काया-कल्प के समतुल्य ही सुखद सम्भावनाएँ प्रस्तुत कर सकने योग्य प्रक्रिया है। समय की एक महती आवश्यकता की पूर्ति में इससे असाधारण योगदान मिल रहा है। इस सम्बन्ध में अधिक जानना उनके लिए भी सामयिक जानकारी की दृष्टि से आवश्यक है जो उसमें सम्मिलित होने की स्थिति में नहीं है।

‘कल्प’ का अर्थ होता है—व्यक्तित्व का उपयोगी परिवर्तन। आमतौर से चर्चा का विषय ‘काया कल्प’ ही रहा है। उसी का प्रधानतम उल्लेख एवं कथनोपकथन का क्रम चलता रहता है। कारण यह कि मनुष्य अपने आपको इन दिनों शरीर भर मानता है। लाभ हानि, प्राप्ति अवगति की एक ही कसौटी है—सुविधा साधनों में वृद्धि होने न होने की सफलता-असफलता। जब शरीर ही व्यक्ति है तो उसको प्रभावित करने वाले साधन ही सब कुछ ठहरते हैं। उनका कौन कितना अर्जन उपयोग कर सकता है, इसी आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि कौन कितना सुखी, समृद्ध एवं सफल रहा? किसके ऊपर अभावों का दुर्भाग्य लदा?

जब मापदण्ड ही गड़बड़ा जाय तो मूल्यांकन में भूल होना स्वाभाविक है। ऐसी दशा में यदि व्यक्तित्व में उपयोगी परिवर्तन को, शरीर की स्थिति में उदाहरण के हेर-फेर होने की बात को ही सब कुछ माना जाता हो तो इसमें कोई भी आश्चर्य की बात नहीं है। काया कल्प का प्रचलित अर्थ है—बढ़ापे का नवयौवन में बदल जाना अथवा दुर्बलता के स्थान पर बलिष्ठता का हस्तगत होना। इस सम्भावना की कुछ कथानकों—उदाहरणों से स्पष्ट भी होती है। च्यवन ऋषि जराजीर्ण थे। सुकन्या के अनुरोध पर अश्विनीकुमारों ने उन्हें कोई दिव्य

औषधि दी और उन्हें युवा बना दिया। ययाति को उनके एक पुत्र ने अपना यौवन दिया था और उनकी वृद्धावस्था स्वयं ओढ़ी। बाल खिलम एवं वैरवानस ऋषि का उदाहरण प्रख्यात है। इस मान्यता या आकांक्षा को पूरा करने के लिये मध्यकाल में भी प्रयत्न होते रहे हैं। आयुर्वेद में इनकी चर्चा स्थान-स्थान पर है। इस सन्दर्भ में वमन, विरेचन, स्नेहन, स्वेदन, वस्ति की पंचकर्म प्रक्रिया प्रख्यात है। साथ ही ऐसे रसायनों के सेवन का भी उल्लेख है जो पौष्टिकता बढ़ाते तथा सूखे मुरझाये को हरा-भरा करते हैं। परिशोधन और परिवर्धन की यह उभयपक्षीय प्रक्रिया अनेकानेक विधि-विधानों और क्रिया-प्रयोगों के साथ आयुर्वेद में लिखी है और उसकी परिणति को आयुर्वेद में ‘काया कल्प’ नाम दिया गया है।

पाश्चात्य शरीर शास्त्रियों ने भी इस मानवी आकांक्षा को ध्यान में रखते हुए अनेक स्तर के प्रयोग किए हैं। इनमें मनुष्यों से मिलती-जुलती शरीर रचना वाले बन्दरों की पौष्ट-ग्रन्थियों का मनुष्यों में आरोपण करना मुख्य है। इसमें सफलता भी मिली पर वह अस्थायी ही रही। लम्बी शीत निद्रा के उपरान्त थकान मिटाकर जीवकोशों को पुनः नये सिरे से काम करने का अवसर देना अभी सिद्धान्ततः ही स्वीकारा गया। उसका परीक्षण भर आरम्भ हुआ है। वह स्थिति नहीं आई जिसमें उसकी सफलता का विश्वास किया या कराया जा सके। कुछ अवयवों की शल्य क्रिया, आरोपण, परिवर्तन भी अभी प्रयोग स्तर पर ही है। उत्तेजक, पौष्टिक औषधियों के भी अनेकानेक प्रयोग हुए हैं। उनकी सफलता भी जादू-चमत्कार जैसी क्षणिक ही मिलती रही है। किसी प्रयोग के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि उससे स्थायी लाभ का सुयोग मिल गया।

इसी प्रयोग प्रयास में एक और कड़ी जोड़ने का अपना प्रयत्न जरा भी नहीं है। क्योंकि निर्धारित लक्ष्य का मापदण्ड ही गलत है। प्रकृति का परिवर्तन चक्र

सुनिश्चित है। उसमें अन्तर आने का अर्थ है—सृष्टि का मूलभूत आधार ही उलट जाना। यदि कभी वैसा हुआ तो उसका आरम्भ वर्तमान सृष्टि को समाप्त करके किसी अन्य आधार पर विश्व व्यवस्था को नये सिरे से बनाकर ही हो सकता है। ऐसी हेर-फेर को महाप्रलय से कम नाम नहीं दिया जा सकता। उत्पादन, परिपोषण, क्षरण और परिवर्तन की धुरी पर ही पदार्थ और प्राणियों का निर्वाह क्रम चल रहा है। उत्पन्न होना, बढ़ना, ढलना और अन्ततः परिवर्तन की भट्टी में नये रूप में गलने ढलने के लिये चले जाना। सभी की यही गति है। यहाँ स्थिरता कहीं नहीं। गति चक्र की धुरी पर सभी को भ्रमण करना पड़ता है।

खोये स्वास्थ्य को पुनः सुधार लेना, यह टूट-फूट की मरम्मत जैसा और समझ में आ सकने योग्य है। चिकित्सा उपचार के माध्यम से ऐसा हुआ भी है और वैसा होता भी रहेगा बात इसी सीमा पर आकर रुक जाती है। उस आकांक्षा की पूर्ति में अभी कोई आशा की किरण दिखाई नहीं पड़ती जिसमें जराजीर्ण आयु वाले फिर से नवयुवक बनने में सफल हो सकेंगे। इस सन्दर्भ में एक आधुनिक प्रयोग दृष्टव्य है। महामना मालवीय जी को किसी तपसी बाबा ने काया-कल्प का आश्वासन दिया और प्रयोग किया था। कोसी (उ० प्र०) के निकट उन बाबा के आश्रम में इस प्रयोजन के लिए एक विशेष कुटी बनाई गयी थी। उसी में चालीस दिन उन्हें हवा-घूप से वचते हुए रखा गया था और औषधियों का उपचार किया गया था। इस प्रयोग का परिणाम भी वैसा नहीं हुआ जैसी अपेक्षा की गयी थी। 'उपयुक्त उपचार का उपयुक्त प्रभाव' एक सामान्य सिद्धान्त है। उस प्रयोग के सन्दर्भ में भी वैसा तो हुआ पर कोई आश्चर्यजनक ऐसा परिवर्तन नहीं हुआ जिसे कायाकल्प की प्रचलित मान्यता में सफलता मिलने जैसा कुछ कहा जा सके।

शरीर क्षेत्र में काया-कल्प इतना ही सम्भव है कि आहार-विहार में बरती जाने वाली अनियमितताओं अवांछनीयताओं को रोकने के लिए होने वाले अस्वाभाविक क्षरण को रोका जा सके और लम्बी आयु तक निरोग रहते हुए जीवन क्रम को उत्साहवर्धक आनन्द-

दायक बनाया जा सके। मानवी काया की संरचना अन्यान्य जीवधारियों की तुलना में कहीं अधिक वरिष्ठ है। जब और सभी स्वच्छन्द प्राणी निरोग रहकर पूर्णप्राप्त करते हैं तो कोई कारण नहीं कि अकेला मनुष्य आये दिन की दुर्बलता और बीमारी का अभिशाप सह रहा असमय बेमौत मरता रहे। इसमें आहार-विहार मर्यादाओं का उल्लंघन, मानसिक उत्तेजनाएँ उभावाले आवेश तथा रीति नियमों का व्यतिक्रम ही कारण है जिनका समन्वय शारीरिक ही नहीं, मानसिक स्वास्थ्य को भी मटियामेट करके रख देता है। इतना सुधार सम्भव हो सके, अवांछनीय आदतों पुनर्निर्माण नये सिर से हो सके तो इतने भर से काया कल्प की पृष्ठभूमि बन सकती है। चिकित्सा के नाम पर कुछ हल्के-फुल्के प्रयोग भी रही बची कमी पूरी कर सकते हैं। इस दृष्टि से प्राकृतिक जीवनचर्या सिखाने के कोई सेनेटोरियम बनें और उनमें स्वास्थ्य का महत्व समझाने वाले कुछ समय निश्चिन्ततापूर्वक रहें तो विश्व पूर्वक कहा जा सकता है कि वर्षों आये दिन की व्याधि सहते-कराहते, खीजते रहने की अपेक्षा कुछ समय की यह आरोग्य साधना कहीं अधिक सस्ती पड़ेगी। उन वृद्धों के लिए जो विषाक्त उत्तेजनाएँ चिकित्सा के नाम पर अवयवों में भरते और जादुई लाभ लेने के लिए बाजार की तरह मचलते रहते हैं। इस विडम्बना में वे पाते हैं जो खोते अधिक हैं। रंग-विरंग चिकित्सकों के चित्र-विचित्र उपचार करते रहने पर भी आमतौर से देखा गया है कि "मर्ज बढ़ता ही गया—ज्यों-ज्यों दवा की" की लोकोक्ति ही चरितार्थ होती रहती है। इस कुचक्र छूटने का एक ही उपाय है प्रकृति की ओर वापसी। इतना भर समझकर कुछ कर सकें तो वे अपने बर्तमान अथवा दूसरों के राई रत्ती सहयोग से खोया स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

चर्चा यह थी कि शान्ति-कुंज के कल्प साधना का जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गठन किया गया उसका स्वरूप और प्रतिफल क्या है? अध्यात्म के आधार पर 'कल्प' शब्द का उपयोग आन्तरिक परिवर्तन के रूप में होना चाहिए। आन्तरिक का

है—दृष्टिकोण परक। मान्यता, आकांक्षा, विचारणा, कल्पना के समुच्चय को अन्तःकरण या अन्तराल कहते हैं। यही है व्यक्तित्व का आधार। सभी लोग शरीर की दृष्टि से प्रायः एक जैसे होते हैं और उनके बीच जो जमीन आसमान जैसा अन्तर पाया जाता है, वह लगता भर परिस्थितिजन्य है। उसका वास्तविक कारण मनः-स्थिति का स्तर ही होता है। “मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है।” “जो जैसा चाहता है, वैसा बन जाता है।” ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं” आदि-आदि अगणित प्रचलित उक्तियाँ एक ही तथ्य को प्रकट करती हैं कि मनःस्थिति जैसी भी होगी, परिस्थितियाँ वैसी ही बनती चली जायेंगी। किसी का स्वस्थ-अस्वस्थ, धनी-निर्धन, विज्ञ-मूर्ख, समुन्नत अधःपतित होना इस बात पर निर्भर है कि उसने अपनी मान्यताएँ और आदतें किस स्तर की बनाई हैं। साधन तो आदमी जिधर भी चलता है, उसी प्रकार के मिलते जाते हैं। सहयोगी भी वैसे ही जुट जाते हैं। विपन्न परिस्थितियों में उत्पन्न अगणित व्यक्ति संसार के इतिहास में मूर्धन्य होकर चमके हैं और साधन सम्पन्नों के अगणित वंशधर व्यसनी, अनाचारी होकर पूर्वजों के यश और धन की होली चलाते और अन्ततः दुर्गतिग्रस्त जीवन जीते देखे गये हैं। तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक दृष्टि-पात करने से एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि मनुष्य के अन्तराल का स्तर ही उसकी प्रगति एवं दुर्गति के लिये एकमात्र उत्तरदायी है।

निदान सही होने पर उसका उपचार भी ठीक बन पड़ता है और व्याधि निवारण में देर भी नहीं लगती। शान्ति-कुंज के कल्प साधना सत्रों में इसी आन्तरिक परिवर्तन की विधि-व्यवस्था बनाई गयी है। एक माह की छोटी अवधि इतने महान प्रयोजन के लिये है तो नगण्य और उपहासास्पद। फिर भी लोगों की व्यस्तता और उतावली को देखते हुए उतना ही छोटा कार्यक्रम बनाया गया है जिससे आरम्भिक अनुभव मिल सके और भविष्य में उस मार्ग पर चलते रहने का संकल्प भरा साहस उभर सके। बिगाड़ने में कम और बनाने में अधिक समय लगता है। इस दृष्टि से जितने समय में जीवन का

स्वरूप बिगाड़ा गया है, बनाने में उससे अधिक समय लगना चाहिए। पर लोगों की अधीरता को क्या कहा जाय जो हथेली पर सरसों जमने जैसा चमत्कार देखने से कम की कोई बात ही नहीं सुनना चाहते। अच्छा होता लोग ऐसे महान प्रयोजन के लिए न्यूनतम एक वर्ष की अवधि निकालें पर समय की विचित्रता में वैसा कुछ सम्भव नहीं दीखता। इसलिये ‘न कुछ से कुछ’ की नीति अपनायी गयी है और एक महीने का कल्प साधना का ऐसा उपक्रम अपनाया गया जिसमें पगडण्डियों के लालच में अपनायी गयी भूल भुलैयाँ को छोड़ने और सर्वतोमुखी अभ्युदय के राजमार्ग पर चलने के लिये सम्बन्धित व्यक्तियों को सहमत किया जा सके।

कल्प साधना में देवत्व के साथ सधन घनिष्ठता स्थापित करने वाली उपासना—मान्यताओं में—आदतों में उत्साहवर्धक परिवर्तन करने वाली जीवन साधना—एवं लोक व्यवहार को आनन्द उल्लास से सराबोर कर देने वाली आराधना का त्रिविधि समन्वय है। इसे अन्तःकरण, व्यक्तित्व और व्यवहार में उत्कृष्टता का अधिकाधिक समावेश करने वाली सुनियोजित प्रक्रिया कहा जा सकता है। मान्यताओं, आकांक्षाओं, विचारणाओं और आदतों को बदलने की कल्प प्रक्रिया उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है जैसी कि बुढ़ापे को जवानी में बदलने वाले काया-कल्प के बारे में लोक-मान्यता प्रचलित है। न तो बुढ़ापा अभिशाप है और न जवानी वरदान। दोनों ही अपनी-अपनी जगह सही है। दोनों का अपना समय, महत्व, उपयोग और गौरव है इसलिए शरीर का प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ परिवर्तन क्रम तो नहीं बदला जा सकता और न उसके बदलने की आवश्यकता ही है। आन्तरिक परिवर्तन की अपनी उपयोगिता है। यदि वह सही रीति से बन पड़े तो उसका लाभ काया-कल्प की तुलना में अपेक्षाकृत कहीं अधिक है।

कल्प-साधना में उन सभी तत्वों का समावेश किया गया है जो अन्तराल के स्तर में प्राकृत उत्कृष्टता उभरती और व्यवहार में पवित्र प्रखरता का ऐसा समावेश करती है जिसको उपलब्ध करने के उपरान्त व्यक्ति धरती से स्वर्ग में जा पहुँचने जैसा अनुभव कर सके।

उच्चस्तरीय प्रयोजन के लिए उपयुक्त वातावरण

विशिष्ट स्तर के परिवर्तनों के लिए जहाँ उपयुक्त उपचार पद्धति, प्रयोगाधिकारी तथा आवश्यक साधन उपकरणों की आवश्यकता होती है, वहाँ परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना पड़ता है। स्थान और समय की बात ऐसी ही है, जिसे ध्यान में रखते हुए योजना में हेर-फेर करना पड़ता है। टीलों पर बाग लगाना—रेगिस्तान में खेती करना—दल-दल में नगर बसाना—इच्छा होते हुए भी नहीं बन पड़ता। इसके लिए समस्त साधन होबे हुए भी स्थान बदलना पड़ता है। हर काम हर स्थान पर नहीं हो सकता। बहुत-सी दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ ऐसी हैं, जो ठण्डे या गरम प्रदेशों में ही उत्पन्न हो सकती हैं। उन्हें विपरीत वातावरण में लगाया जाय तो मेहनत और लागत बेकार चली जायेगी। अभीष्ट परिणाम की स्थिति बनेगी ही नहीं।

कल्प साधना के लिए सर्वप्रथम उपयुक्त वातावरण देखना पड़ता है। कुछ रोगों का इलाज घर बैठे भी हो सकता है, पर कुछ ऐसे हैं, जिसके लिए अस्पताल में भर्ती होने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। बड़े-बड़ों को विवशता में यही करना पड़ता है। क्योंकि डाक्टर, नर्स, परीक्षा चिकित्सा तथा शल्य-क्रिया के साधन उपकरण किसी के निजी मकान में एकत्रित नहीं किये जा सकते। हर समय, हर सुविधा उपलब्ध कराने वाले, उपयुक्त जलवायु में बने अस्पताल ही गम्भीर चिकित्सा के लिए उपयुक्त पड़ते हैं। इस तथ्य को समझने वाले बिना ननुनच किये अस्पताल में भर्ती होते हैं। घर में ही वह सब करा लेने का हठ कोई दुराग्रही ही करता होगा। कल्प साधना में जहाँ उपचार पद्धति का सही रूप में परिपालन आवश्यक होता है, वहाँ एक आवश्यकता उपयुक्त वातावरण की भी रहती है। इसकी व्यवस्था बने बिना गाड़ी रुकी ही रहती है।

लंका विजय, सतयुग स्थापन के उपरान्त राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को आत्म कल्याण की साधना

आवश्यक प्रतीत हुई। गुरु विशिष्ट ने भी इस आकांक्षा का समर्थन किया। बात आगे बढ़ी तो प्रथम प्रश्न यही उत्पन्न हुआ कि उसे किया कहाँ जाय? यों अभ्यध्या में साधनों की कमी नहीं थी, उसके लिए सभी सुविधाएँ जुट सकती थीं, पर मूल प्रश्न एक ही था कि अभीष्ट वातावरण वहाँ कहाँ से आये? जन्म भूमि और कर्म-भूमि के साथ मनुष्य के अनेकानेक संस्कार जुड़े होते हैं। अपना-पराया, राग-द्वेष, स्मृति-अभ्यास सम्पर्क-स्वभाव के कुछ ऐसे प्रवाह मनुष्य के साथ जुड़े होते हैं कि बहुत रोकथाम करने पर भी मनुष्य की चिन्तन पद्धति, अभिरुचि और आदत उसी अभ्यस्त ढर्रे में अनायास ही घूमती रहती है। विचारों तक की रोकथाम और मोड़-मरोड़ जब कठिन पड़ती है, तब अचेतन के साथ जुड़े रहने वाले स्वभाव-अभ्यास को कैसे बदला जाय? इसके लिए स्थान बदलने की आवश्यकता पड़ती है। परिस्थितियों का भी मनःस्थिति पर प्रभाव पड़ता है। स्थान बदलने में वहाँ के पदार्थ और व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध भी झीने पड़ते हैं। फलतः आगे न बढ़ने देने वाले सचित संस्कारों की पकड़ भी ढीली हो जाती है। साथ ही अधिक प्रभावी वातावरण का दबाव पड़ने पर भी मन का बदलना सरल हो जाता है।

भगवान् कृष्ण और रुक्मिणी का विचार एकबार उच्चस्तरीय सन्तान उत्पन्न करने का हुआ। इसके लिए उन्हें विशिष्ट तप करना था। हलकी-फुलकी साधना तो घर-गाँव में रहते हुए सामान्य क्रिया-कलापों के साथ-साथ भी चलती रहती है किन्तु उच्चस्तरीय साधनाओं में प्रयास ही सब कुछ नहीं होता। इसके लिए वातावरण भी चाहिए। अस्तु, दोनों को सुसम्पन्न नगरियों में उपलब्ध अपने प्रस्तुत साधन छोड़ने पड़े और अभीष्ट प्राप्ति के लिए उपयुक्त स्थान 'वद्रीनाथ' ढूँढ़ना पड़ा। वहाँ उन लोगों ने बारह वर्ष तक मात्र जंगली बेर खाकर तप किया। तदुपरान्त ही अपने समान स्तर का एकमात्र

नवम्बर १९८२

६

अष्टाष्ट-ज्योति

कुछ 'प्रद्युम्न' उत्पन्न कर सकने में सफल हुए।

महाभारत के उपरान्त पाण्डव सिंहासनाखंड तो हुए पर साथ ही उनकी आत्मोत्कर्ष आकांक्षा भी उमंगती रही। भगवान् कृष्ण ने उनकी अमिलाषा को समझा और इसके लिए स्थान बदल लेने का परामर्श दिया, वैसे ही हुआ था। राज-काज उत्तराधिकारियों को देकर पाण्डव हिमालय चले, कृष्ण भी साथ थे। धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती इससे पूर्व ही हिमालय निवास करते हुए आत्म साधना में संलग्न हो चुके थे। पीछे द्रौपदी समेत पाँच पाण्डव भी चले। बद्रीनाथ के निकट ही वे जिस स्थान पर बसे उसका नाम 'पाण्डु केशवर' पड़ा। भगवान् ने उन्हें 'पाण्डव गीता' यहीं सुनाई थी। वह ज्ञान भी 'योगवशिष्ठ' के समतुल्य ही माना जाता है। तपस्वी जीवन बिताते हुए उच्चस्तरीय साधना करते हुए, पाण्डवों ने स्वर्ग प्रस्थान किया था, यह सभी को विदित है। यह उद्देश्य वे लोग 'इन्द्रप्रस्थ' 'हस्तिनापुर' रहते हुए—राज-काज चलाते हुए नहीं कर सकते थे। वातावरण व्यक्ति का तीन चौथाई मन अपने साथ अनायास ही जकड़े रहता है। अभ्यस्त ढर्रे में स्थान के साथ—स्वजन सम्बन्धियों के साथ—जुड़े हुए सम्बन्ध इतने सघन होते हैं, जिनका उल्लंघन करते हुए पार जा सकना दुस्तर समझकर यही उपाय अपनाया जाता है कि उपयुक्त वातावरण की दृष्टि से, पुराने सम्बन्धों से जकड़ा हुआ स्थान बदल दिया जाता है। पाण्डवों ने भी राम-बान्धवों की तरह, वही किया।

स्वास्थ्य सुधार के लिए बनाये जाने वाले 'सेनेटोरियमों' को स्थापना करने वाले सर्वप्रथम उपयुक्त जलवायु वाले स्थानों का चुनाव करते हैं। भले ही लोगों को वहाँ पहुँचने में असुविधा होती हो। 'भुवाली' सेनेटोरियम आदि सभी प्रायः ऊँचे पर्वतीय स्थानों स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से उपयुक्त समझे गये वातावरण में बने हैं। परिणामों को देखते हुए स्पष्ट है, रोग और उपचार अन्यत्र जैसा रहने पर भी वहाँ भर्ती हुए रोगी आशातीत प्रगति करते हैं और जल्दी अच्छे होने में इन उपचार पद्धतियों का परिणाम आश्चर्यजनक रहता है। यह सफलता तोभी अपने-अपने स्थानों पर रह कर नहीं कर सकते।

ऐसे रोगियों में हर घड़ी स्वास्थ्य सुधार ही मास्तिष्क पर छाया रहता है, जबकि घर रहने पर कुटुम्ब-व्यवसाय सम्पर्क—समुदाय से सम्बन्धित अनेकानेक समस्याएँ ध्यान बँटाती रहती हैं। पूरा मनोयोग लगना भी सफलता का बहुत बड़ा रहस्य है। कल्प साधना में भी घर छोड़कर तदनुरूप स्थान चयन करने की बात पर जोर दिया जाता है।

वम्बई का केला, नागपुर का सन्तरा, लखनऊ का आम, मैसूर का चन्दन प्रसिद्ध है। उन्हीं पौधों को अन्यत्र लगाया जाय, तो वे स्थान और गुण उपलब्ध न होंगे। इसमें माली का दोष नहीं, जलवायु का कारण है। सरहदी पठान और नम क्षेत्र के निवासी बंगाली का शरीर देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि आहार आदि की सुविधा में अन्तर न रहने पर भी स्वास्थ्य में इतना अन्तर क्यों रहता है? इसमें क्षेत्रीय जलवायु की भिन्नता ही प्रमुख कारण है। जो बात भौतिक क्षेत्र में जलवायु और जमीन पर लागू होती है। वही अध्यात्म क्षेत्र के प्रयोगों और परिणामों के सम्बन्ध में उच्चस्तरीय वातावरण पर निर्भर रहती है। इसमें भूमिगत संस्कार, प्राणवान् सान्निध्य तथा क्षेत्रीय वातावरण, पुरातन संचित संस्कार आदि कितने ही कारण काम करते हैं। तीर्थों की स्थापना पुरातन काल में इन्हीं तथ्यों को समन्वित करते हुए की गई थी।

बालकों के गुरुकुल—वानप्रस्थों के आरण्यक—स्थापित करते समय सुविधा का नहीं, उच्चस्तरीय वातावरण का ध्यान रखना होता है, भले ही वह परम्परागत बना हो अथवा प्रयत्नपूर्वक बनाया गया हो। सुविधा का स्थान कौन नहीं चाहता। पर जब वातावरण के साथ जुड़ी हुई प्रगति का प्रश्न आता है तो सुविधा छोड़ने और वातावरण अपनाने का दूरदर्शिता पूर्ण निर्णय करना पड़ता है। होटल धर्मशाला में रहकर अनुष्ठान आदि की लकीर पीट लेना एक बात है और त्रिवेणी की रेती में कुटी बनाकर माघ मास का 'कल्पवास' करना दूसरी। साधना में मात्र कृत्य ही सब कुछ नहीं होता। उसके लिए वातावरण भी पौधे को खाद-पानी मिलने की तरह आवश्यक है। इस दृष्टि से स्थान परिवर्तन की आवश्यकता कल्प

साधना में आवश्यक मानी गयी है। मालवीयजी का काया-कल्प प्रयोग हिन्दू विश्वविद्यालय में बनी उनकी कोठी पर नहीं हुआ था। इसके लिये उन्हें मथुरा जिले के एक छोटे गाँव में तपसी बाबा के तपोवन में फूस की कुटी बनाकर रहना पड़ा था।

महामानवों में से तो प्रत्येक को स्थायी रूप से अपनी जन्म भूमि छोड़कर अन्यत्र कार्यक्षेत्र बनाना पड़ा है। ऋषि वृन्द में से प्रत्येक को अपनी जन्म भूमि छोड़नी पड़ी और वे प्रधानतया हिमालय की छाया और गंगा की गोद में बसे। कुछ को अन्यत्र भी ऐसे ही पवित्र स्थात ढूँढ़ने पड़े। बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, नानक, कबीर, रामानुज, चैतन्य, ज्ञानेश्वर, समर्थ, रामकृष्ण परमहंस, गान्धी, अरविन्द, रमण आदि में से एक भी अपने जन्म स्थान में नहीं बसा या उन्हें वहाँ साधन सुविधा की दृष्टि से ही सुगमता रही। ईसा, मोहम्मद और जरथुस्त्र आदि प्रमुख धर्म संस्थापकों के सम्बन्ध में भी यही बात है। उन्हें जन्मभूमि से प्रेम न रहा हो, ऐसी बात नहीं है, पर परिस्थिति का मनःस्थिति पर जो प्रभाव पड़ता है और उसके कारण लक्ष्य की ओर गतिशील होने में जो व्यवधान पड़ता है, उसे देखते हुए दूरदर्शिता ने यही सुझाया कि स्थान बदल कर ही महान कार्य सम्पन्न कर सकने में सुविधा होती है।

कल्प साधना की कार्य पद्धति उतनी कठिन या जटिल नहीं है जो घर रह कर न की जा सकती हो। किन्तु कठिनाई एक ही है कि अभ्यस्त ढर्रा, आधा ध्यान अपने में ही उलझाये रहता है जबकि कल्प साधना या किसी भी साधना के लिए मन को आगे बढ़ाने वाले प्राणवान वातावरण की आवश्यकता पड़ती है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए बहुत समय से यह प्रयत्न चलता रहा है कि उच्चस्तरीय साधना के निमित्त उपयुक्त वातावरण वाला तीर्थ विनिर्मित किया जाय। 'विनिर्मित' शब्द का प्रयोग यहाँ इसलिए किया जा रहा है कि परम्परागत तीर्थों को निहित स्वार्थों की दुरभि सन्धियों ने इस बुरी तरह जकड़ लिया है कि वहाँ श्रद्धा सम्बर्धक प्रेरणा मिलना तो दूर-आवश्यक शिक्षण और प्राणवान सान्निध्य मिलना तो दूर, उलटे अश्रद्धा उत्पन्न करने वाला विक्षोभ

ही हाथ लगता है। भीड़ भाड़ की घिचपिच और पर्यटकों जैसी बाल चंचलता को देखते हुए वैसा अवसर बड़े निकालना कठिन है जहाँ साधना के लिये उपयुक्त सभी आवश्यक माध्यम एक साथ उपलब्ध हो सकें। ऐसी दशा में उस लुप्त परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए नवे सिर से न्यूनतम एक तीर्थ की स्थापना तो अनिवार्य रूप में आवश्यक हो ही गयी। इसके बिना प्रगति रथ एक कदम भी आगे बढ़ता प्रतीत नहीं हो रहा था।

शान्तिकुंज गायत्री तीर्थ को इसी दृष्टि से विनिर्मित किया गया है ताकि उस शून्य की पूर्ति हो सके। कल्प साधना सच्चे अर्थों में तीर्थ सेवन है। वातावरण, साधना, शिक्षण-विधान, अनुशासन, अध्यवसाय की दृष्टि से यहाँ निवास करने वाले साधक को यही अनुभव होता है कि उसे तीर्थ परम्परा का जीवन्त दर्शन हो रहा है। सून संचालकों ने समय की आवश्यकता को पूरा करने के लिये इस सन्दर्भ में प्राणपण से प्रयास किया है। अनेक स्थूल कमियों के रहते हुए भी कोई भी सूक्ष्मदर्शी यहाँ पर अनुभव कर सकता है कि व्यवस्था को उन्हीं पद चिह्नों पर चलाया जा रहा है जिन पर देव संस्कृति के महान तीर्थों की स्थापना प्रचण्ड ऊर्जा केन्द्रों के रूप में की गयी थी। ऐसी प्रचण्ड जिसमें तपकर अनगढ़ धातुओं को गलने ढलने और बहुमूल्य बनने का अवसर मिलता था तीर्थ प्रकारान्तर से महामानव ढालने के उत्पादन केन्द्रों जिनमें गुरुकुल बालकों का आरण्यक वानप्रस्थों का साधनारत व्यस्त गृहस्थों का नव निर्माण करते थे।

वातावरण की चर्चा करने के उपरान्त एक प्रश्न फिर भी शेष रह जाता है कि सत्रों में सम्मिलित होने वाले साधक उपयुक्त प्रभाव ग्रहण करने योग्य अपनी मनःस्थिति बना पाते हैं या नहीं। परिस्थितियाँ कितनी अनुकूल क्यों न बन गई हों, पर यदि उन्हें स्वीकार करने मनःस्थिति हो तो वह प्रयोजन सिद्ध हो नहीं सके जिसके लिए उभयपक्षीय प्रयासों की अनिवार्य आवश्यकता है, जो एकांगी होने पर बनता ही नहीं, सधता ही नहीं एक हाथ से ताली कहाँ बजती है। एक पैर से तो बिना लकड़ी के सहारे दस कदम भी चलना नहीं हो सकता एक पहिये की गाड़ी लम्बी यात्रा पूरी कैसे करे ?

कितना ही महान क्यों न हो उसकी किरणें किसी बन्द दरवाजे में प्रवेश नहीं कर सकती। हवा कितनी ही स्वच्छ क्यों न हो यदि खिड़कियाँ बन्द रहें तो वह समर्थ होते हुए भी उस घर में घुस नहीं सकेगी। इन्हीं कितने ही सुन्दर क्यों न हों पुतली के खराब हो जाने पर सर्वत्र अन्धकार ही दृष्टिगोचर होगा। कान के पर्दे काम न करें तो मधुर संगीत का आनन्द ले सकना सम्भव नहीं। पाचनतन्त्र खराब हो तो पीण्डिक भोजन को कोई उपयोगिता नहीं। वाहन-साधनों की जितनी उपयोगिता आवश्यकता है, उससे भी अधिक उनका सही उपयोग कर सकने में समर्थ विवेक और कौशल की है, अन्यथा बहु-मूल्य उपलब्धियाँ भी निरर्थक बनकर रह जाएँगी। वर्षा में सभी जल जंगल हरे-भरे दीखते हैं, पर चट्टानों पर न तो नमी के चिह्न दीखते हैं और न एक तिनका जमता है। आग को ईंधन तो चाहिए ही। अन्यथा वह प्रचंड होते हुए भी बुझ जाएगी। तीर्थसेवन के सम्बन्ध में भी यही बात है। उसमें उपयुक्त परिस्थितियाँ तो होनी ही चाहिए। उनके बिना उत्तम मनःस्थिति होने पर भी बात नहीं बनती, पर साथ ही इस तथ्य को भी भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि सशक्त परिस्थितियाँ भी उपयुक्त मनःस्थिति के अभाव में अपना प्रभाव प्रस्तुत कर सकने में समर्थ नहीं हो सकतीं।

कल्प साधना के साधकों को चाहिए कि इतना समय निकालने, इतना कष्ट सहने, इतना खर्च करने का जहाँ साहस दिखाया है वहाँ इतना पुरुषार्थ और भी करें कि अपने मन को पकड़-जकड़ कर, समेट-दबोच कर इसके लिए मनायें कि इन दिनों किसी दिव्य लोक में निवास करने, दिव्य ढाँचे में ढलने, भविष्य को देवोपम बनाने के लिए जिस चिन्तन की आवश्यकता है उसे तत्परतापूर्वक अपनायें। मन उच्चता हो तो उसके लिए छुट्टल धूमने के अभ्यस्त किसी वन्य पशु को प्रशिक्षित करने का कौशल अपनाया जाय। विचारों को भी विचारों से काटा जाय। लोहे से लोहा कटता है, विष को विष मारता है, काँटे से काँटा निकलता है। अनगढ़ एवं अनावश्यक विचारों के अभ्यस्त मनःसंस्थान को यदि उच्चस्तरीय अनुशासन में ढालना है तो वैसे ही प्रयत्न

करना हीगा जैसा कि बछड़े को हल में जोतने के लिए करना होता है।

परिस्थितियाँ जितनी महत्वपूर्ण हैं उतनी ही साधक की मनःस्थिति भी। यदि मन पर कँद होने का, जितनी जल्दी हो सके मुक्त होकर भागने के विचारों का घटा टोप छाया हो तो कितना भी सशक्त वातावरण हो, भावना, विचारणा तथा शरीर संरचना में तनिक भी परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होगा। अनुकूल मनःस्थिति के साधकों को कल्प प्रक्रिया के लिये जैसी परिस्थितियों की—तीर्थ के शक्ति प्रधान वातावरण की आवश्यकता थी, वैसे ही शान्ति-कुंज को गायत्री तीर्थ के रूप में विकसित किया गया है। इसके लिये इस स्थान की महत्ता तो अपने स्थान पर है ही, गत बारह वर्षों के वे प्रयास भी महत्वपूर्ण हैं। जनके माध्यम से इस तपःस्थली को संस्कारित किया गया है। सर्वविदित है कि यह स्थान सप्त ऋषियों की तपःस्थली सप्त सरोवर पर बनाया गया है। इमारत ठीक वही बनी है, जहाँ गायत्री के दृष्टा विश्वामित्र का निवास था। नौ कुण्ड की यज्ञ-शाला में नित्य दो घण्टे यज्ञ, पचपन साल से निरन्तर चल रही अखण्ड ज्योति, नित्य का चौबीस लाख सामूहिक जप पुरश्चरण, जड़ी-बूटी उद्यान जैसी विशेषताएँ चर्म चक्षुओं से देखी जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त वैसे भी बहुत कुछ है जिसे मात्र ज्ञान चक्षुओं से ही देखा जा सकता है। हिमाचल की दिव्य सत्ता का संरक्षण वशिष्ठ अरुन्धती का सान्निध्य, अनुभव पूर्व मार्ग दर्शन तथा प्राणवान अनुदान जैसी ऐसी सुविधाएँ जो अन्यत्र मिल सकना कठिन है। ब्रह्मवर्चस् की शोध-युग शिल्पियों का प्रशिक्षण इस वातावरण को स्वर्ण सुयोग जैसा बना देते हैं। 'कल्प साधना' जैसे महान प्रयोजन के लिए इससे हल्के दर्जे का वातावरण काम भी नहीं दे सकता था। इस लिये पिछले बारह वर्ष तदनुकूल स्थापना खड़ी कर देने के उपरान्त ही प्रखरता सम्पादन की कल्प साधना का सशक्त उपक्रम इसी वर्ष शान्ति-कुंज में आरम्भ किया गया है।

अखण्ड-ज्योति

आहार तपश्चर्या के चमत्कारी परिणाम

कल्प साधना का प्रमुख उद्देश्य है दृष्टिकोण को सुधारना एवं व्यक्तित्व को उभारना। सच्चा अध्यात्म अपने प्रयोक्ता को उसी दिशा में अग्रसर करता है। इसके समस्त विधि-विधानों का लक्ष्य बिन्दु यही है। जहाँ ध्यान धारणा आस्था क्षेत्र में उच्चस्तरीय प्रतिष्ठापनाओं का पथ प्रशस्त करती है वहाँ तप साधना कुसंस्कारी आदतों के खर-पतवार को उखाड़ती और उसके स्थान पर महान मानवों जैसे व्यक्तित्वों का नव-निर्माण कर दिखाती है। इस महान जागरण की फलश्रुतियाँ ही स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि के रूप में हस्तगत होती है।

कल्पकाल में साधक द्वारा ग्रहण किये जाने वाले सात्विक आहार में इसी उद्देश्य को ध्यान में रखा गया है : उसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का सुपाच्य सिद्ध होने वाला समन्वय किया गया है। उसे इस प्रकार के संतुलित आहार की तरह परोसा जाता है जिसमें काया के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों का समावेश है। कल्प प्रक्रिया में शरीर को तपाने, मन को सधाने और अन्तःकरण को बन्धनमुक्त करके—विराट् के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकने योग्य व्यापक बनाया जाना है। इसे स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर का समन्वित उत्कर्ष उपक्रम भी कह सकते हैं।

कल्प-साधना का प्रथम चरण है आहार शुद्धि। सर्व-विदित है कि अन्न से क्रमशः रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य बनते-बनते अन्ततः उसी का अन्तिम परिपाक मन के रूप में होता है। मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा गया है। नाक, कान, आँख की तरह मस्तिष्क भी एक अवयव है, भले ही वह खोपड़ी की पिटारी में बन्द ही क्यों न रहता हो। मस्तिष्क के आधार पर ही हमारा चिन्तन चलता है। उसी के निर्धारण दृष्टिकोण कहलाते हैं। बुद्धि एवं चित्त भी उसी के कुछ विशेष स्तर हैं। समूचे शरीर को तराजू के एक पलड़े पर और मात्र मस्तिष्क को दूसरे पलड़े पर रखा जाय तो मस्तिष्क ही अधिक वजनदार

सिद्ध होता है।

जैसा खाय अन्न वैसा बने मन वाली उक्ति सिद्ध है। तमोगुणी, गरिष्ठ, मुष्पाच्य, अभक्ष्य आदि करने वाले शरीर से भी रोग-क्रान्त विकृतिग्रस्त हैं—भले ही वे देखने में मोटे मजबूत दिखाई पड़ें तले, मसाले वाले, नशीले, दूसरों को पीड़ा देकर लब्ध किये गये खाद्य पदार्थ पाचन क्षेत्र को खराब करते हैं। इस सड़न से विपाकता उत्पन्न होती है और रक्त के साथ घूमती फिरती जहाँ कहीं भी टिक जाती वहीं किसी न किसी प्रकार का रोग उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार स्वास्थ्य के बनने बिगड़ने का प्रधान कारण आहार ही सिद्ध होता है। विहार की बात तो इस वाद आती है।

शारीरिक स्वास्थ्य की तरह मानसिक स्वास्थ्य प्रश्न है। उस पर भी अन्न का बुरा प्रभाव असाधारण रूप से पड़ता है। नशेवाजों के गुण, कर्म, स्वभाव निकृष्टता भरी रहती है। अभक्ष्य भोजियों में मनोविकास की भरमार उबलती रहती है। उनका न तो मन एकाग्र होता है और न चित्त ही शान्त रहता है। ऐसी दशा आत्मिक प्रगति का आधार ही लड़खड़ा जाता है। निर्वस्तुतः इस क्षेत्र में प्रवेश करना है, उन्हें सर्वप्रथम आहार शुद्धि पर ध्यान देना पड़ता है। यात्रा यहीं से आरम्भ होती है। ऋषियों के आहार का यदि पर्यवेक्षण किया जाय तो प्रतीत होता है कि उन्होंने इस सन्दर्भ में असाधारण सावधानी बरती और संयम अपनाया। पिप्पलायन ऋषि मात्र पीपल के फलों पर निर्वाह करते थे। कण्व का नाम ही इस आधार पर पड़ा है कि वे जंगली फलों के कण संचित करके उदर पूर्ति करते थे। फल, शाक पर तो अभी भी कितने ही लोग निर्भर रहते हैं। कइयों ने अंकुरित, अधपके अथवा उबले अन्नों को अपना आहार बनाया है। यह साधना का प्रथम सोपान है। अनुष्ठानों में उपवास का महत्व भी ब्रह्मचर्य के ही समान

माना जाता है। उपवास काल में जो आहार लिया जाता है वह फलाहार न सही—निश्चित रूप से सात्विक स्तर का तो होता ही है। पर इतना भर कर पाना भी आज के औसत आदमी को कठिन जान पड़ता है।

यदि मनुष्य आहार-विहार के सम्बन्ध में अन्य प्राणियों की तरह प्रकृति अनुशासन को स्वीकार करे तो उसे उन अभिशापों से मुक्ति मिल सकती है जो मर्यादा उल्लंघन के फलस्वरूप पल्ले बँधते हैं। जब अन्य जीव-धारी अमुविधाओं और अभ्रवों के बीच रहते प्रसन्न सन्तुष्ट जीवन जीते और पूर्णयुध्य प्राप्त करते हैं तो मनुष्य ही आधि-व्याधियों से ग्रसित क्यों रहे? इसमें अन्य किसी का कोई दोष नहीं। अपनी ही इन्द्रिय लिप्ता और उच्छृंखलता है जो अपने लिए आप खाई खोदती और स्वयं ही गर्त में गिरकर अपने हाथ पाँव आप तोड़ती है।

कल्प साधना में प्रथम पाठ आहार विहार में प्रकृति अनुशासन का समावेश करने और खाद्य पदार्थों को कम से कम भूतने-जलाने, यथा सम्भव उनके प्राकृतिक रूप में ही उपयोग करने के रूप में अभ्यास कराया जाता है। अच्छा होता साधक फलाहार पर न सही शाकाहार पर रह लेते। पर दुर्बल संकल्प वालों के लिए ढेर से जूझते हुए कंकपपी छूटते देखकर काम चलाऊ निर्धारण यही किया गया है कि कम से कम अमृताशन का व्रत तो निभाया ही जाय। यह एक महीने की प्रताड़ना नहीं है वरन् भविष्य में आहार सम्बन्धी संयमशीलता अपनाने के लिए करतया गया प्रारम्भिक अभ्यास है। साधकों से आशा की जाती है कि वे इसे बन्दी मूक की विवशता या सामयिक प्रताड़ना न समझें, वरन् भविष्य में आहार सम्बन्धी मर्यादा पालन का अभ्यास मानें और यदि वस्तुतः स्वास्थ्य का महत्व समझा गया हो तो आहार-विहार का अनुशासन शेष जीवन में नियमित रूप से निभायें।

कल्पकाल में जो भी आहार लिया जाता है, उसके बारे में शर्त है कि, वह कम से कम अग्नि संस्कार वाला उबला भर होना चाहिए। साथ ही उसमें एक समय में एक या दो से अधिक का सम्मिश्रण न हो। तबरात्रि के

उपवासों में जो फलाहार, शाकाहार, दूध, छाछ आदि पर नहीं रह सकते उन्हें अमृताशन का निर्देश दिया जाता है। उपवास की न्यूनतम मर्यादा यही है। अमृताशन का अर्थ है उबला अन्न। दाल-चावल, दलिया दाल आदि का सम्मिश्रण इस वर्ग में आता है। दाल के स्थान पर दूध या दही भी प्रयुक्त किया जा सकता है। साधना काल में यथा सम्भव ऐसे ही आहार पर रहने की विधि है। उबले शाक भी इसी श्रेणी में आते हैं।

कल्प साधना के साधकों के लिये एक महीने एक अमृताशन का एक वर्ग नियत किया जाता है और पूरे महीने उसी क्रम को निबाहते रहने का निश्चय किया जाता है। रुचि, प्रकृति और स्थिति को ध्यान में रखते हुये साधक और मार्ग-दर्शक परस्पर विचार विनिमय करके यह निर्धारित कर लेते हैं कि कल्प अवधि में क्या आहार चलेगा। उसका परिमाण कितना होगा और खाने का समय क्या रहा करेगा। यह आहार भी दिन में दो बार से अधिक नहीं लिया जा सकता। सैधा नमक, काली मिर्च, नीबू, जीरा, हल्दी, अदरक जैसे हानि रहित मसाले अपवाद स्वरूप थोड़ी मात्रा में ही इस अमृताशन में मिलाये जा सकते हैं। लाल मिर्च, हींग, आमचूर, अचार जैसी उत्तेजक वस्तुओं का इस भोजन में पूर्णतया निषेध है।

शान्ति-कुंज में कल्प साधना सत्रों के साधकों के लिए भाप से भोजन पकाने की एक सामूहिक प्रक्रिया विकसित की गयी है। भाप बनाने वाले दो बाँयलर लगाये गये हैं। उनके साथ दो बड़े स्टीम चैम्बर हैं। चैम्बरों में अमृताशन पकाने के छोटे-छोटे भगौने रखने के लिए सौ खाने बने हैं। प्रत्येक साधक को स्टेनलेस स्टील की भगौनी, ढक्कन, थाली, गिलास आदि सभी सामान आश्रम की ओर से मिलता है। साधक अपने लिए निर्धारित अमृताशन, निर्धारित मात्रा में खाद्यान्न डालकर माताजी के सुपुर्द कर जाते हैं। सभी पात्रों में अभिमन्त्रित गंगाजल तुलसी पत्र डाला जाता है उन्हें एक साथ भाप चैम्बर में पकावे रख दिया जाता है। एक घण्टे बाद सभी साधक लाइन में आते हैं और अपने नम्बर का भगौना लेकर वापिस चले जाते हैं। यही क्रम

प्रातः सायं दोनों समय चलता है। मूँग की दाल, गेहूँ का दलिया, चावल, सेंधा नमक, काली मिर्च सभी वस्तुयें शुद्ध स्वच्छ करके बाजार से सस्ते भाव में आश्रम के सहकारी स्टोर में उपलब्ध होती हैं। दैनिक आहार का यही क्रम है। जिसकी लागत महीने में पचास रुपये से अधिक नहीं आती। पकाने का श्रम, ईंधन आश्रम की ओर से लगता है।

आहार के बाद विहार का क्रम आता है। विहार अर्थात् दिनचर्या। निर्वाह क्रम में वरता जाने वाला अभ्यास। कल्प साधना का दूसरा चरण यही है। आश्रम में दिनचर्या निर्धारित है। घड़ी की सुई की तरह नियमितता बरतने, हर काम समय पर करने में जागरुकता बरतने के लिए प्रत्येक साधक को बाधित किया जाता है। आलस्य प्रमाद के लिए कहीं कोई गुंजाइश नहीं। सैनिकों की तरह चुस्ती, मुस्तैदी और फुर्ती अपनाती पड़ती है। नियत समय पर निर्धारित क्रम अपनाने के लिए हर किसी पर अंकुश रखा जाता है। अस्त-व्यस्त रहने की आदतों से ग्रसितों को प्यार से लेकर आंखें तरेरने के दवाव दिये जाते हैं और कहा जाता है कि आपको यहां सरकस के कलाकार प्राणियों की तरह अपने आपको सुगठित बनना है इसलिए पिछली अनगढ़ आदतों को इच्छा या अनिच्छा से छोड़ना ही चाहिए। सरकस के मनुष्यों एवं मनुष्योत्तर प्राणियों को उनके प्रशिक्षक जितनी कड़ाई के साथ सिखाते हैं उतना दवाव ही नहीं दिया जाता किन्तु घरेलू काम-काज की सहायता करने वाले बँल घोड़ों की तरह तो सीधी राह चलने के लिए तो अभ्यस्त कराया ही जाता है। कुसंस्कारी, अनगढ़ता को गुण, कर्म, स्वभाव का अंग बनाये रहने वाला व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं परिस्थितिजन्य सुविधाओं से भरा-पूरा रहने पर भी दुर्गतिग्रस्त ही रहेगा उसका भविष्य कभी चमकने वाला नहीं है। प्रगतिशीलों में से प्रत्येक को सर्वप्रथम अपने ढर्रे को परिष्कृत स्तर का बनाना पड़ा है। मनस्थिति बदलनी पड़ी है इसके उपरान्त ही परिस्थितियों ने करवट बदली है। जो परिस्थितियों को अनुकूल बनाने सुविधा सफलतायें पाने के तो सपने देखते रहे किन्तु अपनी अनगढ़ आदतों को यथावत्

बनाये रहे। उन्हें जितनी बड़ी महत्वाकांक्षा रही उतनी ही गहरी निराशा के कुचक्र में भ्रमण करना पड़ा है।

विहार क्रम में यहाँ की नियमित दिनचर्या के अनुसार साधकों को प्रातः ३॥ बजे उठना पड़ता है। जागरण की घण्टी यहाँ छावनी में बजने वाले बिगुल की तरह मानी जाती है जिसके निर्देश पर सभी को विस्तर छोड़ देना चाहिए। शौचालय, स्नानघर इतने हैं कि किसी की प्रतीक्षा न करनी पड़े और दो सौ शिक्षार्थी एक घण्टे में उन नित्यकर्म से निपट लें। इसके बाद प्रातःकालीन साधना का क्रम एक घण्टा चलता है। ५॥ बजे सभी माताजी के पास पहुँचते हैं। अखण्ड दीपक के दर्शन, औषधि कल्प-पेय की एक प्याली, प्रज्ञापेय का एक कप—इतना प्रसाद ग्रहण करने के इस कृत्य में प्रायः आधा घण्टा लग जाता है। इसके उपरान्त छै से आठ तक का साधना क्रम चलता है। इसी बीच यज्ञ में सम्मिलित होने की अपनी पारी भी निपट जाती है। इस प्रकार आठ बज जाते हैं।

आठ बजे सभी साधक अपनी भगौनी में अपना अमृताशन डालकर माताजी के पास पहुँचते और उन्हें सुपुर्द करते हैं। इसके बाद एक घण्टे का स्वाध्याय चलता है। इसमें आत्म-शोधन, आत्म-परिष्कार और भविष्य निर्माण के तत्व जुड़े रहते हैं। किसे क्या पढ़ना चाहिए इसका क्रम भी आहार उपचार की तरह आरम्भ से ही निर्धारित कर दिया जाता है। सभी के पास पुस्तकें पहुँचती हैं और वापिस ली जाती हैं। यह व्यवस्था आश्रम की ओर से है। जिन्हें सुविधा है वे इच्छित पुस्तकें खरीद भी सकते हैं।

नौ बजे भोजन क्रम। सभी अपने पके हुए अमृताशन की भगौनी माताजी से लेकर वापस आते हैं और अपने-अपने कमरों में उसे खाते हैं। इस प्रकार दस बज जाते हैं। दस से बारह तक यों घोषित रूप से विराम का समय है, पर वस्तुतः उसे चिन्तन-मनन का समय कहना चाहिए। यह विस्तर पर पड़े-पड़े भी हो सकता है। हर साधक का निवास स्वतन्त्र कमरे में रहता है। पति-पत्नी साथ हैं तो भी उन्हें पृथक-पृथक कमरों में रहना पड़ता है। यह व्यवस्था इसीलिए बनी है कि साधना, स्वाध्याय, चिन्तन, मनन में दूसरे के साथ रहने से किसी प्रकार का

विशेष न हो। प्रातःकाल की नादयोग साधना और अपने ही कमरे में मार्गदर्शक का नियमित प्रवचन—उद्बोधन मुक्त का लाभ भी एकान्त में, एकाग्र होने पर ही मिलता है। इसलिए ही साधकों को एक कमरा दिया जाता है। भले ही वह साइज में 10×10 का ही क्यों न हो।

प्रातः जो प्रज्ञापेय मिलता है। उसे जड़ी-बूटियों की बनी स्वादिष्ट साथ ही अधिक गुणकारी चाय कहा जा सकता है। यह वस्तुतः ब्याय है, इसमें चाय का अंश नाम मात्र को भी नहीं है। यही सभी को प्रातः ५-३० पर उपलब्ध होती है।

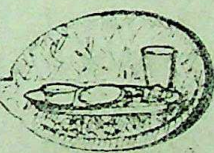
प्रत्येक साधक का उसकी शारीरिक-मानसिक स्थिति के अनुरूप दिव्य औषधि में से एक का जड़ी-बूटी कल्प निर्धारण कर दिया जाता है। महीने में प्रायः प्रतिदिन १० ग्राम निर्धारित औषधि का कल्प कराया जाता है। प्रज्ञापेय के पूर्व यह घुटी-पिसी स्थिति में हर साधक को मिलता है। दोनों ही की व्यवस्था दैनिक यज्ञ की तरह आश्रम की ओर से हर साधक के लिये बिना मूल्य की जाती है। सायंकाल साधक गंगा दर्शन के लिये जाते हैं तो अपनी-अपनी सुराही में गंगाजल भरते आते हैं जिसका सेवन वे २४ घण्टे करते हैं।

कल्पकाल की अवधि में प्रारम्भिक और अन्तिम दिनों में क्या-क्या शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन साधकों में होते हैं, इनका विश्लेषण ब्रह्मवर्चस्व शोध संस्थान के निष्णात चिकित्सकों द्वारा बराबर किया जाता है। माह में लगभग चार बार उन्हें जाँच-पड़ताल के लिये गंगा तट

अवस्थित शोध संस्थान जाना पड़ता है। आदि, मध्य और अन्त में हुए परिवर्तनों को देखकर यह पता चलता है कि आहार, औषधि, साधना, प्रायश्चित्त, एकान्त वास, मनन-चिन्तन, संयम तपश्चर्या आदि से किसकी शारीरिक, मानसिक स्थिति में क्या अन्तर पड़ा। पिछले साधना सत्रों में अधिकाधिक साधक सात्विक आहार की फलश्रुति अपने जीवन क्रम में प्रत्यक्ष देखकर गए। उनकी इन्द्रिय चेतना, स्फूर्ति और मस्तिष्कीय क्षमता में असाधारण वृद्धि हुई।

शान्ति-कुंज में गंगा की गोद, हिमालय की छाया, प्रचण्ड प्राण ऊर्जा का सान्निध्य, मर्मज्ञों का मार्गदर्शन, दिव्य चेतना से भरा-पूरा वातावरण यह सभी मिल-जुलकर ऐसा माहौल बनता है जिसमें रहकर कोई व्यक्ति बिना किसी साधना के भी अपनी अस्त-व्यस्तता से मुक्ति पा सकता है। फिर आहार-कल्प, प्रज्ञापेय और औषधि-कल्प का उसमें त्रिवेणी संगम मिल जाने से सच्चे अर्थों में रामायण की वह उक्ति लागू होने लगती है जिसमें, “मंजुन फल देखिये तत्काल। काक होंहि पिक बकहूँ मराला” ॥ की अलंकारिक उपमा देते हुए यह कहा गया है कि आकृति न बदलते हुए भी प्रकृति बदल जाने की पूरी-पूरी सम्भावना हो सकती है। कल्प साधना के ये प्राथमिक उपचार अवलम्बन हैं जिनके सहारे साधक की मनोभूमि में असाधारण परिवर्तन आने की सम्भावना व्यक्त की गयी है।

आहार साधना - एक महत्त्वपूर्ण तपश्चर्या



आहार कल्प स्वयं में एक परिपूर्ण चिकित्सा है। यह तो मात्र मन की दुर्बलता है जो व्यक्ति को भाँति-भाँति के आहार स्वादेन्द्रियों की तृप्ति ग्रहण करने हेतु लालायित करती रहती है। स्वास्थ्य के बिगड़ने, जीवनी शक्ति कमजोर होने की प्रक्रिया यहीं से आरम्भ होती है। अच्छा होता कि व्यक्ति प्रकृति में विचरण करते प्राणियों से कुछ शिक्षा

लेता, अपना जीवन क्रम यथा सम्भव स्वाभाविक बनाये रखता। परन्तु कृत्रिम जीवन का अभ्यासी मनुष्य आज अपने ढर्रे में कोई परिवर्तन किसी भी परिस्थिति में स्वतः स्वीकार नहीं करता। प्रकृति ही अपनी ओर से उसे दण्ड देती है तो उसे रोग विशेषों में पथ्यापथ्य के रूप में स्वाद को अच्छी लगने वाली वस्तुएँ बरबस छोड़ना पड़ती हैं।

अखण्ड-ज्योति

इस ढर्रे को तोड़ने की विधि एक ही है, किसी तरह अपने वर्तमान परिकर से निकलकर न्यूनतम एक आहार पर रहने के क्रम को अपनाया जाय। इसके लिये किंचित से मनोबल से ही काम चलाया जा सकता है। गह मृदु तपश्चर्या सफल हो गयी तो आगे कड़ी तपस्या भी सम्भव है। आहार कल्प की दृष्टि से सामान्यतया अमृताशन का प्रयोग सर्वमुलभ माना जाता है। गेहूँ, चावल, मूँग इन तीन के मिश्रण से दाल-चावल—दलिया-दाल का संयोग बनता है। अच्छा तो यह है कि एक धान्य से काम चलाया जाय। दलिया या चावल को दूध-गुड़ आदि के संयोग से स्वादिष्ट भी बनाया जा सकता है। अकेली मूँग भी उबाल कर एक महीने तक भोजन का काम भली प्रकार दे सकती है। आग्रह या असमर्थता हो तो दो का संयोग करना चाहिए। स्मरण रहे हर धान्य अपने आप में पूर्ण है। उसमें वे सभी वस्तुयें मौजूद हैं जो शरीर के लिए आवश्यक हैं। सच तो यह है कि शरीर के पाचक रस ही विभिन्न खाद्यान्नों को अपने उपयुक्त परिवर्तित करते और बदलते हैं। सुअर और दुम्बा मेढा के शरीर में चर्बी की मात्रा अत्यधिक होती है। वे इसे मात्र घास से ही प्राप्त कर लेते हैं। जबकि घास में चर्बी का अंश अत्यल्प मात्रा में होता है। शरीरगत पाचक रस सत्तू जैसी स्वत्व रहित वस्तु को भी उलट-पुलट कर शरीर के लिए उपयुक्त क्षमता वाले रक्त में बदल देते हैं। शाकाहार, में एक अन्न, एक फल, एक शाक भर रहने में हर्ज नहीं। कल्प का वास्तविक तात्पर्य यही है। दूध कल्प, छाछ कल्प, आम्र कल्प, खरबूजा कल्प आदि का तात्पर्य ही यह है कि नियत अवधि तक उस एक ही वस्तु का सेवन किया जाय। दूसरी और कोई वस्तु पेट में न जाने दी जाय। एक अन्न से नाक भों सिकोड़ने वालों के लिए ही मूँग की दाल का मिश्रण करके संख्या दो कर लेने की छूट दी गई है। अन्यथा उपयुक्त यही है कि किसी एक अन्न पर निर्भर रहा जाय। उसके साथ दूसरी वस्तु का मिश्रण न किया जाय। किसी खाद्य पदार्थ को अपना पूरा प्रभाव दिखाने का अवसर इसी आधार पर मिलता है। अन्यथा दो या अधिक वस्तुओं का मिश्रण करने पर हर वस्तु अपना प्रभाव खोती चली

जाती है। मिश्रणों के आधार पर नये-नये किस्म के चित्र-विचित्र प्रभाव उत्पन्न होते हैं और मूल विशेषता एक प्रकार से समाप्त ही होती जाती है।

अन्नों में प्राकृतिक अन्न कहीं अधिक प्राणवान होते हैं। गेहूँ, चावल आदि की प्रचलित किस्में चित्र विचित्र संकरत्व करके, विलक्षण-विलक्षण खाद देकर—कलम बनायी विकसित की गयी हैं। फलतः आकृति मूल रूप में मिलती-जुलती रहने पर भी उनके गुणों में भारी अंतर आ गया है। ऐसी दशा में अच्छा तो यही होता कि मनुष्य की करतूत अछूत वन्य प्रदेशों में अपने आप उगने वाले धान्यों का प्रयोग कल्प काल में किया जाय। ऐसे धान्यों में उत्तर प्रदेश की भूमि में साम्रा, मकरा, मास, कांगनी, चैना, महुआ जैसे जंगली अन्न कुछ समय तक पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होते थे। गरीब लोग उन्हीं पर निर्वाह करते थे। वे अपेक्षाकृत अधिक पौष्टिक, सात्विक एवं गुणकारी होते हैं। जो की एक प्राकृतिक किस्म 'जई' होती है। चावल में जंगली चावल को 'साठी' कहते हैं। इन सबके गुण पृथक-पृथक हैं। यदि इनमें से किसी एक अन्न का कल्प किया जा सके तो उसके चमत्कारी परिणाम उत्पन्न होंगे।

कठिनाई एक ही है कि अब भूमि का उपयोग कीमती फसल उत्पन्न करने में होने लगा है। फलतः जंगली अन्न के उत्पादन का क्षेत्र समाप्त होता चला जाता है। गरीब लोग भी अब उनके लिए प्रयत्न नहीं करते। फलतः वे अधिक पौष्टिक और सात्विक प्रजातियाँ क्रमशः लुप्त और समाप्त होती चली जा रही हैं। फिर भी जिन्हें अन्न बनाना हो उन्हें इतना तो ध्यान रखना ही चाहिए जिसका सेवन किया जाय वह सात्विक क्षेत्र में सात्विक खाद पानी से उत्पन्न किया गया हो। आजकल बुरा खानों का रक्त, मछली का खाद, मनुष्य के मल-मूत्र खाद वाले एवं गन्दे पानी से सींचे गये अन्न अधिक मात्रा में उपजते तो हैं पर गुणों की दृष्टि से उनका स्तर घटित एवं विकृत होता चला जाता है। रासायनिक खाद कीट नाशक दवाएँ जब आहार का रंग बन जाती हैं तो पेट भरने के लिए उनका उपयोग भले ही होता रहे अल्प जैसे उच्चस्तरीय उद्देश्यों में प्रयुक्त होने वाली नहीं।

आहार
हो तभी अ
पकाने वाले
नहीं। चाहे
दुष्ट, दुर्गुण
भोजन भी
जिसके लि
बनी है।
अन्न
आता है।
पेड़ पर प
जो विकते
लिए उपय
जाते हैं।
आदि में द
मीठा हो
होते हैं औ
आम, बेर,
खूब प्रचल
रहे पर वे
हट गये हो
जानी चा
फलों
इनमें आ
अमरुद अ
अपनी कि
हैं। शाको
मूली, शल
आलू, अर
शाकों में
अन्न वर्ग
प्रयोजनों
पालक, च
आहार क
होती है।
लगते हैं।

आहार की किस्म ही नहीं, उसका स्तर भी उत्तम हो तभी अभीष्ट उद्देश्यों की पूर्ति भली प्रकार होती है। पकाने वाले के व्यक्तित्व का प्रभाव भी कम महत्व का नहीं। चाहे जैसी प्रकृति आदत वाले, अस्वस्थ, अस्वच्छ, दुष्ट, दुर्गुणी, मूर्ख, अनगढ़ व्यक्ति का बनाया—परोसा भोजन भी उस उद्देश्य की पूर्ति में बाधा ही डालता है, जिसके लिए कि कल्प साधना जैसी तपश्चर्या की योजना बनी है।

अन्न के बाद फल, ऋतु फल, एवं शाकों का नस्वर आता है। जिनका अपना बगीचा है वे बिना कलम वाले पेड़ पर पके फल लेकर कल्प कर सकते हैं। बाजार में जो विकते हैं उनमें से बहुत कम ऐसे हैं जिनका कल्प के लिए उपयोग हो सके। आमतौर से वे पेड़ से कच्चे तोड़े जाते हैं। समय बीतते-बीतते पक जाते हैं या भूसे-अनाज आदि में दबाकर पकाये जाते हैं। इनका स्वाद भले ही मीठा हो जाय गुणों की दृष्टि से वे नितान्त कच्चे ही होते हैं और लाभ के स्थान पर हानि पहुँचाते हैं। कलमी आम, बेर, चीकू, जामुन, अमरुद आदि का इन दिनों खूब प्रचलन है। आकार का स्वाद उनका भले ही बढ़ा रहे पर वे अपनी मौलिक विशेषताओं से कहीं अधिक दूर हट गये होते हैं। अस्तु उनके प्रयोग की उपेक्षा ही की जानी चाहिए। वे मंहमे भी तो होते हैं।

फलों के बाद मौसमी फलों की बारी आती है। इनमें आम, शहतूत, लीची, शरीफा, अनन्नास, बेर, अमरुद आदि को चुना जा सकता है। खरबूजा, तरबूजा अपनी किस्म के आम हैं वे भी प्रयोग में लाये जा सकते हैं। शाकों में लीकी, तोरी, परवल, टमाटर, गाजर, मूली, शलजम जैसी हलकी प्रकृति वाले ही लेने चाहिए। आलू, अरबी, शकरकन्द, जमीकन्द, रतालू आदि भी यों शाकों में गिने जाते हैं। वस्तुतः वे गुणों की दृष्टि से अन्न वर्ग में आते हैं, भारी पड़ते हैं। फलतः उनका कल्प प्रयोजनों में उपयोग नहीं होता। पत्तीदार शाकों में पालक, चौथाई, मेंथी, सरसों ग्राह्य हैं पर उन्हें पूरे आहार की तरह पचाने की क्षमता किन्हीं-किन्हीं में ही होती है। जिनका पेट गड़बड़ाता है, उन्हें दस्त होने लगते हैं। पीपल, बरगद, गूलर, अंजीर किस्म के फल

भी अपने प्रकृति के अलग ही हैं। महुए का फूल भी इस प्रयोजन में आ सकता है पर इनका पूर्ण परीक्षण इसी प्रकार कर लेना चाहिए, जैसे कि पेनेसीलीन आदि के प्रयोग से पूर्व उसकी प्रतिक्रिया जाँचने या चमड़ी पर जाँच पड़ताल की जाती है। इनमें से किसी का प्रयोग करना हो तो पहले दस-पाँच दिन उन पर निर्भर रह कर पेट की क्षमता परख लेनी चाहिए। तब एक महीने की कल्प साधना में उनका निश्चित उपयोग करने की बात सोचनी चाहिए।

ये कल्प हर किसी से नहीं निभ पाते। अपनी मनःस्थिति अपने से नहीं सही आँकी जा सकती। मार्ग दर्शक से पूछे बिना किसी भी प्रयोग को आरम्भ न कर हर पक्ष पर पहले पूरा विचार कर लेना चाहिए। बर्णित धान्य-फल, ऋतु फल, शाक आदि में से चाहे जो चुन लिया जाय ऐसा नहीं हो सकता। इन्हें उपचार की ही तरह प्रयुक्त किया जाता है इसके लिए निर्णय करने से पूर्व साधक की शारीरिक मानसिक स्थिति देखनी जाँचनी होती है। उपरोक्त खाद्यों में से प्रत्येक की अपनी-अपनी विशेषतायें तथा खामियाँ हैं। इसी प्रकार किसी प्रकृति या परिस्थिति के लिए कोई वस्तु अनुकूल कोई प्रतिकूल पड़ती है। एक वस्तु सभी के लिए एक जैसी प्रतिक्रिया उत्पन्न करे, ऐसा नहीं होता। इससे पेट के पाचक रसों को अभ्यस्त ढर्रे की भिन्नता के कारण एक ही खाद्य पदार्थ कई मनुष्यों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रभाव छोड़ते हैं। इसलिए खाद्य की विशेषताएँ और उपयोगिताओं को अपनी भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए अनुभवी व्यक्तियों को ही यह निर्णय करना चाहिए कि किसे किस अन्न-शाक या फल आदि का कल्प कराया जाय। इसमें उपभोक्ता की रुचि के साथ भी तालमेल बिठाने की आवश्यकता पड़ती है। यदि कोई व्यक्ति किसी पदार्थ से सर्वथा अरुचि व्यक्त करे तो उसके उपयोगी होते हुए भी मनोवैज्ञानिक कारणों से वह उलटी प्रतिक्रिया प्रकट करती है। जो लोग प्याज-लहसुन नहीं खाते उन्हें उनकी गन्ध तक नहीं सुहाती और लाभ-हानि की चर्चा करने से पूर्व ही उन्हें पूर्वाग्रहों के कारण उलटी आने लगती है। ऐसी दशा में कल्प कैसे हो ?

जड़ी-बूटी कल्प का अपना पृथक् विज्ञान है। किस व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्थिति के अनुरूप किस बूटी के रासायनिक पदार्थ उपयोगी पड़ते हैं। इसका तालमेल बिठाते हुए ही यह निर्णय करना पड़ता है कि किसके लिए किसका उपयोग समाधानकारक रहेगा।

कल्प साधना में आहार कल्प की तरह बूटी कल्प भी कराया जाता है। इसके लिए उसे एक महीने तक ५० ग्राम नित्य कल्क पेट में पहुँचाया जाता है। कल्क से तात्पर्य है—पतली चटनी। लगभग ठण्डाई से कुछ गाढ़ी सीरप स्तर की। निर्धारित बूटी का कल्क प्रातःकाल खाली पेट लिया जाता है।

कल्प प्रयोजन के लिए पाँच बूटियाँ ली गयी हैं। (१) तुलसी [२] शंख पुष्पी [३] ब्राह्मी [४] शतावर [५] अश्वगंधा। यों उनके अतिरिक्त कई कल्प व्यवस्था में आयुर्वेद में प्रचलित हैं जिनमें [१] त्रिफला [२] हरीतकी [३] पुनर्नवा [४] अंबुला [५] विधारा [६] गिलोय [७] सोंठ [८] बिल्व [९] निर्गुण्डी [१०] मुशली आदि प्रमुख हैं। किन्तु उन्हें विशेष परिस्थितियों में—विशेष व्यक्तियों के लिए ही प्रयुक्त किया जाता है। सामान्यतः उपरोक्त पाँच में से सभी अपने गुणों के अनुरूप सभी प्रकृति के व्यक्तियों की काया तथा मानवीय संरचना के अनुसार सन्तुलन बिठाने में काम दे जाती हैं। युवा व्यक्तियों को एक महीने में ५० ग्राम नित्य बूटी सेवन कराई जाती है। यह सेवन उतार-चढ़ाव का चान्द्रायण पद्धति से होता है। प्रथम पन्द्रह दिन थोड़ी-थोड़ी करके मात्रा बढ़ाना और फिर वाद के पन्द्रह दिन में मात्रा को क्रमशः घटाते चलना। कल्प प्रयोग की यह एक विशेष पद्धति है। बूटी कल्प में गंगाजल ही प्रयोग होता है। उसे पीसने-छानने-बनाते समय उस प्रयोजन के लिए निर्धारित नियमों का पालन करने वाले हाथ ही काम करते हैं। अन्नाहार एवं शाकाहार में पकाने की पद्धति में भी अध्यात्म स्तर के साथ जुड़ी हुई पद्धतियाँ अपने-अपने प्रभाव का समावेश कर देती हैं और वह सामग्री अपने ढंग की आन्तरिक विशिष्टताओं से सम्पन्न हो जाती है।

पदार्थ के तीन स्वरूप हैं—ठोस, द्रव तथा वायु। उसी को आहार में अन्न, जल और साँस के माध्यम से ग्रहण

किया और जीवित रहा जाता है। इसी क्रम का स्तर बढ़ा दिया जाय तो उसकी प्रभाव परिधि स्थूल शरीर में आगे बढ़कर सूक्ष्म और कारण शरीर तक जा पहुँचती है। कल्प साधना में वह आहार सेवन कराया जाता है जिसमें उसकी सूक्ष्म और कारण शक्ति भी संयुक्त रूप में सम्मिलित हुई हो। इस प्रकार उसे एक प्रकार का—तप साधन जैसा व्रत उपवास स्तर का—परम सात्विक एवं दिव्य औषधि जैसी विशेषताओं से युक्त करने का प्रयत्न किया जाता है। आहार की उत्कृष्टता एवं निर्माण तथा सेवन में जुड़ी हुई भावना का समावेश होने से उसका लाभ और भी अनेक गुना बढ़ जाता है।

अमृताशन में अन्न, बूटी कल्प और प्रज्ञापेय में जल तथा नित्य के अग्निहोत्र में सम्मिलित रहने पर वायुभूत आहार को मुख नासिका तथा अन्योन्य छिद्रों के माध्यम से भीतर पहुँचाया जाता है। यह समग्र समुच्चय ऐसा है जिसमें तीनों शरीरों के परिशोधन एवं सम्बर्धन—ये दोनों ही उद्देश्य भली प्रकार पूर्ण होते हैं। अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ मात्र व्यक्ति के अंग विशेषों का उपचार करती हैं और कारण समझे जाने वाले विष को अन्य विषाक्त द्रव्य से मारने का प्रयत्न करती हैं। किन्तु कल्प साधना में प्रयुक्त होने वाला आहार उपचार ऐसा है जिसमें मात्र निवारण—निराकरण नहीं बरन् परिवर्तन भी जुड़ा हुआ है।

अन्न को ब्रह्म कहा गया है। काया का समूचा ढाँचा प्रकारान्तर से खाद्य की ही परिणति है। व्यक्तित्व का गुण, कर्म, स्वभाव का—मूलभूत ढाँचा आहार के आधार पर ही बनता है। शिक्षा आदि से तो उस ढाँचे को सम्भाला संजोया भर जाता है। यही कारण है कि अध्यात्म विज्ञान में आहार की उत्कृष्टता को अन्तःकरण विचार तन्त्र एवं काय-कलेवर की पवित्रता प्रखरता को सर्वोपरि माध्यम माना गया है। व्रत उपवास में खाली पेट रहने के अतिरिक्त ऐसे पदार्थ सेवन करने का विचार है जो परम सात्विक हो तथा स्वल्प मात्रा में लिए गये हों। यह पद्धति कल्प साधना में अपनाई जाती है। इस प्रकार आहार साधना को एक प्रकार का उपवास समझा जा सकता है एवं इसके माध्यम से आत्म-परिष्कार की सम्भावना पर भली-भाँति विश्वास किया जा सकता है।

साधना
जो

मध्याह्न
है। उसमें न
किसी कारण
अधिक भरा
पेट हलका रहे
ऐसी दशा में
उतारने के वि
अवधि में श
विचार तन्त्र
चाहिए।

चिन्तन
है। पिछले दि
खोया पाया
करना चाहि
लोकन सम्भ
धिकताओं, व
प्रभाव छोड़
रहता है।
निरीक्षण वि
जंजान ही
आध्यात्मिक
सकेगा। नि
वाहन उपक
हानि-लाभ
सोचना यह
यह बहुमूल्य
निमित्त कि
पेट-प्रजनन
तो तत्त्वत
वाने दो
चाहिए।

अखण्ड-ज्योति

साधना ही नहीं, अनुपम शिक्षण भी



मध्याह्न काल के दो घण्टे विश्राम के लिए मिलते हैं। उसमें नींद तो तभी लेनी चाहिए जब रात्रि को किसी कारणवश कमी रह गई हो। आमतौर से पेट अधिक भरा होने के कारण ही नींद उचटती है। यदि पेट हलका रहे तो गहरी नींद आने में कठिनाई न रहे। ऐसी दशा में दोपहर को सोने के लिए नहीं, थकान उतारने के लिए विश्राम की आवश्यकता पड़ती है। इस अवधि में शान्त चित्त विस्तर पर पड़े रहने के समय भी विचार तन्त्र को चिन्तन और मनन में नियोजित रखना चाहिए।

चिन्तन भूतकाल का और मनन भविष्य का होता है। पिछले दिनों किस स्तर का समय बीता? कितना खोया पाया? इसका पर्यवेक्षण अपने को आत्मा मानकर करना चाहिए। शरीर मानकर इस प्रकार का बिहंगव-लोकन सम्भव नहीं। शरीर तो मात्र साधनों की न्यून-धिकताओं, व्यक्तियों की भली-बुरी गतिविधियों का और प्रभाव छोड़ने वाली घटनाओं के ऊहापोह में ही उलझा रहता है। यदि शरीराभ्यास में निमग्न रहकर आत्म-निरीक्षण किया जायगा तो उपरोक्त स्तर का जाल-जंजाल ही मस्तिष्क पर छाया रहेगा और भूतकाल के आध्यात्मिक पर्यवेक्षण का कोई आधार ही न बन सकेगा। चिन्तन में अपने को आत्मा और शरीर को वाहन उपकरण भर मानने के उपरान्त ही वास्तविक हानि-लाभ का लेखा-जोखा ले सकना सम्भव होता है। सोचना यह होता है कि सृष्टि ने जिस प्रयोजन के लिए यह बहुमूल्य अमानत सौंपी उसका अभीष्ट उद्देश्य के निमित्त कितना, कब, किस प्रकार उपयोग हुआ? यदि पेट-प्रजनन की पशु-प्रवृत्तियों में ही वह अवसर चला गया तो तत्त्वतः बड़ी भूल हुई। मध्याह्न काल के विश्राम वाले दो घण्टे इसी ऊहापोह में व्यतीत होने चाहिए। अधिकांश समय भविष्य के योजनावद्ध निर्धारण

का ताना-बाना बुनने में व्यतीत होना चाहिए। विचारणा ही कालान्तर में आकांक्षा बनती, क्रिया में परि-लक्षित होती और भली-बुरी परिस्थितियों, परिणतियों का निर्धारण करती हैं। अस्तु, इस समय को कल्पनाओं की उड़ान नहीं बरन् सुनिश्चित लक्ष्य को पूरा कराने में असाधारण सहायता करने वाली प्रक्रिया मानना चाहिए।

मध्याह्न में वारह से एक तक का समय पूज्य गुरुदेव व वन्दनीया माताजी से परामर्श एवं आपस में अथवा प्रशिक्षकों के साथ परामर्श करने का है। विचारों के इस आदान-प्रदान में कईवार अत्यन्त महत्वपूर्ण सूत्र हाथ लगते हैं।

मध्याह्न से पूर्व वारह बजे तक साधना और मध्या-ह्नोत्तर १ से ५ बजे तक चार घण्टे प्रशिक्षण का क्रम है। प्रशिक्षण में लोक-व्यवहार में शालीनता एवं कुशलता के समावेश की ऐसी शिक्षा आवश्यक समझी गई है जिससे व्यक्ति अपने गुण, कर्म, स्वभाव को पवित्र एवं प्रखर बना सके। सज्जनता की जितनी आवश्यकता है उतनी ही जागरूकता, सतर्कता की भी। भर्त्सों के साथ सहयोग की तरह अवांछनीय से आत्म-रक्षा तथा कुचक्र आक्रमणों को निष्फल बनाने की रणनीति को समझना, बरतना भी उतना ही आवश्यक है। ऐसी जीवन साधना सम्बन्धी रीति-नीति की एक कक्षा प्रतिदिन होती है और समझाया जाता है कि परिवार को पाठशाला, प्रयोगशाला बनाकर दुलार और सुधार का उभयपक्षीय अभ्यास किस प्रकार किया जाय? व्यक्ति को समाज के प्रति समुचित व्यवहार कैसे करना चाहिए, इसका सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक प्रयोग करने के लिए परिवार से बढ़कर और कोई क्षेत्र नहीं हो सकता। इसमें सत्प्रवृत्तियाँ बोने और सुखद उपलब्धियाँ कमाने के लिए अपना परिवार ही एक छोटा समाज, एक छोटा राष्ट्र है। आत्मीयजनों को संस्कारवान्, स्वावलम्बी कैसे बनाया जा सकता है, अपना

और कुटुम्बियों का भविष्य साथ-साथ उज्ज्वल कैसे बनाया जा सकता है—इसकी समन्वित प्रक्रिया परिवार निर्माण ही है। इसका दर्शन और अभ्यास करने के लिए कल्प साधना की एक कक्षा लगती है।

दूसरी कक्षा को समाज सेवा कहना चाहिए। इसमें वक्तृत्व कला, कुशल सम्भाषण एवं गायन-वादन के विविध अभ्यास कराये जाते हैं। अपने समय की सबसे बड़ी विपत्ति 'आस्था संकट' है। अपने समय की सबसे बड़ी सेवा 'लोकमानस का परिष्कार' है। इसके लिए वाणी को मुखर करने और जन-जन के मन-मन तक युगान्तरीय चेतना का आलोक पहुँचाने की आवश्यकता है। यह कार्य वाणी को मुखर करने से शक्य हो सकता है। अस्तु, उस कौशल के अभ्यास की विविध कक्षाएँ बारी-बारी चलती हैं।

तीसरी कक्षा स्वास्थ्य सम्बर्धन की है। आसनों द्वारा शारीरिक और प्राणायामों द्वारा मानसिक रोगों का निवारण करने वाली योग चिकित्सा सर्वथा हानि रहित, परिपोषक एवं बलवर्धक है। आहार-विहार को प्राकृतिक बनाने के नियमों से परिचित कराने के अतिरिक्त सर्वतोमुखी व्यायाम उपचार की प्रक्रिया आसन-प्राणायामों की वैज्ञानिक विधि-व्यवस्था में सम्मिलित है। इस कक्षा में उसका अच्छा-खासा अभ्यास करा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त बीस जड़ी-बूटियों के माध्यम से सामान्य स्तर के सभी रोगों से निपटने की एक विशेष चिकित्सा पद्धति ब्रह्मचर्चस् शोध के अन्तर्गत प्रस्तुत की गई है। रोगियों को कष्ट मुक्त करने में यह चिकित्सा पद्धति जहाँ सन्तोषजनक फलदायक है वहाँ सर्वथा निर्दोष भी है। तीसरी कक्षा में इन्हीं सब जानकारीयों और अभ्यासों का समावेश है।

चौथी कक्षा धर्मतन्त्र से लोकशिक्षण की है। नवयुग के निर्माण में प्रमुखतया इसी स्तर के प्रयासों की प्रमुखता रहेगी। अन्तराल को परिवर्तित, परिष्कृत करने में धर्म-तन्त्र ही सफल हो सकता है। उसके साथ प्रगतिशीलता जोड़ते हुए लोक श्रद्धा में आदर्शों का सघन समावेश कैसे किया जा सकता है इसके सभी भेद-उपभेद, उतार-चढ़ाव, दर्शन-प्रयोग इस कक्षा में दिखाए जाते हैं। साधा-

रणतया उन कर्मकाण्डों और प्रतिपादनों की संक्षिप्त किन्तु सारसम्बित जानकारी इस कक्षा में करा दी जाती है। इस स्तर की है जिससे पीरोहित्य का समग्र उत्तरदायित्व निभाया जा सके। अग्निहोत्र, संस्कार, पर्व, कथा, जात गोष्ठी आदि की कामचलाऊ शिक्षा इस कक्षा के अन्तर्गत मिल जाती है। इस माध्यम से श्रद्धा भरे वातावरण में ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग का व्यावहारिक स्वरूप समझने की सरल प्रक्रिया हाथ लगती है। संक्षेप में व्यक्ति परिवार और समाज के भावनात्मक तदननिर्माण की पुरातन एवं परीक्षित पद्धति कहा जा सकता है।

उपरोक्त चारों कक्षाएँ एक दिन बीच में देकर अर्थात् हर दिन दो-दो होती हैं। इस प्रकार एक महीने की अवधि में चारों वर्गों के पन्द्रह-पन्द्रह भाषणों और अभ्यासों का एक समन्वित प्रशिक्षण बन जाता है। इतने कम समय में इतना विस्तृत एवं इतना महत्वपूर्ण समाज शिक्षण बन पड़ना अद्भुत एवं अनुपम है। उसे 'गाण' में सागर' की उपमा बिना संकोच दी जा सकती है। उपासना, साधना, आराधना के तीनों पक्ष इस चार पक्ष प्रतिदिन चलने वाली कक्षाओं में मात्र एक महीने सम्मिलित रहकर साधक अनुभव करता है कि उसने इतनी छोटी अवधि में जितनी उपयोगी जितनी सुनियोजित शिक्षा प्राप्त की कदाचित् उतनी वह जीवन भर में ऊपर लब्ध नहीं कर सका होगा। उच्चस्तरीय एवं सामयिक व्यवहार दर्शन की ऐसी समन्वित दिशाधारा अभी तक कहीं अन्यत्र नहीं देखी गई जैसी कि कल्प साधना, साधकों को सार-सूत्रों सहित, सरल प्रतिपादन एवं सुगम शैली में हस्तगत होती है।

सायंकाल सभी गंगादर्शन के लिए जाते हैं। इसी में टहलना तथा प्रकृति दर्शन भी हो जाता है। प्रातःकाल की तरह सायंकाल भी गायत्री माता की आरती में सब लोग सम्मिलित होते हैं। रात्रि को ७ से ८ तक प्रश्न पुराण की कथा तथा भावभरे युग संगीत का कीर्तन होता है। इसके उपरान्त सभी अपने-अपने कमरों में जाकर सो जाते हैं। नींद न आने पर भी भगवान के ध्यान में निमग्न रहकर चुपचाप पड़े रहने का अनुशासन है, जो सभी को पालना पड़ता है।

प्रशिक्षण में समग्र उत्कर्ष के बीजाङ्क



कल्प साधना के दिनों में जिस स्तर का प्रशिक्षण दिया जाता है उसका आभास चार भागों में विभक्त पाठ्य पद्धति से भली प्रकार मिल सकता है।

कक्षाओं में व्यक्तित्व का विकास, परिवार में स्वर्गीय परम्पराओं का संस्थापन एवं समाज के साथ सधन नदभावों का आदान-प्रदान यह तीनों ही तत्व संधिपन् किन्तु समग्र रूप से जुड़े हुए हैं। व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण के तीनों ही प्रयोजन इस छोटी-सी किन्तु सारगर्भित शिक्षण पद्धति के सहारे सधते हैं। इस प्रकार जिस सद्ज्ञान की महिमा शास्त्रकारों ने समग्र कल्प सम्भव कर सकने के रूप में बताई है वह इस पाठ्य-पद्धति के साथ सम्पन्न होती है। अलंकार रूप में तीन महान सिद्धियों के तीन प्रत्यक्ष उपकरणों की चर्चा कथा-पुराणों में सुनने को मिलती है। इनमें एक है—पारस, दूसरा कल्पवृक्ष, तीसरा अमृत। यह तीनों ही प्रत्यक्षतः कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते, पर परोक्ष रूप में इनकी सत्ता और परिणति सद्ज्ञान के रूप में कहीं भी देखी जा सकती है।

पारस वह जिसे छूकर लोहा सोना हो सके। यदि ऐसा कोई पदार्थ इस संसार में रहा होता तो उसका प्रभाव यह होता कि संसार भर का लोहा येन-केन प्रकारेण सोना हो गया होता। लोहे की अपनी उपयोगिता है। वह सोने से पूरी नहीं हो सकती। फलतः सोना लोहे के भाव विकता और लोहे की कीमत सोने जितनी हो गई होती। पारस का प्रत्यक्षतः कोई अस्तित्व नहीं। यदि वह है तो परोक्ष रूप से उस सद्ज्ञान में सन्निहित समझा जा सकता है जो व्यक्तित्व को सुसंस्कारी बनाता है। पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी आदतों को उखाड़कर उनके स्थान पर सुसंस्कारी आचरणों का, सुव्यवस्थित-सुनियोजित जीवनचर्या का अभ्यास कराता है। इसी आधार पर अभावग्रस्त, विपन्न परिस्थितियों में उत्पन्न हुए व्यक्ति भी अवरोधों से जूझते हुए अपना

रास्ता आप बनाने और प्रगति के उच्च सोपान तक जा पहुँचने में समर्थ हुए हैं। इस आधार को पारस नहीं तो और क्या कहा जाय?

कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर मनोकामनाएँ पूरी करा लेने के पीछे कोई आधार नहीं। यदि ऐसा रहा होता तो पात्रता, पुरुषार्थ और साधन-संहयोग अजित करने की किसी को आवश्यकता ही नहीं पड़ती। कुपात्र व्यक्ति भी उस पेड़ की छाया में बैठकर उन कामनाओं को पूरा करा लिया करते जो पात्रता की अगणित अग्नि-परीक्षाओं में से गुजरने के उपरान्त ही खरा-उतरने पर किसी के हाथ लगती है। तर्क, प्रमाण के आधार पर इस प्रकार के पेड़ का कहीं अस्तित्व नहीं। किन्तु सद्ज्ञान की विचार सारिणी ऐसी है जिसे अपनाने पर दृष्टिकोण निखरता है, दूरदर्शी विवेक उभरता है और हर स्थिति में सन्तुलन बनाए रहने वाला सौमनस्य सहज ही हस्तगत होता है। जिसे अपने विचार तन्त्र का सदुपयोग आता है, जो मनःस्थिति और परिस्थिति का तालमेल बिठाने का अभ्यस्त है उससे आंगन में कल्पवृक्ष उगा हुआ ही समझा जाना चाहिए।

तीसरी दिव्य उपबन्धि अमृत है। उसे पीने वाले अमर होते बताए जाते हैं। प्रकृति विधान को जानने वाले समझते हैं—इस विश्व व्यग्रस्था में ऐसा विधान है ही नहीं कि जो वस्तु जन्मे वह मरे नहीं। एक दिन धरती, सूरज को भी मरना पड़ेगा फिर मनुष्य जैसे नगण्य प्राणियों की सत्ता को चिरस्थायी बने रहने की बात सोचना तो और भी उपहासास्पद है। तब अमृत किसे कहा जाय? क्या वह दिवास्वप्न भर है। जहाँ तक शरीर के अमर होने की बात है वहाँ तक उसे संसा ही कहा माना जाना जा सकता है। किन्तु यदि सद्ज्ञान के उस पक्ष पर दृष्टि डाली जाय जो अन्तराल के आस्था क्षेत्र को समुद्र की तरह मथ देता है तो यह विश्वास-पूर्वक कहा जा सकता है कि आत्मबल के धनी देवता और

भौतिक साधनों के दैत्य का सहयोग जुटाने वाले समुद्र मन्थन की उस पौराणिक गाथा को अपने निजी जीवन-व्यवहार में भी उतार सकते हैं।

व्यक्तिगत जीवन का परिशोधन जिस तपश्चर्या के आधार पर बन पड़ता है उसे बोलचाल की भाषा में संयम कह सकते हैं। संयम चार प्रकार के है—इन्द्रिय संयम, समय संयम, अर्थसंयम और विचार संयम। इन अनुशासनों में अपने आपको कस लेने वाले उन दिव्य विभूतियों को नष्ट-भ्रष्ट होते रहने से बचा लेते हैं जो मृष्टा ने हर स्तर की समर्थता बनाये रहने की दृष्टि से प्रचुर परिमाण में प्रदान की है। संयम-साधना का महत्व माहात्म्य समझा-समझाया नहीं गया, इसे मनुष्य का परले सिरे का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए। विलास, अपव्यय, आलस्य और कुकल्पनाओं में उलझे रहने से किस प्रकार विरत हुआ जा सकता है और बर्बादी को रोकने भर से किस प्रकार सुसम्पन्न बना जा सकता है इसका न बोध है न अनुभव। इस कमी को पूरा करने के लिए कल्पसाधना में भरसक प्रयत्न किया जाता है और अनगढ़ आदतों को सुसंस्कारिता के साँचे में ढाल सकने वाले बौद्धिक प्रशिक्षण एवं व्यावहारिक अनुशासन के शिकंजे में कसा जाता है। इस प्रकार का उभयपक्षीय दबाव पड़ने से सुनियोजित जीवन जी सकने योग्य कौशल उभरता है जो इससे पूर्व उपयुक्त वातावरण न मिलने के अभाव में मात्र कथन श्रवण और श्रवण की सीमा में ही अवरुद्ध होकर रह जाता था।

यह स्थूल शरीर की कर्मक्षेत्र की बात हुई। यह भू लोक था। अब इससे आगे का भुवः लोक है। भुवः लोक अर्थात् विचार क्षेत्र। इसमें आमतौर से अविवेक ही छाया रहता है। इसी को भ्रम-जंजाल, मायापाश, चक्रव्यूह, मृग तृष्णा, व्यामोह, भटकाव आदि नामों से जाना जाता है। मनुष्य का विचारतन्त्र कितना सक्षम और कितना सुगठित है यह देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि मस्तिष्कीय क्षमता का प्रायः ७ से १३ प्रतिशत भाग ही आम आदमी के व्यवहार में आता है। यदि उसकी समग्र क्षमता का स्वरूप और उपयोग समझा जा सके तो उसकी परिणति

इसी जीवन में ऐसी हो सकती है जिसे देव-दैत्य के समतुल्य कहा जा सके। सामान्यों को असामान्य बनने का जिन्हें भी अवसर मिला है तब उसका सीमाश्रित उद्भव इसी आत्म-चिन्तन और आत्म-निर्धारण के सत्साहस का समावेश करने से सम्भव हुआ है। इस प्रयोजन में सर्वप्रथम अपनी संचित मान्यताओं और आदतों से ही जूझना पड़ता है। इस धुनाई के बाद ही मनमोहक रंगाई का कार्य आरम्भ होता है। आत्म-शोधन—ब्रेन वाशिंग की प्रक्रिया में संचित भ्रान्तियों का एक बारंगी निराकरण करना पड़ता है और इसके लिए यथार्थता पर अवलम्बित विवेकशीलता की कुल्हाड़ी को निर्दयता के साथ चलाना पड़ता है। पूर्वाग्रहों का ऊबड़-खाबड़पन समतल करने में संचित आदतों और मान्यताओं की अग्नि परीक्षा करनी पड़ती है। खरे को सँजोने और खोटे को फेंकने का न्यायाधीशों जैसा निष्पक्ष मानस बनाना पड़ता है। नीर-और विवेक की—मोती चुनने, कीड़ों से परहेज करने की राजहंस वृत्ति इसी को कहते हैं।

आमतौर से हर किसी पर तत्काल के लाभ का नशा छाया रहता है। आकर्षणों की चकाचौंध आँखों को भ्रमग्रस्त बनाये रहती है। प्रचलन ही अनुकरणीय बनने और भेड़ों जैसा अन्धानुकरण करने को बाधित करते हैं। इसी भ्रम-जंजाल की उलझन में लोग आप ही अपने लिए मकड़ी जैसा जाल बुनते और स्वयं ही उसमें उलझकर बेमौत मरते देखे जाते हैं। रेशम के कीड़े भी यही भूखता करते रहते हैं। लपट में जल मरने वाले भीरे और चासनी में पंख लपेट कर बेमौत मरने वाली मक्खियाँ भी इसी प्रकार दुर्दशाग्रस्त होती हैं। पेट और प्रजनन की वासना प्रधान पशु प्रवृत्तियाँ अपनाने से भी काम नहीं चलता तो तृष्णा, अहंता की पूर्ति के लिए लोग अनाचार आक्रमण पर उतारू होते हैं और नर-पिशाचों की भूमिका निभाते हैं।

दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाने वालों की दुर्गति देखते हुए जो आँखों में पट्टी बाँधने के लिए विवश करता है वह हठवादी अविवेक ही है। इसके चंगुल से यदि छूटा और नये सिरे से दूरदर्शी निर्धारण किया जा सके तो समझना

चाहिए कि भुवः लोक में पहुँचा देने वाली कार्याकल्प हो गया। इस प्रक्रिया को सम्पन्न कर सकने वाले निश्चित रूप से महामानव बनते हैं और असंख्यों को अनन्तकाल तक अनुकरण का प्रोत्साहन देते रहने वाले पदचिन्ह छोड़ते हैं। स्वयं हँसते हैं। दूसरों को हँसाते हैं। स्वयं पार होते और दूसरों को पार करते हैं। ऐसी विवेकशीलता अपनाकर कल्प-साधना के साधक अपना बौद्धिक कार्याकल्प कर सकें ऐसी प्रशिक्षण-प्रक्रिया का सारगर्भित समावेश कल्प-साधना के अन्तर्गत विवेकशीलता जगाने के रूप में किया जाता है।

तीसरा कारण शरीर है। इसे अन्तःकरण कहते हैं। इसके बुरे-भले स्तर को आस्था कहा जा सकता है। वह निकृष्ट भी होती है और उत्कृष्ट भी। इसी ध्रुव केन्द्र की प्रेरणा से पतन भी होता है और उत्थान भी। कौन किस स्तर पर उभरेगा? किसका भविष्य कैसा है? इसका पर्यवेक्षण किसी के आस्था संस्थान में जहाँ हुई मान्यताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं का स्वरूप एवं प्रवाह देखते हुए सरलतापूर्वक किया जा सकता है। इस स्तर को कैसे परिवर्तित परिष्कृत किया जाय यह पृष्ठभूमि बनाने में ब्रह्मविद्या ही सफल होती है। उस प्रयोजन का चिन्तनपक्ष स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मन्त्र के आधार पर किया जाता है और प्रयोग पक्ष के लिए योगाभ्यास एवं तपश्चर्या के विधि-विधानों का आश्रय लेना पड़ता है। कल्प साधना की प्रक्रिया में जहाँ संयम साधने, विवेक अपनाने की शिक्षा दी जाती है वहाँ श्रद्धा उभारने वाली साधनाओं का भी समुचित समावेश रखा गया है। इन्हीं तत्वों का सुनियोजित समावेश कल्प साधना की प्रशिक्षण प्रक्रिया में किया गया है।

उपरोक्त तीनों तथ्य व्यक्तित्व को उभारने, सुधारने वाले हैं। इनके अतिरिक्त आत्म-कल्याण की तरह ही लोक-कल्याण का भी महत्व किसी प्रकार कम नहीं है। दोनों का समन्वित समावेश होने पर ही जीवन लक्ष्य की पूर्ति होती है। अस्तु न केवल आत्मोत्कर्ष की बात सोचनी पड़ती है वरन् विराट् की साधना वाले आत्म-विकास को भी ध्यान में रखना पड़ता है। यह कार्य षण्मुख कुटुम्बकम् के, अत्मवत् सर्वभूतेषु के आदर्शों को

व्यवहारिक जीवन में उतारने से ही सम्भव होता है। इसका एकमात्र अभ्यास लोकमंगल को जीवनचर्या का अविच्छिन्न अंग बनाने से ही सम्भव होता है। अस्तु, कल्प साधना के हर साधक को उस प्रक्रिया का अभ्यास कराया जाता है जो इन दिनों इस प्रयोजन के लिए सर्वोपरि महत्व की है। सर्वविदित है कि इन दिनों आस्था संकट से जूझना ही महाविनाश की विभीषिकाओं से विश्वमानव की प्राण रक्षा करने का एकमात्र उपाय है। सर्वविदित है कि यह तथ्य किनी से छिपा नहीं कि लोकमानस का परिष्कार यदि बन पड़े तो इतने ही साधनों से, इन्हीं परिस्थितियों में धरती पर स्वर्ग के अवतरण का दृश्य देखा जा सकता है मनुष्य के दृष्टिकोण में संकीर्ण स्वार्थपरता, वितृष्णा, उद्धत अहम्मन्यता, अनाचारी उद्दण्डता घुस पड़ने से ही प्रस्तुत उपलब्धियाँ विकास में लगने के स्थान पर विनाश कृत्य में जुट पड़ी हैं। इस विपन्नता को उलटकर सीधा किया जा सके तो समझना चाहिए कि समस्त समस्याओं का हल निकल आया।

लोकमानस का परिष्कार ही विश्व व्यवस्था को बनाने और उज्ज्वल भविष्य का संरचना कर सकने में पूरी तरह समर्थ हो सकता है। प्रज्ञा अभियान का वही केन्द्र बिन्दु है। युग परिवर्तन के लिए विचार कान्ति की अनिवार्य आवश्यकता मानी गई है। उसे कल्प साधना के साधक अपनी वर्तमान परिस्थिति एवं योग्यता में भी क्या कुछ कर सकते हैं इस नवमृजन योजना का हर पक्ष कल्प साधना के साधकों को सिखाया जाता है। इस प्रयोजन के लिए बाणों को मुखर बनाने की आवश्यकता तो अनिवार्य रूप से पड़ती है। इसके लिए समुदाय में दिए जाने वाले भाषण, व्यक्तिगत परामर्श का सम्भावण एवं भावनाओं को लहराने वाले संगीत की आवश्यकता पड़ती है। इनमें से कौन, किसे, किस मात्रा में अपना सकता है, यह व्यक्तिगत अभिरुचि का विषय है, पर इन तीनों को ही सिखाने की समुचित व्यवस्था कल्प साधना प्रशिक्षण के अन्तर्गत की गई है। इन कलाओं में अभ्यस्त व्यक्ति लोकप्रिय और सम्मानास्पद बनता है, उपयोगी सहयोग सम्पादित करता है। इस लाभ से तो सभी परिचित हैं।

नियमित रूप से चलने वाली प्रज्ञायोग-साधना

कल्प साधकों की दैनिक उपासना पद्धति का मूल आधार 'प्रज्ञायोग' है। इसके नित्य उपासना उपक्रम को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। (१) जप-ध्यान जैसे भावना प्रधान कृत्य जिन्हें परिमार्जन-प्रखरता सम्पादन के लिये नित्य करना अनिवार्य है। (२) आत्मबोध की प्रातःकालीन साधना जिसमें दिन भर क्या किया जाना है, इस सुर दुर्लभ मानव शरीर का सदुपयोग किस प्रकार होना है, इस पर चिन्तन किया जाता है। आत्म-विश्लेषण व निरीक्षण की इस साधना को प्रज्ञायोग का प्राण कहा जा सकता है। (३) तत्त्वबोध की सायङ्कालीन साधना जिसमें दिन भर का लेखा-जोखा लिया जाता है तथा पूरे दिन को एक पूरा जीवन मानकर मृत्यु की गोद में जाने का चिन्तन करते हुए प्रातः के पर्यवेक्षण की एक रिहर्सल की जाती है। भावी निर्धारण व आने वाले कल की अपनी दिनचर्या की भूमिका बनाते हुए साधक निद्रा की गोद में चले जाते हैं। इन तीनों का समन्वय ही 'प्रज्ञायोग' है। उपासना के प्रथम चरण में जहाँ कृत्यों के साथ जुड़े भावनात्मक संकल्पों की प्रधान भूमिका है, वहाँ आत्म-बोध—तत्त्व-बोध की साधना में चिन्तन-मनन का प्राधान्य है। कल्प साधकों को इन तीनों ही उपक्रमों को समान महत्व देते हुए नियमित रूप से भावनापूर्वक सम्पन्न करने के लिये कहा जाता है। परिणति स्वरूप इनसे उन विभूतियों का प्रत्यक्ष रसास्वादन होने लगता है जो अध्यात्म मार्ग पर सही रूप से संकल्पपूर्वक चलने वालों को मिलना चाहिए।

प्रज्ञायोग का दैनिक उपासना उपक्रम

उपासना उपक्रम में प्रधानता दो कृत्यों की है—जप एवं ध्यान। दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं। क्रम से चलते हुए ही मंजिल पार की जाती है। नित्य जल्दी उठकर साधक अपने आवश्यक कर्मों में निवृत्त होकर जीवन का शुभारम्भ उपासना के मंगलाचरण से करते हैं। इस क्रम में पाँच प्रमुख कृत्य हैं—[१] आत्म शोधन [२] देव पूजन [३] जप [४] ध्यान [५] विसर्जन-सूर्य अर्घ्यदान। ये पाँचों चिन्ह पूजा की तरह निवटाये जाने वाले कृत्य नहीं हैं वरन् श्रद्धा विश्वास के सम्पुट से किये जाने वाले सौद्वैश्य उपक्रम हैं। क्रिया के साथ भावना का जितना समन्वय होगा, उतना ही उसमें आनन्द आयेगा, मन लगेगा और सत्परिणाम हस्तगत होंगे। पाँचों ही उपासना उपचारों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

(१) आत्मशोधन—इष्टदेव के सामने आसन पर बैठकर पाँच कृत्य किये जाते हैं—[अ] पवित्रीकरण शरीर पर जल छिड़कना, [ब] आचमन—चम्मच से तीन बार आचमन, [स] शिखा स्पर्श वन्दन, [द] प्राणायाम—

श्वास को धीमी गति से खींचना—रोकना और धीरे से बाहर निकाल देना तथा अन्तिम [इ] न्यास—बायीं हथेली पर जल रखकर दायें हाथ की पाँच अँगुलियों से निर्धारित क्रमानुसार शरीर के प्रमुख अंगों को स्पर्श करना।

(अ) पवित्रीकरण—का अर्थ है आत्म-परिशोधन। भगवान के अच्छे विचारों को मन में लाना है तो सर्वप्रथम उसे निर्मल पवित्र बनाया जाना आवश्यक है। मंत्र हुए वर्तन पर कलई अच्छी तरह चढ़ती है। कपड़ा धुना स्वच्छ हो तो रंग चढ़ने में कोई कठिनाई नहीं। मन्त्र ताओं के रहते जीवात्मा परमात्मा के उच्च पद तक नहीं पहुँच सकती। शरीरगत पवित्रता एवं मन का निर्मलता की भावना रखते हुए पवित्रीकरण का कृत्य किया जाता है। दायें हाथ की हथेली में जल लेकर उसे दाहिने हाथ की हथेली से ढँककर मन्त्रोच्चारण समाप्त होने पर उसे अपनी समग्र काया पर छिड़कते हैं।

(ब) आचमन—प्रथम आचमन का अर्थ है—स्वास्थ्य की कुंजी स्वादेन्द्रिय पर नियन्त्रण। द्वितीय

आचमन वाणी को सार्थक शालीन बनाने के लिए तथा तृतीय आचमन वाणी का देवत्व अभिव्यक्त करने—मत्परा-मर्श का गुण विकसित करने के लिये किया जाता है। मुख का शरीरगत स्वास्थ्य तथा वाणी के व्यवहार पक्ष का मानसिक स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध है। वाणी का अन्तिम भाव पद—अपने अन्दर वह प्रखरता विकसित करने से सम्बन्धित है जो मनुष्य जीवन को लोक कल्याण हेतु प्रेरित करती है—साक्षात् सरस्वती बनकर साधक की जिह्वा पर विराजती है। ये तीनों मुख के ही उपादान हैं। इनके महत्व को समझकर आचमन किया जाय। मन्त्र बोलने के पश्चात् आचमनी से जल मुख को बिना छुए डाला जाय।

(स) शिखा स्पर्श वन्दन—यह एक प्रकार का आध्यात्मिक झण्डाभिवादन है। देश का प्रतीक तिरंगा झण्डा और धर्म का प्रतीक स्वस्तिक है। शिखा और यज्ञोपवीत हिन्दू संस्कृति के प्रतीक हैं जो शरीर पर प्रतिष्ठापित हैं।

शिखा साक्षात् भगवती की प्रतिमा है, महानता की गंगोत्री है। चोटी की संस्कृति अर्थात् शिरोमणि संस्कृति। मस्तिष्क में ऐसे ही देवत्व युक्त विचारों की स्थापना के लिए संस्कृति के इस प्रतीक का वन्दन किया जाता है। उँगलियों में जल लगाकर पाँचों उँगलियों से मन्त्र बोलते हुए शिखा को स्पर्श करते हैं।

(द) प्राणायामः—जब तक शरीर में प्राण हैं, तभी तक वह स्थिर है। विचारणाएँ, भाव-सम्बेदनाएँ, भी तभी तक हैं जब तक कि मनुष्य प्राणयुक्त है। प्राण शक्ति को आकर्षित आमन्त्रित करना ही प्राणायाम है। साधना विधान की पृष्ठभूमि ही प्राण तत्व के अनुसन्धान पर बनी है। फलस्वरूप मनीषियों ने अविज्ञात—चेतन जगत से उन रहस्यों को खोज निकाला जिन्हें सिद्धियाँ—चमत्कार कहा जाता है। इन उच्चस्तरीय प्रक्रिया के लिये जिस पात्रता की आवश्यकता है उसका अभिवर्धन करने के लिये ही प्राणशक्ति का संचय किया जाता है। अपने भीतर के चुम्बक को शक्तिशाली बनाने, ओजस्, तेजस्, वर्चस् बढ़ाने के लिये ही प्राणायाम का उपक्रम किया जाता है। ध्येष्ठतम का संचय पूरक है, शक्ति-स्फूर्ति से अनुप्राणित होना अन्तःकुम्भक, अवाञ्छित को—अन्तः की

मलीनताओं को निकाल फेंकना रेचक क्रिया है। ताजा भोजन ग्रहण करने का आनन्द तभी मिलता है जब पहले से संचित मल निकाल बाहर किया जाय। इन तथ्यों को दृष्टिगत रख प्राणायाम की पूरी क्रिया की जाय। आत्म-चेतना को स्फूर्तिवान बनाने वाले इस पूरे कृत्य के साथ संकल्पों को सम्मिश्रित किया जाता रहे तो निश्चित ही वाञ्छित लाभ मिलते हैं।

(इ) न्यासः—का अर्थ इस तथ्य का बोध कराना है कि मनुष्य को परमात्मा ने जो अंग प्रत्यंग प्रदान किये हैं उसका सही अर्थों में उपयोग करने पर ही जीवन सार्थक बनता, श्रेय मिलता और जीवात्मा देवात्मा के पद पर पदोन्नत होता हुआ परमात्मा के उच्च पद पर जा पहुँचता है। जिन अंगों [मुख, नासिका, नेत्र, कान, भुजाएँ, जंघाएँ,] समस्त काया—स्पर्श किया जाय, उनके साथ-साथ यह भावना भी की जाय कि हमें इन्द्रिय विशेषों को कुमार्गगामी होने से बचाना व स्वयं में प्रखरता-पवित्रता का समावेश करना है। अन्त में सारी काया पर जल छिड़कते समय एक ही भाव रहे कि हमारा शरीर जिस परमात्मा की देन है, उसी की सेवा में लग जाय—प्राण-पण से नियोजित होता रहे—कभी भी स्वार्थपरता के कुपथ पर न चले।

(२) द्वितीय कृत्य है—देवपूजन। प्रजा युग के अवतरण की इस सन्धि वेला में, सभी माधक महाप्रजा को अपनी उपासना का आधार केन्द्र मानें। महाप्रजा का प्रतीक गायत्री माँ का चित्र है। इसे सुसज्जित पूजा वेदी पर रखें। पवित्रता सम्पादन के प्रथम पाँच कृत्यों के बाद इष्ट से घनिष्ठता स्थापन के पंचोपचारों को पूरी श्रद्धा के साथ विधिवत् सम्पन्न करें। जल, अक्षत, पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य—इन प्रतीक समर्पणों को आराध्य के सम्मुख प्रस्तुत करने को ही पंचोपचार अथवा देव पूजन कहते हैं। देवताओं के वरण से अपना मनुष्यत्व भी देवत्व से उसी तरह सँहकते लगता है, जैसे चन्दन के समीप रहने वाली झाड़ियाँ भी सुगन्धित हो जाती हैं। देवता हमें नमन वन्दन—समर्पण के बदले ध्येष्ठ जीवन जीने की प्रेरणाएँ ही देते हैं।

जल का अर्थ है नम्रता—सहृदयता। अक्षत का अर्थ

अखण्ड-ज्योति

है—श्रमदान-अंशदान। पुष्प का अर्थ है—प्रसन्नता—प्रगति शोभा। धूप-दीप अर्थात् स्वयं जलकर सुगन्ध आलोक का वितरण—पुण्य परमार्थ। नैवेद्य अर्थात् स्वभाव, चरित्र एवं दैनन्दिन व्यवहार में सज्जनता का माधुर्य। इन पंचोपचारों द्वारा वस्तुतः व्यक्तित्व को सत्प्रवृत्तियों से सुसम्पन्न करने का ही संकल्प उभारा जाता और विश्वास किया जाता है कि परमात्मा के साथ घनिष्ठता इससे कम में स्थापित नहीं हो सकती, ये हैं तो प्रतीकोपचार, पर इनसे जुड़ी भावनाएँ—श्रद्धा समर्पण अध्यात्म की प्रगति पथ की यात्रा का महत्वपूर्ण सोपान है। एक-एक करके एक छोटी तश्तरी में इन पाँचों को पूजा अभ्यर्थना के उद्देश्य से समर्पित करते चलें।

(३) जपः—जप और ध्यान ये दोनों उच्चस्तरीय साधना क्रम के मध्यवर्ती विधान के अन्तर्गत आते हैं। पर इन्हें प्रजायोग उपासना का प्रमुख आधार मानकर नित्य किया जाना अनिवार्य है। इनका एक ही उद्देश्य है—शरीर के जड़ और मन के अर्ध चेतन स्तरों को जो सामान्य स्थिति में अविकसित ही होते हैं, परिष्कृत बनाना, अपना आपा इतना ऊँचा उठा देना कि दिव्य सत्ता हमें आध्यात्मिक प्रगति के लिये वांछित अनुदान कर सके।

जप सामान्यतः गायत्री मन्त्र की न्यूनतम तीन माला का किया जाता है जो पन्द्रह मिनट में पूरा हो जाता है। अधिक बन पड़े तो अधिक उत्तम है। कल्प साधकों के लिए ११ माला प्रतिदिन का निर्धारण ताकि एक माह में २४ हजार का गायत्री अनुष्ठान पूर्ण हो सके। पूर्णाहुति सत्र समाप्ति के अन्तिम दिन करनी चाहिए। माला का उद्देश्य घड़ी से भी पूरा हो सकता है। नियत समय तक यदि ध्यान मिश्रित जप प्रक्रिया की जाती रहे तो भी वही लाभ मिलता है। होंठ-कण्ठ, मुख के अंग-प्रत्यंग हिलते रहें एवं ध्यान कहीं और हो तो जप समय क्षेप बनकर ही रह जाता है। जप को एक प्रकार की मन-शोधक रगड़ माना जाय जिस पर बार-बार घिसने पर वस्तुएँ चिकनी हो जाती हैं। साबुन रगड़ने से मँल छूटता है। घर में नित्य बुहारी लगानी होती है। बर्तनों को नित्य ही माँजना पड़ता है। मन पर नित्य ही वाता-

वरण में उड़ती फिरने वाली दुष्प्रवृत्तियों की छाप पड़ती है। उस मलीनता को धोने के लिए नित्य ही उपासना करनी होती है। नाम के आधार पर ही किसी सत्ता का बोध और स्मरण होता है। ईश्वर को—उच्चस्तरीय आदर्शों को अपने स्मृति पटल पर प्रतिष्ठापित करने के लिए नित्य उसके नाम का सहारा लेना पड़ता है। स्मरण से आह्वान, आह्वान से स्थापना और स्थापना से उपलब्धि की क्रम ध्वदस्था मनोविज्ञान द्वारा भी तर्क सम्मत सिद्ध होती है।

चेतना के प्रशिक्षण के चार अभ्यास सर्वविदित हैं। शिक्षण प्रक्रिया में पहले लनिंग, फिर रिटेन्शन, फिर रिकॉल एवं फिर रिकॉग्नीशन—इन चार उपक्रमों को अपनाना होता है। लनिंग अर्थात् पुनरावृत्ति—बार-बार याद करना, रिटेन्शन अर्थात् प्राप्त जानकारी को अभ्यास का अंग बना लेना, रिकॉल अर्थात् अपनी विस्मृत जानकारी को कुरेद बीनकर पुनः संजीव कर लेना एवं रिकॉग्नीशन अर्थात् मान्यता प्रदान कर देना। आदर्श को—श्रेष्ठता को बार-बार याद कर उन्हें अभ्यास का अंग बनाना—अपने प्रसुप्त सुसंस्कारों को उत्तेजित कर जगाना एवं उन्हें श्रद्धा-विश्वास में परिणति कर देना ही जप प्रक्रिया का मूल प्रयोजन है। जब तक पत्थर पर रस्सी की रगड़ नहीं लगेगी, निशान नहीं पड़ेगा। हमारी कठोर मनोभूमि पर श्रेष्ठता के संस्कार स्थापित करने के लिये उनका बार-बार स्मरण जरूरी है। जप प्रक्रिया को एक प्रकार से चिन्तन क्षेत्र की जुताई कह सकते हैं। खेत को बार-बार जोतने से ही उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ती है, फसल लहलहाती है। नाम जप का आशय यही है कि जब तक आदर्शों के प्रति अगाध निष्ठा और व्यवहार में उतारने की परिपक्वता न उत्पन्न हो, अपने चिन्तन को सतत उस दिशा में क्रियाशील रखा जाय।

जप शब्द विज्ञान पर आधारित एक विज्ञान सम्पन्न प्रक्रिया है। शब्दशक्ति एक प्रकार की आध्यात्मिक ऊर्जा है जो प्रसुप्त को जगाती—दिव्य सामर्थ्यों का उद्भव करती है। शब्द प्रवाह के साथ उनके प्रभावोत्पादक चेतन तत्व भी जुड़े होते हैं। वे ध्वनि कम्पनों के साथ घुले रहकर जहाँ भी टकराते हैं, चेतनात्मक हलचल

उत्पन्न करते हैं। साधना का परिणाम सिद्धि है। शरीर-मन-अन्तःकरण में चक्रों-ग्रन्थियों, भेद-उपत्यिकाओं के रूप में दिव्य विलक्षण क्षमताएँ विद्यमान हैं, जिन्हें जगाया जा सके तो व्यक्ति अतीन्द्रिय सामर्थ्य सम्पन्न देवमानव-महामानव बन सकता है। यदि जप में मात्र क्रिया ही नहीं, ईश्वर को अपने अन्तरात्मा में घुल जाने के लिए आग्रहपूर्वक आमन्त्रित करने को प्रधानता दी जाने लगे तो जप सार्थक हो जाता है।

(४) ध्यानः—परम तत्त्व में मन को नियोजित करने के लिए जप के साथ ही ध्यान भी अनिवार्य हो जाता है। साकार ध्यान में गायत्री माता के आँचल की छाया में बैठने तथा उसका सुधार भरा प्यार अनवरत रूप से प्राप्त होते रहने की भावना की जाती है। निराकार ध्यान में प्रभात का तीन स्वर्णिम सविता देव की किरणों के शरीर में प्रवेश होने की भावना की जाती है। इस दिव्य ऊर्जा द्वारा अन्तःकरण में श्रद्धा, मस्तिष्क में प्रज्ञा, काया में निष्ठा के दिव्य अनुदान उतरने की मान्यता को परिपक्व किया जाता है। इन दोनों में से जो भी जिसे अनुकूल पड़े, अच्छा लगे, जप के साथ पूरे विश्वास के साथ यथार्थता भरी अनुभूति के साथ करना चाहिए। चित्त की एकाग्रता जप और ध्यान के समन्वय से ही बन पड़ती है। आत्म-सत्ता पर दिव्यता की छाप बिना एकाग्र हुए पड़ती नहीं।

आध्यात्मिक ध्यान का एकमात्र उद्देश्य है अपने स्वरूप और लक्ष्य की विस्मृति के कारण उत्पन्न विपन्नता से छुटकारा पाना। जीवन का लक्ष्य पूर्णता प्राप्त करना है। यह पूर्णता ईश्वरीय स्तर की ही हो सकती है। आत्मा को परमात्मा के समकक्ष बनाने के लिये पूर्णता प्राप्ति के लक्ष्य पर ध्यान एकाग्र करना होता है। चारों ओर संव्याप्त उद्विग्नताओं से—विक्षोभों से मस्तिष्क को उबारने, उसमें सन्तुलित स्थिति में बने रहने का अभ्यास ध्यान साधना द्वारा ही सम्भव है। ध्यान का अर्थ—चिन्तन प्रवाह को अवांछित दिशा से हटाकर सुनियोजित कर देना। स्थिरता नहीं लक्ष्य के साथ तत्परता ध्यान

है। भटकाव का स्वेच्छाचार रोककर मन को नियत निर्धारित दिशा में—इष्ट की ओर लगाना होता है। इसका लाभ आत्मिक एवं भौतिक दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से मिलता है। पूरी तन्मयता-तत्परता नियोजित होने पर कार्य का स्तर ऊँचा उठता है, सफलता का पथ प्रशस्त होता है। मन एक प्रकार का जंगली हाथी है जिसे पकड़ने-पातू बनाने-प्रशिक्षित करने के लिए ध्यान का रस्सा ही काम आता है। सधी हुई बुद्धि ऐसे नियन्त्रित मन को सत्प्रयोजनों में संलग्न हो सकने योग्य सुसंस्कृत बनाती है। आत्मिक क्षेत्र में ध्यान की यही प्रक्रिया प्रसुप्त शक्तियों के जागरण से लेकर ईश्वर प्राप्ति तक का महत्वपूर्ण माध्यम बनती है।

(५) सूर्यार्घ्यदान-पूर्णाहुति—नित्य उपासना के इस अन्तिम कृत्य में पूजा वेदी पर रखे छोटे कलश का जल सूर्य की दिशा में अर्घ्य रूप में चढ़ाया जाता है। इसके पीछे भाव एक ही है—आलोक फैलाने वाले आदर्शों को कभी अभिसिचन की कमी न पड़ने पावे। हमारी कामना उस समय यही रहे कि हे सूर्य भगवान—हमारे द्वारा समर्पित यह जन भाप बनकर आकाश में उड़ जाये। यह यज्ञ कृत्य भविष्य में कभी बन्द न हो। हमारा श्रद्धा समर्पण से भरा यह अन्तिम कृत्य जितने गहरे स्तर का होगा, हम कभी अन्तः की सम्पदाओं से रिक्त नहीं होंगे। हमारा अपना वैभव समष्टिगत सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन में काम आये, यही सूर्यार्घ्य का भाव है। परमात्म सत्ता से मित्रता, शरणागति, एकत्व आदि अभिव्यक्तियों का व्यावहारिक स्वरूप यही है कि हमारा जीवन, छोटे कलश तक सीमित न रहे—वह बाहर निकले—भगवान के, समष्टि के काम आये।

इतना करने पर प्रज्ञायोग साधना का उपासनापरक पूर्वार्ध समाप्त हो जाता है। चिन्तनपरक उत्तरार्ध दो चरणों में आत्म बोध एवं तत्त्व बोध की साधना के रूप में सम्पन्न होता है।



प्रज्ञायोग की आत्मबोध, तत्वबोध प्रक्रिया

आत्मिक प्रगति का एक ही मार्ग पिछली योनियों में रहते समय जो पिछड़े संस्कार चेतना भूमि में जड़ जमाकर जहाँ-तहाँ बैठे हुये हैं उनका उन्मूलन किया जाय और देवी प्रवृत्तियाँ जो अभी तक समुचित परिमाण में अभी तक प्राप्त नहीं हो पाईं उन्हें प्रयत्नपूर्वक अपनाया और बढ़ाया जाये। किसान यही करता है पिछली फसल के ठूँठों, झंखाड़ों को खोद-खोदकर ढूँढ़ना, ढूँढ़कर एक स्थान पर एकत्र करना और उन्हें आग लगाकर जला डालना—इतना करने के बाद खेत को खाद पानी देते—जुताई गोड़ाई करते हैं तब कहीं बीज डालने का अवसर आता है। इससे पूर्व ही कोई बीज बिखेरने की मूर्खता तो कर सकता है पर उस स्थिति में उसे प्रतिफल प्राप्त करने की उसी तरह आशा नहीं करनी चाहिये जिस तरह सूखे आकाश से जल वृष्टि की कल्पना करना व्यर्थ होता है। आत्म-साधना भी ऐसी ही कृषि है जिसमें उपज के लिये किसान जैसी कलाकारिता से कम में काम नहीं करता।

आत्मिक प्रगति का भवन चार दीवारों से मिलकर बनता है, चार स्तम्भों के सहारे खड़ा होता है उन आधारभूत चार पाओं को [१] आत्म-चिन्तन, [२] आत्म-सुधार [३] आत्म निर्माण तथा आत्म-विकास के नाम से पुकारा जाता है। इन चारों में से किसी एक को भी छोड़कर आगे नहीं बढ़ा जा सकता। भोजन के साथ जल भी आवश्यक है, शाक और फल भी, अकेले धोती या कुर्ता वेषभूषा परिपूर्ण नहीं बनाते उनके साथ टोपी और बनियाइन हो तो ही पूर्णता आती है इन चारों में से एक भी ऐसा नहीं जिसकी उपेक्षा कर के आत्मिक प्रगति के पथ पर आगे बढ़ा जा सके।

१—आत्म चिन्तन—आत्म चिन्तन का अर्थ है—आत्म-समीक्षा। अपना शवच्छेद। प्रयोगशालाओं में पदार्थों का विश्लेषण वर्गीकरण करके देखा जाता है इसमें कौन-कौन से तत्व मिले हैं, पोस्ट मार्टम में यह देखा जाता है

आखिर मृत्यु शरीरके किस अंग में चोट और अवरोध उत्पन्न होने के कारण हुई। आत्म-चिन्तन का अर्थ यह है कि परमात्मा की दी हुई विभूतियों और अमानतों को कितने अंश में सही उपयोग हुआ। हर श्रेष्ठ मनुष्य दिनचर्या में सुव्यवस्थित श्रम की दृष्टि से स्फूर्तिवान् मानसिक दृष्टि से सक्षम व्यवहार की दृष्टि से कुशल चिन्तन की दृष्टि से दूरदर्शी विवेकवान्। आत्मानुशासन की दृष्टि से प्रखर व्यक्तित्व की दृष्टि से आत्मावलम्ब व आत्म सम्मानी होना चाहिये। ऐसा तभी सम्भव है जब आन्तरिक विभूतियों का और बाह्य साधनों का सदुपयोग हो। आत्म चिन्तन में अपने गुण स्वभाव और कर्म की कड़ाई के साथ परीक्षा करनी पड़ती है उस आत्मा को दीन-दास बनाने वाले तत्व तो नहीं बघुसे। उन्हें एक-एक करके खोज निकालना और भागाने का उपक्रम बनाना ही चिन्तन है।

ऐसा करते समय शरीर और आत्मा को भिन्न माना गया, दोनों के हितों का वर्गीकरण न किया गया तो शरीर की अनावश्यक माँगों को, इन्द्रिय विप्साओं को आत्म-हित मान लेने की भूल होती रहेगी। स्मरण शक्ति और व्यक्तित्व को ऊँचे उठाने वाले, प्रामाणिकता को खरा सिद्ध करने वाले आदर्श कर्तृत्व ही आत्मा की विभूतियाँ हैं उनके विकास की कल्पना करना ही सच अर्थों में आत्म चिन्तन कहा गया है।

इस प्रक्रिया को वैयक्तिक जीवन की दुष्प्रवृत्तियों का निराकरण और सत्प्रवृत्तियों का सम्बर्धन करके ही पूर्ण किया जा सकता है यह आत्मिक प्रगति का दूसरा चरण है परमात्मा का प्रकाश जहाँ भी प्रकट होगा वहाँ सर्वप्रथम दुष्ट दुर्बुद्धि पर कुठाराघात होगा, अज्ञान अन्धकार मिटेगा वह आदतें जो अब तक अपनी प्रसन्नता के कारण बनी हुई थीं और बार-बार ललचाती रहती थी उनकी निरूपयोगिता तुरन्त सिद्ध हो जाती है वे स्वतः निरर्थक उगने लगती हैं और उन्हें निकास बाहर निकालने का साहस भी उमड़ने लगता है।

तो भी यह कार्य उतना आसान नहीं। इन्द्रियों का दमन होने पर वे मरती नहीं और अधिक उत्तेजित हो उठती हैं उस स्थिति में मानसिक सन्तुलन और दृढ़ता बनाये रखना, बार-बार वैराग्य भावना मस्तिस्क में उभगाते रहना आवश्यक है तभी आत्म-सुधार का क्रम पूरा होता है। इसमें निर्दयता भी अपनाती पड़ती है, तब तृतीया इस प्रचलित ढर्रे में परिवर्तन का ही दूसरा नाम है। यह दूसरा चरण उठ जाने पर प्रगति का चक्र गतिशील हो उठता है।

आत्म निर्माण का तीसरा चरण है आत्म निर्माण— अर्थात् श्रेष्ठ सज्जनों के गुण, कर्म, स्वभाव की जो विशेषताएँ होनी चाहिये उनकी पूर्ति के लिये योजनावद्ध प्रयत्न। कंटीली झाड़ियाँ हटाई भर जायें उनकी जड़ें खोद कर उनके स्थान पर पुष्पों के पौधे न लगाये जायें तो एक ओर झाड़ियों के फिर से जड़ पकड़ लेने की आशंका रहेगी तो दूसरी ओर फूलों के खिलने से जो सुवास और सौन्दर्य उपलब्ध होने वाला था वह भी हाथ नहीं आ सकता। बीमारी दूर हो गई यह आधा काम हुआ, अब स्वास्थ्य सम्बर्धन की व्यवस्था भी हो, व्यायाम भी हो टहलना और पुष्टिदायी आहार भी आत्मिक प्रगति के क्षेत्र में सदगुणों के परमार्थ के गुणों को धारण करके यह प्रतिष्ठापना की जाती है व्रत धारण किये जाते हैं श्रेष्ठता सम्बर्धन के संकल्प उभारे जाते हैं और उन पर चल पड़ने का अभ्यास किया जाता है तभी इस तृतीय चरण की पूर्ति होती है।

आत्मोत्कर्ष की अन्तिम भूमिका आत्म-विकास की है। सन्त, शहीद और सुधारक इस चतुर्थ भूमिका के ही उपादान होते हैं। चौथेपन में संन्यास का विधान शास्त्रों में है वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते ज्ञान, कर्म, भक्ति पक जाते हैं। जीवन की नश्वरता आत्मा का अविनाशी भाव स्पष्ट हो जाता है, सारा समाज एक कुटुम्ब और सम्पूर्ण सृष्टि अपने घर जैसी लगने लगती है। विश्व बन्धुत्व और वैराग्य की भावनाओं को इस स्तर तक पहुँचा देने से जिस तरह संन्यासी का जीवन समाज के लिये समर्पित हो जाता है उसी तरह की भावना इन चतुर्थ भूमिका में पहुँचने के लिये अपनाती पड़ती है। अपनी महत्वाकांक्षाएँ,

नाम, यश, पद प्रतिष्ठा को नितान्त हेय मानकर अपनी क्षमताओं के सच्चे हृदय से लोक-कल्याण में उपयोग की रूपरेखा बनानी पड़ती। धर्म, समाज और संस्कृति के लिये काम करने में रस लेना पड़ता है आत्म-विकास की यह चतुर्थ भूमिका जितनी परिपक्व होती जायेगी जीवात्मा उतने ही अंशों में महात्मा, देवात्मा और परमात्मा के रूप में विकसित होती चली जायेगी।

कल्प साधना में आत्म-विकास के इन चारों ही खण्डों की पूर्ति के लिये उपयुक्त उपकरण, वातावरण और साधनाओं का अभ्यास कराये जाने की व्यवस्था की गई है।

एकान्त सेवन अन्तर्मुखी जीवनचर्या का अभिनव अभ्यास कराने की दृष्टि से आवश्यक माना गया है। इसे गुफा प्रवेश की उपमा दी जाती है। तपश्चर्याओं में एक गुफा प्रवेश भी है। सब ओर से अपने को समेट कर आत्म केन्द्रित होने—अन्तर्जगत में प्रवेश करने—आन्तरिक पर्यवेक्षण एवं परिवर्तन की पृष्ठभूमि बनाने के लिए वातावरण नितान्त आवश्यक है। आमतौर से मन बहिर्मुखी रहता है। बाहर के जान-जान बुनता रहता है। फलतः आत्म विकृति बढ़ती जाती है। शरीर और शरीर से सम्बन्धित हेरा-फेरी ही सब कुछ बन जाती है और अपना स्वार्थ ओछे नक्षत्र तक विस्तृत हो जाता है। शरीर और उससे सम्बन्धित साधना ही व्यक्ति की सब कुछ बन जाते हैं। अपने आपे का होश हवास खो बैठने वाले मद्यप जिस प्रकार बेतुके आचरण करते हैं प्रायः वही स्थिति मानसिक क्षेत्र में व्यामोहग्रस्तों की होती है। इसी भुलावे-छलावे को माया कहा जाता है। माया के बन्धन अति निविड़ माने जाते हैं।

व्यामोह से—भव बन्धन से उतरने के लिए भी चार उपाय हैं। दो बाह्य दो आन्तरिक। बाह्य निर्भरता वाले स्वाध्याय एवं सत्संग हैं। आत्म निर्भर दो हैं—एक चिन्तन दूसरा मनन। इन चारों को चारपाई के चार पाये कहा जा सकता है। हाथ, पैर, धड़, सिर—इन चार भागों में शरीर विभक्त है। इसी प्रकार आत्म-निर्माण के लिए भी इन चारों का मनोयोग के साथ अवलम्बन करना पड़ता है। एकान्त एक कमरे की व्यवस्था इसी के लिए बनी है कि साधकों को उपयुक्त वातावरण में उपयुक्त

अभ्यास करने में सुविधा रहे। उपरोक्त चारों अभ्यासों में से स्वाध्याय के लिए तो एक घण्टा आठ से नौ बजे तक का निर्धारित है। सत्संग के क्रम में प्रातः छे बजे नादयोग के साथ-साथ अपने कमरे में ही फिट किये गये स्वतन्त्र लाउडस्पीकर पर गुरुदेव का प्रवचन सुनने को मिल जाता है। इसके अतिरिक्त बारी-बारी से साधकों की वर्गीकृत टोलियाँ बारह से एक तक गुरुदेव के पास व्यक्तिगत परामर्श के लिए पहुँचती हैं। मार्गदर्शन का सामूहिक सार्वजनिक भाषण प्रवचन तो अब नहीं होते पर नियत समय पर आवश्यक विषयों पर परामर्श करने की अभी भी छूट है। इस अवसर पर पारस्परिक वार्तालाप और विचारों का आदान-प्रदान भी हो जाता है। सत्संग इतना ही पर्याप्त माना गया है। हजम हो सके तो इतना ही पर्याप्त है। 'इस कान से सुना उस कान से निकाला' वाली अन्यमनस्कता चले तो फिर सारे दिन बकवास करते और सुनते रहते भी कुछ लाभ नहीं। अध्यात्म तत्वदर्शन के कुछ सीमित सूत्र हैं उन्हीं को हृदयंगम करने और स्वभाव का अंग बनाने और व्यवहार में उतारने से बात बनती है। अन्यथा वाक् विलास की तरह समय क्षेप के लिए घण्टों तथाकथित सत्संग जहाँ तहाँ चलते ही हैं। स्पष्ट है कि चिकने घड़ों जैसे श्रोता और मेंढकों जैसे टरनि वाले वक्ता अपने समय की ही बर्बादी करते हैं। शान्ति कुँज में ऐसी छूट नहीं है यहाँ अन्तरंग प्रभावित करने वाले प्राणवान वातावरण का विकास करने में पूरी सतर्कता बरती गई है।

स्वाध्याय की तरह चिन्तन, मनन को परिष्कृत प्रखर और प्रगाढ़ बनाना भी आवश्यक है। कल्प साधना की अवधि में तीन दृश्य आँखों के सामने घूमते रहने चाहिए। मन में उन्हीं के कल्पना चित्र तैरते रहने चाहिए। इनमें एक है—भवसागर में डूबना, मगरमच्छों द्वारा निगलकर उदरस्थ किए जाने से पूर्व नौका पर अवस्थित महाप्रज्ञा द्वारा उबार लिया जाना। दूसरा है—हाथ में हथकड़ी, पैरों में वेड़ी, गले में लोह जंजीर की जकड़न, बढ़ने और करने में असमर्थता, दिव्य लोक से चक्र सुदर्शन का उतरना और उर्न बन्धनों को काटकर भव-बन्धनों से मुक्त कर देना। तीसरा है—सघन अन्ध-

कार को छोड़कर उत्कृष्टता के चरम लक्ष्य प्रकाश तक पहुँचने वाली सीढ़ी पर एक-एक कदम उठते ऊपर उठना, आगे बढ़ना। क्रमशः लक्ष्य विन्दु के समीप पहुँचते जाना। यह तीनों चित्र गायत्री चित्रावली में मिले हुए हैं। उन्हें बार-बार निहारते रहने से यह भाव और भी अधिक सजीव होते जाते हैं। बार-बार उनका ध्यान करने, उन्हीं पर मन जमाते रहने से उनकी स्थिति तथा स्तर का ज्ञान होता है। दुःखद बुगति से सुखद सम्भावनाओं के मध्य आज की अपनी चयन कलता की परख होने वाला भाव उठता है। यदि उत्कृष्ट के लक्ष्य तक पहुँचना है तो साथियों की तलाश छोड़कर एकाकी बड़ चलने का विवेकवान् साहस जुटाना है। यह है अपनी परिस्थितियों का भावात्मक चित्रण जिसके सहित अपने आज के निर्धारण को बल मिलता है। उपरोक्त तीनों चित्र कल्प-साधना के दिनों अधिकाधिक समय का भावना-क्षेत्र पर आरुढ़ रहने चाहिए।

मात्र शरार के लिए जिया जाने वाला, वास्तविक तृष्णा, अहंता की अथाह गहराई वाला गर्त ही भवसागर है। उससे उबरने के लिए दूरदर्शी विवेकशीलता—महाप्रज्ञा का अंचल पकड़ना होता है। वैसा न करने पर रोग, शोक, पतन पराभव के मगरमच्छों द्वारा निगल और दुर्गतिग्रस्त बनाया जाना निश्चित है। इस विवेकशाली पिका से बचने में ही कुशलता है।

भव बन्धन—लोभ, मोह, विलास, अहंकार हैं इन्हीं के लोहपाश में जकड़ा मनुष्य बन्दी गृह की यात्रा सहता है। अपंग, असमर्थ जैसी गई-गुजरी स्थिति पड़ा रहता है। इसे आदर्शवादी संकल्प साहस का सुदर्शन ही काटने में समर्थ है। इस ब्रह्मास्त्र को कल्प साधना के दिनों में सम्भावित अनुदान माना जाना चाहिए। पतन स्वाभाविक है। उत्थान के लिए एकाकी प्रयत्न क्रम का ही आश्रय लेना पड़ता है। ईमान और भगवान् की सहायता से ही इस मार्ग पर चल सकने का बल मिलेगा। यह बल देवत्व का है। इसे सदगुरु परमात्मा से ही प्राप्त किया जा सकता है।

उपरोक्त तीनों कल्पना चित्रों के साथ यह संगति बिठानी चाहिए कि उबारने वाली नौका, बन्धनमुक्त

वाला चक्र और लक्ष्य तक ऊँचा उठा ले जाने वाला अनुदान कल्प साधना के दिनों अपने ही इर्द-गिर्द उपलब्ध है। उसे हस्तगत करने के लिए इन दिनों अपने भावभरे प्रयास प्राणपण से चलने चाहिए और इस सुयोग-संयोग का परिपूर्ण लाभ मिलना चाहिए।

कल्प साधना काल में इसी प्रकार के उच्चस्तरीय विधेयक विचारों को मन में भरे रखा जाय ताकि अभ्यस्त अनगढ़ चिन्तन को निरस्त कर सकना सम्भव हो सके। संयम, अनुशासन और सृजन की कसौटी पर खरे सिद्ध होने वाले विचार ही इन दिनों अपनाए जाएँ। शेष को विजातीय तत्व मानकर उन्हें दूर ही रखा जाय।

समग्र जीवन की इस रीति-नीति को भुला न दिया जाये उसके लिये कल्प साधना सत्र में आत्मबोध और तत्वबोध के दो अभ्यास सिखाये जाते हैं आत्मबोध प्रातःकालीन अभ्यास है। प्रातःकाल विस्तर से सोकर जागते ही विस्तर पर ही पूर्वाभिमुख, पालथी मार कर ध्यान मुद्रा में बैठें। तीन बार लम्बे-लम्बे श्वास दें और धीरे-धीरे साँस बाहर निकाल दें। साँस इतनी गहरी लें कि वह नाभिचक्र तक भर जाये। तीन बार यह क्रिया करने के उपरान्त अँगड़ाई लें और पुनः ध्यान मुद्रा में चले जायें अपने इष्ट को सम्मुख हुआ अनुभव करें यह नया जन्म हुआ है। परमात्मा के दिये हुये इस उपहार के मानवोचित गरिमा के साथ जियेंगे। पिछले दिन पिछले जन्मों में हुई भूलों की पुनरावृत्ति नहीं होने देंगे दिन भर की दिनचर्या ऐसी रहेगी जिसमें सामान्य कृत्यों में भी असामान्य भावना परमार्थ परायणता के भाव जुड़े रहेंगे। मनुष्य को अन्य जीवों की तुलना में अधिक अनुदान और उपहार परमात्मा ने दिये हैं उसे कृतज्ञतापूर्वक स्मरण रखेंगे और ऐसा कोई कार्य न करेंगे जिससे पश्चात्ताप का सन्ताप भुगतना पड़े स्वयं को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने के साथ-साथ सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों के साथ सञ्जनता शिष्टाचार और उदारता का भाव बनाये रखेंगे।

इन्हीं भावनाओं से भरे हुए सर्वप्रथम धरती माँ का तीन बार चरण बन्दन करें और कल्पना करें हमारा जीवन धरती माता के समान ही सहनशील, उर्वर और परोपकारी बना रहेगा। इसके बाद सूर्य का परित्याग

कर दें और दैनिक कृत्य में लग जायें। आत्म-बोध के इस अभ्यास में कुल १५ मिनट लगते हैं, पर यदि इन आदर्शों को सच्चाई से धारण कर लिया गया तो जंग लगे लोहे जैसा जीवन पारस स्पर्श से सोना बन जाने जैसी महात्मा उपलब्धि से विभूषित हो सकता है।

तत्वबोध की साधना रात्रि के समय के बिबे निर्धारित है इसमें भी आत्मबोध जितना ही १५ मिनट का समय लगता है। रात्रि को सोने से पूर्व शंका पर पड़े-पड़े जीवन के अन्त का स्मरण करें। मृत्यु को अनिवार्य अतिथि मानें। उसके उपरान्त ईश्वर के दरबार में पहुँचने और जीवन सम्पदा के सदुपयोग-दुरुपयोग के सम्बन्ध में लेखा-जोखा मांगे जाने की बात सोचें। बरते हुए प्रमाद की परिणति निकृष्ट योनियों में भटकने, यन्त्रणार्थ सहने और पतन पराभव के गर्त में गिरने की बर्बादता को समझें। लोक के साथ परलोक को भी जोड़ें। वर्तमान ऐसा बनायें जिससे निर्वाह ही नहीं भविष्य भी सधे। सोते समय इन्हीं भावनाओं को लेकर चिर निद्रा की तरह दैनिक निद्रा की गोद में चले जायें। आज के दिन की समीक्षा करें। वन पड़े दोष दुर्गुणों का पश्चात्ताप प्रायश्चित्त करें और कल के लिए ऐसा विचार करें कि इसे आज की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ समुन्नत बनाना है। यह तत्वबोध साधना निद्रा से पूर्व पन्द्रह मिनट तो चलना ही चाहिए। उसमें कल्पना को चिन्ह पूजा जैसी विडम्बना नहीं यथार्थता जैसी अनुभूति रहनी चाहिए।

प्रज्ञायोग के उपरोक्त प्रयोगों को कल्प साधना सत्र समाप्त होने के उपरान्त भी नियमित रूप से जारी रखना चाहिए। समय का अभाव रहे तो ११ माला के स्थान पर ३ या ५ माला का नियम भी संकल्पपूर्वक चलाया जा सकता है। संकल्प पूर्वक से तात्पर्य है उसकी नियमितता का निर्वाह। इसमें अनुशासन का समावेश रहे, इसलिए भोजन या शयन से पूर्व उसे सम्पन्न कर लेने का निश्चय निभाया जाना चाहिए। व्यस्तता में साधना का समय कम किया जा सकता है। स्नान आदि न बन पड़े तो जिस भी स्थिति में रहना पड़े उस स्थिति में मानसिक रूप से भी उसे किया जा सकता है। प्रधानता अनुशासन की है। अपना संकल्प अखण्ड बना रहे यही प्रयास हो, चाहे वह छोटा ही क्यों न हो।



कल्प-साधना का क्रियापक्ष

चिन्तन, आदत और विश्वास अन्तराल के यह तीन क्षेत्र हैं। इन्हें क्रमशः मन, बुद्धि, चित्त कहते हैं। मनःक्षेत्र की यह तीन परतें हैं। इन्हीं को तीन शरीर स्थूल, सूक्ष्म, कारण भी कहते हैं। पंच भौतिक काया तो इन तीनों की आज्ञा एवं इच्छा का परिवहन मात्र करती रहती हैं। आत्मसत्ता इनसे ऊपर है।

उपरोक्त तीनों शरीरों की परोक्ष स्थिति को परिष्कृत करने के लिए योगाभ्यास में तीन साधनाएँ हैं। स्थूल को मुद्राओं से, सूक्ष्म को प्राणायाम से और कारण को योगत्रयी से परिमार्जित किया जाता है। मुद्राओं में तीनों प्रधान हैं—(१) शक्तिचालिनी मुद्रा, (२) शिथिलीकरण मुद्रा, (३) खेचरी मुद्रा। प्राणायामों में तीन को प्रमुखता दी गई है—(१) नाडी शोधन प्राणायाम, (२) प्राणाकर्षण प्राणायाम, (३) सूर्यवेधन प्राणायाम। योगाभ्यासों में तीन प्रमुख हैं—(१) नादयोग, (२) बिन्दुयोग, (३) लययोग। कल्प साधना में इन तीनों का अभ्यास कराया जाता है। दिव्य अनुदान की ध्यान धारणा इन ६ के अतिरिक्त है। क्रियायोग के यह तीन प्रयोग साधक के त्रिविध शरीरों को परिष्कृत करने की उपयोगी भूमिका सम्पन्न करते हैं। शरीरों के हिसाब से इनका वर्गीकरण करना हो तो स्कूल शरीर के निमित्त शक्तिचालिनी मुद्रा, नाडी शोधन प्राणायाम और नादयोग की गणना की जायगी। सूक्ष्म शरीर के निमित्त प्राणाकर्षण प्राणायाम, शिथिलीकरण मुद्रा और बिन्दुयोग को महत्व दिया जाता है। कारण शरीर में खेचरीमुद्रा, सूर्यवेधन प्राणायाम और लययोग का अभ्यास किया जाता है।

हर साधक को उन तीनों को एक साथ करना आवश्यक नहीं। त्रिविध योग साधनाएँ तो सभी को सामान्य परिमार्जन करने की दृष्टि से आवश्यक माना गया है। वे हर स्थिति के साधक को साथ-साथ चलाने का प्रावधान है। नादयोग, बिन्दुयोग और लययोग का अभ्यास

सभी कल्प साधकों की दिनचर्या में सम्मिलित है।

मुद्राएँ तथा प्राणायाम तीन-तीन हैं। इनमें से साधक के अन्तराल का सूक्ष्म निरीक्षण करके एक-एक का निर्धारण करना पड़ता है। तीनों मुद्राएँ, तीनों प्राणायाम भी तीन योगों की तरह प्रतिदिन साधने पड़ें ऐसी बात नहीं है। मुद्राओं में से एक, प्राणायामों में से एक का ही चयन करना होता है। इस प्रकार तीन योग, एक मुद्रा, एक प्राणायाम का पंचविध कार्यक्रम हर एक की दिनचर्या में सम्मिलित रहता है।

इसे प्रकारान्तर से पंचकोशी साधना भी कह सकते हैं। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश की पंचमुखी उच्चस्तरीय साधना भी इसी को कह सकते हैं। इनके प्रतिफलों की उपमा पाँच प्रमुख देवताओं के पाँच प्रमुख वरदानों से दी गई है। (१) ब्रह्मा, (२) विष्णु, (३) महेश, (४) गणेश, (५) दुर्गा। उपरोक्त पाँच साधनाओं को इन पाँच देवताओं की साधना भी कह सकते हैं। पाँच कोशों को पाँच प्रकार के रत्नों का, पंच रत्नों का भण्डार माना गया है। विभूतियाँ पाँच ही हैं। इन्हीं में ऋद्धि-सिद्धियों का समावेश समझा जा सकता है। (१) संयम, (२) साहस, (३) दिव्य दृष्टि, (४) स्वर्ग, (५) बन्धन-मुक्ति—इन पाँचों के अन्तर्गत ही प्रत्यक्ष और परोक्ष जीवन की समस्त सम्पदाओं-सफलताओं का समावेश हो जाता है।

कल्पसाधना के साधक यदि श्रद्धा, प्रज्ञा एवं निष्ठा का समुचित समावेश करते हुए इनकी साधना में संलग्न रहे तो वे अपने में आश्चर्यजनक परिवर्तन का अनुभव करेंगे। काया का रूपान्तरण तो कठिन है। उसे दुर्बलता और रुग्णता से ही एक सीमा तक उबारा जा सकता है। परिवर्तन तो सदा अन्तराल का ही होता है। इसी आधार पर क्षुद्र को महान, नर को नारायण, पुरुष को पुरुषोत्तम बनने का अवसर मिलता है। कामना का भावना में

बुद्धता का महानता में, तृष्णा का उदारता में जिस अनुपात में परिवर्तन होता है उतना ही साधक सत्ता का स्तर ऊँचा उठता चला जाता है।

अपूर्णता से पूर्णता की ओर अग्रसर करने वाली इसी पुण्य-प्रक्रिया का नाम कल्प साधना है। उसे अध्यात्म-चिकित्सा की श्रेणी में गिना जा सकता है। काय-चिकित्सा के लिए आयुर्वेद, तिब्बती, एनोपैथी, होमियोपैथी, नेचुरोपैथी आदि पद्धतियाँ प्रचलित हैं। मानसिक चिकित्सा के लिए सामान्यतया स्कूत, शिल्प, उद्योग, कला, कौशल आदि का अभ्यास करना पड़ता है। गुरुकुल, आरण्यकों के वातावरण में रहना पड़ता है। स्वाध्याय-सत्संग भी इसी प्रयोजन के लिए है। तीसरा क्षेत्र कारण शरीर का वचता है। इसके लिए साधना ही एकमात्र आधार है। उसे तपश्चर्या और योग साधना के आधार पर ही गनाया जाता जाता है। शरीर नरम है। मन उससे कठोर, अन्तःकरण को अतिकठोर माना गया है। उस पर जन्म-जन्मान्तरों की मान्यताएँ, इच्छाएँ तथा आदतों की, भूगर्भ में पाई जाने वाली चट्टानी परतों से भी कठोर सतहें जमी होती हैं। उन्हें तोड़ने, उखाड़ने के लिए डायनामाइट की सुरंगों का प्रयोग करना पड़ता है। इसी प्रयोग का नाम अध्यात्म साधना है।

अन्तःकरण के परिवर्तन में इन्हीं को अपनाता पड़ता है। अध्यात्म लक्ष्य की दिशा में बढ़ने वाले को साधना का साहस सँजोना ही पड़ता है। प्राचीनका में भी यही क्रम चलता रहा है और अब भी उसी मार्ग पर धीमे या तेजी से चलने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं।

शारीरिक रुग्णता को दूर करने का दावा करने वाले चिकित्सादियों की कमी नहीं। मानसिक विकास एवं परिष्कार के प्रयासों में संलग्न शिक्षण संस्थाएँ भी बहुत हैं। आवश्यकता एक ही ऐसी थी जो सर्वोपरि महत्व की होते हुए भी सर्वाधिक उपेक्षित पड़ी थी। वह है-अन्तःकरण को परिमार्जित, परिष्कृत करने की अध्यात्म चिकित्सा। इस सन्दर्भ में कुछ कहने लायक कारगर व्यवस्था कहीं दीखती ही नहीं। जो चल रहा है उसमें प्रान्तियों एवं निहित स्वार्थों का इतना अधिक समावेश हो गया है कि होना, न होने से भी अधिक भारी पड़ता

है। इस सन्दर्भ में कल्प साधना को आरम्भिक की, वाक्कक्षा वर्ग की तो कहा जा सकता है पर है वह ऐसी जिसमें ब्रह्मविद्या के शाश्वत सिद्धान्तों को अक्षुण्ण रखते हुए, समय के परिवर्तन और बुद्धिवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी समुचित समावेश रखा गया है।

अन्यान्य अनुशासनों तथा निर्धारणों के अतिरिक्त जहाँ तक योगाभ्यासों का सम्बन्ध है उसे उपरोक्त पंचधा प्रयोगों के रूप में समझना, समझाना चाहिए। शरीर पाँच तत्वों से बना है। चेतना भी पाँच प्राणों से विनिर्मित है। दोनों को पिछड़ेपन और पतन-प्रवाह से उबार कर भौतिक क्षेत्र में अग्रगामी और आत्मिक क्षेत्र में ऊर्ध्व-गामी बनाने की आवश्यकता है। गायत्री को पंचमुखी कहा गया है। उसके पाँच ज्ञानपक्ष और पाँच क्रियापक्ष हैं। ज्ञानपक्षों में (१) ज्ञानयोग, (२) कर्मयोग, (३) भक्तियोग, (४) प्रज्ञायोग, (५) परमार्थयोग की पंचधा व्यवस्थाएँ हैं।

कल्प साधना में जहाँ पंच ज्ञानपक्षों का उपरोक्त निर्धारण है वहीं पंचधा क्रिया योगों का भी स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन का समर्थ तन्त्र खड़ा करके संचित कषाय-कल्मषों का निष्कासन एवं उच्चस्तरीय आस्थाओं का प्रतिष्ठापन किया जाता है। इस प्रकार इस आरम्भिक सोपान को भी निर्धारण की दृष्टि से पूर्णता युक्त कहा जा सकता है।

क्रिया-कृत्यों के मही स्वरूप के निर्धारण अब मन्त्र में जितनी जागरूकता एवं तत्परता की आवश्यकता पड़ती है उससे भी अधिक इस क्षेत्र में श्रद्धा का सघन आरोपण आवश्यक होता है। इसके अभाव में सारी विधि-व्यवस्था मात्र कलेवर बनकर रह जाती है और प्राण रहित काय-कलेवर की तरह उसकी भी मात्र दुर्गति ही होती है। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से उबार कर अध्यात्म उपचार और सम्बर्धन का उभयपक्षीय प्रयोजन पूर्ण करने के लिए कल्प साधना का उपक्रम प्रस्तुत किया गया है।

त्रिविधि मुद्राएँ और उनकी प्रतिक्रियाएँ

शरीर के स्थूल अवयवों के विशिष्ट व्यायामों को आसन कहते हैं। वे साधारण कसरतों से भिन्न हैं। कसरत की पहुँच प्रधानतया मांस-पेशियों तक सीमित रहती है। नस-नाड़ियों पर भी उनका प्रभाव पड़ता है किन्तु आसनों की विशेष व्यवस्था में ऐसे आधार सन्निहित हैं जिनके सहारे भीतरी अवयवों को प्रभावित किया जा सके। आमाशय, आँखें, जिगर, गुर्दे, फेंफड़े, हृदय और प्रमुख अवयवों को उनके द्वारा प्रभावित किया जाता है। उनकी असमर्थता एवं रुग्णता के निवारण में आसनों द्वारा विशेष सहायता मिलती है। किस स्थिति में किस आसन का उपयोग कितने समय तक किया जाय, इसके लिए साधक की शारीरिक, मानसिक स्थिति का पर्यवेक्षण आवश्यक है। निदान के उपरान्त ही उपयुक्त उपचार की बात बनती है। इस सन्दर्भ में व्यायाम को अधिक स्थूल एवं आसनों को अधिक गहरी पहुँच वाला सूक्ष्म माना जाता है।

इनके उपरान्त गहराई की तीसरी परत में मुद्राओं का तन्त्र आता है। वे प्रधानतया इन्द्रियों की रहस्यमयी शक्ति से सम्बन्धित हैं। उनका प्रभाव इतनी गहराई तक पहुँचता है कि ज्ञानेन्द्रियों की क्षमता अधिक प्रखर बनाई जा सके और यदि उनमें किसी प्रकार दुर्बलता, रुग्णता का समावेश हो गया है तो उसका निराकरण, निवारण आरम्भ हो सके।

हठयोग के प्रयोगों में बीस मुद्राओं का उपयोग होता है। उनमें से कुछ का प्रभाव शारीरिक, कुछ का मानसिक, कुछ का कारण क्षेत्रों की गहराई तक होता है। इनमें से सभी को जानना, सीखना कल्प साधना साधकों के लिए न तो आवश्यक है और न उपयोगी। उनमें से जो प्रमुख प्रभावोत्पादक, अधिक सरल एवं अधिक उपयोगी परिणाम उत्पन्न करने वाली हैं मात्र ऐसी ही तीन को लिया गया है। प्राणायामों की तरह मुद्राओं में भी तीनों का प्रयोग नहीं करना पड़ता है वरन् स्थिति

के अनुरूप जो सरल हो उन्हीं को उस अवधि में कार्यन्वित कराने के लिए निश्चित किया जाता है।

मुद्राओं में से तीन ली गई हैं (१) शक्तिचालिनी मुद्रा (२) शिथिलीकरण मुद्रा (३) खेचरी मुद्रा। इनमें से शक्तिचालिनी का सम्बन्ध मूलाधार से है। कुण्डलिनी का निवास केन्द्र वही है। पौरुष, प्रजनन, उत्साह इसी केन्द्र से सम्बन्धित हैं। शक्तिचालिनी के आधार पर मूलाधार को जागृत, नियन्त्रित एवं अभीष्ट उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। शिथिलीकरण मुद्रा का सम्बन्ध हृदयचक्र से है। उस स्थान पर जीवनीशक्ति, बलिष्ठता एवं तेजस्विता का सम्बन्ध है। भावनाओं को दिशा देना भी इसी क्षेत्र के प्रयत्नों से बन पड़ता है। तीसरी खेचरी मुद्रा है। इसका सम्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र, सहस्रार कमल से है। पुराणों में इसी को क्षीरसागर, कैलाश पर्वत की उपमा दी गई है। यहाँ मन, बुद्धि, चित्त से सम्बन्धित सभी तन्त्र विद्यमान हैं। खेचरी मुद्रा के द्वारा उनमें से किसी को भी, किसी भी प्रयोजन के लिए जागृत एवं तत्पर किया जाता है। मन्दता, तनाव से लेकर मनोविकारों तक में इस केन्द्र की सहायता ली जा सकती है।

अध्यात्म विज्ञान में सूक्ष्म शरीर की तीन रहस्यमयी शक्तियों का उल्लेख है—(१) ब्रह्म ग्रन्थि (२) विष्णु ग्रन्थि (३) रुद्र ग्रन्थि। ब्रह्म ग्रन्थि खेचरी मुद्रा से, विष्णु ग्रन्थि शिथिलीकरण से और रुद्र ग्रन्थि शक्तिचालिनी से सम्बन्धित है। इन तीनों के स्वरूप, कारण, रहस्य, अभ्यास एवं प्रतिफल साधना ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक बताया गए हैं। उन सबका सार-संक्षेप इतना ही है कि मस्तिष्क, हृदय और प्रजनन तन्त्र में वरिष्ठता उत्पन्न करने के लिए उपरोक्त तीन मुद्राओं की साधनाओं का प्रयोग किया जा सकता है और उनका चमत्कारी प्रतिफल देखा जा सकता है।

तीनों मुद्राओं का परिचय इस प्रकार है—

(१) शक्तिचालिनी मुद्रा :—यह मुद्रा वज्रासन या मुखासन में बैठकर की जाती है। इसमें मल एवं मूत्र संस्थान को संकुचित करके उन्हें ऊपर की ओर खींचा जाता है। खिंचाव पूरा हो जाने पर उसे धीरे से शिथिल कर देते हैं। प्रारम्भिक स्थिति में दो मिनट व धीरे-धीरे पाँच मिनट तक बढ़ाते हुए यही क्रिया बार-बार दोहराये। उड्डियान बंध में स्थित आँतों को ऊपर की ओर खींचा जाता है। यह क्रिया स्वतः शक्तिचालिनी मुद्रा के साथ धीरे-धीरे होने लगती है। पेट को जितना ऊपर खींचा जा सके, खींच कर पीछे पीठ से चिपका देते हैं। उड्डियान का अर्थ है—उड़ना। कुण्डलिनी जागृत करने—चित्तवृत्ति को अधोमुखी से ऊर्ध्वमुखी करने की यह पहली सीढ़ी है। इससे सुषुम्ना नाड़ी का द्वार खुलता है, मूलधार चक्र में चेतना आती है। इन दोनों क्रियाओं के द्वारा समूचे कुण्डलिनी क्षेत्र पर ऐसा सूक्ष्म विद्युतीय प्रभाव पड़ता है जिससे इस शक्ति स्रोत के जागरण व मेरुदण्ड मार्ग से ऊर्ध्वगमन के दोनों उद्देश्य पूरे होते हैं।

(२) शिथिलीकरण मुद्रा योगनिद्रा :—इस मुद्रा का अभ्यास शवासन में लेट कर अथवा आराम कुर्सी पर शरीर ढीला छोड़कर किया जाता है। यह क्रिया शरीर मन, बुद्धि को तनाव से मुक्त करके नयी चेतना से अनुप्राणित कर देती है। साधक को शरीर से भिन्न अपनी स्वयं की सत्ता की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है।

कोलाहल मुक्त वातावरण में शवासन में लेटकर पहले शरीर शिथिलीकरण के स्वयं को निर्देश दिये जाते हैं। शरीर के निचले अंगों से आरम्भ करके शनैः-शनैः यह क्रम ऊपर तक चलाते हैं। हर अंग को एक स्वतन्त्र सत्ता मानकर उसे विश्वास का स्नेह भरा निर्देश देते हैं। कुछ देर उस स्थिति में छोड़ कर धीरे से श्वास तीव्र करके शरीर को कड़ा और फिर ढीला होने का निर्देश दिया जाता है। धीरे-धीरे शारीरिक शिथिलीकरण सधने पर क्रमशः मानसिक शिथिलीकरण एवं दृश्य रूप में शरीर पड़ा रहते देखने, चेतन सत्ता के सरोवर में ईश्वर को समर्पित कर देने की भावना की जाती है।

शिथिलीकरण योगनिद्रा का प्रथम चरण है। अचेतन को विश्वास देने—नयी स्फूर्ति दिलाने तथा अन्त-

राल के विकास—आत्मशक्ति के उद्भव का पथ-प्रशस्त करने की यह प्रारम्भिक क्रिया है।

(३) खेचरी मुद्रा—शान्त मस्तिष्क को ब्रह्म लोक और निर्मल मन को क्षीर सागर माना गया है। मनुष्य सत्ता और ब्रह्म लोकव्यापी समष्टि सत्ता का आदान-प्रदान ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से होता है। यह मस्तिष्क का मध्य बिन्दु है, जीवसत्ता का नाभिक है, यही सहस्रार कमल है। मस्तिष्क मज्जा रूपी क्षीरसागर में विराजमान विष्णु सत्ता के सान्निध्य और अनुग्रह का लाभ लेने के लिए खेचरी मुद्रा की साधना की जाती है। ध्यान मुद्रा में शान्त चित्त से बैठकर जिह्वाग्र भाग को तालु मूर्ध्ना से लगाया जाता है। सहजाने जैसे मन्द-मन्द स्पन्दन किये जाते हैं। इस उत्तेजना से सहस्रदल कमल की प्रसुप्त स्थिति जागृति में बदलती है। बन्द छिद्र खुलते हैं और आत्मिक अनुदान जैसा रसास्वादन जिह्वाग्र भाग के माध्यम से अन्तःचेतना को अनुभव होता है। यही खेचरी मुद्रा है।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ॥
—चाणक्य

जीव आप ही कर्म करता आप ही फल भोगता है, आप ही संसार में भ्रमता, आप ही उससे मुक्त होता है।

तालु मूर्ध्ना को कामधेनु की उपमा दी गयी है और जीभ के अगले भाग से उसे सहलाना—सोमपान, पयपान कहलाता है। इस क्रिया से आध्यात्मिक आनन्द की, उत्साह की अनुभूति होती है। यह दिव्यलोक से आत्मलोक पर होने वाली अमृत वर्षा का चिन्ह है। देवलोक से सोमरस की वर्षा होती है। अमृत कलश से प्राप्त अनुदान आत्मा को अमरता की अनुभूति देते हैं।

तीनों ही मुद्राएँ भावना प्रधान हैं। चिन्तन के साथ भाव-सम्बेदनाएँ जितनी प्रगाढ़ होंगी उतनी ही क्रिया प्राणवान बनेंगी। कृत्य को ही सब कुछ मानने वालों को इस मूलभूत तथ्य को सर्वप्रथम हृदयंगम कर लेना चाहिए।

तीन विशिष्ट प्राणायाम और उनके प्रतिफल

प्राणवान बनने के लिए लोक व्यवहार में भी कई उपाय हैं, पर अध्यात्म विज्ञान के अनुसार प्राणविद्या के सहारे भी इस क्षेत्र में बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है। प्राण उपचार के कितने ही मार्ग हैं जिनका संकेत प्रश्नोपनिषद् में सूक्ष्म विवेचना के साथ किया गया है। संक्षेप में वह साधना 'प्राणायाम' की प्रक्रिया द्वारा सधती है। विज्ञात प्राणायामों की संख्या ८४ हैं। अविज्ञात इससे भी अधिक हो सकते हैं। कल्पसाधना के साधकों को प्राणवान बनाने के उद्देश्य से ऐसे निर्धारण चुने गए हैं जो सर्वसुलभ हैं। जिनके प्रयोग में लाभ तो बहुत है किन्तु कोई भूल रहने पर भी हानि होने की तनिक भी आशंका नहीं है।

ऐसे तीन प्राणायाम कल्प साधना के एक मास में कराए जाते हैं। हर एक को तीन नहीं। इनमें से एक ही उसकी स्थिति का पर्यवेक्षण करते हुए निर्धारित किया जाता है। उसे एक महीने तक नियत समय पर नियत विधि से करते रहना होता है।

नाड़ी शोधन को एक प्रकार से आयुर्वेदोक्त पंचकर्म के समतुल्य माना जा सकता है। शारीरिक मलों के निष्कासन में वमन, विरेचन, स्वेदन, स्नेहन, नस्य के पाँच उपाय अपनाए जाते हैं और विभिन्न अवयवों में भरे हुए संचित मलों को निकाल बाहर किया जाता है। इसके उपरान्त ही बलवर्धक रसायन पूरी तरह काम करते और प्रभाव दिखाते हैं। नाड़ीशोधन प्राणायाम का भी सूक्ष्म क्षेत्र में वही प्रभाव पड़ता है। पंचकर्म में प्रत्यक्ष मल इन्द्रिय छिद्रों से होकर निकलते हैं। नाड़ी शोधन प्राणायाम में बड़ी बात सूक्ष्म मलों का निष्कासन करने के रूप में श्वासन क्रिया के माध्यम से सम्पन्न होती है।

प्राणाकर्षण प्राणायाम में ब्रह्माण्ड-व्यापी प्राणतत्त्व से अपने लिए जिस स्तर का प्राण आवश्यक होता है, उसे खींचा जाता है। प्राण की अनेक धाराएँ जिस प्रकार वायु में आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, कार्बन आदि

अनेकों रासायनिक सम्मिश्रण रहते हैं उसी प्रकार संव्याज प्राण चेतना में भी ऐसे तत्व घुले हुए हैं जो विभिन्न स्तर के हैं और विभिन्न प्रकार के प्रयोजनों में प्रयुक्त होते हैं। उनमें से जिसकी जितनी मात्रा आवश्यक हो उसे उस अनुपात में खींचकर अपने किसी अंग विशेष में प्रतिष्ठापित किया जा सकता है। इसकी पद्धति प्रक्रिया और विधा कल्पसाधना काल में बताई जाती है।

सूर्यवेधन प्राणायाम में प्रकाशपुंज को आराम करने की प्रक्रिया बनती है। चीरते हुए गुजरने में सञ्चरती ऊर्जा के साथ सम्पर्क बनता है और सतही प्रभाव के हलकापन से उलझे रहने के स्थान पर अन्तराल में पाई जाने वाली प्रखरता के साथ जुड़ने की बात बनती है। सूर्य को इस विश्व का प्राण माना गया है। सच्चिदानन्द सचेतन प्राण ऊर्जा केन्द्र है। उपरोक्त तीनों प्राणायामों की विधि संक्षेप में इस प्रकार है—

(१) नाड़ी शोधन प्राणायामः—इस प्राण प्रयोग में तीन बार बाये नासिका से साँस खींचते और छोड़ते हुए नाभिचक्र में चन्द्रमा का शीतल ध्यान, तीन बार दाहिने नासिका छिद्र से साँस खींचते हुए सूर्य का जल प्रकाश वाला ध्यान तथा आखिरी बार दोनों छिद्रों से साँस खींचते हुए मुख से साँस निकालने की प्रक्रिया सम्पादित की जाती है ।

मुद्रा पूर्व की तरह । दाँयी नासिका का छिद्र बन्द
बाँये से साँस खींचें और उसे नाभिचक्र तक ले जाँ
ध्यान करें कि नाभि स्थान में पूर्णिमा के चन्द्रमा के सम
शीतल प्रकाश विद्यमान है । साँस उसे स्पर्श कर स्व
शीतल एवं प्रकाशवान बन रहा है । इसी नथुने से स
बाहर निकालें व थोड़ी देर साँस रोककर बाँयी ना
से ही इड़ा करे इस प्रयोग को तीन बार करें । अब दा
नथुने से इसी प्रकार पूरक, अन्तः कुम्भक, रेचक व बा
कुम्भक करें व नाभिचक्र में चन्द्रमा के स्थान पर सूर्य
का ध्यान करें । भावना कीजिये कि नाभि स्थित सूर्य
को छूकर लौटने वाली वायु पिगला नाड़ी से होते

उष्मा और प्र
भी तीनवार
कर साँस खींच
वार में ही व
शोधन का अ
जा सकती है ।

(२) प्राण

विभिन्न स्तर
साधक अपने पु
कर सकता है
प्राण भंडार से
इस प्रकार है ।

पूर्वाभिमुख
घुटनों पर, मेरा
अखिल आकाश
में चमकते वा
चारों ओर उम
छिद्रों से साँस
त्व के उफनते
रहे हैं। यह प्र
कर रहा है।

भीतर रोकें,
चैतन्य, बल, ते
प्रत्यंगों में स्थि
बाहर निकालें।
सार तत्व हम
लिया गया।
करें कि जो दो
चले जा रहे हैं
हैं। इस पूरी
रखा जाय।

(३) सूर्य

प्राण के साथ
की आवश्यकत
याम है। इस
वनाया जाता
नवम्बर १९

उष्मा और प्रकाश उत्पन्न कर रही है। इस क्रिया को भी तीनवार करें। अन्त में नासिका के दोनों छिद्र खोल कर साँस खींचकर व भीतर रोककर मुँह खोलकर एक बार में ही बाहर निकाल दें। प्रारम्भ में एक ही नाड़ी जोधन का अभ्यास करें पीछे धीरे-धीरे संख्या बढ़ायी जा सकती है।

(२) प्राणाकर्षण प्राणायाम :—इस सृष्टि में सतत् विभिन्न स्तर के प्राण प्रवाहों का स्पन्दन चल रहा है। साधक अपने पुरुषार्थ से इन्हें सहज ही प्राप्त व धारण कर सकता है प्राणाकर्षण प्रयोग में अन्तरिक्ष के असीम प्राण भंडार से अनुदान प्राप्त किये जाते हैं। इसका प्रयोग इस प्रकार है।

पूर्वाभिमुख हो पालथी मार कर बैठें। दोनों हाथ घुटनों पर, मेरुदण्ड सीधा, आँखें बन्द। ध्यान करें कि अखिल आकाश प्राण तत्व से व्याप्त है। सूर्य के प्रकाश में चमकते बादलों की शकल के प्राण का उफान हमारे चारों ओर उमड़ता चला आ रहा है। नासिका के दोनों छिद्रों से साँस खींचते हुए यह भावना कीजिए कि प्राण तत्व के उफनते हुए बादलों को हम अपने अन्दर खींच रहे हैं। यह प्राण हमारे विभिन्न अंग अवयवों में प्रवेश कर रहा है। जितनी देर आसानी से रोक सकें साँस को भीतर रोकें, भावना करें कि प्राण तत्व में सम्मिश्रित चैतन्य, बल, तेज, साहस, पराक्रम जैसे घटक हमारे अंग-प्रत्यंगों में स्थिर हो रहे हैं। इसके बाद साँस धीरे-धीरे बाहर निकालें, साथ ही चिन्तन कीजिए कि प्राण का मार तत्व हमारे अंग-प्रत्यंगों द्वारा पूरी तरह सोख लिया गया। थोड़ी देर तक बिना साँस के रहें व भावना करें कि जो दोष बाहर निकाले गए हैं, वे हमसे बहुत दूर चले जा रहे हैं व उन्हें अब अन्दर प्रवेश नहीं होने देना है। इस पूरी प्रक्रिया को पाँच प्राणायामों तक ही सीमित रखा जाय।

(३) सूर्यवेधन प्राणायाम :—ब्रह्मप्राण को आत्म-प्राण के साथ संयुक्त करने के लिए उच्चस्तरीय प्राणयोग की आवश्यकता पड़ती है सूर्य-वेधन इसी स्तर का प्राणायाम है। इसमें ध्यान-धारणा को और भी अधिक गहरा बनाया जाता है एवं प्राण ऊर्जा को साँस द्वारा खींचकर

इसे सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कराया जाता है। पद्धति इस प्रकार है :—

पूर्वाभिमुख, सरल पद्मासन, मेरुदण्ड सीधा, नेत्र अध खुले, घुटने पर दोनों हाथ। यह ध्यान-मुद्रा है। बायें हाथ को मोड़ें उसकी हथेली पर दायें हाथ कोहनी पर रखकर दाहिने हाथ का अँगूठा दाहिने नथुने पर अनामिका अँगुलियों से बायें नथुने को बन्द कर गहरी साँस खींचें। साँस इतनी गहरी हो कि पेट फूल जाए, वह फेंफड़े तक सीमित न रहे। ध्यान करें कि प्रकाश प्राण से मिलकर दायें नासिका-छिद्र से पिंगला नाड़ी में होकर अपने सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर रहा है। साँस रोकें व दोनों नथुने बन्द कर यह ध्यान करें कि नाभिचक्र के प्राण द्वारा एकत्रित यह तेज पुंज यहाँ अवस्थित चिरकाल से प्रसुप्त पड़े सूर्य चक्र को प्रकाशवान कर रहा है। वह निरन्तर प्रकाशवान हो रहा है। अब बायें नथुने को खोल दें और ध्यान करें कि सूर्य चक्र को सतत् घेरे रहने वाले, धुँधला बनाने वाले कल्मष छोड़ी हुई साँस के साथ बाहर निकल रहे हैं। पीत वर्ण का मलिन धुँधला प्रकाश इड़ा नाड़ी से बाहर निकल रहा है।

अब दोनों नथुने फिर बन्द कर फेंफड़ों को बिना साँस के खाली रखें व भावना करें कि नाभिचक्र में एकत्रित प्राण तेज पुंज की तरह, अग्नि शिखा की तरह ऊपर उठ रहा है, सुषुम्ना नाड़ी से प्रस्फुटित हुआ यह प्राण तेज सारे अन्तः प्रदेश को प्रकाशवान बना रहा है। सर्वत्र तेजस्विता व्याप्त हो रही है। यही प्रक्रिया फिर बायें नथुने से साँस खींचते व रोककर दायें से बाहर फेंकते हुए दुहराये व भावना उसी प्रकार करें जैसा ऊपर वर्णित है। यह पूरी प्रक्रिया लोम विलोम सूर्यवेधन प्राणायाम की कहलाती है।

प्राण धारण प्रक्रिया 'डीप ब्रीडिंग' के सामान्य श्वास-प्रश्वास अभ्यास से अलग है। इसमें साधक महाप्राण के भाण्डागार से अपनी पात्रता के अनुरूप प्राण रूपी आध्यात्मिक ऊर्जा ग्रहण करते व उसका सदुपयोग प्रसुप्त की जागृति में करते हैं। अनेकानेक फल श्रुतियों से भरा यह साधना, उपक्रम हर कल्प साधक को संक्षेप में ही सही जानना अनिवार्य है।

अखण्ड-ज्योति

कल्प-साधना के तीन योगाभ्यास

शरीर किन्तु अति महत्वपूर्ण

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के परिशोधन में संयम, विवेक और श्रद्धा सम्बर्धन को आवश्यक बताया गया है। यह बौद्धिक प्रयास है, जिसमें मनुष्य को अपने मनोबल पर ही निर्भर रहना पड़ता है। दूसरे तो मात्र मार्गदर्शन कर पाते हैं। पर इतने भर से काम कहाँ चलता है। आवश्यकता कुछ गहरे और सशक्त प्रयत्नों की भी पड़ती है। इसके लिए दो मार्ग हैं—एक किसी सशक्त आत्मा का असाधारण अनुदान जैसा कि विवेकानन्द को रामकृष्ण परमहंस का मिला था, दूसरा—साधना—तप-श्चर्या—योगाभ्यास—का कोई ऐसा प्रयोग जिसके सहारे प्रसुप्त शक्ति केन्द्रों को जागृत करके रहस्यमयी शक्तियों को आत्म-निर्माण तथा विश्व निर्माण के प्रयोजनों में प्रयुक्त किया जा सके।

कल्प साधना में ऐसे तीन योगाभ्यासों का निर्धारण किया गया है जो सभी साधकों को समान रूप से करने पड़ते हैं। इन्हें अनिवार्य साधनाओं में गिना गया है। इनमें एक बिन्दुयोग, दूसरा नादयोग और तीसरा लययोग है। बिन्दुयोग को त्राटक साधना भी कहा जाता है। नादयोग को 'अनाहत ध्वनि' भी कहते हैं। लययोग को आत्मदेव की साधना कहते हैं। छाया पुरुष जैसे अभ्यास इसी के अन्तर्गत आते हैं। स्थूल शरीर के साथ लययोग, सूक्ष्म के साथ बिन्दुयोग और कारण शरीर के साथ नादयोग का सीधा सम्बन्ध है। इन साधनाओं के आधार पर इन तीनों चेतना क्षेत्रों को अधिक परिष्कृत, अधिक प्रखर एवं अधिक समर्थ बनाया जा सकता है। अन्न, जल, वायु की तरह इन तीन साधनाओं को भी समान उत्कर्ष की दृष्टि से सर्व सुगम किन्तु साथ ही असाधारण रूप से प्रभावी भी माना गया है।

बिन्दुयोग—त्राटक साधना को आज्ञाचक्र का जागरण एवं तृतीय नेत्र का उन्मीलन कहा जाता है। दोनों भवों के बीच मस्तक के भृकुटि भाग में सूक्ष्म स्तर

का तृतीय नेत्र है। भगवान शंकर की, देवी दुर्गा की तीन आँखें चित्रित की जाती हैं। दो आँखें सामान्य—एक भृकुटि स्थान पर दिव्य। इसे ज्ञान चक्षु भी कहते हैं। अर्जुन को भगवान ने इसी के माध्यम से विराट् के दर्शन कराये थे। भगवान शिव ने इसी को खोलकर ऐसी अग्नि निकाली थी, जिसमें उपद्रवी कामदेव जलकर भस्म हो गया। दमयन्ती ने भी कुदृष्टि डालने वाले व्याध को इसी नेत्र ज्वाला के सहारे भस्म कर दिया था। संजय इसी केन्द्र से अद्भुत दिव्य दृष्टि का टेलीविजन की तरह—दूरबीन की तरह उपयोग करते रहे और धृतराष्ट्र को घर बैठे महाभारत का सारा आँखों देखा हाल सुनाते रहे।

आज्ञाचक्र को शरीर विज्ञान के अनुसार पीनियल और पिट्यूटरी ग्रन्थियों का मध्यवर्ती सर्किल माना जाता है और उसे एक प्रकार का किदलीय चक्र—दिव्य दृष्टि केन्द्र कहा जाता है। टेलीविजन, राडार, टेलीस्कोप के समन्वय युक्त क्षमता से इसकी तुलना की जाती है। जो चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता वह इसमें सन्निहित अतीन्द्रिय क्षमता के सहारे परिलक्षित हो सकता है, ऐसी मान्यता है। दूर दर्शन—सूक्ष्म दर्शन—विचार संचालन जैसी विभूतियों का उद्गम इसे माना जाता है। साधारणतया यह प्रसुप्त स्थिति में पड़ा रहता है और उसके अस्तित्व का कोई प्रत्यक्ष परिचय नहीं मिलता, किन्तु यदि इसे प्रयत्नपूर्वक जगाया जा सके तो यह तीसरा नेत्र विचार संस्थान की क्षमता को अनेक गुनी बढ़ा देता है। चूँकि यह केन्द्र दीपक की लौ के समान आकृति वाला बिन्दु माना जाता है इसलिए उसे जागृत करने की साधना को बिन्दुयोग कहते हैं। इसी का एक नाम त्राटक साधना भी है।

यह साधना सरल है। आमतौर से पालथी मारकर, कमर सीधी कर एकान्त स्थान में इस साधना के लिए

बैठते हैं। तीन फुट दूरी पर कन्धे की सीध में ऊँचाई पर एक घृत दीप जलाकर रखते हैं। दस सैकिण्ड तक उसकी लौ को खुली आँख से देखना। फिर एक मिनट बन्द रखना। फिर दस सैकिण्ड देखने, पचास सैकिण्ड बन्द रखने का अभ्यास अनुमान से ही करना पड़ता है। घड़ी का उपयोग इस बीच बन पड़ना सुविधाजनक नहीं रहेगा। दूसरा कोई चुपके से धागे आदि का संकेत कर दे तो दूसरी बात है।

दीपक के प्रकाश की लौ आँखें बन्द करके आज्ञाचक्र के स्थान पर प्रज्वलित देखने का अभ्यास करना होता है, साथ ही यह भी धारणा करनी होती है कि वह प्रकाश समूचे मस्तिष्क में फैलकर उसके प्रसुप्त शक्ति केन्द्रों को जागृत कर रहा है। आरम्भ में यह ध्यान दस मिनट से आरम्भ करना चाहिए और बढ़ाते-बढ़ाते दूनी-तिगुनी अवधि तक पहुँचा देना चाहिए। खोलने बन्द करने का समय एक-सा ही रहेगा। दीपक का सहारा आरम्भ में ही कुछ समय लेना पड़ता है। इसके बाद आज्ञाचक्र के स्थान पर प्रकाश लौ जलने और उनकी आभा से समूचा मनःस्थान आलोकमय हो जाने की धारणा बिना किसी अवलम्बन के मात्र कल्पना भावना के आधार पर चलती रहती है।

दीपक की ही तरह प्रभातकालीन सूर्य का प्रकाश पुंज लक्ष्य इष्ट माना जा सकता है। गायत्री का प्राण 'सविता' वही है। पालथी मारना, हाथ गोदी में और कमर सीधी रखने को ध्यान मुद्रा कहते हैं। दीपक धारणा की तरह प्रभातकालीन अरुणाभ सूर्य को पाँच सैकिण्ड खुली आँख से देखकर बाद में पचपन सैकिण्ड के लिए आँखें बन्द कर लेते हैं और आज्ञाचक्र के स्थान पर उस उदीयमान सूर्य का ध्यान करते हैं। साथ ही यह धारणा करते हैं कि सविता देवता की ज्योति किरणें स्थूल शरीर में प्रवेश करके पवित्रता, प्रखरता, सूक्ष्म शरीर में दूरदर्शी विवेकशीलता, कारण शरीर में श्रद्धा, सम्बेदना का संचार करती और समग्र काय कलेवर को ज्योतिषुंज बनाती हैं। सूर्य त्राटक की ध्यान धारणा आरम्भ में दस मिनट करनी चाहिए और धीरे-धीरे बीस मिनट तक बढ़ा देनी चाहिए। दीपक या सूर्य दोनों में से

किसी को भी माध्यम बनाकर आज्ञाचक्र का जागरण—तृतीय नेत्र का उन्मीलन हो सकता है। कुछ समय तो लगता ही है। बीज ब्रोने से लेकर वृक्ष फलने तक की प्रक्रिया पूरी होने में कुछ समय तो चाहिए ही। हथेली पर सरसों तो बाजीगर ही जमा सकते हैं।

दूसरी साधना नादयोग की है। यह सूक्ष्म कर्णेन्द्रियों द्वारा सम्पन्न की जाती है। खुले कान तो एक सीमा तक की समीपवर्ती प्रत्यक्ष ध्वनि हो सुन पाते हैं। किन्तु सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय में श्रवणातीत दिव्य ध्वनियाँ सुनने की भी क्षमता है। प्रकृति का मूल शब्द है। वह अनादिकाल में ॐकार के ध्वनि गुंजन से ही विकसित हुई है। उसकी समस्त गतिविधियाँ परमाणुओं के अन्तराल में चलने वाली हलचलों और तरंगों के प्रवाहों पर अवलम्बित दीखती हैं। यदि उससे भी गहराई में उतरा जा सके तो प्रतीत होगा कि चरम मूल तक पहुँचते-पहुँचते मात्र शब्द गुंजन ही शेष रह जाता है। ॐकार एवं उसके परिकर की अन्यान्य ध्वनियाँ उस समस्त विश्व ब्रह्माण्ड की भूत-कालीन घटनाओं, वर्तमान की परिस्थितियों तथा भावी सम्भावनाओं का सारा ढाँचा इन्हीं चित्र-विचित्र स्तर की ध्वनि तरंगों पर खड़ा पाया जाता है। प्रकाश, ऊर्जा आदि की अन्यान्य तरंगें तो ध्वनि की परिणति एवं सहचरी मात्र हैं। नादयोग में इन्हीं को सुनने, समझने का अभ्यास किया जाता है ताकि उस आधार पर अपनी आन्तरिक स्थिति का विश्लेषण, पर्यवेक्षण किया जा सके एवं प्रकृति में चल रही सामयिक हलचलों का आधारभूत कारण समझकर अपनी ज्ञान परिधि को अत्यधिक व्यापक बनाया जा सके एवं भूतकाल के स्मृति-कम्पनों और भविष्य में घटित होने वाले प्रकरणों का पूर्वाभास उपलब्ध हो सके। नादयोग की शब्द साधना को 'कालजयी' कहा जाता है। उस आधार पर हम इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होने वाले सर्वविधित प्रचलन से छलांग लगाकर दिव्य ध्वनियों के माध्यम से अपनी ज्ञान सम्पदा को न केवल अधिक प्रखर वरन् उच्चस्तरीय भी बना सकते हैं। ऋषियों को दृष्टा, त्रिकालदर्शी, सर्वज्ञ आदि की सिद्धियाँ इसी आधार पर उपलब्ध होती थीं। यह चरम परिणति की चर्चा हुई। सामान्य स्तर पर भी नादयोग की आर-

अखण्ड-ज्योति

म्भिक साधना परा प्रकृति और कायगत तत्व प्रपंच के साथ संगति बिठाती है और अदृश्य क्षेत्र के साथ आदान-प्रदान के नये द्वार खोलती है।

बिन्दुयोग की तरह नादयोग में भी ध्यान मुद्रा पर एकान्त स्थान में बैठते हैं। स्थूल ध्वनियों को रोकने के लिए कान में रुई लगा लेते हैं। इसके उपरान्त प्रयत्न करते हैं कि प्रकृति के गर्भ में प्रवाहित दिव्य ध्वनि तरंगों का सुनना सम्भव हो सके। आरम्भ में बहुत धीमा अनुभव होता है। जो सुनाई पड़ता है वह बंशी, नफीरी बजने, झींगुर बोलने, झमर गूँजने, बादल बरसने, झरना झरने जैसा हलका होता है। बाद में अधिक प्रखरता, उत्तेजना और उतार-चढ़ाव भी उत्पन्न होने लगता है। यह दिव्य ध्वनियाँ बड़ी मोहक और आनन्ददायक होती हैं। इनकी तुलना सर्प को, मृग को मोहने वाले वीणा निनाद से दी जाती है। रामलीला में कन्हैया की बंशी बजने और गोपियों का, प्रवृत्तियों का नाच होने की संगति भी इसी नादयोग साधना के साथ जुड़ती है। ऋकार जप, सोऽहम् धारणा, मन्दिरों में शंख-घड़ियाल की ध्वनि का आधार भी यही है। नारद की वीणा, शंकर का डमरू, सरस्वती का सितार अलंकार रूप में इस नादयोग के रहस्यों का ही उद्घाटन करने वाले सकेत हैं।

कल्प साधना में तीसरा अनिवार्य अभ्यास लययोग का है। इसमें शरीराभ्यास की आत्मसत्ता के साथ सम्पित विसर्जित करना पड़ता है। आमतौर से मनुष्य अपने आपको शरीर भर मानता है और उसी की इच्छा, आवश्यकता पूरी करने में जुटा रहता है। आत्मा को; उसके स्वरूप, लक्ष्य एवं उत्तरदायित्व को तो एक प्रकार से विस्मृत ही किए रहता है। यह वह भटकाना है जिसे मायापाश, भव-बन्धन आदि नामों से पुकारते हैं। यदि अपना स्वरूप समझा जा सके, क्षमताओं का अनुमान लग सके, लक्ष्य का स्मरण आ सके और भावी सम्भावनाओं की सुखद कल्पना उठ सके तो मनुष्य निश्चय ही वर्तमान की मृगतृष्णा, भटकन, विसंगति, दुर्गति से ऊँचा उठकर उस महान के साथ संयुक्त होता है जिसकी विवेचना आत्म-बोध, स्वर्ग, लक्ष्यबोध, ईश्वर दर्शन, दिव्य जीवन

आदि नाम के साथ की जाती है। पुरुष के पुरुषोत्तम, नर से नारायण, क्षुद्र से महान, अर्ध-मृतक से अमर होने की बात इसी स्थिति के सम्बन्ध में कही जाती है जिसमें शरीराभ्यास को आत्मानुभूति के रूप में परिणत किया जाता है। इस प्रयास को महान साहस, परम पुरुषार्थ एवं चरम सौभाग्य कहा जाता रहा है।

ध्यान मुद्रा में बैठकर दर्पण को सामने रखा जाता है। अपने चेहरे पर सज्जा सौन्दर्य की नहीं एक विशेष दृष्टि डाली जाती है कि इस मांस-पिण्ड के भीतर सृष्टि का प्रतिनिधित्व करने वाली आत्मसत्ता विद्यमान है। वही इस काया की अधिष्ठात्री है। उसी का उत्कर्ष परम लक्ष्य है। काया उसी प्रयोजन की पूर्ति का वाहन, साधन, उपकरण मात्र है। शरीर की सार्थकता आत्मा के प्रति वफादार, जिम्मेदार और ईमानदार रहने में ही है। आत्मा काया का पोषण तो सही रूप से करे पर साथ ही यह भी ध्यान रखे कि उसे उच्छृंखल बनाने वाली वासना, तृष्णा, अहंता के आक्रमण से सुरक्षा का प्रबन्ध भी होता रहे। जीवन यज्ञ है। इसे भ्रष्ट करने वाले सुबाहु, मारीच और ताड़का से तुलना इन्हीं उपरोक्त दानवी महत्वाकांक्षाओं से दी गई है जो विनाश और पतन के सरंजाम ही रचती रहती है।

कल्प साधना में उपरोक्त तीनों साधनों को न केवल अनिवार्य माना गया है वरन् सरल भी बनाया गया है। दीपक और सूर्य के स्थान पर नीलाभ विद्युत् दीप साधकों के हर कमरे में लगाए गए हैं। नादयोग का आरम्भिक अभ्यास करने के लिए टैप रिकार्डर के माध्यम से उपयोगी स्वर लहरियाँ सुनाई जाती हैं ताकि सूक्ष्म नाद को अधिक स्पष्ट होने का मार्ग खुले। उपयुक्त साइज का दर्पण हर कमरे में पहले से ही रखा मिलता है। तीनों साधनाएँ आरम्भिक स्तर के साधक भी सरलतापूर्वक चला सकें इसके लिए यथा सम्भव अधिकाधिक सुविधा, सरलता उत्पन्न की गई है। व्यवस्था ऐसी है जिसमें उपरोक्त तीनों योगाभ्यास साधनाएँ बिना किसी कठिनाई के आरम्भ की जा सकें। वे जैसे-जैसे विकसित परिपक्व होती हैं वैसे-वैसे अपने सत्परिणाम भी प्रत्यक्ष करती चली जाती हैं।

नवम्बर १९८२

३८

अखण्ड-ज्योति

अन्तराल के मर्मस्थल का प्रभावी परिशोधन

अन्तःचेतना को परिष्कृत करने के दो उपाय हैं। इनमें से एक है—शिक्षण एवं सम्पर्क। इसका अर्थ होता है बाह्य क्षेत्र के प्रभाव-दबाव से अन्तराल को दबाना-छालना। दूसरा उपाय है—आन्तरिक प्रसुप्ति को दूर-दर्शी विवेकशीलता और साहसिक सङ्कल्पशीलता के सहारे जगाना-उभारना। एक में बाह्य प्रभाव की प्रधानता है, दूसरे भीतर की ऊर्जा को उछाल कर बहिरंग क्षेत्र पर आच्छादित कर देने की। एक को बादल बरसने, धूप निकलने, आँधी चलने की उपमा दी जा सकती है। दूसरे की अणु विस्फोट, ज्वालामुखी का प्रकटीकरण, जल स्रोत का जमीन से उबल पड़ना जैसी घटनाओं से तुलना की जा सकती है। दोनों ही अपने-अपने स्थान पर कारगर हैं। दोनों का ही उपयोग होता रहा है। दोनों ही अपने-अपने प्रभाव प्रकट करती रही हैं।

मानसिक विकास, बौद्धिक प्रशिक्षण, अनुभव अभ्यास से लेकर ब्रेन वाशिंग और इलेक्ट्रोडों का उपयोग कर मस्तिष्कीय संरचना में उलट-पुलट कर देने जैसे अनेकों प्रयोग पिछले दिनों चलते रहे हैं। नीति-कौशल में इसके लिए साम, दाम, दण्ड, भेद का तरीका चिरकाल से अपनाया जाता है। अब कूट-नीति के रूप में उसका एक अपना एक स्वतन्त्र शास्त्र ही बन गया है। सरकारी और गैर सरकारी प्रचार तन्त्र इस प्रयोजन के लिए अपने-अपने ढंग से काम करते रहते हैं। इस सन्दर्भ में विज्ञानों को पहले से भी बहुत कुछ जानकारी रहती है।

इन पंक्तियों में उस उपेक्षित पक्ष पर प्रकाश डाला जाना है जो भीतर से उछल कर बाहर आने और ऊपरी सतह को सुरम्य बना देने की चमत्कारी परिणति के रूप

में कभी-कभी ही देखा जाता है। मनुष्य सचेतन स्तर की दृष्टि में संव्याप्त पदार्थ सम्पदा की तुलना में कम नहीं कुछ अधिक ही महत्व का है। अणु की संरचना और विभु की विशालता देख कर बुद्धि को हतप्रभ रह जाना पड़ता है, किन्तु यदि एक कदम और आगे बढ़ कर देखा जा सके और गहराई में डुबकी लगायी जा सके तो प्रतीत होगा कि वैभव का अदृश्य भण्डार उस क्षेत्र में भी इतना है, जिसे तुलनात्मक दृष्टि से वरिष्ठ न माना जाय तो कनिष्ठ भी नहीं कहा जा सकता।

यहाँ चर्चा पैरों के नीचे दबे अदृश्य क्षेत्र की नहीं हो रही है। धरातल का उदाहरण दिया जा रहा है ठीक यही उदाहरण मानवी सत्ता पर भी लागू होता है। बहिरंग क्षेत्र की प्रकृति सम्पदा उपयोगी भी है और आकर्षण भी। इतने पर भी अन्तरंग क्षेत्र में जो विद्यमान है वह भी ऐसा नहीं है जिसकी उपेक्षा और अवमानना की जा सके। सच तो यह है कि पदार्थ को इतना सुखद, आकर्षक एवं उपयुक्त बनाने में भी चेतना का ही कौशल काम करता रहा है, अन्यथा धरती भी अन्य ग्रह पिण्डों से मिलती-जुलती अनगढ़ स्थिति में ही रह रही होती और इसका वर्णन-विवेचन करने वाला तक कोई कहीं न होता।

चेतना का स्तर ही है जिसके कारण एक ही परिस्थिति में उत्पन्न हुए व्यक्तियों में से कोई हैय, पिछड़ी, विपन्न स्थिति में दिन गुजारता और आत्म प्रताड़ना, लोक भर्त्सना सहता है, जबकि उनमें से कुछ को अपना रास्ता आप बनाते, अवरोध हटाते, साधन सहयोग समेटते प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँचते देखा जाता है। यह अन्तस् का चुम्बकत्व ही है जो अनुकूलता को खींच बुलाता है। यह अन्तस् का आलोक ही है जो सम्पर्क क्षेत्र को

आलोक से जगमगाता है। यह अन्तस् का ऊर्जा भण्डार ही है जिसकी पकड़ में आने वाला हर पदार्थ ईंधन की तरह जलने लगता है। कहने को तो लोग यही कहते रहते हैं कि परिस्थितियाँ मनःस्थिति को प्रभावित करती हैं, पर वस्तुतः इसमें यथार्थता आत्यल्प है। थोड़ा गम्भीर पर्यवेक्षण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि तन्त्र्य कुछ और ही है। मनःस्थिति ही परिस्थिति की जन्मदात्री है। मनस्वी लोग अपने भाग्य की रचना स्वयं करते हैं, प्रतिकूलताओं को कूट-पीट कर अनुकूलता में बदलते हैं और वातावरण के घेरे को चीरते हुए अपना संसार आप बसाते हैं। जिनका मनस् मर गया उन्हीं के लिए परिस्थितियाँ सब कुछ हैं। पत्ते, तिनके और धूलि कण तो हवा के साथ-साथ ही झड़-उधर भटकते-भटकते फिरते हैं। उथले व्यक्तियों को ही परिस्थितियों का गुलाम, भाग्य का अनुचर एवं प्रवाह में तैरता-डूबता लकड़ कहा जा सकता है।

महामानवों का समूचा इतिहास इस बात का साक्षी है कि चेतना जगी है तो उनकी जीवन सम्पदा अपने लिए सौभाग्य और दूसरों के लिए वरदान रूप में प्रकट हुई है। इसके विपरीत हीनता के आच्छादन ने साधनों का ही दुरुपयोग किया है, साथियों को खिजाया है और भटकाव में पड़कर दुख-दुःख सहा है। इसके अगणित प्रमाण हर कोई, हर कहीं, हर समय अपने इर्द-गिर्द ही प्रचुर परिमाण में बिखरे हुए तलाश कर सकता है। शिक्षित, स्वस्थ और सम्पन्नों में से ऐसे कम नहीं जो स्वयं जलते और दूसरों को जलाते रहे। इसके विपरीत दुर्बल, अनपढ़ और दरिद्र समझे जाने वाले भी ऐसे अगणित हजारों किसान हैं, जिनने आत्म सन्तोष, जन सहयोग और दैवी अनुग्रह की विभूतियाँ हर घड़ी अपने ऊपर बरसते देखी। ऋषियों को साधनों की दृष्टि से दयनीय भी कहा जा सकता है, पर वे अन्तःचेतना की विशिष्टता के कारण राजा से लेकर रंक तक के लिए अभिनन्दनीय बने रहे। उनके गौरव और सौभाग्य को शत-शत कठों ने एक स्वर से सराहा।

इन तथ्यों पर विचार करने से चेतना की वरिष्ठता

ही स्पष्ट होती है और विश्वास बँधता है कि साधनों वाहुल्य हो तो सोना सुगन्ध, अन्यथा स्वल्प साधनों भी खिलता-खिलता जीवन जिया जा सकता है। अन्तस् की गरिमा को भी समझा-समझाया जाना चाहिए और इस तथ्य के प्रति गम्भीर होना चाहिए कि वैयक्तिक एवं सामूहिक समस्याओं के समाधान में चेतना की वरिष्ठता को वरीयता दी जाय और उसे परिष्कृत बनाया जाए। न केवल बहिरंग साधनों को वरन् अन्तस् की को भी उभार कर ऊपर लाया जाय। यदि चिन्तन के प्रयास को ऐसा अभिनव उत्साह अवलम्बन मिल सके समझना चाहिए कि वातावरण का काया-कल्प होने सतयुग के—प्रज्ञायुग के अवतरण में अब न विचार लगेगा, न अवरोध अड़ेगा।

सामयिक व्यापक विपन्नताओं को निरस्त करने वालीनता, प्रसन्नता एवं सुव्यवस्था का वातावरण बनाने के लिए आवश्यक है कि मानवी चेतना को परिष्कृत करने के सम्बन्ध में बढ़ती जा रही उपेक्षा को दूर किया जाय और उसके स्थान पर उस क्षेत्र में प्रभावी गतिशीलता का संचार किया जाय। इसके लिए जहाँ लोकमानस का बौद्धिक परिशोधन पारंपरिक आवश्यक है वहाँ आवश्यकता इस बात की भी है कि प्रसुप्त अन्तरालों को उन मर्मस्त्रलों को भी उभारा जाय जहाँ विभूतियों का अजस्र भाण्डागार भरे पड़े हैं। ऋषिकल्प अध्यात्म विज्ञानियों के अनुभव, प्रतिपादन एवं प्रशिक्षण में तथ्यों का समुचित समावेश है जिनके सहारे चेतना गहन परतों को उभारा और इतना प्रखर किया जा सकता है कि न केवल परिस्थितियों को अनुकूल बनाया जा सके वरन् मनःस्थिति को अपने निज के पराक्रम पुरुषार्थ से उच्चस्तरीय बनाया जा सके।

कहा जा चुका है कि बाहर से भीतर को प्रशिक्षित करने की तरह ही दूसरा क्षेत्र है भीतर की प्रखरता को प्रदीप्त करके बहिरंग को—सुशोभित कर, सुसम्पन्नता से भर देना। यह अपेक्षाकृत सरल है। क्योंकि इसमें अपने आप से ही उलझना-मुलझना पड़ता है। दूसरों के हाथ रहने वाली परिस्थितियों को बदलने के लिए किये गये

साधनों पर पग-पग पर मिलने वाली खोज निराशा उपलब्ध करने जैसी कठिनाई इस क्षेत्र में नहीं है। साधना अपने हाथ की बात है। अपने शरीर को जिस प्रकार मनमर्जी से चलाया जा सकता है उसी प्रकार मनःक्षेत्र की विचारणाओं, मान्य-धर्मों, आकांक्षाओं और आदतों के ऊपर भी यदि दृढ़ता जाय तो उन्हें भी कुम्हार की तरह अनगढ़ मिट्टी की देव-प्रतिमाओं जैसे खिलौनों में बदला जा सकता है। अन्तस् की विशिष्टताओं एवं विभूतियों को उभारने का एकमात्र उपाय 'साधना' है। 'साधना से सिद्धि' के सिद्धान्त का तात्पर्य इतना ही है कि यदि अचेतन, सुपर-चेतन, ईगो क्षेत्र में कोई कारगर परिवर्तन करने हों तो उसके लिए 'योग परक ध्यान-धारणाएँ' और तपपरक नियम-नियमन की तृतीक्षाएँ करनी चाहिए। सत्संग से व्यवहार और स्वाध्याय से चित्तन को सुधारा जा सकता है। यह व्यवहार में आने वाली ऊपरी परत है। इससे मन-मस्तिष्क की विचारणाएँ भटकाव से उबर कर ही दिशा में चलने के लिए प्रशिक्षित की जाती हैं। चित्तन पर भी अन्तराल का आस्थापरक क्षेत्र तो बच ही जाता है। उसके लिए उन उपचारों का प्रयोग करना पड़ता है, जो चेतना के मर्मस्थल तक पहुँच सकें, वहाँ निवास करने वाली श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा को संचित कुसंस्कारों से मुक्त कर सकें। प्रवृत्तियों की जड़ें बहुत गहरी होती हैं, वे समझने-समझाने पर भी अपना अंगद जैसा पैर अश्वस्थान जमाये रहती हैं। दूब की पत्तियाँ सूख जाने पर भी जड़ नहीं सूखती, तनिक-सी नमी पाते ही देखते-देखते हरी-भरी होन लगती हैं। यही बात प्रवृत्तियों के मर्मस्थल में भी है। कुसंस्कार उन्हीं में पलते हैं। प्रवृत्तियों का कोंतर वही है। उत्कृष्टता और निष्कृष्टता का सामन क्षेत्र वही है। व्यक्तित्व की जड़ें इसी क्षेत्र में जमी होती हैं। यहाँ सुधार-परिष्कार करने में जो उपचार काम देते हैं वे तप-साधना से कम स्तर के कार-गार नहीं होते। पत्थर की कठोर चट्टानें काटने में हीरे की नोक वाला बरमा ही काम आता है। पहाड़ उड़ाने में तो डाइनामाइट की सुरंगों से कम में काम नहीं चलता। दिलों को विस्मार करने में तोप के गोले ही कारगर होते हैं। टीलों को समतल करने में बुलडोजरों का

प्रयोग करना पड़ता है। हल्के-फुल्के उपकरण इन बड़े प्रयोजनों के लिए आवश्यक बड़ी शक्ति के अभाव में कोई कहने लायक परिणति उत्पन्न नहीं कर पाते। यहाँ धीमे प्रयत्नों की निन्दा नहीं है। समयानुसार चीटी भी अपने नन्हें पैरों के सहारे पहाड़ पर चढ़ सकती है, किन्तु वह लम्बी बात है। शालीनता का जीवन और सत्प्रयोजनों में संलग्न क्रिया-कलाप भी कालान्तर में व्यक्तित्व मर्मस्थल को उत्कृष्ट आदर्शवादिता के ढाँचे में ढाल सकता है, किन्तु यदि समयानुसार अभीष्ट सफलता पानी हों तो बड़े कदम भी उठाने पड़ेंगे, बड़े साधन भी जुटाने पड़ेंगे। यहाँ बड़े से तात्पर्य साधनात्मक पुरुषार्थ से है। पुरुषार्थ इसलिए कि उसमें अपने आप से ही जूझना पड़ता है। बाहरी क्षेत्र के बड़े-बड़े मोर्चे जीतने वाले भी भीतरी क्षेत्र का प्रसंग सामने आने पर हथियार डालते देखे गये हैं। इसलिए साधना को चरम पराक्रम कहा गया है। साथ ही उसकी परिणति को स्वर्ग एवं मुक्ति जैसी उच्चस्तरीय विभूतियों के रूप में दर्शाया गया। प्रतिभा, प्रखरता, कुशलता, सम्पन्नता, सफलता जैसी उपलब्धियाँ तो आत्मिक प्रगति की सहेलियाँ हमजोलियाँ हैं जो दो शरीर एक मन की तरह साथ-साथ ही चलती हैं।

कल्प साधना की प्रक्रिया का निर्धारण आज की मनःस्थिति और परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए किया गया है। वह न तो इतना कठिन है। जिसे संकल्पवान व्यक्ति भी पूरा न कर सके और न ही वह इतना सरल है कि विलासिता और अस्वच्छता के अनगढ़ ढर्रे को यथावत् बनाये रह कर मात्र कुछ पूजा उपचार करने भर से बन पड़े। पूजा, उपचारों साधनाकृत्यों का महत्व तभी है जब वे श्रद्धा, विष्वास के साथ जुड़े और संकल्पित व्रतशीलता बन कर सैन्य अनुशासन की तरह निभें। कल्प साधना में दान और तप के सभी तत्वों का सुसन्तुलित ढंग से समावेश है, साथ ही वह सर्वथा हानि रहित भी है। जैसा कि अन्त्याय योग साधनों में प्रयत्न भ्रष्ट होने पर कई प्रकार के विग्रह उठ खड़े होते हैं, वैसी स्थिति न आने पाये इसलिये उसे नितान्त उपयोगी होने के साथ-साथ सर्वथा हानि रहित होने का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

भावी जीवन पंचशीलों के साथ जुड़े



कल्प साधना के दिनों में यदि किसी प्रकार का चिन्तन तेजस्वी स्तर पर उभरा होगा और उससे पश्चात्ताप जैसा कुछ मरोड़ने वाला दर्द हुआ होगा तो फिर उसका समाधान एक ही हो सकता है—भविष्य का शानदार निर्धारण। मनन तभी सार्थक है जब उससे विगत के प्रमाद की भरपाई करने के लिए चौगुने, सौगुने पराक्रम की उमंगें उभरें। इस एक मास की अवधि में चिन्तन तो दो चार दिन का ही पर्याप्त हो सकता है। शेष २६ दिन एक ही योजना बनानी चाहिए कि जिन आदर्शवादी प्रेरणाओं का यहाँ माहौल है उनका अवधारण—कार्यान्वयन कैसे सम्भव हो। उसके लिए किस क्रम में क्या कदम उठाये जाने चाहिए और उस निर्धारण में जो आन्तरिक प्रमाद तथा बाह्य व्यवधान आड़े आने वाला है उससे कैसे निपटा जाना चाहिए। असल में यही है कल्प साधना के दिनों की महानतम उपलब्धि। यदि इस प्रयत्न के फलस्वरूप उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण बन पड़ा तो उसका श्रेय सुअवसर सहयोग को नहीं, साधक की अपनी दूरदर्शी विवेकशीलता एवं संकल्पवान साहसिकता को ही मिलेगा।

व्यक्तित्व के विकास में आने वाले कुछ प्रमुख सूत्र हैं। उनकी उपयोगिता और फलश्रुति समझनी चाहिए तथा उनके कार्यान्वयन का क्रम बनाने से लेकर अपनाये रहने का संकल्पवान व्रत भी धारण करना चाहिए। ऐसे निर्धारणों में कुछ निम्नलिखित हैं—

व्यक्तित्व का विकास:—

[१] प्रातः उठने से लेकर सोने तक की व्यस्त दिनचर्या निर्धारित करें। उसमें उपाजन, विश्राम, नित्य कर्म, अन्यान्य काम-काजों के अतिरिक्त आदर्शवादी परमार्थ प्रयोजनों के लिए एक भाग निश्चित करें। साधारणतया आठ घण्टा कमाने, सात घण्टा सोने, पाँच घण्टा नित्यकर्म एवं लोक व्यवहार के लिए निर्धारित रखने के उपरान्त चार घण्टे परमार्थ प्रयोजनों के लिए निकालने चाहिए।

इसमें भी कटौती करनी हो तो न्यूनतम दो घण्टे तो ही चाहिए। इससे कम में पुण्य परमार्थ के सेवा मार्ग के सहारे बिना न सुसंस्कारित स्वभाव का अंग बनना और न व्यक्तित्व का उच्चस्तरीय विकास सम्भव होता है।

[२] आजीविका बढ़ानी हो तो अधिक योग्य बढ़ायें, परिश्रम में तत्पर रहें और उसमें गहरा मनोप्रेम लगायें। साथ ही अपव्यय में कठोरतापूर्वक कटौती का सादा जीवन उच्च विचार का सिद्धान्त समझें। अपव्यय के कारण अहंकार, दुर्व्यसन, प्रमाद बढ़ने और निरर्थक ईर्ष्या, शत्रुता पल्ले बाँधने जैसी भयावह प्रतिक्रियाओं अनुमान लगायें। सादगी प्रकारान्तर से सज्जनता का दूसरा नाम है। औसत भारतीय स्तर का निर्धारण अभीष्ट है। अधिक कमाने वाले भी ऐसी सादगी अपना लें जो सभी के लिये अनुकरणीय हो। ठाट-बाट प्रदर्शन खर्चीला डकोसला समाप्त करें।

[३] अहिंसा प्रवृत्तियों को भड़काने वाले विचारों की अन्तराल पर छाये रहते हैं। अभ्यास और समीक्षा प्रचलन मनुष्य को वासना, तृष्णा और अहंकार की प्रवृत्तियों में निरत रहने का ही दवाव डालता है। सम्बन्धी परिजनों के परामर्श प्रोत्साहन भी इसी स्तर के होते हैं। लोभ, मोह और विलास के कुसंस्कार निकृष्टता और सफलताओं को सफलता मानते हैं। इसे एक चक्रव्यूह मानना चाहिए। भव-बन्धन के इसी घेरे से बाहर निकलने के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिए। कुविचारों को पकड़ने का एक ही उपाय है—ज्ञा साहित्य का न्यूनतम दो घण्टा अध्ययन अध्यवसाय। इतना समय एक बार न मिले तो उसे जब भी अवकाश मिले, थोड़ा-थोड़ा करते रहना चाहिए। स्वाध्याय को भजन से भी अधिक प्रमुखता दी गई है। इसलिए उसे नित्य कर्म में समाहित करना चाहिए और कभी प्रमाद न करना चाहिए।

मन्त्रविचारों की यह स्वाध्याय संचित पूजा ही मनुष्य की
नवी आध्यात्मिक सम्पदा है।

[४] प्रतिदिन प्रज्ञायोग की साधना नियमित रूप से
की जाय। उठते समय आत्मबोध—सोते समय तत्व-
बोध। नित्यकर्म से निवृत्त होकर जप ध्यान। एकान्त
विधा का चिन्तन-मनन में उपयोग। यही है—त्रिविधि
विधानों वाला प्रज्ञायोग। यह संक्षिप्त होते हुए भी अति
प्रभावशाली एवं समग्र है। अपने अस्त-व्यस्त बिखराव
वाले साधना क्रम को समेटकर इसी केन्द्र बिन्दु पर एक-
चित्त करना चाहिए। महान के साथ अपने सुद को जोड़ने
के लिए योगाभ्यास का विधान है। प्रज्ञा परिजनों के
लिए सर्वसुलभ एवं सर्वोत्तम योगाभ्यास 'प्रज्ञायोग' की
साधना है। उसे भावनापूर्वक अपनाया और निष्ठापूर्वक
निभाया जाय।

[५] दृष्टिकोण को निबेधात्मक न रहने देकर
विधेयात्मक बनाया जाय। अभावों की सूची फाड़ फेंकनी
चाहिए और जो उपलब्धियाँ हस्तगत हैं, उन्हें असंख्य
शक्तियों की अपेक्षा उच्चस्तरीय मानकर सन्तुष्ट भी
रहना चाहिए और प्रसन्न भी। इसी मनःस्थिति में अधिक
उन्नतिशील बनना और प्रस्तुत कठिनाइयों से निकलने
वाला निर्धारण भी बन पड़ता है। असन्तुष्ट, खिन्न,
वर्द्धमान रहना तो प्रकारान्तर से एक उन्माद है जिसके
कारण समाधान और उत्थान के सारे द्वार ही बन्द हो
जाते हैं।

कर्तृत्व पालन को सब कुछ मानें। असीम महत्वा-
कांक्षाओं के रंगीले महल न रचें। ईमानदारी से किये
गये पराक्रम से ही परिपूर्ण सफलता मानें और उतने भर
से सन्तुष्ट रहना सीखें। कुरूपता नहीं, सौन्दर्य निहारें।
आजका प्रसन्न, भयभीत, निराश, न रहें। उज्ज्वल भविष्य
के सपने देखें। याचक नहीं, दानी बनें। आत्मावलम्बन
की सीखें। अहंकार तो हटाये पर स्वाभिमान जीवित रखें।
अपने समय, धन, मन और धन से दूसरों को ऊँचा
उठायें। सहायता करें पर बदले की अपेक्षा न रखें। बड़-
पन की तृष्णाओं को छोड़ें और उनके स्थान पर महानता
अर्जित करने की महत्वाकांक्षा संजोयें। स्मरण रखें,
हमने-हमारे रहता और हलकी-फुलकी जिन्दगी जीना ही

सबसे बड़ी कलाकारिता है।

परिवार निर्माणः—

[१] परिवार को अपनी विशिष्टताओं को उभारने
अभ्यास करने एवं परिपुष्ट बनाने का प्रयोगशाला—पाठ-
शाला समझें। इस उद्यान में सत्प्रवृत्तियों के पौधे लगायें।
हर सदस्य को स्वावलम्बी, सुसंस्कारी एवं समाजनिष्ठ
बनाने का भरसक प्रयत्न करें। इसके लिए सर्वप्रथम
ढालने वाले साँचे की तरह स्वयं आदर्शवान बनें ताकि
कथनी और करनी की एकता का प्रभाव पड़े। स्मरण रहे
साँचे के अनुसार ही खिलौने ढलते हैं। पारिवारिक
उत्तरदायित्व में सर्वप्रथम है—संचालक का आदर्शवादी ढाँचे
में ढलना, दूसरा है माली की तरह हरे पौधे को जालीनता
के क्षेत्र में विकसित करना।

[२] परिवार की संख्या न बढ़ायें। अधिक बच्चे
उत्पन्न न करें। इसमें जननी का स्वास्थ्य, सन्तान का
भविष्य, गृहपति का अर्थ सन्तुलन एवं समाज में दारि-
द्र्य असन्तोष बढ़ता है। दूसरों के बच्चों को अपना
मानकर उनके परिपालन में वात्सल्य कहीं अधिक अच्छी
तरह निभ सकता है। लड़की लड़कों में भेद न करें।
पिछली पीढ़ी और वर्तमान के साथियों के प्रति कर्तृत्व
पालन तभी हो सकता है जब नये प्रजनन को रोके।
अन्यथा प्यार और धन प्रस्तुत परिजनों का ऋण चुकाने
में लगने की अपेक्षा उनके लिए बहने लगेगा जिनका अभी
अस्तित्व तक नहीं है। आज के समय में बच्चों की संख्या
वृद्धि हर दृष्टि से अवांछनीय है। इसलिए उस सम्बन्ध
में संयम बरतें और कड़ाई रखें। थोड़े लोगों का परिवार
ही सुसंस्कारी बन सकता है। स्वावलम्बी सदस्यों को
अलग होने की अपेक्षा छोटी की सहायता और बड़ों की
सेवा करने की प्रेरणा देनी चाहिए।

[३] संयम और सज्जनता एक तथ्य के दो नाम हैं।
परिवार में ऐसी परम्परायें प्रचलित करें जिसमें इन्द्रिय
संयम, समय संयम, अर्थ संयम और विचार संयम का
अभ्यास आरम्भ से ही करते रहने का अवसर मिले। घर
में चटोरेपन का माहौल न बनाया जाय। भोजन
मात्स्यिक बने और नियत समय पर सीमित मात्रा में खाने
का ही अभ्यास बने। कामुकता को उत्तेजना न मिले।

सभी की दिनचर्या निर्धारित रहे। समय के साथ काम और मनोयोग जुड़ा रहे। किसी को आलस्य प्रमाद की आदत न पड़ने दी जाय और न कोई आवारागर्दी अपनाये, व कुसंग में फिरे। फैशन और जेवर को बचकाना उपहासास्पद माना जाय, केश-विन्यास और अश्लील, उत्तेजक पोशाक कोई न पहने और न जेवर आभूषणों से लदे। नाक, कान छेदने और उनके चित्र विचित्र लटकन लटकाने का पिछड़ेपन का प्रतीक फैशन कोई महिला न अपनाये। विचार संयम के लिए कुविचारों का आक्रमण घर में न हो उनके लिए सद्विचारों का स्वाध्याय और कथा कहानी परस्पर विचार विनिमय का नियमित कार्यक्रम चलता रहे। गृहपति स्वयं चतुर्विध संयम पाले और घर के अन्य सदस्यों को भी इस शालीनता की निशानी संयमशीलता का अधिकाधिक अभ्यास करायें।

[५] पारिवारिक पंचशीलों में श्रमशीलता, मितव्ययता, सुव्यवस्था, शालीन-शिष्टता और उदार सहकारिता की गणता की गयी है। इन पाँच गुणों को हर सदस्य के स्वभाव में कैसे सम्मिलित किया जाय। इसके लिए उपदेश देने से काम नहीं चलता, वरन् ऐसे व्यावहारिक कार्यक्रम बनाने पड़ते हैं जिन्हें करते रहने से वे सिद्धान्त व्यवहार में उतरें। इसलिए घर के लोगों को साथ लेकर परिवार प्रमुखों को कुछ कर्तव्य करने होते हैं तभी अन्यों को उनको आरम्भ करने से भविष्य में अपनाये रहने की आदत पड़ती। यह क्रिया द्वारा शिक्षा देने की विधि ही आदत डालने या सुधारने में काम आती है।

[५] उत्तराधिकार का लालच किसी के भस्तिष्क में नहीं जमने देना चाहिए, वरन् हर सदस्य के मन में यह सिद्धान्त जमना चाहिए कि परिवार की संयुक्त सम्पदा में उसका भरण-पोषण शिक्षण एवं स्वावलम्बन सम्भव हुआ है। इस ऋण को चुकाने में ही ईमानदारी है। बड़ों की सेवा और छोटों की सेवा के रूप में यह ऋण हर वयस्क स्वावलम्बी को चुकाना चाहिए। कमाऊ होते ही आमदनी जेब में रखना और पत्नी को लेकर मनभाना खर्च करने के लिए अलग हो जाना प्रत्यक्ष ब्रेईमानी है। उत्तराधिकार का कानून मात्र कमाने में असमर्थों के लिए

लागू होना चाहिए, न कि स्वावलम्बियों की मुफ्त कमाई छूट लेने के लिए। अध्यात्मवाद और साम्यवाद दोनों ही इस मत के हैं कि पूर्वजों की छोड़ी कमाई असमर्थ आश्रित ही तब तक उपयोग करें जब तक कि स्वावलम्बी नहीं बन जाते। परिवार में उत्तराधिकार प्रचलन इसी आधार पर करने की पहल पहले अपने से करना चाहिए। इसके लिए मिशन के सूत्र संचालक का, वाजिधवा का, मैत्रेयी का, महर्षि कर्वे का उदाहरण हम सबके भस्तिष्कों में घूमता रहना चाहिए।

समाज निर्माण—

[१] हममें से हर व्यक्ति अपने को समाज का एक अविच्छिन्न अंग माने। अपने को उसके साथ अविभाज्य घटक माने। सामूहिक उत्थान और पतन पर विचार करें। एक नाव में बैठे लोग जिस तरह एक साथ हूँ या पार होते हैं वैसे ही मान्यता अपनी रहे। स्वार्थ और परमार्थ को परस्पर मूल्य दें। परमार्थ को स्वार्थ और स्वार्थ सिद्धि की बात कभी ध्यान में आये तो संकीर्ण नहीं उदात्त एवं व्यापक हो। मिल-जुलकर करने और मिल-बाँटकर खाने की आदत डाली जाय भगवान को विराट् विश्व के उस पक्ष के समकक्ष माना जाय जिसमें उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समुच्चय है और मात्र सत्प्रवृत्तियों के रूप में उसकी लीलाओं का पर्यवेक्षण किया जाय। समाज निष्ठा जगे।

[२] मनुष्यों के बीच सज्जनता, मदभावना एवं सहयोग की परम्परा चले। दान विपत्ति एवं पिछड़ेपन ग्रस्त लोगों को पैरों पर खड़े होने तक के लिये दिया जाय। इसके अतिरिक्त उसका सतत् प्रवाह सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन के लिये ही नियोजित हो। साधारणतया मुफ्त खाना और खिलाना अनैतिक समझा जाय। इसमें पारिवारिक या सामाजिक प्रीतिभोजों का जहाँ औचित्य वहाँ अपवाद रूप से छूट रहे। भिक्षा व्यवसाय बनने दिया जाय। दहेज, मृतक भोज, सदावर्त धर्मशाला ऐसे दाव जो मात्र प्रसन्न करने भर के लिये दिये जाते और उस उदारता के लाभ समर्थ लोग उठाते हैं—पशु पशुक्त माने और रोके जायें। साथ ही हर

पिछड़ापन दूर करने के लिये उदार, श्रमदान और धन-दान का अधिकाधिक प्रोत्साहित भी किया जाय।

[३] किसी मान्यता या प्रचलन को शाश्वत या सत्य न माना जाय उन्हें परिस्थितियों के कारण बना समझा जाय। उनमें जितना औचित्य न्याय और विवेक जुड़ा हो उतना ग्राह्य और जो अनुपयुक्त होते हुये भी परम्परा के नाम पर गले बँधा हो, उसे उतार फेंका जाय। समय-समय पर इस क्षेत्र का पर्यवेक्षण होते रहना चाहिये और जो असामयिक-अनुपयोगी हो उसे बदल देना चाहिये। इस दृष्टि से लिंग भेद, जाति भेद के नाम पर चलने वाली विषमता सर्वथा अग्राह्य समझी जाय। इसी प्रकार वैयक्तिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक क्षेत्र में संव्याप्त अनेकानेक चित्र-विचित्र परम्पराओं में से जो विवेक की कसौटी पर उपयोगी सिद्ध हो उन्हें अक्षुण्ण रखते हुए शेष को बिना बहुजन मान्यता की परवाह किये बहुजन हिताय की बात का महत्व देना चाहिए और आवश्यक परिवर्तन प्रस्तुत करने के लिए एकाकी बड़ चलना चाहिए।

[४] सहकारिता का प्रचलन हर क्षेत्र में किया जाय। अलग-अलग पड़ने की अपेक्षा सम्मिलित प्रयत्नों और संस्थानों को महत्व दिया जाय। संयुक्त परिवार से लेकर संयुक्त राष्ट्र और संयुक्त विश्व को लक्ष्य बनाकर चला जाय। विश्व परिवार का आदर्श कार्यान्वित करने का ठीक समय यही है। सभी प्रकार के विलगावों को निरस्त किया जाय। व्यक्ति की सुविधा की तुलना में समाज व्यवस्था को वरिष्ठता मिले। प्रशंसा ऐसे ही प्रयत्नों की हो जिन्हें सर्वोपयोगी कहा जाय। व्यक्तिगत समृद्धि, प्रगति एवं विशिष्टता को श्रेय न मिले। उसे कौतुक-कौतूहल मात्र समझा जाय।

[५] अवांछनीयताओं, मूढ़ मान्यताओं और कुरीतियों को छूत की बीमारी समझा जाय। वे जिस पर सवार होती हैं उसे तो मारती ही हैं, अन्यान्य लोगों को भी चपेट में लेती और वातावरण बिगाड़ती हैं। इसलिए उनका असहयोग विरोध करने की मुद्रा रखी जाय और जहाँ सम्भव हो उनके साथ समर्थ संघर्ष भी किया जाय। समाज के किसी अंग पर हुआ अनीति का हमला समूचे

समाज के साथ बरती गई दुष्टता माना जाय और उसे निरस्त करने के लिए जो मीठे-कड़वे उपाय हो सकते हों, उन्हें अपनाया जाय। अपने ऊपर बीतेगी, तब देखेंगे इसकी प्रतीक्षा करने की अपेक्षा कहीं भी हुए अनीति के आक्रमण को अपने ऊपर हुआ हमला माना जाय और प्रतिकार के लिए दूरदर्शितापूर्ण रणनीति अपनायी जाय।

व्यक्तिगत परिवार, और समाज क्षेत्र के उपरोक्त पाँच-पाँच सूत्रों को उन-उन क्षेत्रों के पंचशील माना जाय और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए जो भी अवसर मिले उन्हें हाथ से जाने न दिया जाय।

आवश्यक नहीं कि इस सभी का तत्काल एक साथ उपयोग करना आरम्भ कर दिया जाय। उनमें से जितने जब जिस प्रकार कार्यान्वित किये जाने सम्भव हों तब उन्हें काम में लाने का अवसर भी हाथ से न जाने दिया जाय। किन्तु इतना काम तो तत्काल आरम्भ कर दिया जाये कि इन्हें सिद्धान्त रूप से पूरी तरह स्वीकार लिया जाये। आदर्शवादी महानता से गौरवान्वित होने वाले जीवन इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर जीये जाते हैं। अनुकरणीय प्रयास करने के लिए जिन्होंने भी श्रेय पाया है उनमें त्रिविधि पंचशीलों में से किन्हीं सूत्रों को अपनाया और अन्यान्यों द्वारा अपनाये जाने का वातावरण बनाया है।

कल्प साधना के साधक एक मास की अवधि में यह निश्चित करें कि उन्हें भविष्य में आदर्शवादी जीवन जीना है। जो बीत गया सो गया पर जो शेष है उसका उपयोग इस प्रकार करना है जिससे आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण के दोनों ही प्रयोजन साथ-साथ सधते रहें। जीवन सम्पदा को यदि शरीर और आत्मा की साझेदारी माना जा सके तो दोनों पक्षों को उसके उपार्जन का समान लाभ मिलना चाहिए। अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व में एक आदर्शवादिता को—प्रज्ञा अभियान का ही एक सदस्य मान लिया जाय और जिस प्रकार अन्य कुटुम्बियों के लिए समय, धन लगाया जाता है उसी प्रकार इस महान प्रयोजन के लिए उतना ही करते रहा जाय तो इस व्रत निर्वाह से हर कल्प साधक निकट भविष्य में महामातव्यों की पंक्ति में खड़ा दृष्टिगोचर हो सकता है। यही सच्चे अर्थ में काया-कल्प है। ●



तीर्थ सेवन और कल्प साधना का सार्थक समन्वय

तीर्थ सेवन का पुण्य धर्मशास्त्रों और आप्त वचनों में असाधारण बताया गया है। उस प्रक्रिया का माहात्म्य इतना अधिक बताया गया है जिसकी तुलना में अन्य सब धर्मानुष्ठान हल्के पड़ते हैं। प्राचीनकाल में जीवन का पूर्वाह्न व्यतीत होते-होते लोग वानप्रस्थ धारण करते थे और संचित कुसंस्कारों का प्रायश्चित्त करने तथा धर्म प्रचार का पुण्य परमार्थ अर्जित करने की दृष्टि से लम्बी तीर्थ यात्रा पर निकलते थे। इस प्रकार का सोद्देश्य और कष्टसाध्य प्रयास तपश्चर्या में गिना जाता था। इसलिये उस प्रयास को पदयात्रा द्वारा करने का विधान है, ताकि अधिक जनसम्पर्क सध सकें और रास्ते में मिलने वालों की धर्म-धारणा उत्तेजित उत्साहित करने का अधिकाधिक अवसर मिल सके। ढर्रे का जीवनक्रम एक प्रकार के कठोर बन्धन के रूप में बंध जाता है, फलतः आदर्शों के सम्बन्ध तो मोचते रहना भर ही सम्भव होता है, करते-धरते कुछ बन नहीं पड़ता। इस व्यवधान को रास्ते से हटाने के लिए कुछ समय घर छोड़ने की आवश्यकता पड़ती है, ताकि अभ्यस्त ढर्रे का चक्रव्यूह तोड़ा नहीं तो शिथिल तो किया ही जा सके। तीर्थयात्रा का सारभूत स्वरूप और उद्देश्य यही है।

पापों के प्रायश्चित्त में तीर्थयात्रा का सुनिश्चित प्रावधान है। मात्र क्षमा माँगने से दुष्कर्म का संचित भण्डार हटता नहीं, 'स्थान-दर्शन' जैसी चिन्ह-पूजा भी इतने बड़े भार को हटाने में समर्थ नहीं हो सकती। खोदी हुई खाई पाटने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। इन कुकर्मजन्य कुसंस्कारों को निरस्त करने से ही आध्यात्मिक प्रगति का पथ-प्रशस्त होता है, इसलिए कुछ ऐसा माहस करना होता है जिससे कषाय-कल्मष धुले और प्रस्तुत श्रद्धा-सद्भाव नये सिरे से उभरें। यह समुच्चा प्रयोजन तीर्थ सेवन से पूरा होता है, इसलिए 'उसे तीन उद्देश्य पूरा करने वाला माना गया है। पाप कर्मों का

प्रायश्चित्त—मध्यवर्ती परिवर्तन का साधना-विधान—उज्ज्वल भविष्य का सुनिश्चित निर्धारण और उसे कार्यान्वित करने का व्रत-धारण, वह तीनों प्रयोजन जहाँ पूरे होते हों, समझना चाहिए कि वह समग्र तीर्थ यात्रा विधिवत् सम्पन्न हुई और शास्त्रों का पुण्यफल का अवसर बना। कल्प-साधना वस्तुतः तीर्थ सेवन की पुरातन परम्परा का समयानुरूप सुनियोजित संस्करण है।

रास्ते में धर्म-प्रचार की पदयात्रा तो जब बन पड़े तब करनी चाहिए, किन्तु मध्यवर्ती परिवर्तन का साधना-विधान कल्प-साधना के दिनों पूरा करने का सुयोग सहज सम्मुख है। उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण भी यही हो सकता है। उसका कार्यान्वयन वाद की बात है। यह प्रक्रिया जीवन भर चलती रह सकती है।

इन पुरातन तीर्थ परम्परा का तो इन दिनों लोप ही हो गया दृष्टिगोचर होता है। चिन्ह पूजा तो अभी भी होती है। स्थान भी पुराने हैं, उनके साथ जुड़ा हुआ हास बड़े जोशीले शब्दों में व्यक्त करने वाले बकवादी भी पाये जाते हैं। फिर भी वहाँ अब जो वातावरण है उसे देखकर समझदार व्यक्ति अपना वहाँ जाना निरर्थक ही मानता है। उस वातावरण में उथले मनोरंजन और आत्म-प्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ पल्ले नहीं पड़ता। श्रद्धा बढ़ने के स्थान पर अश्रद्धा ही पनपती है। इस निराशा के वातावरण में आशा की एक किरण के रूप में ही शान्ति कुंज गायत्री तीर्थ का नवनिर्माण हुआ है। यहाँ आकर कोई भी साधक मनःस्थिति का व्यक्ति तीर्थ सेवन तथा कल्प साधना के द्विविधि लाभ भली भाँति पा सकता है। विगत की भूलों का परिमार्जन-प्रायश्चित्त तथा भावी जीवन की रूप-रेखा का कल्प-प्रक्रिया में अनुपम निर्धारण किया गया है। कल्प साधना के निम्न आये साधकों से सत्र के प्रारम्भिक दिन ही अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों, चिन्ताओं, समस्याओं एवं आकांक्षाओं

को तथा श्रुतिवश हुए पापकर्मों का व्योरा लिखवा लिया जाता है। उन्हें मात्र गुरुदेव-माताजी ही ध्यानपूर्वक पढ़ते हैं तथा स्वयं निश्चय करते हैं कि किस साधक के लिये क्या निर्धारण किया जाय? कल्प आरम्भ के पूर्व का यह आध्यात्मिक वमन-विरचन हर किसी के समक्ष नहीं मात्र उन्हीं के समक्ष करना चाहिए जिनके संरक्षण में अपना भावकल्प कराने के लिये साधक स्वयं को सौंपते हैं।

किसके लिये क्या किया जाना है—इसमें परामर्श और अनुदान दोनों ही सम्मिलित हैं परामर्श में कुछ तो वाणी से कह दिया जाता है। शेष का उत्तर साधक के अन्तराल तक पहुँचाने के लिए मध्यमा, परा पश्यन्ती नाम से समझी जाने वाली त्रिविधि श्रवणातीत वाणियों का उपयोग होता रहता है। साधक एकान्त काल में यह अनुभव करते रहते हैं कि उन्हें परोक्ष रूप से सूत्र-संचालकों का नित नया सन्देश परामर्श मिल रहा है।

इस विचार विनिमय में एक पक्ष तो वर्तमान समस्याओं से सम्बन्धित है। दूसरा भूतकालीन ऊहापोह और तीसरा भविष्य निर्धारण सम्बन्धी निर्देश। आध्यात्मिक प्रगति में सबसे अधिक बाधक वे कुकृत्य होते हैं जो पके फोड़े पर चुभे काँटे की तरह अन्तःक्षेत्र में कुसंस्कार बन कर जमे-गड़े और कसकते रहते हैं। इन्हें यथावत् रहने दिया जाय तो वे अन्तःचेतना को सन्मार्ग की ओर बढ़ने में भारी अवरोध उत्पन्न करते रहेंगे। कारण कि कुकृत्यों का जो दण्ड विधान दुर्गति के रूप में भुगतना शेष है उसके लिए सन्मार्ग पर चलने से रोकना ही तरक व्यवस्था का निर्धारित क्रम है। इस अवरोध को हटाने के लिए प्रायश्चित्त ही एक मात्र उपाय उपचार है। खोदी गयी खाई को पाटना ही होगा। गवन का भुगतान करना ही होगा। क्षमा प्रार्थना नहीं प्रायश्चित्त साहसिकता अपनाते से ही काम चलता है। अन्यथा अध्यात्म प्रगति

में कोई न कोई विघ्न उत्पन्न होते ही रहेंगे। अस्तु पापों का प्रायश्चित्त तो मानसिक परिमार्जन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि शरीर के संचित मलों का निष्कासन। कृत्य प्रक्रिया के ये दोनों ही अविच्छिन्न अंग हैं। अस्तु जहाँ साधकों के शरीरागत विकारों का निष्कासन और विशिष्टताओं का अभिवर्धन अभीष्ट है वहाँ यह भी आवश्यक है कि मनःक्षेत्र में कुकृत्यों के कारण उत्पन्न कुसंस्कारों और अवरोधों का भी परिमार्जन किया जाय। इसके लिए किसे क्या करना होगा? इसका निर्णय कराने के लिए साधक अपनी भूलों का उल्लेख करते हैं जिसे पढ़कर उन्हें वापस कर दिया जाता है ताकि अन्य कोई उसे पढ़ न सके। इसके साथ ही यह भी बताया जाता है कि उन्हें प्रायश्चित्त की दृष्टि से और क्या कुछ करना चाहिए।

शारीरिक, मानसिक विकृतियों के अतिरिक्त व्यावहारिक जीवन की कठिनाइयाँ भी सत्र प्रवेश के दिन लिखकर देनी होती हैं, पर उतने भर से काम नहीं चलता। ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान के कुशल चिकित्सक हर साधक का शारीरिक, मानसिक पर्यवेक्षण करते हैं। उसकी विधिवत् रिपोर्ट देते हैं। इस विश्लेषण के आधार पर भी साधकों में से प्रत्येक को जो पृथक-पृथक करना होता है उन उपचारों को तभी अलग बता सिखा दिया जाता है। इन विशिष्ट साधना क्रमों में बदलती परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन निर्धारण भी होते रहते हैं। यह जाँच आखिर, मध्य और अंत में तीन बार होने से यह पता चल जाता है कि कल्प साधना किस के लिए किस क्षेत्र में, कितनी उपयोगी, अनुपयोगी सिद्ध हुई। इस प्रकार यह एक मास की तीर्थसेवन अवधि यदि ठीक प्रकार निभ सके तो भूतकाल की तुलना में भविष्य को अत्यधिक सफल समुन्नत बनाने वाली सिद्ध होती है। ●

ज्ञातव्य

साधना से सिद्धि (खण्ड १), आन्तरिक कायाकल्प का सुनिश्चित विधान, सन्धि बेला की विशिष्ट साधना ये तीन पुस्तकें इस वर्ष के उत्तरार्ध में युगान्तर चेतना द्वारा प्रकाशित हुई हैं। साधना सम्बन्धी गूढ़ विषय पर बोधगम्य एवं सरस शैली में विरचित ब्रह्मवर्चस् की यह पुस्तक माला इस अङ्क के सन्दर्भ में सबके लिए मंगल योग्य है।

अखण्ड-ज्योति

४७

नवम्बर १९५२

आयश्चित और उत्कर्ष के लिए ज्ञान-यज्ञ का पूज्यकर्म

परिशोधन के लिए तप, प्रगति-परिष्कार के लिए पुण्य का सुयोग बिठाना पड़ता है। तीर्थसेवन में भी यही करना पड़ता है। तीर्थयात्रा, पदयात्रा में जहाँ संयम बरतने, साधु जीवन अपनाने की आवश्यकता पड़ती है वहाँ सद्ज्ञान की धर्मधारणा जन-जन को हृदयंगम कराते हुए प्रयास क्रम में क्रमशः आगे बढ़ना होता है। इस उद्देश्य के लिए प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत दो-दो की साइकिल टोलियाँ प्रब्रज्या पर निकलने की उपयोगिता बतायी है और युग शिल्पियों को इस प्रक्रिया में जुटने के लिए कहा है। दीवारों पर आदर्श वाक्य लेखन जहाँ अवसर हो वहीं ठपली पर युग संगीतों का गायन, रात्रि को ज्ञान गोष्ठी—विचार-विनिमय क्रम चलता रह सकता है। साइकिलों को भारवाहन के रूप में पदयात्रा का एक सहायक वाहन उपकरण भर माना गया है। उसका उपयोग आवश्यक सामान लादने तथा सुविधानुसार सवारी गाँठने का उपक्रम चलाते रहा जा सकता है। अपने घर से हरिद्वार तक की तीर्थयात्रा इसी प्रकार की जा सकती है। एक रास्ते जाने दूसरे से आने में भिन्न-भिन्न मार्गों गाँवों के निवासियों से सम्पर्क बनता है। इन दिनों इसी आधार पर तीर्थयात्री टोलियाँ चलनी चाहिए। सत्रों में सम्मिलित होने वाले इसी प्रकार आया-जाया करें तो उनकी सत्र-साधना में तीर्थ-सेवन के तत्व और भी अच्छी तरह बढ़ी-चढ़ी मात्रा में मिल जाया करेंगे।

कई लोगों को अनेकानेक तीर्थों को देखने की इच्छा होती है और वे उसी निमित्त खर्चीली और कष्टसाध्य यात्रा करते भी हैं। स्पष्ट है कि इस भगदड़ में पर्यटन तक का आनन्द तो आता नहीं फिर तीर्थ जैसा कोई कारण आधार न रहने पर उसका पुण्य फल तो मिलता ही कहाँ है। प्रस्तुत लकीर पीटने वाली चिन्ह-पूजा में आँखों से ही मन्दिरों का आकार-प्रकार देख लेने

भर का लाभ है। इस ललक को पूरा करने की भी शान्ति-कुंज में व्यवस्था की गई है। इसमें भारत के सभी महत्त्वपूर्ण तीर्थ-देवालयों के बड़े साइज के असली फोटो चित्र स्थापित किये गये हैं। साथ ही उनके साथ मन्दिरों जैसी सज्जा भी बिठा दी गई है। भाव-श्रद्धा के साथ इनका दर्शन-नमन करने का वही पुण्यफल प्राप्त हो सकता है जो उन-उन स्थानों में जाकर उन इमारतों, प्रतिमाओं को देखने से मिलता। स्पष्ट है कि प्रतीकों की अपनी कोई शक्ति नहीं, वे भक्त की श्रद्धा के अनुरूप ही अपनी सामर्थ्य का परिचय देते हैं। मीरा के गिरधर गोपाल, रामकृष्ण परमहंस की काली, एकलव्य के मिट्टी से बने गुरु कितने सच्चे और कितने समर्थ थे—यह सर्वविदित है। यह समर्थता उन भक्तों ने अपनी श्रद्धा का प्रतिरोपण करने से प्रकट की थी। अथद्वालुओं के लिए तो अब भी पाषाण खण्ड मात्र थे और अब भी उन प्रतिमाओं का वास्तविक मूल्य नगण्य जितना है। इस श्रद्धा के बल पर ही गणेश जी धरती पर 'राम नाम' लिखकर उसकी परिक्रमा कर लेने पर समस्त ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करने वाले देवताओं की तुलना में वरिष्ठ सिद्ध हुए थे। तीर्थ स्थानों के दर्शनों पर निकलने वाले यात्रियों का प्रयोजन यदि वस्तुतः तीर्थ दर्शन में विश्वास हो तो उसकी पूर्ति गायत्री तीर्थ में प्रतिष्ठित "तीर्थ मंडल कक्ष" का भावनापूर्वक दर्शन-नमन करते रहने से भी पूरी हो सकती है।

हिमालय को देवात्मा माना गया है। जड़ होते हुए भी अपनी आध्यात्मिक विशेषताओं के कारण उसे प्रत्यक्ष देवता माना गया है। इसी प्रकार गंगा की पवित्रता प्रख्यात है। उसे तरण-तारिणी कहा जाता है। हिमालय की छाया और गंगा की गोद में साधना की उच्चस्तरीय सफलता मिलने की फलश्रुति कही सुनी जाती है। इन दोनों का भी गायत्री तीर्थ में एक समन्वित देवालय

बनाया गया है। यह दर्शनीय है। आदि उद्गम पर भागीरथ को और अन्त समापन पर परशुराम को प्रहरी माना जाता है। उनके प्रतीक भी इस देवात्मा हिमालय कक्ष में प्रतिष्ठित हैं। इन्हें देख कर समूचे हिमालय में परिभ्रमण की—उसके दिव्य दर्शन की—भावना को एक सीमा तक पूरा किया जा सकता है। प्रतीकों की दुनिया में भावुक जनों की श्रद्धा को ही प्राण माना गया है। उसे शान्ति कुंज में अवस्थित प्रतीकों के साथ यदि जोड़ा जा सके तो समग्र हिमालय, सम्पूर्ण गंगा उनके अंचल में अवस्थित तीर्थों का दर्शन एक ही स्थान पर गणेशजी की तरह घर बैठे किया जा सकता है। गायत्री के गर्भ में सभी देवताओं का, सभी मन्त्रों का निवास है। प्रयत्न यह किया गया है कि गायत्री तीर्थ, शान्ति कुंज में उपरोक्त सभी महान प्रतीकों के दिव्य-दर्शन एक साथ उपलब्ध हो सकें। इस दर्शन का कितना पुण्यफल मिलेगा? इसका उत्तर एक शब्द में दिया जा सकता है कि साधक की जितनी गहरी—उथली श्रद्धा होगी, उतना। इस दृष्टि से सम्पूर्ण तीर्थयात्रा का लाभ मिल सकने वाला सुयोग भी कल्प साधकों को सहज उपलब्ध होता है। इस प्रकार दर्शन-ज्ञांकी से सम्बन्धित तीर्थ प्रयोजन की यहाँ बिना किसी खर्च या कष्ट के भली प्रकार पूर्ति हो जाती है।

प्रायश्चित्त प्रकरण में जहाँ तक तृतीया का सम्बन्ध है वह चान्द्रायण व्रत के समान ही आहार कल्प के माध्यम से भली प्रकार पूर्ति हो जाती है। आधे पेट रहने का जो सिद्धान्त चान्द्रायण में है उसी की पूर्ति दूसरे तरीके से कल्प प्रक्रिया में भी हो जाती है। अनुष्ठान, जप, तप का जो विधान प्रायश्चित्तों के अवसर पर करना होता है, उससे कम नहीं कुछ अधिक ही इस साधना में समाविष्ट किया गया है। जप—ध्यान—उपवास के अतिरिक्त अनुष्ठानों में दशांश या शतांश आहुतियों का भी नियम है। कल्पकाल में हुए अनुष्ठान के अनुपात से शतांश नहीं दशांश आहुतियाँ भी इस एक महीने के नित्य हवन-क्रम के साथ सम्पन्न हो जाती हैं।

आत्मिक प्रगति के प्रमुख अवरोध संचित दुष्कर्मों का निष्कासन प्रायश्चित्त प्रक्रिया से ही सम्भव है। उसका

पूर्वार्ध दुर्घटनाओं का किसी अनुभवी अध्यात्म चिकित्सक के सम्मुख वमन-प्रकटीकरण एवं आत्म प्रताड़ना के रूप में व्रत-अनुष्ठान की कष्ट सहन तप-साधना से पूर्ण हो जाता है। कल्प-साधना के दिनों ही यह दोनों प्रकरण पूरे हो चुके होते हैं। उत्तरार्ध में उस क्षति को पूरा करना होता है जो अनीति आचरण के द्वारा अवांछनीय परम्पराओं के प्रचलन के रूप में फैलायी गई होती है। पाप-कर्मों में कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हें शोषण-अत्याचार तो नहीं कह सकते, पर उनके कारण उपयोगी मर्यादाओं का उल्लंघन एवं अवांछनीयता का छूत रोगों की तरह विस्तार होता है। एक से दूसरे तक दुष्प्रभाव पहुँचता है और प्रकारान्तर से समूचे समाज को दुःखद दुष्प्रवृत्तियों के गर्त में धकेलता है। उदाहरण के लिए व्यभिचार और रिश्वत दो ऐसे पाप हैं, जिनका सहयोगपूर्वक ही आदान-प्रदान होता है। अत्याचार होना ही पाप की परिभाषा होती तो इन्हें पाप न गिना जाता, पर चूँकि उनसे भ्रष्टाचार की छूत फैलती है और मर्यादाओं का व्यतिक्रम होता है, अतएव वे पाप माने गये हैं। समर्थ होते भी दान, जुआ, दहेज, लॉटरी, उत्तराधिकार आदि के रूप में लिया हुआ धन भी बिना परिश्रम के होने के कारण हेय माना गया है। व्यक्तिगत आत्महत्या के रूप में आलस्य, प्रमाद, नशा दुर्व्यसन, अपव्यय, आदि को भी पातक माना गया है। चोरी, हत्या, ठगी आदि तो आक्रामक उत्पीड़क होने के कारण प्रत्यक्ष पाप हैं ही। इन सबसे व्यक्ति विशेष को भी हानि पहुँचती है, पर सबसे बड़ा अनाचार समूचे समाज में दुर्बुद्धि का, दुष्प्रवृत्तियों का विस्तार होना है। पाप-पुण्य का तत्त्व-दर्शन यही है कि उससे मानवी श्रेष्ठता या निकृष्टता पर क्या प्रभाव पड़ा। यों आक्रामक अनीति भी कम निन्दनीय नहीं है, पर उससे भी बड़ी बात समग्र शालीनता है। उस पर पड़ने वाले प्रभाव को ही प्रमुख माना जाता है। हत्या तो कईवार न्यायाधीश भी अपराधी को मृत्यु-दण्ड देकर करा देते हैं।

कल्प साधना के साधक अपने पापकर्मों का प्रकटीकरण करते हैं। उनमें से कुछ की घटनाएँ विशिष्ट होने के कारण उन्हें विशेष परामर्श दिये जाते हैं। ऐसे अपवादों

को छोड़कर प्रायः सभी को एक ही सुझाव दिया जाता है कि वे सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन के निमित्त जितना अधिक सम्भव हो उतना समयदान, साधनदान प्रस्तुत करें और प्रायश्चित्त का उत्तरार्ध प्रक्रिया भी पूर्ण करें।

इन दिनों आपत्तिकाल जैसी स्थिति है। सर्वत्र आस्था संकट छाया हुआ है। दुर्बुद्धि ने भ्रष्टता और दुष्टता को चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। बौद्धिक, वैज्ञानिक, आर्थिक प्रगति कम नहीं हुई है, फिर भी दुर्बुद्धि की बहुलता ने हर क्षेत्र को कठिनाईयों, समस्याओं, विपत्तियों और विभीषिकाओं से भर दिया है। ऐसी दशा में दुर्घटनाग्रस्तों को अस्पताल भिजवाने की तरह इन दिनों लोकमानस के परिष्कार की एक ही बात सोचनी चाहिए। उस एक में ही समस्त समस्याओं का समाधान सन्निहित है। प्रज्ञा अभियान इसी प्रयास का नाम है। विचार-क्रान्ति, ज्ञानयज्ञ, आदि नाम इसी के हैं। प्रायश्चित्त की दृष्टि से भी इस सामयिक आवश्यकता की पूर्ति अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इतना ही नहीं जन-कल्याण और उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण भी इसी के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है, इसलिए उसे उच्चस्तरीय पुण्य-परमार्थ भी कह सकते हैं।

प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत यों अनेकों कार्यक्रम आते हैं जिनसे व्यक्ति, परिवार और समाज के नव-निर्माण में सहायता मिलती है। उनमें से कितने ही सुधारात्मक भी हैं, जिन्हें नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रांति के नाम से जाना जाता है। इन सब का यदि एक केन्द्र बिन्दु ढूँढ़ना हो तो उसे स्वाध्याय मंडलों का संस्थापन और संचालन कह सकते हैं। यह हर स्थिति के व्यक्ति के लिए नितान्त सरल है। साथ ही उस बीजारोपण का अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित होना भी हथेली पर सरसों जमने की तरह हाथों-हाथ देखा जा सकता है। प्रज्ञा साहित्य जिनने पढ़ा है वे जानते हैं कि उनकी वाजारू किताबों से कोई तुलना नहीं। इसे तत्व-दर्शन का, नीति शास्त्र का, सामाजिक आदर्शवादिता का सार-संक्षेप एवं मधु-संचय कह सकते हैं। जिसने इसे एकबार पढ़ा अनुप्राणित एवं चमत्कृत होकर रहा है। यह आलोक

जहाँ भी जला है प्रकाश फैलाये बिना नहीं रहें। यह लपटें जहाँ भी उठी हैं वहीं उष्मा और आभा का तत्काल अनुभव हुआ है। इसके पठन-पाठन की सुनियोजित प्रक्रिया को अग्रगामी एवं व्यापक बनाने की दृष्टि से ही इन दिनों सर्वत्र स्वाध्याय मंडलों की स्थापना की जा रही है। इस युगान्तरीय चेतना में अपना समय एवं धन जितना भी लग सके प्रायश्चित्त एवं पुण्य अर्जन की उभयपक्षीय आवश्यकताओं की दृष्टि से जी खोलकर लगाया जाना चाहिए। ऐसे ही दान बीजारोपण कहे जाते हैं। मक्का के एक दाने से एक पौधा उत्पन्न होता है। एक पौधे पर पाँच भुट्टे आते हैं। एक भुट्टे में प्रायः पाँच सौ दाने होते हैं। इस प्रकार एक बीज की परिणति ढाई हजार बीजों के रूप में तीन महीने के भीतर ही हो जाती है। लगभग इसी स्तर का प्रयास स्वाध्याय मंडलों की स्थापना को भी कहा जा सकता है। इन छोटे मंडलों में से प्रत्येक को तीस स्वाध्यायशाली का एक सर्किल बनाना होता है। नियमित रूप से बिना मूल्य प्राणवान साहित्य मिलते रहने से इस मंडली के जीवन-क्रम स्तर में जो उत्साहवर्धक परिवर्तन होता है उसका आभास पाने भर से हर किसी को उनकी उपयोगिता एवं गरिमा का विश्वास होता चला जाता है।

स्वाध्याय मण्डलों की रूपरेखा अत्यन्त सरल है। एक भावनाशील व्यक्ति आगे बढ़े। अपने जैसी प्रकृति के अन्य चार भी ढूँढ़ें। यह पाँच नैष्ठिक सदस्यों का एक स्वाध्याय मण्डल बना। इन पाँचों को अपने-अपने सम्पर्क क्षेत्र के पाँच-पाँच व्यक्ति ऐसे तलाश करने होते हैं जिनका रुझान धर्म एवं विवेक की ओर हो। वे अपने से सम्बन्धित लोगों को नियमित स्वाध्याय के लिए सहमत करें साथ ही ऐसा प्रबन्ध करें कि पाँचों सदस्य अपने सम्बन्धित पाँच-पाँच स्वाध्यायशाली तक प्रज्ञा साहित्य नियमित रूप में देने और वापस लेने का क्रम चलाते रहें। संक्षेप में यही है वह स्वाध्याय मण्डल योजना जिसे प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत सर्वोपरि प्रमुखता दी जा रही है। कल्प साधक अपने पाप नाश एवं पुण्य संवर्धन की दृष्टि से इस प्रयास में पूरी तत्परता के साथ संलग्न हों।

— ● —

सबल, सुलभ किन्तु सम्भावनाओं से भरी-पूरी एक महान स्थापना

धनबल, बुद्धिबल, बाहुबल, शस्त्रबल, पदबल आदि की महिमा लोग भली-भाँति जानते हैं। प्रायः इन्हीं बलों पर सुविधा-साधनों को एकत्रित करना; दूसरों को वशवर्ती बनाना, अपने वर्चस्व की छाप डालना सम्भव होता है। यह बहिरंग जीवन को ठाठ-वाट का बनाने वाली प्रक्रिया हुई। अब दूसरा क्षेत्र आरम्भ होता है—मनोबल और आत्मबल की महत्ता है। इन दोनों को सांसारिक साधनों की तुलना में अधिक भारी भरकम, अधिक स्थायी एवं अधिक गम्भीर परिणाम उत्पन्न करने वाला समझा जा सकता है। कारण यह कि वे चेतना क्षेत्र से सम्बन्धित है। धन बल आदि भौतिक क्षेत्र के होने के कारण मात्र बहिरंग की ही महिमा बढ़ाते हैं। उनसे दूसरों की आँख में चकाचौंध उत्पन्न किया जा सकता है। वासना तृष्णा की शरीरगत ललकें भी एक सीमा तक गुदगुदाई जा सकती हैं। किन्तु ऐसा कुछ नहीं हो सकता जिससे व्यक्तित्व उभरे, आत्म-सन्तोष मिले, और गौरव गरिमा का आनन्द वरसे। यह उद्देश्य तो मनोबल, आत्मबल बढ़ाने से ही पूरा होता है।

सत्साहस आन्तरिक है। क्रोध, आक्रमण, ठगी, चोरी जैसे दुस्साहस तो दुष्ट दुरात्मा भी करते रहते हैं। पर उद्देश्यों के लिए पराक्रम कर सकना मात्र संकल्पवान्, सत्साहस का ही काम है। यह अन्तःक्षेत्र में उभरता है। बाहरी उत्तेजनाएँ तो क्षणिक आवेश भर उत्पन्न करती हैं और देखते-देखते पानी के बबूले की तरह बँठ जाती हैं। आत्मबल और भी ऊँची उपलब्धि है। भीतर के कुसंस्कारों से निवटना उसी का काम है। उच्चस्तरीय लक्ष्य की दिशा में एकाकी चल पड़ना—उपहास, असहयोग, अभाव, अवरोधों का पग-पग पर सामना करते हुए भी विश्वासपूर्वक अनवरत गति अपनाये रहना आत्मबल के सहारे ही सम्भव हो सकता है।

जिसमें मनोबल न हो वह भौतिक क्षेत्र में प्रगतिशील न बन सकेगा। जिसमें आत्मबल न हो उसके लिए व्यक्तित्व की महानता और उस आधार पर मिल सकने वाली विभूति सम्पदा का मुयोग मिलेगा ही नहीं। अदूरदर्शी बाल बुद्धि भौतिक वैभवों को ही सब कुछ मानती है। उन्हीं की ललक बुझाने के लिए धनबल—बुद्धिबल आदि संचय करती है। किन्तु दूरगामी परिणामों का अनुमान लगाना और विश्वास करना मात्र प्रज्ञा का ही काम है। आत्मिक क्षेत्र की यही महान उपलब्धि है। इसी के सहारे आत्म-सन्तोष, लोक-सम्मान जन सहयोग एवं जीवन को कृत-कृत्य बनाने वाले दैवी अनुग्रह उपलब्ध होते हैं। मानवी विशेषताओं में मनोबल, आत्मबल ही दो वरदान माने जाते हैं। जिसे वे न मिल सके सम्पत्तिवान् होते हुए भी निरन्तर खिन्न, उद्विग्न ही रहेंगे। कुढ़ते-कुढ़ते ही उनका समय गुजरेगा।

आत्मिक क्षेत्र की दो प्रमुख सम्पदाएँ मनोबल और आत्मबल अर्जित करने के लिए श्री गणेश किस प्रकार किया जाय? इसका एक ही उत्तर है—सद्ज्ञान का अवलम्बन। आद्यशक्ति—महाप्रज्ञा इसी को कहते हैं। उदर पूर्ति को आवश्यक जानकारीयाँ सिखाने वाली स्कूली शिक्षा एवं व्यवहार कुशलता एक बात है और जीवन की समस्याओं को दूरदर्शिता के आधार पर हल करना एवं सर्वतोमुखी प्रगति पथ पर बढ़ चलना इस दूसरी विभूति को उपलब्ध करने के लिए ब्रह्म विद्या के तत्त्व दर्शन का न केवल अध्ययन अध्यवसाय करना पड़ता है वरन् साधना प्रयोगों द्वारा उसे हृदयंगम भी करना पड़ता है। इससे कम में उन विभूतियों को हस्तगत करने का और कोई मार्ग नहीं। प्रज्ञा को प्रखर परिष्कृत करने के लिए स्वाध्याय के योग्य सत्साहित्य पढ़ना या सुनना पड़ता है। गनन, चिन्तन, ध्यान, धारणा आदि का स्वरूप

एव प्रयोग भी तो इसके बिना बन नहीं पड़ता। इसलिए गुरु ज्ञान द्वारा उच्चस्तर की प्रेरणाएँ उपलब्ध करनी होती हैं। इसके लिए समर्थ साहित्य का स्वाध्याय इतना अधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है कि उसे शास्त्रकारों ने भजन पूजन से भी अधिक आवश्यक माना है और सर्वोपरि प्रमुखता देने योग्य ठहराया है। ब्रह्मदान, ज्ञानदान से बढ़कर और कोई पुण्य परमार्थ इस संसार में है नहीं इसलिए पुरातन काल के देव मानव साधु ब्राह्मण इस प्रयोजन में अहिंनिश निरत रहते थे।

कल्प साधकों के मन में कभी पुण्य परमार्थ की उमंग उठे तो उन्हें सस्ती वाहवाही के प्रदर्शनात्मक खिलौने से मन नहीं बहलाना चाहिए वरन् दूरगामी हित साधना में समर्थ ज्ञान विस्तार को मूर्धन्य मानकर उन उपेक्षित क्षेत्र पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। किसी की जीवन दिशा को सामान्य से उछालकर असामान्य बना देना कितनी महान सेवा साधना है। इसकी वाल्मीकि, अंगुलिमाल, अजामिल, विल्व मंगल, ध्रुव, प्रह्लाद आदि से पूछनी चाहिए। ऐसी साक्षी पार्वती, अरुन्धती, मैत्रेयी, सावित्री, संचमित्रा, गीरा से लेकर अम्बपाली जैसी महिलाओं में भी मिल सकती है। इन सबको नारद, बुद्ध आदि के द्वारा मिले प्रेरणात्मक सह-ज्ञान के प्रति कृतज्ञ पाया जायगा। यह प्रेरणाएँ जिस आधार पर मिलती हैं उसे सत्संग कहते हैं। आज की मनःस्थिति एवं परिस्थिति के अनुसार सत्संग उपलब्ध कराने के लिए अनगढ़ दिग्भ्रान्त—वकवासियों के सम्पर्क में आना सना नहीं खराब करना चाहिए। वरन् स्वाध्याय भी और मुड़ना चाहिए। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रज्ञा साहित्य को वरीयता दी जा सकती है। इसे मणि मुक्तकों की गहरी डुबकी लगाकर संचित किया गया है। इसे अमृतोपम मधु संचय कहा जाय तो तनिक भी अत्युक्ति न होगी। इस अवलम्बन से बढ़कर सस्ता, सुलभ और सर्वांगपूर्ण सत्संग कदाचित् ही कहीं अन्यत्र उपलब्ध हो सके।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कल्प साधना के साधकों को प्रायश्चित्त रूप से शक्ति पूर्ति करने और भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए नितान्त आवश्यक पुण्य पर-

मार्थ का संचय करने की अन्तःप्रेरणा उमंगे तो उसे दिशा विहीन होकर भटकाव में नहीं पड़ने देना चाहिए और सद्ज्ञान सम्बर्धन को प्रमुखता देनी चाहिए।

पिछले पृष्ठों पर स्वाध्याय मण्डल की स्थापना की कल्प वृक्ष आरोपण से तुलना की गई थी। यह सही है। प्रज्ञा साहित्य का नियमित स्वाध्याय करने का जिन्हें चस्का लगेगा, अवसर मिलेगा, वे कुछ ही दिन में चिन्तन और व्यवहार की दृष्टि से तेजी से बदलते हुए शालीनता की दिशा में चलते हुए दृष्टिगोचर होंगे। मनोविनोद के लिए पढ़े गये उथले साहित्य की बात दूसरी है। उसकी तुलना जाज्वल्यमान प्राण प्रेरणा से भरे पूरे प्रज्ञा साहित्य के साथ नहीं हो सकती।

इन दिनों उत्कृष्टता की दिशा में किसी का ध्यान नहीं, हर किसी पर तृष्णा, अहन्ता की आपा-धापी प्रेत-पिशाच की तरह चढ़ी है। ऐसी दशा में दूरदर्शी विवेक-शीलता की पक्षधर विचारधारा लोगों के गले कठिनाई से ही उतारी जा सकती है। मिठाई का लोभ देकर काम नहीं देती। कुनैन की गोली पर शक्कर चढ़ाकर गले उतारा जाता है। चाय वालों ने आरम्भ में मुफ्त या एक पैसा कप बेचकर प्रचार किया और चस्का लगाया था। चाय का इन दिनों लोकप्रिय होना सहज सम्भव नहीं हुआ है। इसके लिए प्रचारकों को ऐड़ी चोटी का पसीना एक करना पड़ा है। आज की परिस्थितियों में सद्ज्ञान प्रेरणा को जन-जन को हृदयंगम कराने के लिए संगठित प्रयास ही काम दे सकते हैं। अपने तक सीमित स्वाध्याय साधना करने से व्यक्ति विशेष को तो लाभ मिल सकता है। पर यदि उस आलोक को व्यापक बनाना हो तो संगठित रूप से उस प्रक्रिया को अग्रगामी बनाना होगा। आरम्भ में संगठन छोटा रहे हर्ज नहीं। पर यदि वह उद्देश्यपूर्ण और सज्जनों का समुदाय हो तो उस बीजारोपण के एक दिन विशाल वृक्ष बनने की सम्भावना सुनिश्चित ही रहेगी।

स्वाध्याय मण्डल संस्थापन का कार्य एक व्यक्ति एकाकी प्रयासों से भी कर सकता है। एक स्वयं चार अपने जैसे स्वभाव और रुझान के साथी ढूँढ़ लेने भर से काम चल जायेगा। यह पाँचों मण्डली के प्रारम्भिक

नैष्ठिक सदस्य कहलाएंगे। स्वयं नियमित रूप से प्रज्ञा
हिय पढ़ने के लिए एक घण्टा समय निकालेंगे साथ
यह भी प्रयत्न करेंगे कि अपने-अपने सम्पर्क क्षेत्र में
भी प्रभाव हो वहाँ युग-साहित्य का चस्का लगाने का
प्रयास किया जाय। हर नैष्ठिक सदस्य ऐसे पाँच
नैष्ठिक डूँड निकालें जो स्वाध्याय के प्रति उत्साह बरतें।
तीनों तक हर दिन बिना भूल युग साहित्य पढ़वाने
लेने का सिलसिला नैष्ठिक सदस्यों को ही चलाना
पड़ेगा। वे अनायास मिलते रहते हों तो उस समय भी
देने वापस लेने का क्रम चल सकता है। अन्यथा घर
से और वापस लेने के लिए समय निकालने की बात
सोचना चाहिए। नैष्ठिक सदस्यों की दुहरी ब्रत-
लता है कि वे स्वयं नित्य कर्म की तरह स्वाध्याय को
व्यवस्था में सम्मिलित रखें साथ ही किन्हीं पाँच अन्यो
भी पढ़ाने का कार्य उतना ही पुण्यफल मानें जितना
पाँच ब्राह्मणों को भोजन कराने का होता है।
पाँच नैष्ठिक सदस्य हर एक के पाँच-पाँच साथी
आवश्यक इस प्रकार— $25 + 5 = 30$ की स्वाध्याय
श्री बन जाती है। स्वाध्याय मण्डल के यह पाँच
हर और पाँच-पाँच उनके बच्चे यह तीस का एक
विचार परिवार बन जाता है। वे लोग पढ़ने का
तो जारी रख ही सकते हैं। साथ ही सप्ताह में एक
इकट्ठे होकर सत्संग की प्रक्रिया भी चला लिया।
इस सप्ताह जो पढ़ा पढ़ाया गया हो उसे जीवनक्रम
सम्मिलित करने के उपायों के सम्बन्ध में इस सत्संग में
हर विनिमय होता रहे तो पठन के बीजारोपण को
अधिक खाद पानी मिलता रहेगा और देखते-देखते
सहलहाने लगेगा। इन तीसों व्यक्तियों के जन्म
मोत्सव मनाने का भी शुभारम्भ करना चाहिए। यह
मोत्सव सस्ते सरल और प्रभावी आयोजन यदि तीस
घरों में चल पड़े तो उनमें उपस्थित लोग युगान्तरीय
ता से अवगत प्रभावित अनुप्राणित होंगे और एक से
दूसरे तक इस आलोक वितरण का क्रम चल पड़ेगा
जो यह प्रयास नगण्य जैसा लगता है पर यदि उसे
तुल्य रूप से चलता रक्खा जा सके तो उसके जादुई परि-
णाम कुछ ही दिनों में दृष्टिगोचर होने लगेंगे और एक

समर्थ देव परिवार अपनी प्रखरता का परिचय देने
लगेगा।

जहाँ ऐसे स्वाध्याय मण्डल बनेंगे वहाँ उनके एक
दिवसीय उद्घाटन समारोह भी होंगे। इनके लिए शान्ति
कुंज से दो प्रतिनिधि भेजने की व्यवस्था बनी है। वे
आयोजन की गरिमा से अधिकाधिक लोगों को अवगत
कराने का प्रयत्न करेंगे। सायंकाल स्वाध्याय की महत्ता
वताने वाला स्लाइड प्रोजेक्टर प्रदर्शन प्रातः उद्घाटन
समारोह। जिसमें पाँचों नैष्ठिक सदस्य और उनके पाँच-
पाँच सहयोगी कुल तीस व्यक्ति तो उस धर्मकृत्य में प्रमुख
रूप से सम्मिलित होंगे ही। अन्य लोगों को भी आम-
न्त्रित करके उस विधा से परिचित कराने की व्यवस्था
रहेगी। पाँच सदस्य और पच्चीस सहयोगी क्रमबद्ध रूप
से विठाये जायेंगे। पटकर्म, स्वस्तिवाचन, कलश पूजन,
सामूहिक गायत्री पाठ, संकल्प, व्रत धारण, अभिसिचन
आदि क्रिया-कृत्यों के अतिरिक्त उस अवसर पर संगीत
एवं प्रवचन की व्यवस्था भी रहेगी। इस प्रकार रात्रि के
चित्र प्रदर्शन और प्रातः के धर्मकृत्य एवं प्रवचन के साथ
इस स्थापना का विधिवत् उद्घाटन सम्पन्न हो जायगा।

प्रश्न एक ही रह जाता है कि तीस व्यक्तियों को
नियमित स्वाध्याय सामग्री जुटाने के लिए खर्च का प्रबन्ध
कैसे हो। तीस व्यक्तियों के लिए न्यूनतम एक रुपया
प्रत्येक के हिसाब से तीस रुपये की पाठ्य सामग्री तो
खरीदनी ही पड़ेगी। इसका सरल उपाय एक ही है कि
पाँचों नैष्ठिक सदस्य अपने यहाँ ज्ञानघट स्थापित करें,
और उनमें बीस-बीस पैसे प्रतिदिन डालें। अब से पैंतीस
वर्ष पूर्व ज्ञानघट का अनुदान दस पैसे था। अब महंगाई
कई गुनी हो जाने से वह बीस पैसे कर दी गई
है। यह लगभग तिहाई, चौथाई चाय के प्याले जितनी
होती है। इतनी उदारता तो पाँच नैष्ठिक सदस्य अप-
नायेंगे ही। इसमें भी कृपणता बरतने और थोड़ा-सा
समय निकालने में आना-कानी करने पर तो जो स्वाध्याय
मण्डलों की स्थापना और उसकी महान परिणति के रूप
में संजोई गई आशा अपूर्ण ही रह जायगी। विश्वास
किया गया है कि जहाँ आदर्शवादी उत्साह उमड़ेगा वहाँ
समयदान और अंशदान का यह छोटा सा अनुदान भी
प्रस्तुत किया जाने लगेगा।

छोटी बीजाशेयण की सुविस्तृत परिणति

सदज्ञान की, स्वाध्याय की, प्रज्ञा प्रेरणा की गरिमा समझने वाले पाँच एवं पच्चीस अन्गों के मिलने से बना हुआ तीस का स्वाध्याय मण्डल अपना कार्यारम्भ तो प्रज्ञा साहित्य पढ़ने-पढ़ाने से करेगा, पर उस छोटी परिधि तक सीमित नहीं रहेगा। ज्ञान यदि जीवन्त है तो वह कर्म के रूप में विकसित होगा ही। सड़ता तो घुना बीज है। जिसमें जीवन मौजूद है उसके अंकुरित पल्लवित होने में किसी व्यवधान की आशंका नहीं है।

विश्वास किया जाना चाहिए कि स्वाध्याय मंडल के सदस्य अपने चिन्तन और चरित्र में—स्वभाव और दृष्टिकोण में ऐसा उत्साहवर्धक परिवर्तन करेंगे जिससे प्रज्ञा साहित्य की प्रखरता सिद्ध हो सके। यह पठन ऐसा है जो अन्तराल के मर्मस्थल तक पहुँचने के उपरान्त—कर्म क्षेत्र में उतरने की तड़पन उत्पन्न करता है। युग सन्धि जैसे ऐतिहासिक अवसर पर तो समय की चुनौती स्वीकार करने में जागृत आत्माओं का पौरुष उन्हें दबा-दबोच कर अग्रिम पंक्ति में खड़ा होने के लिए विवश करेगा। ऐसी उमंगें जिस भी अन्तःकरण में उठती हैं उसे सत्प्रयोजनों के लिए उदार अनुदान प्रस्तुत करने के लिए विवश करती हैं। आदर्शों से अनुप्राणित व्यक्ति मूक दर्शक बन कर नहीं बैठ सकते उन्हें पठन-पाठन से एक कदम आगे बढ़ाकर समयदान और अशदान की श्रद्धांजलि से युग देवता की झोली भरनी पड़ता है। आपत्तिकासीन आवश्यकता हर विचारशील को वेचैन करती है और विपत्ति से जूझने में पड़ने वाले घाटे को सहन करने का शौर्य साहस उभारता है। स्वाध्याय मंडल के छोटे-बड़े सदस्य यदि सचमुच महाप्रज्ञा के प्रति निष्ठावान बन सकें तो समझना चाहिए कि उनमें से प्रत्येक का कर्तृत्व, हजारी-वाग जिले को यशस्वी बनाने वाले अनगढ़ हजारी किसान की भूमिका निभाने में पीछे न रहने देगा। पिसनहारी यदि पुण्य परमार्थ के क्षेत्र में यशस्वी हो सकती है तो

कोई कारण नहीं कि प्रज्ञा पाठक मात्र वाचन व्यसनी ही गले बाँधे बैठे रहें। युग निमन्त्रण पर कान न धरे

प्रज्ञा पाठकों की उमंग एक से बहुत बनने के में उभरेगी। हर जीवन्त प्राणी से जब भी उभरेगी वंश वृद्धि में रस लेगा—उसका ताना-बाना कुने संयोग जुटायेंगा और अन्ततः उस मार्ग पर कदम के उपरान्त जो उत्तरदायित्व अपने कंधों पर उन्हें खुशी-खुशी निभायेगा। जब वनस्पतियों से जीव-जन्तुओं की छोटी प्रजातियों तक में यह प्रेरणा अपना काम निर्वाध रूप से कर रही है तो कारण नहीं कि प्रज्ञा प्रेरित आत्मायें अपने साथी सह बढ़ाने का प्रयत्न न करें। वंश में प्रजनन ही नहीं शृंखला की पकड़ का विस्तार होना भी एक तथ्य गोत्र पूर्वजों से ही नहीं गुरु परम्परा से भी प्रज्ञा साहित्य से जिन्हें नव-चेतना मिली है वे कार्यक्षेत्र बढ़ाये बिना विस्तार किये बिना रह सकते। जब चोर लवार अपने साथी बढ़ाते चलते कोई कारण नहीं कि स्वाध्याय मंडल के सदस्य परिजनों को बैसा करने का उत्साह न उमंगें।

एक से पाँच का प्रजनन-विस्तार-निरन्तर आगे रहेगा। यह महाकाल की प्रस्तुत प्रेरणा प्रवाह को हुये एक प्रकार से निश्चित ही समझा जा सक एक संस्थापक, जब पाँच साथी और पच्चीस साथी ढूँढ़कर तीस की मण्डली देखते-देखते बना सकते कोई कारण नहीं वह वंश वृद्धि आगे न चले। इतने समाप्त हो जाय।

प्रज्ञा अभियान के समर्थक, प्रशंसक तो आसानी से सभी हैं। जो उसके प्रतिपादनों की व्यवहार में करते हैं वे भी सिद्धान्ततः विरोध करने का कर सकते। बात एक कदम आगे और बढ़ने की परिवार में प्रवेश करने और सहयोगी के रूप में

मिलाकर चलने, उत्तरदायित्वों से कंधों लगाने का
 इस दिखाना पड़ता है। मिशन के सदस्य या परिजन
 ही लोग माने जाते हैं। उनके लिए अपने-अपने क्षेत्रों
 मृजनात्मक मत्प्रवृत्तियों के सम्बर्धन में क्रियात्मक योग-
 पड़ता है। इसके दो प्रकार हैं (१) समयदान (२)
 दान। यह दोनों ही प्रस्तुत करने पड़ते हैं।
 आज से ३५ वर्ष पूर्व अभियान का आरम्भ हुआ
 तब सदस्यों का न्यूनतम अनुदान दस पैसा नित्य
 समय एक घण्टा था। अब पैंतीस वर्ष में महंगाई
 से कहाँ बढ़ गयी। साथ ही युग सन्धि में गति-
 यों तीव्र से तीव्रतर हो गयीं। ऐसी दशा में उप-
 दोनों अनुदानों का अनुपात भी बढ़कर कम से
 दूना तो हो ही जाना चाहिए। अब जागृत आत्माओं
 हर दिन दो घण्टा और बीस पैसा निकालने चाहिए।
 है वह पूँजी जिसके आधार पर लोक मानस के
 कार—सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन और अनुपयुक्त प्रचलनों
 मूलचूल परिवर्तन किया जाना है। हर काम श्रम
 साधन माँगता है। ४५० करोड़ मनुष्यों की इस
 को अब अवांछनीयता से उबारना और नव-सृजन
 पर जुटाना है। १९६,६३८८०० वर्गमील व्यास
 की इस धरातल की परिस्थितियों का कार्याकल्प
 है तो उसी परिमाण में श्रम और साधन लगेंगे।
 यह कहीं से दवाव देकर मिलना नहीं है। भावना-
 जागृत आत्मा जहाँ अन्तःप्रेरणा का युग चेतना का
 अनुभव करेंगे वहीं से ये दोनों अनुदान भी स्वेच्छा-
 उमरों और समय की माँग पूरी करने के निमित्त
 वनेंगे, अपना ही नहीं अपने प्रभाव क्षेत्र में आने
 का सहयोग अर्जित करेंगे। स्वाध्याय मंडल की
 में दही हो भी रहा है। संस्थापक एक। उसके
 साथी नैष्ठिक सदस्य पाँच। फिर उसके समर्थक
 पाँच। इस प्रकार बीस की एक ऐसी मंडली का
 जो युग धर्म के निर्वाह में या तो कटिबद्ध हो
 जाने वाली है। यह तीस गोवर के चोथ बने
 संस्थापक ही सदा सर्वदा कट पुतलियाँ नचाता
 नहीं हो सकता। आशा की जानी चाहिए कि
 भी अधिकांश लोग ऐसे निकलेंगे जो दूसरों के

कंधों पर चढ़े रहने से आगे बढ़े। अपने पैरों आप चलें।
 दूसरों को अपने कंधों पर बिठायें। इस प्रकार एक से
 पाँच की प्रक्रिया को स्वतन्त्रतापूर्वक चलाने वाले कमवीर
 भी क्रमशः निकलते ही चलेंगे। वंश वृद्धि सन्तानोत्पादन
 के क्षेत्र में ही रोकी जाती है। विचार क्रान्ति के क्षेत्र में
 ही यह एक से पाँच का क्रम अपना कर सुनिश्चित रूप
 से चलना चाहिए।

[१] १ से ५ [२] ५ से २५ [३] २५ से १२५
 [४] १२५ से ७२५ [५] ७२५ से ३६२५ [६] ३६२५
 से १८१२५ [७] १८१२५ से ९०६२५ [८] ९०६२५ से
 २७३१२५ [९] २७३१२५ से १३६५६२५ [१०] १३६५
 ६२५ से ६८२८१२५ [११] ६८२८१२५ से ३४१४०६२५
 [१२] ३४१४०६२५ से १७०७०३१२५ [१३] १७०७०
 ३१२५ से ८५३५१५६२५ [१४] ८५३५१५६२५ से
 ४२६८०६८१२५। चौदहवीं पीढ़ी पर पहुँचते-पहुँचते यह
 एक से पाँच का क्रम प्रायः उतना ही हो जाता है जितना
 कि संसार भर की जनसंख्या। वस्तुतः सुधारणा सम्भा-
 लना तो इनमें से एक तिहाई को ही है क्योंकि समर्थ
 सक्षम तो प्रायः उतने ही हैं। दो तिहाई तो बच्चे-बूढ़े,
 अल्पवयस्क, रोगी, अपंग आदि होते हैं। इस प्रकार एक
 विचार पीढ़ी उत्पन्न होने में एक वर्ष से अधिक समय
 नहीं लगना चाहिए। स्वाध्याय मंडल के पाँच नैष्ठिक
 सदस्य यदि एक वर्ष में अपने-अपने स्वतन्त्र पाँच स्वाध्याय
 मण्डल बनाले तो इसमें किसी को कोई आश्चर्य नहीं
 मानना चाहिए। हर व्यक्ति की अपनी प्रतिभा है हर
 व्यक्ति का अपना सम्पर्क क्षेत्र है। उसका उच्च उद्देश्य
 के लिए संकल्पपूर्वक प्रयोग बन पड़े तो अनपढ़ हजारी
 किसान की तरह हजार न सही पाँच बगीचे। पाँच
 बगीचे ही न सही पाँच पेड़ तो उगा ही सकता है।
 युग परिवर्तन नव निर्माण का यही तरीका सरल और
 व्यावहारिक है। बड़े आदमी, बड़े प्रभाव और बड़े साधनों
 से बड़े काम करें उसका औचित्य है, पर उनके लिए
 रुका तो नहीं जा सकता। नौ मन तेल जुटने पर राधा
 का नाच होने की प्रतीक्षा में कब तक बैठे रहा
 जाय। जेब की माचिस जलाकर पैर में चुभे काँटे को
 तो तुरन्त निकालना पड़ता है। सुराही-गिलास ढूँढ़कर

तुरन्त गला गीला करना पड़ता है। इसके लिए माचिस की एक तीली का एवं एक गिलास पानी का आर्थिक दृष्टि से न सही उपयोगिता की दृष्टि से बहुत बड़ा मूल्य है।

साधनों की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि श्रम की। दो घण्टा रोज समय देने में एक व्यक्ति का श्रम वर्ष में ७२० घण्टे होता है। इसे प्रायः १०० पूरे दिन मान सकते हैं। यदि प्रज्ञा परिवार के १ लाख प्राणवान-प्रज्ञा पुत्र इतनी छोटी श्रद्धाँजलि नियमित रूपसे युग देवता के चरणों में अर्पित करने लगे तो ये वर्ष में १ करोड़ दिन होते हैं। इन्हें ३६० दिनों में विभाजित किया जाय तो प्रतिदिन प्रायः २० हजार लोकसेवी प्रतिदिन सृजन प्रयोगों में जुटे रहने जैनी चमत्कारी शक्ति हाथ लग सकती है। यही बात २० पैसा प्रतिदिन के सम्बन्ध में भी है। एक लाख व्यक्ति हर दिन इतनी छोटी राशि निकालें तो उसका योग हर दिन २० हजार तथा महीने में ६ लाख रुपया होता है। यह राशि कम भी है और अधिक भी। कम इसलिए कि ४५० करोड़ को अगणित समस्याओं से उबारना है। अधिक इसलिए कि भाव भरे अनुदान, और उनका सर्वश्रेष्ठ उपयोग बन पड़े, तो इतने भर से नव सृजन का ऐसा तूफानी आन्दोलन खड़ा हो सकता है जिसके प्रवाह में असंख्यों तिनके, पत्तों और धूल कण आकाश चूमते और घोड़े की चाल दीड़ते दृष्टिगोचर होने लगे।

प्रज्ञा परिवार में एक लाख नहीं बीस लाख नाम हैं पर हैं, उनमें से अधिकांश भावना शून्य हैं। इसलिए अनुदान का वचन तो देते हैं पर निभते नहीं। इनकी प्रसुप्त भावनाओं को झकझोरने का काम प्रज्ञा साहित्य के नियमित स्वाध्याय से कम में और किसी प्रकार बन नहीं पड़ेगा। बात वर्तमान सूची की नहीं। उसमें यदि निष्क्रियों का बाहुल्य मान लिया जाय तो भी यह भावना की जा सकती है कि स्वाध्याय मण्डलों के माध्यम से जो तीस-तीस की मण्डलियाँ बने भी उनमें आधे चौथाई अवश्य भावनाशील निकलेंगे और कम से कम न्यूनतम अनुदान प्रस्तुत करने की उदारता तो दिखायेंगे ही। फिर सभी इतने कृपण कहाँ होते हैं जो बीस पैसे से अधिक की

उदारता न दिखा सकें। पारिवारिक उत्तरदायित्व निवृत्त, आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी, जिन पर किसी की जिम्मेदारी लदी ही नहीं, ऐसे अगणित व्यक्ति सकते हैं जो दो घण्टे की बात क्या, सोने खाने के छोड़कर युग धर्म के निर्वाह में अंगद, हनुमान की भीम अर्जुन की तरह—अहिंसा जुटे रह सकें। यह मात्र एक लाख को जागृत आत्माओं की श्रेणी में कर दी जा रही है। यदि वह संख्या बीस गुनी हो बीस लाख तक पहुँच सके तो अपना प्रज्ञा परिवार समूची मानवता को प्रस्तुत विभीषिकाओं से उबार उज्ज्वल भविष्य के सपने साकार करने में पूर्ण सफल हो सकता है।

युग परिवर्तन कोई जादू नहीं है। वह न तो घुमाकर पिटारी में से निकलने वाला है और न उसे पुष्प वर्षा की तरह धरती पर बिखेरने का। उसके लिए जागृत आत्माओं को रीछ वानरों के कठोर समर्पित जीवन जीना और कठोर श्रम पड़ेगा। व्यक्ति और समाज के समक्ष हजार समस्याएँ विपत्तियाँ और विभीषिकाएँ प्रस्तुत हैं। उन्हें करने के लिए अवांछनीयताओं के साथ जमकर लड़ना है। शिक्षा, गरीबी, रुग्णता, और हीनता से मानवता को उबारने का—सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन का—उठाना है। प्रवाह को बदलना है। प्रचलनों को है। चिन्तन का परिमार्जन और चरित्र व्यवहार सिरे से शालीनता को प्रतिष्ठापित करना है। सुखी सृजन प्रयोजन के लिए अगणित भावभरे युग चाहिए। उन्हीं को उगाने, सींचने और पकाने प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत स्वाध्याय मण्डलों को प्रमुखता दी जा रही है। कल्प साधना के साथ अपना चरम पुरुषार्थ इस केन्द्र बिन्दु पर नियोजित चाहिए। अपने प्रभाव क्षेत्र में इन्हें अधिकाधिक में बनाने—उन्हें सुनियोजित ढंग से चलाने निमित्त जिन साधकों की आवश्यकता है उन्हें लिए भरपूर प्रयत्न करना चाहिए। इस उद्देश्य साधना को अपनाकर वे भूत का प्रायश्चित्त तथा भविष्य निर्धारण के निमित्त आवश्यक पुण्य का उत्साहवर्धक अर्जन कर सकेंगे।

दिव्य अनुदान की ध्यान धारणा

बुध सन्धि के इस पावन पर्व पर हिमालय के अध्यात्म केन्द्र से जागृत आत्माओं को नव सृजन की श्रमता अतिरिक्त अभिवृद्धि के लिए कुछ विशेष अनुदान वितरित किये जा रहे हैं। उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्श चरित्र और सुसंस्कृत लोक-व्यवहार की दिव्य विभूतियों में अभिवृद्धि करने के लिए कोई भी भावनाशील इन्हें प्रयत्न ही उपलब्ध कर सकते हैं। इस दैवी अनुग्रह को जितना समेट सकेंगे वे अपना व्यक्तित्व विकसित करेंगे और आन्तरिक पवित्रता के अतिरिक्त प्रतिभा एवं प्रखरता विकसित करेंगे। स्मरण रहे यह अनुदान मात्र उच्च-तरीख उद्देश्यों के लिए ही है। संकीर्ण स्वार्थपरता की लोकाभिलाषा तथा लोभ, मोह, विलास एवं अहंकार की लप्सा तृष्णा पूरी करने के लिए इन दिव्य अनुदानों का उपयोग न हो सकेगा।

इस प्रवाह का समय सूर्योदय के पूर्व से लेकर सूर्योदय के एक घण्टा ही निर्धारित है। इससे पूर्व या पश्चात् विशेष अनुदान की उपलब्धि न हो सकेगी। साधना क्रम-विस्तार इस प्रकार है—

एकान्त खुली हवा का कोलाहल रहित स्थान ढूँढ़ें। सामान बिछाकर हिमालय की दिशा में मुँह करके बैठें। ध्यायी मारकर ध्यान मुद्रा बनायें। ध्यान मुख के पाँच अनुशासन हैं। [१] स्थिर शरीर [२] शान्त चित्त [३] अग्र सीधी [४] हाथ गोदी में [५] आँखें बन्द। शरीर और मन की स्थिति ऐसी बना देने में दस पाँच मिनट का समय लगता है। इसके उपरान्त भावनापूर्ण ध्यान करना चाहिए और आँखें बन्द करके कल्पना चित्र इस प्रकार निर्मित करने चाहिए।

—हिमाच्छादित हिमालय के सर्वोच्च शिखर पर प्रभातकालीन स्वर्णिम सूर्य का उदय।

—स्वर्णिम किरणों का हिमालय से साधक तक प्रवाह। किरणों का साधक के हृदय-चक्र में प्रवेश। इसके उपरान्त उस ऊर्जा का ऊपर मस्तिष्क सह-कार चक्र तक और नीचे मूलाधार चक्र तक उसका विस्तार। मस्तिष्क और धड़ के सभी अवयव उस आलोक से प्रकाशित, पुलकित और अनुप्राणित।

—नस-नस में—कण-कण में—रोम-रोम में दिव्य ज्योति का अभ्यास। साधक की आत्म सत्ता

प्राण पुंज। प्रज्ञा पुंज। ज्योति पिण्ड जैसी।

—स्थूल शरीर निष्ठावान। सूक्ष्म शरीर प्रज्ञावान। कारण शरीर श्रद्धावान।

—साधक पर त्रिपदा की स्नेह वर्षा। सविता की शक्ति वर्षा। अनन्त अन्तरिक्ष से अमृत की विपुल वर्षा।

—अन्तरात्मा साधक की, रस विभोर। आनन्द से सरावोर। अनुभूति-तृप्ति। तुष्टि। शान्ति।

—हिमालय की शक्तिधारा से साधक का परिवर्तन। परिवर्तन—प्रत्यावर्तन—पुनर्जीवन।

—परिवर्तन क्षुद्रता का महानता में। परिवर्तन वासना का भावना में। परिवर्तन नर का नारायण में। परिवर्तन उद्वेग का समाधान में।

—विलय, विसर्जन—आत्मा का परमात्मा में। अनुभूति एकत्व अद्वैत।

पाँच बार मन ही मन ॐकार गुंजन। तीन बार तीन प्रार्थनाएँ—असतो मा सद्गमय। मृत्यो-माऽमृतंगमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।

उपरोक्त ध्यान मौन रूप से मन ही मन किया जाय। मुख से उच्चारण कुछ भी न करें। टैप से उपरोक्त निर्देश मिलते रहें तो उस आधार पर ध्यान धारणा में सहायता मिलती है और कल्पना चित्र अच्छे उभरते हैं। अन्यथा उपरोक्त सारी क्रम श्रृंखला पहले बार-बार दुहरा कर स्मृति पटल पर बिठानी पड़ती है। तब प्रवाह ठीक प्रकार बनता है।

यह ध्यान धारणा नित्य न बन पड़े तो सप्ताह में एक दिन गुरुवार या रविवार को भी की जा सकती है। उस दिन ब्रह्मचर्य, अस्वाद व्रत का पालन हो सके एक सुविधा के समय दो घण्टे का मौन रखते हुए वह समय आत्म निरीक्षण, आत्म सुधार, आत्म निर्माण, आत्म विकास के चिन्तन मनन में लग सके तो और भी अच्छा। इस सुयोग से हिमालय की शक्ति धारा को साधक की आत्म सत्ता में गहराई तक प्रवेश करने और रोम-रोम में रम जाने का अवसर मिलता है। यह साधना एकांकी भी हो सकती है और टैप रिकार्डर की सहायता से सामूहिक भी।

रजिस्टर्ड नं० एम. टी. आर. ६८

रजि० नं० आर. एन. २१६२/५२

'अखण्ड-ज्योति मासिक'

विज्ञान और धर्म

विज्ञान, धर्म ने जब समवेत स्वर उठाये !

विश्वास ने, सृजन के नव गीत गुनगुनाये ॥१॥

विज्ञान, धर्म विछुड़े ।

लय, ताल, छन्द उखड़े ।

संगीत शाश्वत तब आलापने न पाते ।

विज्ञान, धर्म ने जब समवेत स्वर उठाये ॥२॥

विज्ञान के चरण पर ।

मुखरित न धर्म के स्वर ।

संगीत जिन्दगी का गाये तो कौन गाये ।

विज्ञान, धर्म ने जब समवेत स्वर उठाये ॥३॥

यदि सर्जना इधर हो ।

सद् कल्पना उधर हो ।

तो कौन, कल्पना को साकार फिर बनाये ।

विज्ञान, धर्म ने जब समवेत स्वर उठाये ॥४॥

विज्ञान, ध्वंस कारी ।

हो धर्म, भ्रांति भारी ।

कल्याण की दिशा में, तब कौन फिर चलाये ।

विज्ञान, धर्म ने जब समवेत स्वर उठाये ॥५॥

विज्ञान, धर्म मिलकर ।

कल्याण-पथ चलकर ।

सुख, शान्ति स्वर्ग को वे भू पर उतार लाये ।

विज्ञान, धर्म ने जब समवेत स्वर उठाये ॥६॥

कर्त्तव्य और निष्ठा ।

विश्वास और श्रद्धा ।

पुरुषार्थ, स्नेह इनका दुनिया नई रचाये ।

विज्ञान, धर्म ने जब समवेत स्वर उठाये ॥७॥

विज्ञान धर्ममय हो ।

सद्ज्ञान कर्ममय हो ।

विज्ञान, धर्म की यूँ दूरी चलो मिटाये ।

विज्ञान, धर्म ने जब समवेत स्वर उठाये ॥८॥

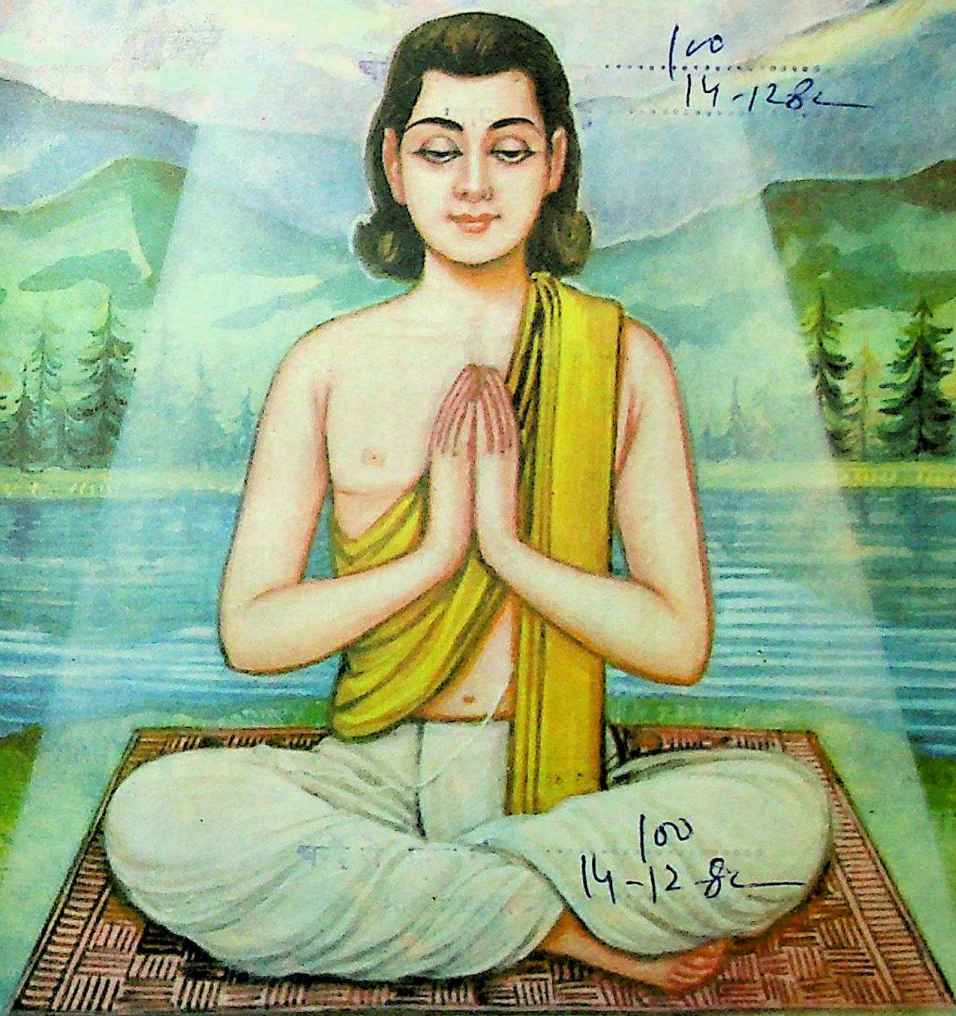
—मंगल विजय

सम्पादक—भगवती देवी शर्मा प्रकाशक व मुद्रक—मृत्युञ्जय शर्मा, अखण्ड-ज्योति संस्थान द्वारा
जन-जागरण प्रेस मथुरा २८१००३ में मुद्रित ।

अखण्ड ज्योति

पुस्तिकालय
गुरुकुल कांगड़ी

100
14-12-82



दिसम्बर १९८२

पढ़ें और पायें

—«●»—

दिसम्बर	— १६८२
वर्ष	— ४५
अङ्क	— १२
वार्षिक चन्दा	— १५)
आजीवन	— १५०)

—«●»—

१. विराट् का वैभव अपने अन्तस् में
२. युग मनीषा ही नहीं, युग साधना भी
३. चेतनात्मक अदृश्य का अनुसंधान
४. मात्र सुविधा ही नहीं, प्रतिभा भी अर्जित करें
५. सामयिक समस्याओं का चिरस्थायी समाधान
६. युग साधना का अभिनव निर्धारण
७. सस्ते खोखले में भरा गया बहुमूल्य भाण्डागार
८. प्राण ऊर्जा बनाम अतीन्द्रिय क्षमता
९. मानवीय काया की दैत्योपम क्षमताएँ
१०. साहस सबसे बड़ा साधन
११. अन्तराल की छिपी क्षमताओं का प्रयत्नपूर्वक उभार
१२. स्वप्नों की निरर्थकता और सार्थकता
१३. दुर्भाग्य ग्रस्तों की दुनिया-२
१४. ज्योतिर्विज्ञान का पुनर्जीवन देव सस्कृति का पुनीत कर्तव्य
१५. त्रिपदा गायत्री की त्रिविधि भाव साधना
१६. यज्ञों के भेद-उपभेद और शाखा-प्रशाखाएँ
१७. अपनों से अपनी बात
१८. अध्यात्म साधना और शिक्षा के महत्वपूर्ण सत्र
१९. पू० गुरुदेव प्रणीत अध्यात्म विद्या के अमूल्य ग्रन्थरत्न

पता—अखण्ड-ज्योति संस्थान, मथुरा



वर्ष ४५
अङ्क १२

विद्यमान
विशेषताएँ
बीज में वृ
किन्हीं वि
सकता है
में अधिक
अद्वैत क
अवगत ह
अन्तराल
होता है

देखें। अ
और अ
इसी क्ष

ॐ भूभुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

अखण्ड ख्याति

प्रज्ञायोग अध्यात्म विज्ञान

93

वर्ष ४५ } दिसम्बर १९८२ } वार्षिक चन्दा १५)
 अङ्क १२ } वाजीवन १५०)

विस्तारकैव अपने अन्तर्मैं

विभु अचिन्त्य है। विस्तार की कल्पना एवं आराधना कठिन है। किन्तु अणु के भीतर विद्यमान उस महती शक्ति सत्ता का सरल साक्षात्कार हो सकता है। बूँद में सरोवर की समस्त विशेषताएँ विद्यमान हैं। चिनगारी में विश्व व्यापी अग्नि तत्व की समस्त सम्भावनाएँ सन्निहित हैं। बीज में वृक्ष और शुक्राणु में समूचा मनुष्य विराजता है। परब्रह्म की समग्र सत्ता का विराट्-दर्शन किन्हीं विरलों को ही होता है किन्तु उसका अभीष्ट दर्शन अपने अन्तराल में भी भली प्रकार किया जा सकता है। न केवल दर्शन वरन सघन सम्पर्क और महत्वपूर्ण आदान-प्रदान का उपक्रम भी इस क्षेत्र में अधिक सरलता और सफलतापूर्वक बन पड़ता है।

सोहम्, शिवोहम्, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म जैसे तत्त्वदर्शो प्रतिपादनों में उसी एकात्म अद्वैत का प्रतिपादन है। जिसे अपनाकर कोई भी अपने को सृष्टा का युवराज होने की वरिष्ठता से अवगत हो सकता है। सौर-मण्डल की समग्र सत्ता परमाणु के छोटे परिकर में सन्निहित है मानवी अन्तराल में सत्यं शिवं सुन्दरम् झाँकता है और सत् चित् आनन्द की अनेकानेक विभूतियों का दर्शन होता है।

अच्छा हो हम दिशाओं को महकाने वाली कस्तुरी को अपनी ही नाभि में केन्द्रीभूत देखें। अपने को समझे, कुरेदें, जगायें, उभारे और इस योग्य बनायें कि उस एक में, ही पारस कल्पवृक्ष और अमृत की उपस्थिति का अनुभव पग-पग पर होने लगे। मानवी पराक्रम, विवेक की सार्थकता इसी क्षेत्र की प्रगति से परखी जाती है।

युगमनीषा ही नहीं युग साधना भी

पेड़ ऊपर से भी खुराक लेता है और नीचे से भी खींचता है। जड़ें जमीन में दूर-दूर तक फैलती हैं और वहाँ से खाद पानी समेट कर वृक्ष के अंग अवयवों तक पहुँचाती हैं पर बात पूरी इतने से ही नहीं हो जाती। ऊपर से सूरज की रोशनी, उपयुक्त हवा, मौसम की अनुकूलता आदि बहुमूल्य जीवन-तत्व बरसते हैं। दोनों ओर से अभीष्ट अनुदान प्राप्त करते रहने की सुविधा पाकर ही पेड़ पनपता और फलता-फूलता है। यदि इनमें से एक पक्ष भी कम पड़े तो फिर पेड़ का अस्तित्व ही संकट में पड़ेगा। प्रगति होने की बात तो दूर रही।

मनुष्य के सम्बन्ध में भी ठीक यही बात कही जा सकती है। उसे अन्तराल, मनःस्थान एवं अंग अवयवों के साथ जुड़ी हुई जीवनी शक्ति, प्राण विद्युत, रासायनिक विलक्षणता जैसी अगणित विशेषताओं के माध्यम से समुन्नत बनने का अवसर मिलता है। स्थूल शरीर की संरचना से भी बढ़कर सूक्ष्म शरीर की विशिष्टता है। तीसरा कारण शरीर तो अदृश्य जगत के साथ जुड़ा रहने के कारण और भी अद्भुत है। उसे दिव्य लोकवासी कहा जाता है। षट्चक्र, उपत्यिकाएँ, ग्रन्थियाँ, अतीन्द्रिय क्षमता केन्द्र आदि की आन्तरिक संरचना एवं विभूति भण्डार को देखते हुए मनुष्य उससे कहीं अधिक महान प्रतीत होता है जैसा कि उसके बहिरंग को देखने पर—बड़प्पन का मूल्यांकन करने पर—दृष्टिगोचर होता है। यह ईश्वर प्रदत्त भाण्डागार सुनियोजित रूप से अन्तराल भरा पूरा तो है, पर है प्रसुप्त स्थिति में। प्रयत्न करने पर ही उसे जगाया जा सकता है। बीज के भीतर समूचे वृक्ष की समय सत्ता सन्निहित होती है। शुक्राणु में एक परिपूर्ण व्यक्तित्व की सत्ता विद्यमान रहती है, पर अनायास ही बिना प्रयत्नके न बीज से वृक्ष फूट पड़ता है और न शुक्राणु को तोड़कर कोई मनुष्य चहलकदमी करता है। प्रगति प्रयत्न साध्य है। इसी विधि विधान के सहारे बीज और शुक्राणु अपनी प्रसुप्त सत्ता को प्रकट करते हैं। माववी

अन्तराल के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। उसका प्रकटीकरण श्रमसाध्य है। इसी प्रयास को साक्षात् कहते हैं। यह जड़ से उपलब्ध होने वाला अदृश्य जीवन रस है। पेड़ की तरह मनुष्य भी प्रधानतः इसी के सहारे ऊपर उठता, अंकुरित होता और फलता-फूलता है।

दूसरा पक्ष भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। बाहर से जो बरसता, उपलब्ध, हस्तगत होता है, उसे गगण्य नहीं कहा जा सकता है। सभी जानते हैं शीत ऋतु में पौधे बढ़ना तो दूर उलटे पत्ते पीले पड़ने, झड़ने के कारण ठूँठ हो जाते हैं। गरम लू चलने पर भी वे झुलस जाते हैं। हरियाली बढ़ोतरी तभी होती है जब मौसम की अनुकूलता है। वर्षा होते ही उनकी शोभा सुषमा किस तरह उल्लसित होती है यह देखते ही बनता है। बसन्ती प्रवाह जिन दिनों बहता है उन दिनों तो ठूँठ हरियाले और फूलों से लदे हुए दूल्हा जैसे सज-धजकर बैठते हैं। इसके अतिरिक्त हवा वातावरण का भी योगदान होता है। प्रांतों और क्षेत्रों की भिन्नता के कारण एक ही जाति के पेड़ पौधों—मनुष्य पशुओं में कितना अन्तर पाया जाता है यह सभी ने देखा है। बंगाली और पेशावरी की काया का अन्तर देखते ही बनता है। रायपुर और हरियाना के बौलों में कितना अन्तर होता है इसे सभी जानते हैं। मैसूर का चन्दन महकता है वैसा राजस्थान में सम्भव नहीं, हिमालय के देवदारु आन्ध्र में उगाये जायें तो वे बढ़ेंगे नहीं, छोटे-छोटे हा बने रहेंगे। यह वातावरण का प्रभाव हुआ। मनुष्य भी इससे कम प्रभावित नहीं होता।

कहा जा चुका है कि शिक्षा, सान्निध्य, अभ्यास, परामर्श, अनुकरण आदि के माध्यम से बहुत कुछ सीखता है। सुसंस्कृत समुदाय और बनवासियों के स्तर में जो अन्तर पाया जाता है उसे वातावरणजन्य ही कहा जायगा। परिस्थितियाँ मनुष्य को कितनी बदलती बनाती हैं इसे सभी जानते हैं। सम्यता और संस्कृति का सीधा सम्बन्ध निकटवर्ती परिस्थितियों से है। परिवार की

मनुष्यशाला में ही व्यक्तित्व की ढलाई का अधिकांश काम पूरा हो जाता है। जो बाकी रहता है उसकी पूर्ति शिक्षा, अनुभव, अभ्यास परामर्श आदि के माध्यम से होती है। वातावरण इसी को कहते हैं।

युग मनीषा को लोक मानस के परिष्कृत करने के लिए जिस गलाने ढालने वाली भट्टी को गरम करने के लिए कहा गया है उस विचारक्रान्ति का तात्पर्य इतना है कि मनुष्य को नये सिरे से सोचने के लिए समुचित विचार सामग्री प्रस्तुत की जाय। अभ्यास में से अवांछ-नीयता को हटाने और स्वभाव में औचित्य की प्रतिष्ठापना करने के लिए क्या-क्या करना चाहिए, अक्टूबर अंक में इसी की चर्चा है। युग धर्म, ज्ञानयज्ञ, लोक शिक्षण आदि नामों से इसी का ऊहापोह हुआ है। प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत अब तक क्या हो चुका और अगले दिनों क्या होने जा रहा है, इस सन्दर्भ में इस अंक के अन्तिम लेखों में विवरण एवं आभास दिया गया है। यह महत्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में राज्य सत्ता की इच्छा आवश्यकता के अनुरूप 'ब्रेन वॉशिंग' अभिनव पद्धति का आविष्कार हुआ है। बन्दी शत्रु सैनिकों को किस प्रकार अपना पथ समर्थक सहयोगी बनाया जा सकता है इसकी एक सुविस्तृत प्रक्रिया है।

अपने देशवासियों की मान्यता, आकांक्षा विचारणा में किस प्रकार मनचाहा हेर-फेर किया जा सकता है उसका प्रयोग किस प्रकार किया गया इसकी जानकारी तानाशाह और साम्यवादी देशों में हुए इस सम्बन्ध के प्रयासों को आश्चर्यचकित करने वाले जाल-जंजाल को ढ़ककर समझी जा सकती है। मनुष्य मूलतः कोरे कागज-खच्छ दर्पण और गीली मिट्टी की तरह माना जाता है और कहा जाता है कि उसे दबाव देकर एक से दूसरे ढाँचे में बदला जा सकता है। समस्त समस्याओं के एकमात्र निमित्त कारण आस्था संकट से जूझने के लिए समर्थ युग मनीषियों को क्या करना चाहिए, कैसे करना चाहिए इसकी रूप-रेखा बताते हुए तथ्यतः एक ही निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि सभी सम्भव उपायों से मानवी दृष्टिकोण स्वभाव एवं अभ्यास में दूरदर्शी विवेकशीलता एवं संयम सिक्त समाज निष्ठा का सभी सम्भव उपायों से समावेश

करने का प्राणपण से प्रयत्न किया जाय।

यह प्रक्रिया कितनी ही महत्वपूर्ण, समय को देखते हुए कितनी ही आवश्यक अनिवार्य क्यों न हो पर साथ ही एक दूसरी बात भी ध्यान में रखनी है कि वह एकांगी है। मात्र एक ही पक्ष का समाधान करती है। दूसरा पक्ष भी अपने स्थान पर कायम है उसे झुठलाया नहीं जा सकता। कल न सही परसों उनका भी मर्म और महत्व समझना होगा और समग्र युग निर्माण के लिए—व्यक्ति निर्माण के लिए उसे भी कार्यान्वित करना होगा। यह पक्ष है अन्तराल की उच्चस्तरीय किन्तु प्रसुप्त क्षमताओं को जगाना। अतीन्द्रिय क्षमता के नाम से इन दिनों परामनोविज्ञान के क्षेत्र में कौतूहलवर्धक चर्चाएँ चलती और योजनाएँ बनती रहती हैं। आकल्ट-मैटाफिजिक्स, आदि नामों से उसका कुछ स्वरूप निर्धारण भी हुआ है। पुरातन काल का साधना विज्ञान पूर्णतया इसी क्षेत्र का वैज्ञानिक प्रयोग है।

वस्तुतः मानवी व्यक्तित्व की मूलभूत सत्ता उसके गहन अन्तराल में निवास करती है। मनोविज्ञानी इसकी कुरेद बीन अचेतन, सुपर चेतन आदि में वर्गीकृत करते हैं और आशा करते हैं कि यदि इस समंस्थल की चाबी हाथ लग सके तो मानवी सत्ता को अब की अपेक्षा अगले दिनों सहस्रों गुनी अधिक समर्थ बनाया जा सकता है। अध्यात्मशास्त्री तो बहुत पहले से अनुभवजन्य सुनिश्चित घोषणा उच्चस्तर से करते रहे हैं कि—“मनुष्य से श्रेष्ठ समग्र इस संसार में और कुछ नहीं है।” यह प्रतिपादन काय कलेवर, बुद्धि चातुर्य या वैभव साधन को देखकर नहीं वरन् अन्तःक्षेत्र की प्रसुप्त शक्तियों की विशिष्टता को लक्ष्य रख कर किया गया है।

वरगद जैसे विशालकाय दीर्घजीवी, वृक्षों की जड़ें—जमीन में प्रायः उतनी ही दूरी और गहराई में फैली होती हैं जितना कि उसका दृश्यमान कलेवर होता है। जिनकी जड़ें उथली होती हैं वे न तो बहुत ऊँचे उठने में ही समर्थ होते हैं और न अधिक समय तक जीवित ही रहते हैं। यह जड़ों की गहराई, मजबूती पर निर्भर है कि कोई पेड़ कितना बड़े, कितना फले, फले-फूले और दीर्घजीवी रहे। वातावरण की अनुकूलता से उसकी प्रगति

में सहायता तो मिलती है इतने पर भी जड़ों का महत्व कम नहीं आंका जा सकता है। जिस क्षेत्र में, जिस मौसम में गहरी जड़ों वाले पौधे प्रकृति अनुकूलता का लाभ लेकर समुन्नत परिपुष्ट देखे जाते हैं उसी से कमजोर छोटी जड़ों वाले किसी प्रकार दिन गुजारते और उकड़-झुकड़ सिर झुकाए बंठे रहते हैं। यहाँ वातावरण की महत्ता, जड़ों की सुदृढ़ता से बढ़कर नहीं अपेक्षाकृत कम ही सिद्ध होती है।

विचार शक्ति का अपना महत्व है उसके सुसम्पन्न होने एवं सही मार्ग पर चलने के जितने भी लाभ गिनाये जाय कम हैं। इतने पर भी यह तथ्य यथावत् बना रहेगा कि व्यक्तित्व की अन्तर्निहित सत्ता का स्तर भी उच्च-स्तरीय प्रेरणाओं को हजम और क्रियान्वित कर सकने में समर्थ होता है।

यहाँ मनुष्य के अन्तःक्षेत्र की चर्चा हो रही है और यह कहा जा रहा है कि मनुष्य का अन्तरंग प्रखर करना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि बहिरंग का कलात्मक सुनियोजन करना। अन्तरंग को प्रखर करने से तात्पर्य है प्रसुप्त को जगाना। प्रसुप्त से तात्पर्य है—“ईश्वर प्रदत्त उन क्षमताओं का भाण्डागार जो सृष्टा ने उत्तराधिकार में अजस्र मात्रा में दिया है, किन्तु उसके विकसित होने की सम्भावना व्यक्ति के निजी प्रयत्नों पर पूरी तरह छोड़ दी है” यह प्रसुप्त का जागरण ही उच्चस्तरीय पुरुषार्थ है। इस क्षेत्र की अद्भुत उपलब्धियों के सामने संसार भर में विखरी सम्पन्नता भी हेटी पड़ती है।

सम्यक्ता व्यवहारगत शिष्टता से सम्बन्धित है। सुसंस्कारिता चिन्तन की उत्कृष्टता को कहा जाता है। इन दोनों से आगे चूँकर—ऊँचा उठकर—अध्यात्म का विभूति क्षेत्र आता है। उसे खोदने, कुरेदने, बीनने बटोरने के लिए एक वरिष्ठ तन्त्र खड़ा करना पड़ता है जिसे एक शब्द में साधना कहा जा सकता है। साधना के अन्तर्गत वे सभी प्रयास आते हैं जिनमें अन्तरंग के विशिष्ट शक्ति केन्द्रों को समझा, झकझोरा और संशुद्ध सक्रिय बनाया जाता है। इस दिशा में मिलने वाली सफलताएँ उच्चस्तरीय व्यक्तित्व की संरचना करती हैं। बुद्ध, गान्धी जैसे महामानव वस्तुतः व्यक्तित्व के धनी थे। प्रतिभा, और कुशलता की दृष्टि से उन्हीं अत्यायों की तरह

सामान्य ही पाया गया है। जिस प्रकार भौतिक क्षेत्र में सुडौल, कुशल एवं सम्पन्न होना प्रशंसनीय माना जाता है उसी प्रकार अध्यात्म क्षेत्र की वरिष्ठता ओजस्वी, तेजस्वी और मनस्वी लोगों में उभरती उछलती पाई जाती है।

प्राचीन काल में अध्यात्म क्षेत्र की दो प्रतिभाएँ होती थीं एक को मुनि, दूसरी को ऋषि कहा जाता था। मुनि वे जो मनन चिन्तन को उभारते थे—स्वाध्याय सत्संग की योजना बनाते और जन-मानस के परिष्कार को ध्यान में रखते हुए लोक-शिक्षण में लगे रहते थे। ऋषि उन्हें कहा जाता था जो काय सत्ता को चेतना क्षेत्र की एक सर्व सम्पन्न प्रयोगशाला मानते थे और अपने मूर्धन्य वैज्ञानिकों की तरह शोध अनुसन्धान—प्रयोग परीक्षण में लगे रहते थे। वे व्यक्तित्व की प्रसुप्त क्षमताओं को जगाने के क्षेत्र में गहरी डुबकी लगाते और बहुमूल्य मणि मुक्तक बीन कर लाते थे। जबकि मुनियों का प्रयास दूरदर्शी विवेकशीलता—सम्यक् सुसंस्कारिता को लोक प्रचलन में समाविष्ट किये रहने के प्रयत्नों में निरत रहना होता था। लेखनी और वाणी की शक्ति वे इसी निमित्त करते थे। शासन संरचना, कथा सत्संग, धर्मानुष्ठान, गुरुकुल, आरण्यक, तीर्थ परिभ्रमण जैसे अनेकों कार्यक्रम इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्पन्न होते थे। ऋषियों के उपक्रम में साधना प्रधान थी। वे योग और तप की परिधि में आने वाली अनेकानेक साधनाओं में निरत रहते और अपने सहचर अनुचरों को संलग्न रखते थे। सर्व साधारण को भी इस प्रयोजन में लगाये रहते थे। मुनियों और ऋषियों के समन्वित प्रयास ही दो पहियों की भूमिका निभाते और प्रगति रथ को संयुक्त प्रयास से आगे बढ़ाते थे।

यही आज भी होना चाहिए। युग मनीषा को मुनि स्तर की भूमिका निभानी चाहिए युग साधना में—ऋषि प्रयोजन में निरत रहकर तपश्चर्या की शक्ति को सम्पन्नता की तुलना में वरिष्ठ सिद्ध करने के लिए अन्तःक्षेत्र के प्रचण्ड पुरुषार्थ अपनाने चाहिए। पेड़ का तना और कटे-वर सुरम्य रहे इसके लिए वातावरण की उपयुक्तता जितनी आवश्यक मानी जाती है उसी प्रकार उसकी जड़ गहरी और सुदृढ़ समुन्नत हों इसकी साधन प्रक्रिया भी अग्रगामी रहनी चाहिए।

दिसम्बर १९८२

चेतना

मोटी बुद्धि

जितना कि वह

वस्तुतः वंसा है

सामने का ही

पैरों के नीचे

वस्तुतः विद्यमान

ऐसी दशा में

कि वह अ

नहीं। अन्य

और भी समी

कुछ दूरी से

हैं, पर जितना

करती हैं।

इन्द्रिय शक्ति

मान बैठना

समझने के लि

और अनुमान

सच तो

केवल व्यापक

है। हाथ-पैर

अधिक साम

प्राण अत्यन्त

मोटे रूप में

तृप्त किया

जाँचा-परख

में अपरिमित

परिणाम व

विशालकाय

अणु दीखत

के कारण

क्षेत्र में भी

का कोई

अखण्ड-ज्योति

अखण्ड-ज

चेतनात्मक अदृश्य का अनुसंधान

मोटी बुद्धि इस संसार को उतना ही मानती है जितना कि वह आँखों से दृष्टिगोचर होता है। किन्तु वस्तुतः वंसा है नहीं। आँखों से थोड़ी दूर का--निकटवर्ती सामने का ही दीखता है। पास ही जो पर्दे की आड़ में परों के नीचे--पीछे पीछे जो है उसे अति समीप एवं वस्तुतः विद्यमान होने पर भी देखा नहीं जा सकता। ऐसी दशा में सुविस्तृत संसार से इसलिए इन्कार करना कि वह आँख की पहुँच से बाहर है, उचित नहीं। अन्य इन्द्रियों के सम्बन्ध में भी यही बात है वे और भी समीप का अनुभव करती हैं। कान, नाक तो कुछ दूरी से भी शब्द गन्ध का परिचय प्राप्त कर सकते हैं, पर जिह्वा त्वचा तो छूने के उपरान्त जानकारी प्राप्त करती हैं। ऐसी दशा में विश्व विस्तार के सम्बन्ध में इन्द्रिय शक्ति के सहारे जो प्रत्यक्ष है उसी को सब कुछ मान बैठना उचित नहीं। संसार जैसा भी कुछ है उसे समझने के लिए बुद्धि से काम लेना पड़ता है। तर्क, प्रमाण और अनुमान के सहारे ही अदृश्य को समझना पड़ता है।

सच तो यह है कि दृश्य की तुलना में अदृश्य न केवल व्यापक विस्तृत है वरन् महत्वपूर्ण एवं सशक्त भी है। हाथ-पैर दीखते हैं—हृदय मस्तिष्क नहीं जबकि वे अधिक सामर्थ्यवान एवं बहुमूल्य हैं। शरीर प्रत्यक्ष है—प्राण अप्रत्यक्ष पर मूल्य प्राण का ही अधिक है। पदार्थ मोटे रूप में ढेले जैसे लगते हैं, पर उनके परमाणुओं को शृष्क किया जाय और उनके अन्तराल की ऊर्जा को जाँचा-परखा जाय तो प्रतीत होता है कि उनमें से प्रत्येक में अपरिमित सामर्थ्य भरी पड़ी है। अणु विस्फोट के परिणाम बताते हैं कि पदार्थ की यह सबसे छोटी इकाई विशालकाय सौर-मंडल का प्रतिनिधित्व करती है। न अणु दीखता है, न उसका मध्यवर्ती नाभिक। न दीखने के कारण उसकी क्षमता का महत्व घटता नहीं। प्रकृति क्षेत्र में भी सदी-गर्मी कहीं दीखती है। प्यार और द्वेष का कोई स्वरूप नहीं। जब ठगी और वास्तविकता

पहचानने में नहीं आती तो धर्मात्मा-दुरात्मा का भेद बाहरी कलेवर को उधाड़कर कैसे किया जाय ?

सामान्य दृश्यमान के अन्तराल में विद्यमान अदृश्य विशिष्टता को ढूँढ़ निकालना और उसे क्षमता एवं सुविधा बढ़ाने के लिए प्रयुक्त करना यही है विज्ञान का कार्य क्षेत्र। इसी में अनादिकाल से अनुसंधान अन्वेषण होते और समय-समय पर बहुमूल्य सूत्र हाथ लगते रहे हैं। दो लकड़ियाँ रगड़कर जिस दिन आग की चिनगारी उत्पन्न की गई होगी और उसका विभिन्न प्रयोजनों के लिए उपयोग जाना गया होगा वह मानवी सौभाग्योदय का अत्यन्त शानदार दिन रहा होगा। आदिमकाल के नर-वानर और आज के सम्य समुन्नत के बीच जो न भरने योग्य खाई दोखती है उसे पाटने में अग्नि आविष्कार का कितना बड़ा योगदान रहा होगा इसका अनुमान लगाने की इस जेब में माचिस भरे फिरने वाले माहील में कौन आवश्यकता अनुभव करेगा। किन्तु तथ्य तो तथ्य ही है। अग्नि पर आधिपत्य होना प्रकृति विजय के प्रथम मोर्चे की सफलता थी। जिसने हौसले बढ़ाये और कदम बढ़ते हुए वहाँ चले आये, जहाँ रेडियो, टेली-विजन, वायुयान, अन्तरिक्षयान, पनडुब्बी अणुशक्ति जैसी उपलब्धियाँ दैनिक प्रयोग में आने वाले चूल्हे चौके जैसी सामान्य लगती हैं।

प्रकृति का दृश्यमान बाह्य कलेवर तो अप्रकट रत्न-राशि से भरा-पूरा सस्ते कपड़े से बना बटुआ है। अविकसित प्राणियों के निर्वाह हेतु जितना प्रकृति ने आवश्यक समझा है उतना ही सर्वसाधारण के लिए खुला रखा है। इसके आगे जो भी बहुमूल्य था वह सब तिजोरियों में छिपा दिया है। अनागढ़ों द्वारा किये जाने वाले दुरुपयोग से बचाव की दृष्टि से यह दुराव आवश्यक भी था। घरातल पर कूड़ा-करकट, धूलि-मिट्टी, खर-पतवार, पोखर-झरने, वन-पर्वत जैसे ऊबड़-खाबड़ पदार्थ ही दृष्टि-गोचर होते हैं। बहुमूल्य तो नीचे हैं। खोदने पर

बहुमूल्य खनिज पदार्थ हाथ लगते हैं। धातुएँ, तेल, कोयला जैसी सम्पदाएँ अदृश्य में प्रवेश करने पर मिलती हैं। मोती लहरों के ऊपर नहीं तैरते, उन्हें गहरी डुबकी लगाने वाले ही प्राप्त करते हैं।

यह सामान्य ज्ञान से सम्बन्धित दृश्य और अदृश्य का भेद विवरण है। इसके आगे रहस्य भरे दो क्षेत्र और हैं जिन्हें जितना कुरेदना बन पड़ता है उतना ही बुद्धि को हतप्रभ कर देने वाले तिलिस्म से पाला पड़ता है। आकाश नीली चादर का सुविस्तृत चन्दोला जैसा लगता है जिसमें कुछ झिलमिले और दो झाड़ू-फानूस टंगे हों। पर वस्तुतः वह उतना छोटा और सरल है नहीं। करोड़ों अरबों प्रकाश वर्ष की दूरी पर असंख्य निहारिकाओं सौर-मण्डलों, गैस, बादलों, ब्लैक होलों से भरा-पूरा यह ब्रह्माण्ड इतना लम्बा चौड़ा है। इतनी तीव्र गति से घावमान है कि उसकी समग्र कल्पना करने तक में बुद्धि थक कर बैठ जाती है। फिर उसमें जो भरा हुआ है, उसकी जटिलता और भयानकता का जैसे-जैसे परिचय मिलता है वैसे-वैसे दिल दहलाने लगता है। इतने विनाशकारी ज्वाल माल के नीचे आखिर अपना भूलोक, उसका प्राणि समुदाय किस प्रकार जीवित ही नहीं बना रहा वरन् सुख-शान्ति की ओर भी बढ़ता रहा, यह देखकर आश्चर्य होता है। कोई मोटी-तगड़ी उल्का उससे टकरा कर इस पिण्ड की ध्वजियाँ उड़ा सकती है। किसी ग्रह का औघा-तिरछा विकिरण इस लोक के प्राणियों को देखते-देखते निष्प्राण कर सकता है। सौभाग्य ही कहना चाहिए कि अनेकानेक ग्रह पिण्डों की आये दिन जो दुर्गति होती रहती है वह इस अग्नि परिवार में दाँतों के बीच जीभ की तरह रहने वाले अपने इस समुदाय की नहीं हुई।

यह डरावना पक्ष हुआ। इस ब्रह्माण्ड में ऐसा भी कम नहीं भरा है जिसमें से कुछ चम्मच भर और मिल सके तो अब तक की उपलब्धियों की तुलना में मनुष्य देखते-देखते सहस्रों गुना अधिक सुखी समुन्नत, समृद्ध सशक्त बन सकता है। अब तक संचित वैभव प्रकृति की कुछेक परतें उधारने पर ही उपलब्ध हुआ है। जो मिल सका वह नगण्य है। जो अनुपलब्ध है उस भाण्डा-

गार का थोड़ा-सा विवरण भर प्राप्त होने पर मुँह में पानी भर आता है। मनुष्य हारा नहीं है। उसकी जिज्ञासा, जीवट, और महत्वाकांक्षा अभी भी घटी नहीं है आशा की जाती है कि यदि विज्ञान क्षेत्र को ऐसी ही उपलब्धियाँ मिलती रहें तो वह दिन दूर नहीं जब पौराणिक स्वर्ग लोक वाली सभी सुखद कल्पनाएँ, सम्पदाएँ, अपनी इस धरती पर बिखरी-बिखरी फिरेगी।

ब्रह्माण्ड का छोटा प्रतीक प्रतिनिधि है—अपना काय पिण्ड। देखने में यह काया मल-मूत्र की गठरी—हाड़मांस की पिटारी और निगलने-उगलने, सोने-जगने, रोने-हँसने की एक चलती-फिरती मशीन भर मामूली पड़ती है। ऋतु प्रभाव के तनिक से दवाव पड़ने पर चीं-चीं बोलती है। चोट-फट्ट का एक हथौड़ा कहीं जमकर जा लगे तो कांच के टूटे गिलास की तरह कूड़े-कटक के ढेर में जा गिरती है। इसमें पाये जाने वाले पदार्थ यदि खण्ड-खण्ड करके बाजार में बेचे जायँ तो उनका मूल्य दस रुपये से भी कम हाथ लगेगा। प्रतिस्पर्धा में अनेकों पशु-पक्षी उससे बाजी मारते हैं। ऐसे नगण्य से काय-कलेवर की सूक्ष्म संरचना और उसके अन्तराल में विद्यमान विभूति सम्पदा का पर्यवेक्षण किया जाय तो प्रतीत होगा कि इस तुच्छ के कण-कण में चकित कर देने वाले महान् का भाण्डागार कूट-कूटकर भरा है। किसी अद्भुत कलाकार ने उसकी संरचना में अपना सारा कौशल निचोड़ कर रख दिया है।

दर-दर की ठोकरे खाते, रोते-रुलाते, दीन दयनीय, असहाय असमर्थों की इस दुनिया में कमी नहीं। हममें परिस्थितियाँ भी कारण हो सकती हैं किन्तु जब उन्हीं परिस्थितियों में जन्मे-पले—अपने बलवृत्ते का आकाश चूमने जितना उँचाई पर जा पहुँचे देखते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि देखने में अवरोध परिस्थितियों का ही प्रतीत होता है। परन्तु तथ्यों को कुरदने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि मनःस्थिति की खोट ही पतन और पराभव का प्रधान कारण है। मनःसंस्थान की संरचना प्रायः सभी की एक जैसी है—अन्तर एक ही है उसकी सामर्थ्य में प्रयोग की विधि-व्यवस्था से परिचित अभ्यस्त न होना। जिनके

मनःसंस्थान का स्वरूप और सदुपयोग समझा वे आत्मज्ञान के धनी कहलाये—सफल समर्थ बने और अपने क्षेत्र में सफल, सुयोग्य कहलाये। जिनकी गुण-भाषाएँ गाई जाती हैं, जिनका पराक्रम सराहा जाता है उनमें से अधिकांश मुकद्दर के सिकन्दर नहीं, मनोबल सम्पन्न सुसंस्कारी व्यक्तित्व के ही धनी रहे हैं।

चेतन, अचेतन, सुपर चेतन—मन, बुद्धि, चित्त की चर्चा विवेचना, चेतना विज्ञान के मनीषी विस्तारपूर्वक करते रहते हैं और कहते हैं कि इस क्षेत्र में समाविष्ट तथ्यों को देखते हुए मनुष्य में दैत्य दानव स्तर की अनेकानेक क्षमता सम्भावनाओं का सुनिश्चित अस्तित्व बाँका जा सकता है। वे इसके लिए भी प्रयत्नशील हैं कि किसी प्रकार इन सम्भावनाओं को साकार किया जा सके। अभी मस्तिष्कीय क्षमता भण्डार का मात्र सात प्रतिशत ही समझ और व्यवहार में आया है। शेष ९३ प्रतिशत को भी यदि समझा, जगाया और काम में लाया जा सके तो आज की तुलना में अगले दिनों मनुष्य की क्षमता और गरिमा सहस्रों गुनी अधिक बढ़ जायगी।

इसी मन्दर्भ में काय संरचना के स्थूल अवयवों की कार्य कुशलता की प्रशंसा से एक कदम और आगे बढ़कर अब उसकी सूक्ष्म रचना और उसके प्रत्येक घटक पर इष्टि डालते हैं तो ब्रह्माण्ड में संव्याप्त तिलस्म की तरह इसी छोटी भानमती की पिटारी में भी एक से एक बड़े जादुई कीतूहल प्रकट होते हैं। हृदय, मस्तिष्क, यकृत, वृक्क आदि की संरचना को देखते हुए कहा जाता रहा है कि ऐसा सृजन समस्त मानवों के समन्वित कला-कौशल या नियोजन करने पर भी बन नहीं पड़ेगा। इन दृश्यमान अंग अवयवों से आगे बढ़कर जब रक्त कणों, हारमोनो, एंजाइमों, कोशाणुओं, न्यूरोनों आदि की संरचना क्षमता और सुसम्बद्धता की समन्वित प्रक्रिया पर विचार किया जाता है तो प्रतीत होता है कि उस औसतन साड़े पाँच फुट लम्बे और डेढ़ मन भारी शरीर में भूतनाथ का यक्ष गन्धर्वों वाला कोई जादुई किला है। इसकी एक-एक खड़ी और कड़ी देखने योग्य है। खुली आँखों से न दीख पड़ने वाले यह बाल की नोंक पर दर्जनों की संख्या में बैठ सकने वाली इकाइयाँ इतनी समर्थ और सक्रिय हैं

कि उन्हें जड़ परमाणु की संरचना से कहीं अधिक उच्च-स्तरीय सम्बेदनशील माना जायगा।

जो जाना गया है उससे अतजाना असंख्य गुना है। जो पाया गया उसकी तुलना में वह अत्यधिक है जिसकी अभी मान्यता तो स्थिर हो गई है, पर हस्तगत होने की कड़ा हाथ नहीं लगी है। यह पदार्थ जगत के सम्बन्ध में नहीं चेतना के अदृश्य जगत की ओर संकेत है। पदार्थ जगत की शोध का मोर्चा जमा हुआ है। सहस्रों प्रयोगशालाओं से सम्बद्ध लाखों मूर्धन्य वैज्ञानिक पदार्थ सत्ता के विभिन्न क्षेत्रों का अनुसंधान कर रहे हैं और प्रयत्नशील हैं कि जड़ जगत की क्षमता सम्पदा का जितना दोहन बन पड़े किया जाय। प्रश्न उस अदृश्य जगत का है जो चेतना के साथ सम्बद्ध है। उसे सूक्ष्म लोक कहा जाता है। यह तीन या सात वर्गों में विभाजित किये जाते हैं। इन्हें आयानो स्फीयरो की तरह समीपवर्ती एवं सम्बद्ध ही कहा जा सकता है। काया के तीन शरीर सात आयाम माने गये हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की आध्यात्मिक संरचना और उनके द्वारा उपलब्ध हो सकने वाली विभूतियों का अनुमान लगाने से प्रतीत होता है कि 'जल में मीन पियासी। मोहि लखि-लखि आवे हाँसी।' वाली कबीर की व्यंगोक्ति प्रकारान्तर से अपने ऊपर ही लागू होती है। चेतना क्षेत्र का विस्तार अन्तरंग में भी है और बहिरंग में भी। काया में समस्त देवताओं और लोकों का निवास माना गया है।

मरणोत्तर जीवन जिस स्वर्ग नरक में निवास करते हुए बीतता है वह जीवात्माओं का एक अदृश्य लोक है। उसमें ऐसे ही अदृश्य प्राणी निवास करते हैं जैसे कि इस दृश्य जगत में रहने वाला प्राणि समुदाय। प्रति विश्व, प्रति पदार्थ, प्रति कण की—एन्टीयुनिवर्स की—एन्टी मॉटर की—एन्टी एटम की कभी चर्चा कल्पना थी। अब उनका अस्तित्व मान्यता प्राप्त करने की स्थिति में है। यह अदृश्य जगत का संकेत है। पदार्थ क्षेत्र में काम करने वाले विज्ञान की अब इस चेतनात्मक अदृश्य में प्रवेश करना होगा और इस लक्ष्य तक पहुँचना होगा जिससे मात्र सुविधा सम्बर्धन ही नहीं, आनन्द उल्लास और सुख-शान्ति का विभूति वैभव भी हस्तगत हो सके। ●

अवण्ड-ज्योति

मात्र सुविधा ही नहीं प्रतिभा भी अर्जित करें



यह संगार जड़ और चेतन दो भागों में विभक्त है। दोनों परस्पर मिल-जुलकर रहते हैं। एक दूसरे के पूरक भी हैं। यदि ऐसा न होता तो धरती का यह सुरम्य रूप जो आज है वह बन ही न पड़ा होता। इतने पर भी दोनों की अपनी क्षमता और अपनी-अपनी मर्यादा है। पदार्थ में गति है और चेतन में मति। गति के पीछे कोई उद्देश्य न जुड़े, मति का समन्वय न हो तो वह ऐसे ही निरर्थक परिभ्रमण की खिलवाड़ भर करती रहे। अन्यान्य ग्रह पिण्ड न जाने कब से—न जाने क्यों ऐसे ही अपनी धुरी और कक्षा पर चक्कर काटने में निरत हैं। उनके भीतर का पदार्थ भी ऐसी स्थिति में ऐसे ही निरर्थक लोट-पोट करते हुए अपना समय गुजारना होगा। पर जब गति को मति का दिशा निर्देशन मिलता है तो उसका चमत्कार देखते ही बनता है। जलयान, थलयान, वायुयान इसके साक्षी हैं। प्रयोगशालाओं से लेकर अन्तरिक्ष यानों तक की गतिविधियाँ यह बताती हैं कि शक्ति के पीछे बुद्धि का सहयोग बन पड़ा है।

यही बात मति के बारे में भी है। आकांक्षा, कल्पना, उत्कंठा कुछ भी क्यों न हो पर उसके लिए यदि साधन न मिले तो फिर रंगीली उड़ानें मस्तिष्क की तलैया में ही शेखचिल्ली की तरह लहरों की तरह उठती विलीन होती रहेंगी। वैसे कुछ बन नहीं पड़ेगा, मिल नहीं सकेगा जैसाकि चाहा गया है। चेतना की निजी परिधि तो भावना विचारणा तक सीमित है। उसे बुद्धि कल्पना का रूप देने में अनुभवों की पृष्ठभूमि रहती है। यह अनुभव परिस्थिति-जन्य होते हैं। परिस्थितियाँ हलचलों पर निर्भर हैं। हलचल पदार्थ करता है। इस प्रकार प्रकारान्तर से मन, बुद्धि, चित्त का विकसित एवं व्यवस्थित स्वरूप भी पदार्थ जगत के सहारे ही बन पड़ता है। फिर शरीर तो प्रत्यक्ष पदार्थ ही है। चेतना का मूल स्वरूप जो भी हो उसे प्राणी के रूप में विकसित होने लिए काया की नितान्त आवश्यकता रहती है। सभी जानते हैं कि स्थूल,

सूक्ष्म और कारण शरीरों से छुटकारा मिल जाय तो फिर चेतना का स्वरूप उपनिषद्कार के अनुसार अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, परब्रह्म जैसा बन जाता है। उसकी सत्त्व आनन्द जैसी दिव्यानुभूतियों और देव मानवों जैसी विभूतियाँ शरीर के सहयोग से ही उपलब्ध होती हैं। यह है जड़ चेतन का सुखद सहयोग जिसने अपनी धरती का उस पर निर्वाह करने वाले वनस्पति समुच्चय से लेकर प्राणि समुदाय तक का—अत्यन्त मनोरम कलात्मक स्वरूप विनिर्मित कर दिया है। यदि दोनों पृथक्-पृथक् रहते तो अपना यह भूलोक भी अन्यान्य ग्रह पिण्डों की तरह निस्तब्ध स्थिति में ही निर्वाह कर रहा होता।

जड़ का स्वरूप और उपयोग समझने के कौशल के पदार्थ विज्ञान कहते हैं। उसी की उपलब्धियों को वैज्ञानिकों ने खोजा, पकड़ा और घसीट कर मानवी सुविधा के लिए प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से विज्ञान प्रलय देवता है, मानवी सुविधा के लिए किसी अदृश्य क्षेत्र उतरा देवता। उसी के वरदानों ने मनुष्य को इतने सुख साधनों से सुसम्पन्न किया है जिनके आधार पर प्राणि जगत का मुकुट मणि होने जैसा दावा करता है। विज्ञान पर उसे गर्व है और विश्वास भी। इसी भविष्य में स्वर्गोपम सुविधाओं की कल्पना करते हुए विज्ञान की ओर ही आशा भरी दृष्टि से दीखता है जिसने इतना दिया वह आगे भी देता रह सकता है बच्चा विश्वास कर सकता है कि पात्रता बढ़ने पर पिता उसके लिए वे सभी साधन जुटा देगा जो आवश्यक सामर्थ्य के अन्तर्गत हैं। मनुष्य बच्चा है तो विज्ञान उसका अभिभावक। प्रकृति माता के अमृतोपम दूध को भी मनुष्य प्राणियों की तरह पेट प्रजनन की सुविधा के लिए देकर बहका और भगा दिया होता है। विशिष्ट उपलब्ध है, उसके लिए विज्ञान अभिभावक

अनुग्रह को ही कृतज्ञतापूर्वक सराहा जायगा।

यह उस क्षेत्र की चर्चा हुई जिसे गति, शक्ति और सुविधा साधनों वाला पदार्थ सोपान कहना चाहिए। एक शब्द में इसे उपलब्ध सुविधाओं का आधारभूत कारण कह सकते हैं। जड़ कहलाते हुए भी वह इतना समर्थ है कि मनुष्य की वासना, तृष्णा, ममता को उद्दीप्त करने वाले साधन समुचित मात्रा में जुटाता रहे। यही है उसकी मर्यादा। न वह उससे आगे बढ़ता है, न पीछे हटता है।

अब दूसरे पक्ष चेतना के बारे में समझा जाना चाहिए। उसकी विशेषता है—'मति'। आकांक्षा, कल्पना, विचारणा, आदते उसी के साथ लिपटी रहती हैं। काय-कलेवर के अंग अवयव तो इन भीतरी तलक लिप्साओं के साधन जुटाने भर में लगे रहते हैं। इन्द्रियाँ उस स्तर का रसास्वादन कराने की भूमिका निभाती हैं। चेतना का गुण, धर्म चिन्तन है। तृप्ति, तुष्टि और शान्ति के तथाकथित साधन जुटाने वाला चिन्तन। यहाँ तथाकथित शब्द का उपयोग इसलिए किया गया है कि जिन साधनों को तृप्ति का कारण समझा जाता है वे वस्तुतः वैसे होते नहीं। यहाँ मृगतृष्णा और कस्तूरी भ्रान्ति वाला भटकाव ही आड़े आ जाता है। जो हो चेतना की प्रक्रिया 'चिन्तन' माननी पड़ेगी। और उसके द्वारा अन्तराल की उमंगों को परितृप्त करने वाली दिशाधारा अपनाते रहने की बात माननी पड़ेगी। इस सन्दर्भ में सही निर्णय तक पहुँचाने में मात्र विवेक ही कारण होता है और उसे भी चेतना की उच्चस्तरीय समता में सम्मिलित रखा गया है। प्रज्ञा की सराहना इसी सन्दर्भ में होती है।

विज्ञान का अनुदान है सुविधा। अध्यात्म का वरदान है—प्रतिभा। दोनों को अपनी-अपनी उपयोगिता और आवश्यकता है। इसलिए इनमें से जिसे जिस मात्रा में उपलब्ध करना अभीष्ट हो, उसी क्षेत्र का प्रधान रूप से अवलम्बन अपनाना होता है। सोचने की सुविधा के लिए यहाँ दोनों का वर्गीकरण भर किया जा रहा है किसी को निन्दा, प्रशंसा का प्रश्न ही नहीं है। वरिष्ठता, कनिष्ठता की बात सोचनी हो तो बात दूसरी है।

सुविधा साधनों को उपलब्ध करने के लिए विज्ञान

का आश्रय लेना होगा। पदार्थ अपनी अनगढ़ स्थिति में अधिक उपयोगी नहीं होते। उन्हें उपयोगी बनाने के लिए विज्ञान की प्रक्रिया में होकर गुजरना पड़ता है। न सूखे अन्न से पेट भरता है और न कपास से तन डकता है। खाने योग्य रसोई बनाने और पहनने योग्य परिधान विनिर्मित करने में जिस कुशलता की आवश्यकता पड़ती है—वह विज्ञान है। शरीर का निर्वाह इसी के सहारे होता है। उदर पोषण से लेकर प्रजनन उमंगों और सुरक्षा सुविधा के अन्यान्य साधन इसी प्रक्रिया को अपनाने से सम्भव होते हैं। इसलिए उसका आश्रय लेना उचित भी है और आवश्यक भी। शरीर यात्रा ही लक्ष्य हो तो उस क्षेत्र की उपलब्धियों से भी काम चल सकता है। किन्तु यदि एक कदम और आगे बढ़कर आनन्द, सन्तोष, सम्मान यश, गौरव, उत्कर्ष जैसा कुछ उच्चस्तरीय प्राप्त करना हो तो उसके लिए उस आन्तरिक वरिष्ठता का उपार्जन करना होगा जिसे बोलचाल की भाषा में प्रतिभा कहते हैं। आध्यात्मिक की भाषा में इसे गरिमा कहा जाता है। उसका सीधा सम्बन्ध दृष्टि-कोण, विश्वास, संकल्प, स्मृति, गुण, कर्म, स्वभाव से है। संक्षेप में इसी समुच्चय को व्यक्तित्व भी कहते हैं। व्यक्तित्व के धनी ही अपने-अपने क्षेत्रों की मूर्धन्य भूमिका निभाते हैं।

सुविधा अपनी जगह आवश्यक है और प्रतिभा अपनी जगह। शरीर की आवश्यकताएँ अपनी हैं और आत्मा की अपनी। जब दोनों मिलजुल साथ-साथ रहे और परस्पर गुथ कर जीवनचर्या चला रहे हैं तो आवश्यक यह भी है कि दोनों को समान रूप से प्रसन्न सन्तुष्ट रहने का अवसर मिले। पर वैसा होता नहीं। शरीर दाखता है—चेतन नहीं। सुविधा आवश्यक लगती है और प्रतिभा के लिए उत्साह नहीं दीखता है। इस भूल के कारण मनुष्य पश्चादात पीड़ित की तरह आँधे अंग से ही काम चलाता है और लगड़े, लूले, काने, कुबड़े की तरह अपंग स्थिति में निर्वाह करता है। अच्छा होता समग्रता का स्वरूप, परिणाम और आनन्द समझा गया होता और दोनों ही क्षेत्रों में समान प्रयत्न करते हुए दोनों कदम बढ़ाते हुए सुविधापूर्वक प्रगति के परम लक्ष्य तक पहुँचा

अखण्ड-ज्योति

दिसम्बर १९८३

गया होगा। लोग एक पहिये की गाड़ी लिये फिरते हैं और जब उस पर लदना सम्भव नहीं होता तो खीज और निराशा व्यक्त करते हैं।

सुविधा को वीर्यता दी जाय और सम्पन्नता को ही सब कुछ माना जाय तो भा एक प्रश्न उठता है कि उसका सदुपयोग कैसे बन पड़े? अपव्यय और अनाचार में वैभव का दुरुपयोग कैसे रहे? सर्वविदित है कि निरंकुश सम्पन्नता ही नहीं शिक्षा चतुरता का उपभोक्ता के लिए—सम्पर्क में आने वाले अन्यान्य लोगों के लिए भी विप्लव परिणाम उत्पन्न करती है। आरम्भ में कुछ चमक दिखाकर परिणाम अंधेरे गर्त में गिरा देने जैसा भयावह उत्पन्न करती है। चासनी पर टूट पड़ने वाला मक्खी किस प्रकार अपने पंख पैरों को लपेटती है, मछली कैसे आटे की गोली के प्रलोभन में गला कटाती है, चिड़िया दाने के लालच में किस प्रकार जाल में फँसती और जान गँवाती है उसे सभी जानते हैं। दुर्बुद्धि और समति का समन्वय, व्यक्ति विशेष के लिए उसके परिकर के लिए अन्ततः ऐसे ही दुःखद दुष्परिणाम उत्पन्न करता है। स्पष्ट है कि कौशल, वैभव के साथ वह सुमति भी चाहिए जिसे 'प्रज्ञा' कहते हैं। प्रज्ञा अध्यात्म क्षेत्र की उपलब्धि है।

सही, विपुल और चिरस्थायी वैभव उपार्जन का सुयोग तभी बैठता है जब उसके पीछे गुण, कर्म, स्वभाव की वरिष्ठता, प्रतिभा का सुयोग हो। चोरी, चाण्डाली से कुछ लूट-खसोट लेना एक बात है और पीढ़ियों तक सुखद परिस्थिति परम्परा बनाये रहने वाली उपलब्धियाँ अर्जित करने वाली विशिष्टता दूसरी। किसी को गढ़ा खजाना मिले, लाटरी खुले, आँगन में हुण्डी बरसे, वाप दौलत छोड़ मरे तो उस आकाश से कुबेर की अनुकम्पा बरसाने वाले संयोग को कोई क्या कहे? किन्तु जहाँ तक सही, यशस्वी और चिरस्थायी सफलताओं का प्रश्न है वे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व को संकल्प एवं पराक्रम के बदले ही अर्जित होती है। यह आन्तरिक उत्कृष्टता का, सुसंस्कारों की साधना का परिणाम है। संसार के इतिहास में ऐसे ही महामानवों की यश गाथा स्वर्णक्षरों में चमकती है। बड़े काम करने में बड़े लोग ही समर्थ

होते हैं। इस कथन में इतना और जोड़ा जाना चाहिए कि बड़े लोग व्यक्तित्व सम्पन्नों को कहते हैं। व्यक्तित्व सम्पन्न अर्थात् सदाशयता से भरी-पूरी प्रतिभा।

पदार्थ विज्ञान और अध्यात्म विज्ञान के क्षेत्रों को यथार्थवादा पर्यवेक्षण करने पर प्रतीत होता है कि सुविधा सम्पादन में भौतिक विज्ञान काम आता है। फिर भी उसके सुनियोजन और सदुपयोग के लिए प्रतिभा की आवश्यकता बनी ही रहती है। इसलिए वह विपुल होते हुए भी अपूर्ण ही बना रहता है। इसके विपरीत अध्यात्म उत्कृष्टता पर आधारित प्रतिभा की वह विशेषता है जो पत्थर पर उद्यान लगा सकती है। लातमार कर जमीन से पानी निकाल सकती है। बहुमूल्य प्रखरता के सहारे हर क्षेत्र की सफलताएँ उपार्जित कर सकना सम्भव है।

वैभव अस्थिर है। प्रकृति को उसका एक जगह जमे रहना अस्वीकार है। साथ ही उसे हजम करने वाला समर्थ तन्त्र भी चाहिए। उसके अभाव में उसकी बहुलता भी भारभूत होकर रह जाती है। अध्यात्म अपने आप में पूर्ण है। उसके वरदान भी समग्र हैं। आत्मशोधन और आत्म परिष्कार की दुहरी सफलता इसी क्षेत्र की प्रतिभा द्वारा अर्जित की जाती है। यह प्रत्यक्ष जीवन में अनेकानेक क्षेत्रों को उच्चस्तरीय सफलताएँ दिलाने में अध्यात्म विज्ञान की उपलब्धियों का विवेचन हुआ। रहस्यमयी प्रसुप्त दिव्य क्षमताओं के जागरण और उनके आधार पर चमत्कारी ऋद्धि-सिद्धियों का—स्वर्ग मुक्ति का आनन्द लेने की बात इससे आगे की है। अध्यात्म ही है जो पदार्थ और चेतना के साथ जुड़ी हुई अनेकानेक सम्पत्तियों, सफलताओं एवं विभूतियों से व्यक्ति को सुसम्पन्न बनाने में सुनिश्चित रूप से सफल रहता है।

पदार्थ विज्ञान की शारीरिक सुविधा सम्बन्धन के लिए और अध्यात्म विज्ञान की आन्तरिक प्रतिभा विकसित करने, व्यक्तित्व सम्पन्न बनाने तथा देवोपम ऋद्धि-सिद्धियों से परिपूर्ण बनाने के सम्बन्ध में आवश्यकता इस बात की है कि दोनों का महत्व समझा जाय और उन्हें अपनाने के लिए दूरदर्शितापूर्ण नीति अपनाने की दिशा में प्रयास चल पड़े।

सामयिक समस्याओं के चिरस्थायी समाधान

पदार्थ दृश्यमान होने, शरीरगत सुविधाओं को बढ़ाने, तथा इन्द्रियों को गुदगुदाने की क्षमता से सम्पन्न होने के कारण इन दिनों सभी को प्रिय लगता है। इतना ही नहीं वह अभिरुचि का केन्द्र, आकांक्षा का इष्ट, जीवन का आराध्य तक बन गया है। सभी उसी के पीछे पड़े हैं। उसी को अर्जित करने में सभी का प्रयत्न और कौशल नियोजित है। विज्ञान का तो विषय ही वह है जो प्रत्यक्ष है वही उपकरणों की पकड़ में आता है तथाकथित प्रगति की धुरी साधनों के इर्द-गिर्द ही परिभ्रमण करती रही है। फलतः शोध अनुसन्धान के नाम पर उसी क्षेत्र की खोज-गीन होती रही है। सुविधा सम्बर्धन में सफलता पाने के कारण उसे श्रेय भी मिला है और पुरस्कृत भी किया गया है। प्रगतिशीलता और बुद्धिमत्ता इन दिनों प्रत्यक्ष-वादी सफलताओं की ही चेरी बनकर रह रही है।

पराक्रम हर क्षेत्र को चमत्कृत करता है और उप-लब्धियाँ प्रस्तुत करने में समर्थ होने के कारण सराहा भी जाता है। इस दृष्टि से विज्ञान द्वारा पदार्थ क्षेत्र में किये गये पुरुषार्थ का भी अभिनन्दन होना स्वाभाविक है। इस प्रसन्नता की घड़ी में चिन्ता की बात एक ही रह गई है कि अंकुश के अभाव में समृद्धि के मदोन्मत्त हाथी को दिशा कौन देगा? लगाम न रहने पर यह घोड़ा मालिक को न जाने कहाँ ले पहुँचेगा? नकेल हाथ में न हो तो ऊँट क्या दिशा पकड़ बैठे इसका क्या भरोसा? विना नाय का बौल गाड़ी को लकीर पर ले ही चलेगा इसका निश्चय नहीं। सरकस की चित्र विचित्र जानकारी द्वारा खेल कौतुक दिखाये जाने की बात तभी बनती है जब रिग मास्टर हाथ में हण्टर लिये उन्हें धमकाता और संकेत देता रहे। वह न रहे तो फिर सरकस के दर्शकों की सुरक्षा ईश्वर के हाथ में ही रह जायगी।

पदार्थ दुधारी तलवार है। उसकी उपयोगिता तभी है जब उसके प्रयोग में औचित्य, और अनुशासन का समुचित समावेश रहे अन्यथा सम्पन्नता, विपन्नता से भी

भारी और मँहगी पड़ती है। अशिक्षित, अभावग्रस्त तथा पिछड़े समझे जाने वाले वनवासी किसी के लिए विपत्ति का कारण नहीं बनते। पर बुद्धिमानों, धनवानों, सत्ता-धारियों, कलाकारों ने अपनी समर्थता का दुरुपयोग करके जन साधारण को जो हानि पहुँचाई है उसका लेखा-जोखा सामने रखने पर आँखों के सामने अँधेरा छाता है। विज्ञान ने जिन प्रलयंकर आयुधों का निर्माण करके उद्धतों के हाथ में सौंप दिया है उसे देखते हुए मानवी अस्तित्व ही आतंकित, आशंकित हो रहा है। मासूम बच्चे तक यह कह सकते हैं कि भगवान इस प्रगति को धरती पर से उठालें। हम सब उस पिछड़ेपन के बीच ही गुजारा कर लेंगे जिसमें रोज कुँआ खोदना और रोज पानी पीना पड़ता था। दुर्व्यसनों, अनाचारों, अपराधों का घटाटोप समर्थता और सम्पन्नता के सहारे दैत्य दानव की तरह बढ़ा है। कुचक्रों, पडयन्त्रों को छल प्रपंचों की करतूतें दिनोंदिन गगनचुम्बी बनती चली जा रही हैं। यह बुद्धिमत्ता की ही देन है। यदि सम्पन्नता, बुद्धिमत्ता, समर्थता, कुशलता की भर्त्सना करने को जी न कहे तो फिर उस उच्छृंखलता को आड़े हाथों लेना पड़ेगा जिसने अमृत को विष बनाकर रख दिया। यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि समर्थता तो बढ़े पर उस पर सदुपयोग का अंकुश भी रहे।

विचारणीय यह है कि मनुष्य की स्वतन्त्रता और समर्थता पर अंकुश कौन लगाये? कैसे लगाये? प्रत्यक्ष है कि बाहरी रोकथाम इस सन्दर्भ में असफल न सही दुर्बल और उपहासास्पद भर रही है। कानून, पुलिस, कचहरी, जेल का अंकुश अपराधों की रोकथाम कर सकने में इतना दीन दुर्बल सिद्ध हुआ है कि इसके खर्चीले ढाँचे ढकोसले पर दया आती है। रिश्वत लेने और देने वाले के विरुद्ध कानून है। दहेज और छुआछूत को अपराधों में गिना और दण्डनीय ठहराया गया है। व्यभिचार के विरुद्ध कड़े कानून हैं। कोई भी कुकृत्य ऐसा नहीं है जिसके विरुद्ध दण्ड विधान न हो। न्यायाधीशों की नियुक्ति इसी निमित्त होती है। पुलिस यही देखभाल तो करती है। बन्दीगृहों की इमारतें तो इसी रोकथाम के लिए तो खड़ी हैं। इस संरजाम की आवश्यकता को उप-

योगी मानते हुए भी, जब यह पर्यवेक्षण होता है कि अपराधों के विस्तार में इस प्रतिबन्ध से कितनी रोकथाम हुई तो निराशा भरी गहरी साँस लेते हुए सफलता को नगण्य और असफलता की बहुलता को स्वीकार करना पड़ता है। आज का मनुष्य इतना चतुर है कि वह किसी को भी चकमा दे सकता है। अपने आपको भी, ईश्वर को भी, समाज को भी। फिर शासन के नियन्त्रण तन्त्र की तो विसात ही क्या है जो अपनी ढीली पकड़ से अनाचार को शिकोंजे में कस, सके। नीति मर्यादा के निर्वाह बिना—समाज का व्यवस्थाक्रम कैसे चले ? अनाचार के घुटन भरे वातावरण में कोई भला मानस भी कहाँ तक साँस रोके खड़ा रहे ? तूफानी प्रवाह में किसी हलके-फुलके के पैर कब तक टिके रहें ?

व्यक्ति के दृष्टिकोण में निकृष्टता—स्वभाव में भ्रष्टता और आचरण में दुष्टता का अनुपात बढ़ेगा तो फिर निजी जीवन तथा सामाजिक प्रचलन में शालीनता सुव्यवस्था का स्थिर रहना कठिन है। इस कठिनाई के रहते सर्वत्र सुन्द-उर्पसुन्द की तरह सहोदर भाई भी प्राणघातक आक्रमण करते दृष्टिगोचर होंगे। संगर पुत्रों की उद्दण्डता सर्वविदित है और उसका परिणाम भी किसी से छिपा नहीं है। कृष्ण के वंश गोत्र वाले परस्पर लड़-मरकर ही समाप्त हो गये थे। अब किसी देश, गाँव, वंश, वर्ग का सवाल नहीं रहा। 'प्रगति' की तूफानी गतिशीलता ने मनुष्य समाज में मत्स्य न्याय को—जंगल के कानून को—“जिसकी लाठी तिसकी भैंस” को मानवी रीति-नीति का अंग बनाने का विधिवत् अभियान छोड़ा है। नीतिवाद, कामूवाद, स्वेच्छावाद, अवज्ञावाद उपयोगितावाद जैसे कितने ही दर्शन इस बात का खुला प्रतिपादन करते हैं कि नीति मर्यादाओं का धर्म सदाचार का जो झीना पुराना लबादा बच रहा है उसे भी उतार कर कचरे के ढेर में फेंक दिया जाय। आचरण के क्षेत्र में तो आस्तिक तक नास्तिकों की तुलना में बुरे सिद्ध हो रहे हैं : धर्मात्मा की तुलना में वे कहीं अच्छे सिद्ध हो रहे हैं जो अपने को धार्मिकता का पक्षधर तो नहीं कहते किन्तु भले मनुष्यों जैसा जीवन जीते हैं।

यों धरती पर खम्भ तो लगे नहीं हैं। सदा न तो

सब लोग भले ही होते हैं और न बुरे ही। दोनों का अस्तित्व किसी न किसी रूप में हर स्थान पर हर क्षेत्र में पाया जाता है। प्रश्न बहुलता का है। इन दिनों मनुष्य जहाँ साधनों की दृष्टि से सम्पन्न होता जा रहा है वहाँ उसका दृष्टिकोण, स्वभाव, चरित्र एवं लक्ष्य क्रमशः अधिकाधिक पतनोन्मुख ही बनता जा रहा है। इस प्रवाह की परिणति भी प्रत्यक्ष है। साधनों की बहुलता होते हुए भी व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में विपन्नता ही द्रुतगति से बढ़ती चली जा रही है। दुर्बलता, रूग्णता, चिन्ता, उद्विग्नता, तंगी, असुरक्षा आशंका से जितना आतंकित मनुष्य आज है, उतना कदाचित् इससे पूर्व कभी भी न रहा होगा। बाहर का ढकोसला और भीतर का खोखला किस प्रकार अपना तालमेल बिठा सकते हैं यह विडम्बना देखते ही बनती है। बात बढ़ती जा रही है। आपाधापी, निष्ठुरता और आक्रामकता की बढ़ती हुई दुष्प्रवृत्तियाँ, लगता है कहीं मानवी अस्तित्व और विश्व सौन्दर्य को ही न निगल बैठें।

एक ओर वैभव, दूसरी ओर विनाश। दोनों के मध्य सामान्य बुद्धि के द्वारा कोई कड़ी नहीं जुड़ती। यह पहली उलटी सीधी सहज ही सुलझने वाली भी नहीं है। विसंगतियों के मध्यवर्ती सूत्रों को जोड़ने के लिए मानवी प्रकृति के मर्मस्थल तक पहुँचना होगा और समझना होगा कि व्यक्ति की मूलभूत सत्ता उसकी आस्थाओं पर अवलम्बित है। विशेषतः मानवी गरिमा जिसे प्रकारान्तर से दूरदर्शी विवेकशीलता, चरित्र निष्ठा, उदार सहकारिता आदि नामों से पुकारा जाता है, मानवी व्यक्तित्व ही धुरी है। उसी का स्तर गिरने या उठने से मनुष्य भला बुरा सोचता और बनता है। इस मर्म स्थल तक पहुँचने की सामर्थ्य उन साधनों में भी नहीं है जिनके आधार पर सामान्य जानकारीयों का आदान-प्रदान होता-रहता है। नीति धर्म—सदाचार की शिक्षा देने वालों की कहीं कोई कमी नहीं। इस सन्दर्भ में भाषणों और पुस्तकों की भी कमी नहीं। उतने पर भी उन्हें ध्यान से पढ़ने और श्रद्धा पूर्वक अपनाने वाली पृष्ठभूमि ही नहीं है जो उन परामर्शों पर गौर करे और अपनाने के लिए संकल्प भरी श्रद्धा उभारे। इसमें दोष न प्रचार तन्त्र का है और न

विरोधक विधि व्यवस्था का। दुर्बलता उस आस्था अन्तराल की है जो तत्व दर्शन और साधना प्रयोग का बाद पानी न मिलने के कारण अपनी उर्वरता गँवा बैठे और मरुस्थल जैसा अनगढ़ और शमशान जैसा बीभत्स बनकर रह रही है।

आस्थाएँ क्षेत्र को सुधारने, संभालने और संजोने की जिम्मेदारी एक मात्र जिस विधि व्यवस्था के ऊपर निर्भर है, उसी को अध्यात्म कहा गया है। यह आस्था प्रधान होने से उसी स्तर की है जो सहगामी को विकृतियों से उबार सके। दल-दल में फँसे हाथी को प्रशिक्षित हाथी ही जंजीर से जकड़ कर किनारे तक घसीट लाने में सफल होते हैं। काँटे से काँटा निकलता है। विष से विष मरता है। लाठी को रोकने के लिए लाठी और घूँसे को प्रत्युत्तर देने से ही बन पड़ता है। मानवी आस्था संस्थान को अवांछनीयता से विरत करके और शालीनता का प्रसर बनाने के लिए अध्यात्म विज्ञान में सन्निहित क्रिया प्रक्रिया का अवलम्बन ही एक मात्र उपाय है।

प्रचलित अध्यात्म का स्वरूप अलंकारिता ने कुछ का कुछ कर दिया है। प्रतीकों का अवलम्बन सीढ़ी के सहारे स्तर तक चढ़ने जैसा होता था पर वे भ्रान्तिग्रस्त होकर नाथ्य बन गये हैं। इष्ट कहते हैं जीवन लक्ष्य को। अव उस स्थान पर सस्ते मनुहार को बाँटते असंगत मनोकामना पूरी करने वाले देवी देवता आ विराजे हैं। आत्म परिशोधन के स्थान पर देवता को फुसलाने और उससे उचित अनुचित मनोकामना पूरी करा लेने भर का बाल-विनोद आडम्बरों से लद कर बैठ गया है। यह विडम्बना कितनी ही बड़ी क्यों न हो, उसे अध्यात्म विज्ञान की मान्यता नहीं मिल सकती। तमिस्रा कितनी ही सघन या व्यापक क्यों न हो, ऊषा के मुस्काने भर से उसके पंर उखड़ जाते हैं और अरुणोदय होने पर तो उसका अता-पता भी नहीं मिलता। इन दिनों जादूगरी और ब्रह्म विद्या का एक ही अर्थ बनकर रह गया है। चमत्कार कोतूहल देखने दिखाने वाले धूर्तों और मूखों का उस खुली बारादरी में जमघट लगा रहता है पर यह कोई वास्तविकता थोड़ी है। इसे अधिक से अधिक प्रवचना का प्रपंच भर कह सकते हैं। अध्यात्म विज्ञान

इससे ऊँचा है। वह सुनिश्चित यथार्थता पर अवलम्बित होने के कारण प्रत्यक्ष भी है और तर्क, तथ्य, प्रमाणों पर पूर्णतया आधारित भी।

मनुष्य की दूरदर्शी विवेकशीलता को जगाया जाना आवश्यक है। उसे अपनी गौरव गरिमा का बोध होना चाहिए। साथ ही आस्था क्षेत्र के उस विभूति भण्डार का भी ज्ञान होना चाहिए, जहाँ से मनुष्य में देवत्व का उदय होता है और उतना बन पड़ने पर सर्वत्र ऐसा वातावरण उमड़ पड़ता है जिसे धरती पर स्वर्ग का अवतरण कहा और अनुभव किया जा सके।

न केवल नीति, धर्म सदाचार के सन्दर्भ में मनुष्य को अध्यात्म विज्ञान का अवलम्बन उच्चस्तरीय स्तर तक पहुँचा सकता है वरन् उसे विवेक दृष्टि तथा साहसिकता भी प्रदान कर सकता है जिसके सहारे व्यक्तित्व में सन्निहित अनेकानेक प्रतिभाओं को भा प्रखर परिष्कृत किया जा सके। जड़ पदार्थ को भौतिक विज्ञान ने अनगढ़ स्थिति से अविज्ञान के गर्त से उबारा और मानवी सुविधा सम्पादन की दृष्टि से असाधारण रूप से उपयोगी बनाया है। उसके प्रतिपक्षी या सहयोगी—अध्यात्म विज्ञान को भी प्राचीन काल की तरह इन दिनों अपनी वरिष्ठता सिद्ध करनी है और सिद्ध करना है कि व्यक्तित्व को प्रखर बनाने—स्तर की दृष्टि से असाधारण रूप से समुन्नत बनाने की क्षमता उसमें विद्यमान है।

अध्यात्म एक बड़ी शक्ति है। विज्ञान से भी बड़ी। विज्ञान मात्र सुविधा सम्बर्धन में समर्थ है जबकि अध्यात्म व्यक्ति के अन्तराल में ऐसे तत्वों की प्रतिष्ठापना कर सकने में समर्थ होता है जिसके सहारे विकृतियों के महौल से लड़ सकना और उन्हें पूरी तरह निरस्त कर सकना सम्भव हो सके। सामयिक विकृतियों, समस्याओं, और विभीषिकाओं के समाधान में, उसका अनुपम योगदान हो सकता है। साथ ही उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना का सबसे बड़ा आधार भी उसी के सहारे खड़ा हो सकता है। स्मरण रहे साधनों की बहुलता से नहीं व्यक्तित्वों की पवित्रता और प्रखरता से ही वह माहौल बनेगा जिससे सर्वतोमुखी प्रगति और समृद्धि का विस्तार स्वल्प साधनों के सहारे सम्भव हो सके।



युग साधना का अभिन्न नियम

पंच तत्वों से शरीर बना है और पंच प्राणों से चेतन। तत्व जड़ है और प्राण चेतन। तत्व प्रत्यक्ष है और प्राण परोक्ष। प्रत्यक्षवादी मान्यताएँ पंच तत्वों के दृश्यमान स्वरूप तक उलझकर रह जाती हैं। उनकी रुचि उन्हीं तक सीमित रहती है। जिन्हें सुविधा भर चाहिए उनका पदार्थ के साथ ही तादात्म्य होना स्वाभाविक है। इन दिनों अपनाये गये उथले दृष्टिकोण ने शोध अनुसंधान का, उपार्जन उपयोग का क्षेत्र पदार्थ तक ही सीमाबद्ध कर लिया है। इस एकांगी प्रगति का लाभ वैभव की वृद्धि में तो हुआ है, पर उन उपलब्धियों का सदुपयोग निर्देशन कर सकने वाली दूरदर्शी विवेकशीलता के अभाव में अपव्यय ही होता रहा। फलतः प्रगति से अधिक अवगति पल्ले बँधी। इस भूल की जब चौंकाने वाली परिणति सामने आई तब पता चला कि एक टाँग की दौड़ कितनी थकान भरी निराशाजनक और कष्टकारक होती है।

पुरातन काल के तत्वदर्शी महामनीषियों ने चेतना की वरिष्ठता मानी थी और उसके साथ जुड़े हुए पाँच प्राणों को पाँच प्रमुख देवताओं की संज्ञा देकर उनकी साधना में अपना ध्यान और पुरुषार्थ केन्द्रित किया था। निर्वाह की साधन सामग्री की अपेक्षा तो उनमें भी नहीं की थी, पर इतना अवश्य ध्यान रखा था कि उचित-आवश्यकता पूर्ति के लिए जितना आवश्यक है उतना ही कमाया, जुटाया जाय। अनावश्यक संचय और उद्धत उपयोग में वैभव सुखद नहीं रहता वरन् बिना पके भोजन की तरह उलटा सिर दर्द बनता है। अकारण भार लादने में उपेक्षा दिखाने पर ही यह बन पड़ा कि अपना ध्यान और पुरुषार्थ अन्तःक्षेत्र की विभूतियाँ अर्जित करने में लगा सके व्यक्तित्व के धनी कभी अभावग्रस्त नहीं रहते, कारण वश कुछ कठिनाइयों का सामना भी करना पड़े तो वे उसका साहसपूर्वक प्रतिकार करते हैं अथवा विवशता होने पर उसे धैर्यपूर्वक हँसते-हँसते सह भी लेते हैं। यही मनोभूमि और दिशाधारा रही है अपने

महान पूर्वजों की। फलतः उनमें पाया बहुत और गँवाया कम। जब कि आज सब कुछ गँवाया ही गँवाया जा रहा है। पाने के नाम पर तो बाल विनोद के लिए विनिमय चमकीले गुब्बारों जैसा ही अधूरा उथला हाथ लपक रहा है।

यों अनुसंधान हर क्षेत्र का अपेक्षित है, पर भौतिक और आत्मिक क्षेत्रों की कनिष्ठता, वरिष्ठता का परीक्षण करने पर प्रतीत होता है कि सम्पदाओं की तुलना में विभूतियों का महत्व अत्यधिक है। अन्तःप्रतिभा के आधार पर श्रेय और प्रेय दोनों ही हस्तगत किये जा सकते हैं जबकि पदार्थ सम्पदा विवेक रहित होने पर उलटे विनाश का कारण बनती है। वैसे न हो तो भी वह मन का धन किसी बड़े काम नहीं आता। पेट भरने तन ढकने की तनिक-सी आवश्यकता भर उससे पूर्ण होती है शेष तो दुर्व्यसनों और कुपात्रों की भेंट चढ़ता है। अविवेकी के पास कुबेर जैसा वैभव हो तो भी वह उसे सत्प्रयोजनों में प्रयुक्त करने की उदारता दिखा नहीं सकेगा। ऐसी दशा में सच्चे अर्थों में बुद्धिमान उन्हीं को कहा जायगा जो गुण, कर्म, स्वभाव की, आत्मिक गौरव गरिमा की, विभूति सम्पदा की उपलब्धि में प्रयत्नरत रहते और कहने योग्य सफलताएँ प्राप्त करते हैं।

चेतना का अपना क्षेत्र है। उसे प्रकृति पक्ष से कम विस्तृत समर्थ, सुखद नहीं कहा जा सकता। अपरिचित के लिए तो हीरा का ढेर भी काँच के टुकड़ों जैसा है पर पारखी जानते हैं कि बहुमूल्य रत्न राशि का हाथ लगना कितना बड़ा सौभाग्य होता है। चेतना उसकी परिधि, एवं विभूति सम्पदा का कोई बारापार नहीं। जिन दिनों चेतना की विशिष्टताएँ खोजने और हस्तगत करने के प्रयत्न चलते थे, उन दिनों इस देश के नागरिक हर्षोल्लास भरा जीवन जीते थे। उद्योग और उपार्जन के उतने साधन न होने पर भी सम्पदा से भरे पुरे थे। यह वैभव संसार भर में विख्यात था। लालच भरी दृष्टि लेकर कोलम्बस इसी का पता लगाने निकला

था। कि रास्ता भूल कर अमेरिका जा पहुँचा और बहुत दिन तक उसी को इण्डिया—वहाँ के निवासियों को "रेड इण्डियन" कहता रहा। सामान्य जीवन में इस देश के महामानव अपने को हर दृष्टि से प्रसन्न और सन्तुष्ट करते थे। शिक्षा, उद्योग, चिकित्सा, व्यवस्था आदि में वे इतने प्रवीण पारंगत थे कि उन विभूतियों को उन्हें अन्यत्र पहुँचाने की आवश्यकता पड़ी और विश्व के कोने-कोने में उनको वितरित करने के लिए परिभ्रमण करते रहे। इन्हीं विशेषताओं के कारण उन्हें जगद्गुरु, चक्रवर्ती, स्वर्ग सम्पदाओं के स्वामी एवं देव मानव कहा जाता था।

मानवेत्तर, उच्चस्तरीय शक्तियाँ भी उनके कम अर्जित नहीं की थीं। ऋद्धि-सिद्धियों के भण्डार उनके कोश में भरे पड़े थे। पौराणिक इतिहास का पर्यवेक्षण करने पर प्रतीत होता है कि उन्हें इन्द्रियातीत क्षमताएँ प्राप्त थीं। दिव्य अस्त्रों का, वे प्रयोग करते थे। लोक-लोकान्तरों की यात्रा उनके लिए सरल थी। शाप वरदान की शब्द शक्ति का आश्चर्यजनक प्रयोग करना उन्हें आता था और भी बहुत कुछ ऐसा था, जिसे आज तो अत्युक्ति भी समझा जा सकता है। यह उपार्जन उन्होंने अन्तराल की अदृश्य, अविज्ञात प्रसुप्त शक्तियों को जागृत करके उपलब्ध किया था। अध्यात्म, चेतना का विज्ञान है। उस क्षेत्र की विभूतियों को, भौतिक सम्पदा की तुलना में असंख्यों गुना समर्थ एवं महत्वपूर्ण कहा जायगा।

आज का विज्ञान भी शरीर तन्त्र और मनःसंस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में आश्चर्यजनक शक्तियों को खोजता और उन्हें अद्भुत बताता हुआ आगे बढ़ रहा है। एंजाइम, हार्मोन, जीन्स, सैल्स, अपने भीतर न जाने क्या-क्या अद्भुत छिपाये बैठे हैं। उनकी क्षमता का एक छोटा अंश ही शरीर मात्रा में प्रयुक्त होता है। जिसका इच्छित प्रयोग अभी नहीं हो पाया वह इतना विशाल एवं विराट् है कि उनके सहारे सामान्य शरीरधारी केवल जैसा असामान्य हो सकता है। मनुष्य शरीर एक अच्छा खासा बिजली घर है। उसके अगणित ज्ञान तन्तु उसी के सहारे समस्त शरीर को गतिशील बनाते—स्फूर्ति एवं ऊर्जा प्रदान करते हैं। यह मानवी विद्युत् भण्डार

का नगण्य-सा उपयोग है। जो प्रसुप्त पड़ा है उसको यदि सक्षम किया जा सके तो सिद्ध होगा कि कोई विशाल-काय अणु ऊर्जा संस्थान अपने ही भीतर विद्यमान है। अणु विस्फोटों से उत्पन्न ऊर्जा विकिरण की चर्चा सभी पढ़ते रहते हैं। यदि चेतन जीवाणु के मंचल पड़ने का अनुमान लगाया जा सके तो प्रतीत होगा कि जड़ की तुलना में चेतन जितना समर्थ है उसी अनुदान से परमाणु और जीवाणु की तुलना करते हुए वरिष्ठता-कनिष्ठता का मूल्यांकन किया जा सकता है।

विश्व ब्रह्माण्ड को सूक्ष्म वैभव को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है। इनका प्रतिनिधित्व मानवी सत्ता में अन्तर्हित स्थूल, सूक्ष्म, और कारण शरीर करते हैं। इस प्रकार इस विराट् को सात आयामों में विभक्त किया गया है। यही सात लोक हैं। लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई के तीन आयाम सर्वविदित हैं। आइन्स्टीन के अनुसार टाइम, स्पेश और कॉजेशन भी तीन आयाम हैं। सातवाँ वह है जिसमें दृश्य लोक और अदृश्य लोक परस्पर आदान-प्रदान के लिए खुल जाते हैं। स्थूल, सूक्ष्म में प्रवेश कर सकता है और सूक्ष्म को स्थूल में परिणत कर सकना शक्य होता है। यह आज के सात आयाम पुरातन के सात लोक हैं। इनके साथ सम्बन्ध सूत्र जोड़ लेने वाले को टाइम, स्पेश और कॉजेशन सम्बन्धी व्यवधानों का सामना नहीं करना पड़ता। वह वर्तमान की ही तरह भूतकाल को भी प्रत्यक्ष देख सकता है। इसी प्रकार भावी सम्भावनाओं का पूर्व आभास प्राप्त कर लेने में भी उसे कठिनाई नहीं रहती। स्पेश के आयाम में प्रवेश करने वालों के लिए दूरी नाम की कोई कठिनाई नहीं रहती। वह प्रकाश की गति से भी आत्म सत्ता को यहाँ से वहाँ जा पहुँचाने के लिए प्रशिक्षित कर लेता है।

उपेक्षा और अवज्ञा से कोई भी वस्तु हाथ से चली जाती है। अध्यात्म विज्ञान की पुरातन विधाएँ अब उपलब्ध नहीं रहीं। प्रयोग अभ्यास के अभाव में उनका प्रयोग ही नहीं, दर्शन भी लुप्त हो गया। अब हमें गिनती भूल जाने पर नये सिरे से गिनने जैसी पुनरावृत्ति करनी होगी। लुप्त का तो कुछ लँगड़ा, लूला अतापता भी

अखण्ड-ज्योति

अध्यात्म ग्रन्थों में संकेत रूप से मिल जाता है। उस आधार पर उस भूली कड़ी को जोड़ते समय एक नई कठिनाई और बन गई है कि अध्यात्म विज्ञान वाले सत-युग के आज के कलियुग के बीच इतना लम्बा समय गुजर गया, इतनी तेजी से परिवर्तन हुआ कि शरीर बहिरंग ही उस समय वालों की आकृति से मिलता-जुलता है। संरचना में प्रयुक्त हुई रसायन सम्पदा तथा ऊर्जा का स्तर ही कुछ से कुछ हो गया। सभी जानते हैं कि आणविक विकिरण की चपेट में आने वालों की रासायनिक स्थिति में भारी परिवर्तन होता है और मनुष्य बाहर से सही दीखने पर भी भीतर से विषाक्तता का पिटारा बन जाता है। विषैली, नशीली वस्तुएँ खाते रहने पर भी शरीर विषकन्याओं जैसा बन जाता है जिनके सम्पर्क में आने भर से उपभोक्ता काल की गति में चला जाता था। कितनी ही औषधियों के हानिकारक तत्व पीढ़ियों को अपंग, विकृत बना देते देखे गये हैं। कुछ ऐसा ही माहौल पिछले दिनों बना है। वायु प्रदूषण जल प्रदूषण, कोलाहल कीटनाशक, रासायनिक खाद, आदि कारणों से समूचा धरातल, वनस्पति जगत, जल भण्डार बुरी तरह प्रभावित हुआ है। इन्हीं के सहारे मनुष्य जीता है। यदि वे विषाक्त विकृत होने लगे तो अनायास ही मानवी काया पर उसका अवांछनीय प्रभाव पड़ेगा। ऐसी दशा में वे प्रयोग उस रूप में फलप्रद नहीं हो सकते जिस प्रकार कि प्राचीन काल के निर्मल और प्राण पुंज वातावरण में सफल होते थे। यह बात औषधियों के सम्बन्ध में भी जितनी सही बैठती है उतनी ही अध्यात्म प्रयोग उपचारों और साधना उपक्रमों के सम्बन्ध में भी लागू होता है। अब दोनों ही क्षेत्र नई खोज की अपेक्षा करते हैं।

जिन जड़ी-बूटियों के जो गुण शास्त्रों में लिखे हैं वे अब उस रूप में नहीं मिलते। च्यवन प्राणावलेह से वृद्ध च्यवन ऋषि का युवा होना, या तो मिथ्या वृथान्व है अथवा फिर उन बूटियों में वे गुण नहीं रहे। दूसरी बात ही सही है। भूमि की उर्वरता, बादलों की वर्षा, वायु के प्राण तत्व में कुछ ऐसी गिरावट आदि और उलट-पुलट हुई है कि नाम और आकृति में वनस्पति वर्ग का कलेवर

पूर्ववत् रहते हुए भी भीतर ही भीतर सब कुछ खाद्य हो गया है। फिर उनका उपयोग भी वैसा परिणाम नहीं उत्पन्न कर सकेगा जैसा कि कभी किया करता था। आज द्रव्य गुण विधान की नये सिर से शोध करने की आवश्यकता है।

तथ्यों को देखते हुए आयुर्वेद की वही से आरम्भ होनी चाहिए जहाँ से महर्षि चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि ने की थी। जब काया की सूक्ष्म संरचना भारी उलट-पुलट हो गई। जब वनस्पतियाँ अपने पुरातन गुण धर्म गँवाकर कुछ से कुछ हो गईं तो फिर उनके उपयोग एवं प्रभाव के सम्बन्ध में क्या उस समय जैसा आशा की जा सकती है। आज उस क्षेत्र में नये सिर से अनुसंधान अपेक्षित है। यज्ञ चिकित्सा के परिपेक्ष्य में यही नीति अपनाई गई है और हवन द्रव्यों में प्रयुक्त होने वाली सामग्री तथा समिधाओं के सम्बन्ध में नये सिर से अनुसंधान निर्धारण किये जा रहे हैं।

ऊपर चिकित्सा क्षेत्र के एक व्यवधान एवं समाधान का उदाहरण इसलिए दिया गया है कि अध्यात्म साधनाओं के पुरातन स्वरूप का नये परिपेक्ष्य में वैसा प्रभाव उत्पन्न न करने की कठिनाई का रहस्य समझा जा सके। एक तो यही बाधा कम नहीं थी कि अध्यात्म विज्ञान में दर्शन और प्रयोग का सही एवं सुविस्तृत रूप उपलब्ध नहीं होता। जो मिलता है उससे समग्रता नहीं बनती। कुछ अनुमान आभास जैसा ही हस्तगत होता है। समग्र प्रक्रिया किसी भी प्रयोग की सन्तोषजनक बाल बोल रूप में नहीं मिलती। संकेतों के सहारे इतने गहरे और खतरे से भरे क्षेत्र में कैसे प्रवेश किया जाय। यदि असमंजस तब और भी दूना हो जाता है जब वातावरण और काम संस्थान में अप्रत्याशित उथल-पुथल का तब भी सामने है।

गिनती-गिनना भूलने पर नये सिर से गिनना होता है। वनस्पति औषधियों के सम्बन्ध में ही नहीं अध्यात्म विज्ञान के आधे-अधूरे प्रयोग प्रतिपादनों का भी नये सिर से अनुसंधान निर्धारण करना होगा। युग के अनुरूप परिस्थिति से सम्बद्ध साधना ही अभीष्ट फलदायक हो सकती है। इस प्रक्रिया को 'युग साधना' नाम अधिक उपयुक्त होगा।

सबसे खोखले में भरा गया बहुमूल्य भाण्डागार



काय संरचना के सम्बन्ध में मोटी जानकारी इतनी ही सीखी सिखाई जाती है कि अस्थि, मांस, नाड़ी संस्थान, पाचन तन्त्र, रक्ताभिषरण, मस्तिष्क आदि अवयवों का स्वरूप और क्रिया-कलाप क्या है? इससे आगे चलकर उसकी सूक्ष्म संरचना जानने का जिन्हें अवसर मिलता है वे आश्चर्यचकित रह जाते हैं कि सामान्य से काय कलेवर के प्रत्येक छोटे बड़े घटक का निर्माण कितनी विशिष्टताओं, कुशलताओं और सम्भावनाओं से ओत-प्रोत बनाया गया है। देखने में लिवलिवे अस्थि मज्जे से बने हुए अंग अवयव मांस पिण्ड लगते भर हैं उनके अन्तराल में इतनी विचित्रताएँ—विविधताएँ, क्षमताएँ और सम्भावनाएँ भरी पड़ी हैं कि उनकी महान परिणति का अनुमान लगाने में कोई विशेष कठिनाई नहीं रह जाती।

डॉ० केनिव रांसले की पर्यवेक्षण रिपोर्ट के अनुसार मनुष्य के गुर्दे २०० वर्ष तक, हृदय ३०० वर्ष तक, चमड़ी १००० वर्ष तक, फेंफड़े १५०० वर्ष तक और हड्डियाँ ४००० वर्ष तक जीवित रह सकने योग्य मसाले से बनी हैं। यदि उन्हें सम्भाल कर रखा जाय तो वे इतने समय तक अपना अस्तित्व भली प्रकार बनाए रख सकती हैं। इनके जल्दी खराब होने के कारण दो ही हैं—उनसे लगातार काम लिया जाना और बीच-बीच में मरम्मत का अवसर न मिलना।

सहयोग की भावना के आधार पर ही खरबों कोश मिलकर एक शरीर बनाते हैं। सहयोग के आधार पर ही सारे कोश अपने को ऊतकों में वर्गीकृत कर लेते हैं। ऊतक पूरे सहयोग से अवयव बनाते हैं और अवयव मिलकर एक तन्त्र बनाते हैं। फिर विभिन्न तन्त्रपूर्ण सहयोग से पूरी मानवी काया बनाते हैं। इस प्रकार लगभग साढ़े सात सौ खरब इकाइयों (कोशों) का एक शरीर बनता है।

सहयोग व सहकार शरीर की हर इकाई का गुण

है। अनेकों एंजाइम मिलकर भोजन पचाते हैं। भोजन पचाने में हर एंजाइम जो वस्तुतः एक प्रोटीन होता है, का बनना स्वयं सैकड़ों एंजाइमों पर निर्भर करता है। इस प्रकार मात्र भोजन पचाने में कई सौ एंजाइमों का योगदान होता है। यदि इनमें से कोई भी अपना काम न करे तो शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता।

स्वस्थ शरीर एक ऐसे किले के समान है जिसे घातक से घातक एवं प्रबल सामर्थ्यवान जीवाणु-विषाणु कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। स्वस्थ शरीर की संरचना—पर जब एक दृष्टि डालते हैं तो एक अद्भुत चमत्कारी संस्थान के दर्शन होते हैं। जीवाणु, जो शरीर पर व अन्दर जमे बैठे हैं, से संघर्ष व सहयोग की प्रक्रिया किस प्रकार सम्पन्न होती है, कैसे काया के विभिन्न घटक इन आक्रमणकारियों से जूझते हैं अथवा तालमेल बिठाते हैं—इसकी भी अपने आप में एक गौरव गाथा है।

यदि किसी व्यक्ति का एक गुर्दा या एक फेंफड़ा पूर्ण-रूप से निकाल भी दिया जाये तो भी वह इन परिस्थितियों से तालमेल बिठा लेगा और बचा हुआ दूसरा गुर्दा या फेंफड़ा शरीर का वह सारा काम अकेला कर लेगा जो दो अवयव कर पाते थे। बचा हुआ अवयव फैलकर बड़ा हो जायेगा और सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देगा।

हृदय २५० ग्राम का एक मांस पिण्ड होते हुये भी प्रतिदिन छियानवें हजार किलोमीटर लम्बी रक्त वाहिनियों में सतत रक्त को चलायमान रखता है।

जितना रक्त वह दिन भर में पम्प करता है, उतना १८००० लीटर के एक टैंक को भरने के लिए काफी है। ऐसा अनुमान है कि चालीस वर्ष की उम्र तक यह करीब ३००००० टन रक्त को पम्प कर चुका होता है।

औसतन साठ किलोग्राम के एक व्यक्ति के ७ किलोग्राम वजन की अस्थि शृंखलाओं से युक्त संस्थान, सवा बारह मीटर लम्बे पाचन संस्थान, एवं अगणित कोशों को घेरे

१४ लीटर के करीब स्थान को अपने प्रवाह द्वारा निरन्तर निर्मल बनाये रखना, इस आध पौंड के जीवन्त अंग हृदय का ही कार्य है।

इसकी एक दिन की शक्ति द्वारा दस हजार किलोग्राम वजन एक मीटर की ऊँचाई तक बिना किसी कठिनाई के उठा सकते हैं और यदि मनुष्य की पूरी जिन्दगी के औसत सत्तर वर्ष मात्र ले लिए जायें तो फिर दो लाख टन रक्त को लगभग छियानवें हजार मीटर की ऊँचाई तक चढ़ाया जा सकता है।

यह एक ऐसी ट्रांसपोर्ट व्यवस्था है जिसका कार्यक्षेत्र १ लाख २० हजार किलोमीटर लम्बा है। ५॥ फुट लम्बी काया में इतना बड़ा जंजाल बिखरा पड़ा है जो छह सौ अरब जीवकोश रूपी सदस्यों तक अपना सन्देश पहुँचाता है। सारे विश्व की हवाई उड़ानों के परिपथ की कुल लम्बाई को जोड़ दिया जाये तो भी रक्तवाहिनी नलियों की कुल लम्बाई से कम ही होगा।

एक डबल सेट पम्प एक दिन में ३२५० गैलन पानी फेंकता है, किन्तु उसे दिन भर बिना एक—आध घण्टा विश्राम दिये चलाये खा जायें तो मशीन इतनी गर्म हो जायेगी कि उसके जल उठने या फट जाने का संकट उत्पन्न हो उठेगा। इसीलिए मशीन वाले लोग उसे दिन में एक दो बार विश्राम दे लेते हैं। हमारे शरीर में हृदय ही एक ऐसा शक्ति स्रोत है, जो जीवन भर एक पल को भी विश्राम किये बिना काम करता रहता है, जीवन भर ६ लीटर रक्त सारे शरीर में दौड़ता रहता है। अपनी इस जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए हृदय १ सैकिण्ड की नींद तक नहीं लेता। यह अपने आप में एक कर्मयोगी की स्तुत्य भूमिका है जिसे हम मानवी काया के अतिरिक्त और कहीं नहीं देखते। कभी कहीं कोई स्थान फट जाता या चोट लग जाती है, तो हृदय अपनी कुछ विशेष धमनियों को चलाकर उस स्थान में पहले से बहुत अधिक मात्रा में तब तक रक्त पहुँचाता रहेगा जब तक उतने रक्त की आवश्यकता बनी रहेगी।

मस्तिष्क—सारे जीवन का केन्द्र बिन्दु एवं प्राण है। उसे प्रतिपल शुद्धतम रक्त की आवश्यकता होती है। हृदय उसे शुद्ध से शुद्ध रक्त देता है।

कहने को तो हृदय सारे शरीर को रक्त पम्प करता है। वह ६६ प्रतिशत तो समस्त शरीर को बाँट देता है, पर एक प्रतिशत अपने पोषण के लिए भी बचाकर 'कोरोनरी' धमनियों द्वारा स्वयं का पोषण भी कर लेता है। जीवन जीने की यह स्वर्णिम समन्वय नीति है।

एक धड़कन एक मिनट के ७२ वें भाग में सैकिण्ड के पाँच बटे छ भाग में सम्पन्न होती है। इस अल्प अवधि में ही असंख्य विद्युत तरंगें उस संस्थान से प्रवाहित होती हैं। इन तरंगों के विद्युत आवेशों की इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम के माध्यम से रिकार्ड करके हृदय की स्वास्थ्य परीक्षा की जाती है।

सारे शरीर में रक्त की एक परिक्रमा प्रायः डेढ़ मिनट में पूरी हो जाती है। हृदय और फेंफड़े के बीच की दूरी पार करने में उसे मात्र ६ सैकिण्ड लगते हैं जबकि उसे मस्तिष्क तक रक्त पहुँचने में ८ सैकिण्ड लग जाते हैं। रक्त प्रवाह रुक जाने पर हृदय भी ६ मिनट जी लेता है, पर मस्तिष्क तीन मिनट में ही बुझ जाता है। हृदय फेल होने की मृत्युओं में प्रधान कारण धमनियों से रक्त की सप्लाई रुक जाना ही होता है। औसत दर्जे के मनुष्य शरीर में पाँच से छ लीटर तक खून रहता है। इसमें से ५ लीटर तो निरन्तर गतिशील रहता है और एक लीटर आपत्ति कालीन आवश्यकता के लिए सुरक्षित रहता है। २४ घण्टे में हृदय को १३ हजार लीटर खून का आयात निर्यात करना पड़ता है। १० वर्ष में इतना खून फेंका समेटा जाता है जिसे यदि एक बार भी इकट्ठा कर लिया जाय तो उसे ४०० फुट घेरे की ८० मंजिली टंकी में ही भरा जा सकेगा। इतना श्रम यदि एक बार ही करना पड़े तो उसमें इतनी शक्ति लगानी पड़ेगी जितनी कि दस टन बोझा जमीन से ५० हजार फुट तक उठा ले जाने में लगानी पड़ती है।

रक्त के लाल कण शरीर के प्रत्येक अंश-तन्तु और कोश को आहार एवं आक्सीजन पहुँचाते हैं। मल रूप निकली कार्बनडाइ आक्साइड गैस को ढोकर फेंफड़ों तक ले जाते हैं, ताकि वहाँ से साँस द्वारा उसे बाहर निकाला जा सके।

सफेद कण वस्तुतः कोशाणु हैं। उनकी संख्या कम ही

होती है। ६५० लाल कणों के पीछे एक। इन्हें शत्रु रोगाणुओं से लड़ने वाले सैनिक कहा जा सकता है। शरीर के किसी भाग में यदि रोग कीट हमला कर दें तो यह श्वेत कण उनसे लड़ने को तत्काल जा पहुँचते हैं। साधारणतया प्रति घन मिली मीटर रक्त में ५ से १० हजार तक श्वेत कण होते हैं। लाल रक्त कण इनसे छोटे होते हैं। यदि ३००० की संख्या में उन्हें सीधे एक लाइन में रख दिये जायें तो एक इन्च से भी कम लम्बाई बन सकेंगे। युवा मनुष्य के शरीर में २५०००००००००००० लाल रक्त कण होते हैं वे चार महीने जीवित रहकर मर जाते हैं और उनका स्थान लेने के लिए नये पैदा हो जाते हैं। रक्त की चाल धमनियों में प्रति घण्टा ३५ किलो-मीटर की है।

लाल रक्त कणिकायें प्रायः ४ महीने में लगभग १५०० चक्कर सारे शरीर में लगा देने के बाद बूझी होकर मर जाती हैं। इन २५०० करोड़ लाल रक्त कणों को यदि एक सीधी पंक्ति में सटाकर बिठा दिया जाय तो इतना छोटा आकार रहते हुए भी वे इतनी बड़ी लाइन में होंगे जो समस्त पृथ्वी की चार बार परिक्रमा कर सकें।

हृदय के समान ही फेंफड़े भी आजीवन कभी विश्राम नहीं करते २० से ३० इन्च घन हवा को बार-बार भरते और शरीर को ताजगी प्रदान करते रहते हैं। प्रति मिनट १७ बार के हिसाब से यह आजीवन धौंकते रहते हैं।

शरीर में उत्पन्न दूषित वायु कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस को बाहर निकालना और शुद्ध वायु आक्सीजन को शरीर पोषण के लिए उपलब्ध कराना यह दुहरा उत्तर-दायित्व फेंफड़ों को निवाहना पड़ता है। फेंफड़ों में आँख से भी न दीख पड़ने वाली बहुत पतली वायु नलिकाएँ रहती हैं। इन ४० नलिकाओं के मिलने से एक वायुकोष्ठ गहराई बनता है। यही सघन होकर फेंफड़े का रूप लेते हैं। इनकी संख्या प्रायः १६०० होती है। इन्हें श्वास विभाग के सफाई कर्मचारी भी कहा जा सकता है। इन वायुकोष्ठों की लचक अद्भुत है। इन्हें पूरी तरह फूलने का अवसर मिले तो वे समूचे शरीर से ५५ गुने विस्तार में फैल सकते हैं।

अधः-ज्योति

एक मनुष्य एक मिनट में १७ से २० बार साँस लेता है। प्रत्येक साँस के साथ ३०० से ५०० क्यूबिक सेंटी-मीटर हवा १ पौण्ड वजन की फेंफड़ों में भर जाती है। फेंफड़ों की सूक्ष्म इकाइयाँ बुलबुलों के आकार के वायु कोष्ठ (एल्वियोलाइ) हैं जिनकी संख्या लगभग २५ करोड़ होती है और जिनकी दीवारों का बाहरी क्षेत्रफल साठ वर्ग मीटर होता है। साधारण साँस लेने वाला व्यक्ति जब १०० मीटर की लम्बी दौड़ में भाग लेता है तो एक सौ अस्सी लीटर हवा श्वास के माध्यम से खींचता है। लचीले स्पंज जैसे ऊतकों के बने हुए ये विलक्षण फेंफड़े परिस्थितियों के अनुसार आठ गुना तक फैल जाते हैं।

शरीर का ढोल चमड़ी से मढ़ा है। यह देखने में पिटारी सा लगता है जिनमें भीतर चि विचित्र कबाड़ खाना भरा पड़ा है। किन्तु उस लिफाफे की संरचना पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि वह इतना साधारण नहीं जितना कि दीखता या समझा जाता है। बारीकी समझने के प्रयत्न करने पर प्रतीत होता है कि सामान्य सी दीखने वाली त्वचा कितनी विचित्र—कितनी रहस्यमयी है।

शरीर पर चमड़ी का क्षेत्रफल लगभग २५० वर्ग फुट होता है। वजन ६ पौण्ड। सबसे पतली वह पलकों पर होती है। ०.५ मिलीमीटर। पैर के तलवों में सबसे मोटी होती है—६ मिलीमीटर। साधारणतया उसकी मोटाई ०.३ से ३ मिलीमीटर की होती है। उसमें बारीक-बारीक अगणित छेद होते हैं जो खुर्दबीन की सहायता से देखे जा सकते हैं। इन छेदों से दिन-रात में औसतन १० छटाँक पसीना बाहर निकलता है। गर्मी पड़ने पर या अधिक परिश्रम करने पर जब शरीर का इन्जन गरम हो उठता है तो उसे ठण्डा करने के लिए स्वेद ग्रन्थियाँ तेजी से पसीना बाहर निकालती हैं और वदन ठण्डा कर देती हैं। पर सर्दियों में शरीर को गरम रखने की जरूरत पड़ती है इसलिए वे छेद सिकुड़ जाते हैं। भीतर की गर्मी रुकी रहती है और ठण्ड से बचाव हो जाता है। इस तरह त्वचा की संरचना शरीर को “एअर कन्डीशन” बनाये रहती है।

त्वचा—छिद्र पसीना ही नहीं निकालते, वे एक प्रकार

से साँस भी लेते रहते हैं। वाष्प की तरह कुछ चीजें बाहर निकलती रहती हैं और जरूरत की चीजें भीतर घुसती रहती हैं।

त्वचा के भीतर बिखरे हुए ज्ञान तन्तुओं की लम्बाई ४५ मील कूती गई है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के तन्तु भी हैं जो दृश्य, गन्ध, ध्वनि, दबाव, स्वाद, सर्दी-गर्मी की आँख, नाक, कान, जीभ आदि ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से विशिष्ट प्रकार की अनुभूतियाँ कराने में योगदान करते हैं।

त्वचा में एक विशेष तेल रहता है जो "कोरियम" कहलाता है। शरीर पर इसी चिकनाई की चमक रहने से सौन्दर्य बढ़ता है और तेजस्विता झलकती है। इसी प्रकार त्वचा की रंजक कोशिकाएँ—'मेलानिक' नामक रंग उत्पन्न करती हैं। इन्हीं के कारण गोरा, काला, गेहूँआ, पीला आदि रंग मनुष्य का होता है।

एक वर्ग फुट त्वचा में लगभग ७२ फुट लम्बी तन्त्रिकाएँ जाल की तरह बिछी हुई हैं। इतनी ही जगह में रक्त नलिकाओं की लम्बाई लगभग १२ फुट बैठती है। शरीर की गर्मी को जब बाहर निकालना आवश्यक होता है तो वे फैल जाती हैं और जब ठण्ड लगती है तो भीतर की गर्मी बाहर न निकलने देने से शरीर को गरम बनाए रखने के लिए वे सिकुड़ जाती हैं।

सम्पूर्ण शरीर की त्वचा में लगभग दो लाख स्वेद ग्रन्थियाँ हैं इनमें से पसीने के रूप में शरीर के हानिकारक पदार्थ बराबर बाहर निकलते रहते हैं।

एक वर्ग सेंटीमीटर चमड़ी में १५ तेल ग्रन्थियाँ, १० रंग, ३० लाख कोशिकाएँ, ४ ताप सूचक तन्त्र, २०० दर्द सूचक स्नायु छोर, २५ स्पर्शानुभूति तन्त्र, ४ गज स्नायु, ३ हजार सम्बेदना ग्राहक कोशिकाएँ, १०० स्वेद ग्रन्थि, ३ फुट रक्त वाहिनियाँ होती हैं।

त्वचा का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जिस पर प्रति वर्ग इंच करोड़ों जीवाणु अच्छे मित्र की तरह शान्ति और सौहार्द के वातावरण में मनुष्य के साथ जीवन पर्यन्त न रहते हों। ये जीवाणु शरीर का द्विपक्षीय लाभ करते हैं—एक तो ये सतत् समाप्त होते रहने वाले कोशों को खाकर उनकी सफाई करते हैं, साथ ही अपना पेट भी

भरते हैं, तथा दूसरे ये किसी बाह्य जाति के जीवाणु को घुसने नहीं देते। स्वयं में निरापद इन जीवाणुओं को सहभोजी (कमेन्सल) या सहजीवी (सिम्बियोटिक) कहते हैं।

शरीर रात दिन में १६० से १८० लाख कैलोरी ऊष्मा नित्य बाहर फेंकता रहता है। बिजली के छोटे हीटर भी प्रायः इतना ही तापमान उत्पन्न करते हैं शरीर में यह गर्मी वर्षणात्मक हलचलों से उत्पन्न होती है।

यह एक दो अवयवों की चर्चा हुई। इनके अतिरिक्त गुर्दे, आमाशय, यकृत, प्रजनन तन्त्र, मेरुदण्ड जैसे घटकों पर दृष्टि डाली जाय तो वे सभी अपने आप में एक समूचे तिलस्म जैसे दीखते हैं। मास्तष्क की संरचना इस सबसे अद्भुत है। उसके छोटे घटकों—जीवकोशों, न्यूरानों की बनावट के सम्बन्ध में तो सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों की सहायता से बहुत कुछ जाना जा चुका है परन्तु उनकी गतिविधियों और रहस्यमयी परतों के सम्बन्ध से तो तनिक सी ही जानकारी मिल सकी है। विज्ञान में मस्तिष्कीय क्रिया-कलापों के सम्बन्ध में जो जाना उसे समय की तुलना में सात प्रतिशत ही कहा गया है जो जानना शेष है उसे ९३ प्रतिशत कहना चाहिए। सामान्य व्यवहार में जो अंश काम में आता है—वह स्वल्प है। अतीन्द्रिय क्षमताओं से भरा-पूरा कार्यक्षेत्र जो तिलस्म से भरा है उसे तो अचेतन, अवचेतन, सुपरचेतन कहकर अविज्ञात की संज्ञा में ही धकेल दिया जाता है।

यह काया की भौतिक संरचना के उस भाग की चर्चा हुई जिसे खुली आँखों से नहीं बरन् यन्त्र उपकरणों की सहायता से ही देखा जाना जा सकता है। आत्मा और उसकी क्षमता का क्षेत्र इससे आगे का है। इसी काया उसकी स्थिति उपस्थिति होने के कारण, समूचा तिलस्म और भी अधिक सुविस्तृत एवं रहस्यमय बन जाता है इतने पर भी जो सूक्ष्म आँखों से दीखता है और प्रत्यक्ष क्रिया-कलापों में प्रयुक्त है अत्यन्त ही तुच्छ है। उसकी बाँजारू मूल्य इतना कम है कि यह देखते हुए हैरानी होती है कि इतने सस्ते खोखले में इतना बहुमूल्य भण्डार भरने का और भी अधिक कौतूहल कौतुक किसने किया क्यों किया?

प्राण ऊर्जा अतीन्द्रिय क्षमता

घर में हीटर, कुलर, पंखा, बल्ब, रेडियो, टेलीविजन आदि कितने ही उपयोगी यन्त्र लगे हैं, पर उनकी सार्थकता तभी है जब उनमें विद्युत धारा का समुचित स्तर प्रवाहित हो रहा है। करेन्ट ही न हो, अथवा नगण्य जितनी मात्रा में हो तो फिर वे उपकरण किसी काम न आयेंगे। व्यर्थ ही जगह घेरे पड़े रहेंगे। मनुष्य शरीर में एक से एक महत्वपूर्ण एवं चमत्कारी उपकरण सृष्टा ने फिट करके रखे हैं। उनके लिए समुचित मात्रा में विजली जुटाना उनका काम है जो उसकी उपयोगिता जानते हैं तथा प्रयुक्त होने पर जो मत्परिणाम उत्पन्न होते हैं उनसे परिचित हैं।

सूक्ष्म शरीर की संरचना प्राण ऊर्जा से हुई है। उसके अवयव ही उसी स्तर के प्राण गुच्छकों से बने हैं। वक्र उपत्यिका इसी प्रकार के भँवरों का नाम है। उन्हें माधना द्वारा उत्तेजित किया जाता है तो ये चक्रवातों की तरह उछलने लगते हैं। बुद्धिमत्ता इसमें है कि उन्हें उभारने और सही प्रयोजन में लगाने की कला का ज्ञान अनुभव उपलब्ध हो।

कभी अदृश्य होने और इन्द्रिय यन्त्रों की पकड़ में न आने के कारण उस क्षेत्र पर विश्वास करना और प्रयोग के लिए कदम बढ़ाना कठिन प्रतीत होता था, पर अब वैसी बात नहीं रही। विज्ञान ने स्थूल तक सीमित न रहकर सूक्ष्म में प्रवेश करने का संकल्प किया है। फलतः उसे इन्द्रियातीत क्षेत्र की न केवल जानकारी मिली है, वरन् उपयोगिता समझ में आने पर श्रद्धा भी बढ़ी है।

न्यूयार्क विश्व विद्यालय के डा० रावर्ट बेकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, कि ब्रह्माण्डव्यापी विद्युत चुम्बकीय शक्ति विश्व के प्रत्येक पदार्थ को—जड़-चेतन को—अपने साथ जकड़े हुए है। विश्व की प्रत्येक इकाई उसी मभष्टि की एक घटक है। अस्तु पृथक्ता के बीच सघन एकता विद्यमान है और उस एकता के कारण ही पदार्थों और प्राणियों में दृश्य-अदृश्य आदान-प्रदान होता है। जो क्रम

आयेदिन अनुभव में आता रहता है, वह सामान्य और जो यदा-कदा दीख पड़ता है, वह आसामान्य अतीन्द्रिय या चमत्कारी कहा जाता है।

कुछ ही वर्षों पूर्व की बात है कि प्रकाश विज्ञानी 'एनैस्ट एटो' और उनके सहयोगी वैज्ञानिक डी० गैवर ने होलोग्राफ के एक नये सिद्धान्त का आविष्कार किया, जिसके आधार पर त्रिआयामीय स्तर का छाया चित्रण आँखों से देखे जा सकने की परिकल्पना साकार हुई। भूतकालीन दृश्यों को इन्हीं आँखों से इस प्रकार देखा जा सकने की भी कल्पना की जाने लगी मानों वह घटनाक्रम अभी-अभी ही बिल्कुल सामने घटित हो रहा हो।

विज्ञानी ट्रेवर जेम्स का कहना है—“हमारी आँखें वर्णक्रम की अल्प मात्रा देख पाने में ही समर्थ हैं। हमारी आँख वर्णक्रम के सिर्फ सात रंगों को ही पकड़ पाती है, किन्तु इसमें लाल से लेकर बैंगनी तक केवल सात ही रंग नहीं होते वरन् ऐसे लगभग दस अरब अदृश्य रंग होते हैं जो आँखों को दिखाई नहीं पड़ते। इनकी 'बैव लेंग्य' (आवृत्ति) हमारी आँखों की पकड़ से बाहर होती है।”

“सूक्ष्म जीवाणु हम नंगी आँखों से नहीं देख सकते, किन्तु माइक्रोस्कोप के सहारे उन्हें देखा जा सकता है। उसी प्रकार इन्फ्रारेड और अल्ट्रावायलेट फोटोग्राफी की सहायता से एक ऐसे अदृश्य-चेतनात्मक जगत में पहुँचा जा सकता है जो देश और काल की सीमा से बाहर है।”

आज वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं परावैज्ञानिक इस तथ्य को स्वीकारने लगे हैं कि 'प्रेत' एक कल्पना ही नहीं मानव के अभीतिक जीवन के दीर्घकरण की ही अभिव्यक्ति है, और अल्ट्रावायलेट तकनीक द्वारा ली गई प्रेतों का तस्वीर, अदृश्यता की वैज्ञानिक सम्भावना की ओर इंगित करती है।

विज्ञान इस सम्बन्ध में अपनी दलील देते हुए कहता है कि घृप की अदृश्य तरंगें हमारा शरीर हमारे जीवन एवं नियति तक को प्रभावित करती है। हमारे शरीर

के विद्युत क्षेत्र से उनका सम्पर्क अपवर्तनांक को जन्म दे सकता है। सम्भवतः यही अदृश्यता का कारण है।

“प्रापगेशन ऑफ शार्ट रेडियो वेव्स” नामक अपने शोध प्रबन्ध में हर्वर्ट गोल्डस्टीन ने कहा है—“वायुमण्डल में संव्याप्त इस विद्युतमय जगत की तह के पीछे जो कुछ भी है वह अदृश्य प्राणियों की दुनिया है, जिन्हें आँखों अथवा अत्याधुनिक इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शियों के सहारे भी नहीं देखा जा सकता।”

सुप्रसिद्ध विज्ञान कथा लेखक एच० जी० वेल्स ने अपनी एक पुस्तक ‘द इनविजिबल मेन’ में उन सम्भावनाओं पर प्रकाश डाला है, जिनके अनुसार कोई दृश्य पदार्थ या प्राणी अदृश्य हो सकता है और अदृश्य वस्तुएं दृष्टिगोचर होने लगती हैं। इस विज्ञान को उन्होंने ‘अपवर्तनांक’ रेफ्लेक्टिव इन्डिसेस नाम देकर उसके स्वरूप एवं क्षेत्र का विस्तृत वर्णन किया है। निश्चित ही एक ऐसे सूक्ष्म जगत का अस्तित्व भी है जो अपने इस ज्ञात जगत की तुलना में न केवल अधिक विस्तृत वरन् अधिक शक्तिशाली भी है।

पहली घटना के तथ्य मनीला की यू०पी०आई० नामक प्रामाणिक समाचार एजेन्सी ने जुटाए थे। इस एजेन्सी ने पूरी खोजबीन के पश्चात् एक समाचार प्रकाशित कराया था कि कार्नैलियो क्लोजा नामक एक बारह वर्षीय छात्र जब तब अनायास ही अदृश्य हो जाता है। स्कूल के क्लास से गायब हो जाना और दो-दो तीन-तीन घण्टे बाद वापस लौटना आरम्भ में लड़के की चकमे-बाजी समझा गया किन्तु पीछे उसके दिये गए विवरण पर ध्यान देना पड़ा। वह कहता था कि कोई सम वयस्क परो जैसी लड़की उसे अपने पास बुलाती है और वह रुई की तरह हलका होकर उसके साथ खेलने व उड़ने लगता है। पुलिस ने बहुत खोज की। उस लड़के पर विशेष पहरा भी बिठाया गया। यहाँ तक कि उसे एक कमरे में बन्द भी कर दिया गया परन्तु उसका गायब होना नहीं रुका। पीछे तान्त्रिकों द्वारा मन्त्रोपचार किये जाने से उसका गायब होना बन्द हुआ।

दूसरी घटना का उल्लेख फ्रांसीसी वैज्ञानिक सेलारियर द्वारा किया गया है। उनकी प्रामाणिकता पर या विश्व-

सनीयता पर कोई अंगुली नहीं उठा सकता। घटना पेरिस की एक प्राचीन प्रतिमा से सम्बन्धित है। वैज्ञानिकों का एक दल जब इस प्रतिमा की परीक्षा कर रहा था, तब देखते ही देखते प्रतिमा गायब हो गई और उसके स्थान पर एक-दूसरी विशालकाय मूर्ति आ विराजो जो पहले की तुलना में बड़ी थी।

सन् १९२० में लन्दन के युवा सांसद पिक्टर प्रेसर एक दुकान से बाहर निकलते ही सहसा विलुप्त हो गए। इसी प्रकार पोलैण्ड निवासी पादरी बोनिस्की १३ जुलाई १९५० को एक मित्र के पास जाने के लिए अपने घर से निकले। लगभग ८० मीटर दूर जाकर वे भी हवा में विलीन हो गए। खोज-ढूँढ़ के बहुतेरे प्रयास किए गए किन्तु सब निष्फल रहे।

इन घटनाओं से प्रतीत होता है कि दृश्य जगत के अति निकट कोई अदृश्य लोक है। इन दोनों के बीच आदान-प्रदान चलता रहता है कोई दृश्यमान वस्तु या काया अदृश्य लोक में प्रवेश पाकर अदृश्य हो सकती है। साथ ही यह भी सम्भव है कि अदृश्य लोक के पदार्थ या प्राणी यकायक प्रकट होकर अपना आकस्मिक प्रकटीकरण करते हुए दर्शकों को चमकृत कर सकें।

२३ सितम्बर १९०८ को टेनेसी (अमेरिका) निवासी एक किसान ‘डेविड लाग’ अपने दो मित्रों के साथ शाम को हवाखोरी करने निकले और मित्रों के देखते ही देखते हवा में गायब हो गए। मित्रों ने उस स्थान की काफी छान-बीन की। परन्तु वहाँ झाड़-झंखाड़ और गड्ढे तो क्या कोई छोटी-सी सूराख भी नहीं नजर आई। साथ घूम रहे मित्रों में से एक प्रतिष्ठित न्यायाधीश थे। उनने लाग को खोजने के लिए भरपूर सरकारी प्रयास किए किन्तु सफलता नहीं मिली। आखिरकार हार कर उन्होंने अपनी टिप्पणी में लिखा—“यह एक अविश्वसनीय सत्य घटना है जिसका समाधान खोजने पर भी नहीं मिलता।”

अचानक गायब होने की ऐसी घटनाएँ एक-एक व्यक्ति पर हा नहीं घटीं अपितु ऐसी घटनाएँ भी हैं जिनमें एक साथ सैकड़ों लोग अचानक अदृश्य हो गए और उनका कोई पता न चल सका।

श्री एलन और श्रीमती क्रिस्टीन १९७५ की गर्मी की छुट्टियाँ मनाने उत्तरी ध्रुव की यात्रा पर निकले थे। लैपलैण्ड के एक गिरजाघर के पास से गुजरते हुए श्रीमती क्रिस्टीन चलते हुए श्री एलन से दो-तीन कदम आगे निकल गईं। फिर ज्यों ही उनसे पीछे मुड़कर देखा उनके पति लापता दिखाई दिये। न केवल उनसे स्वयं खोजबीन की अपितु स्थानीय लोगों ने उनकी सहायता के लिए अपने कुत्तों का प्रयोग भी किया परन्तु कुत्ते उस स्थान पर पहुँचकर रुक जाते और भौंकने लगते थे जहाँ से श्री एलन अदृश्य हुए थे। पास ही सेना का कैम्प था। उन लोगों ने भी श्रीमती क्रिस्टीन के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए उनके पति की शोध में विशेषज्ञों की मदद ली। पर सारे प्रयास विफल रहे। वे चार साल तक अपने पति की प्रतीक्षा करती रहीं। अन्ततः १९७९ में उनके अपने पति के यकायक हवा में गायब हो जाने की घटना का हवाला देते हुए लन्दन की अदालत में तलाक का मुकदमा दायर किया। अदालत ने तथ्यों का अवलोकन करते हुई श्री एलन को मृत घोषित करके उनकी पत्नी के विवाह-सम्बन्ध विच्छेद की याचिका को स्वीकृति दे दी।

इन दिनों कितने ही विश्वविद्यालयों में परा मनो-विज्ञान सम्बन्धी शोध कार्य बड़े उत्साहपूर्वक चल रहे हैं। कैलीफोर्निया की स्टेनफोर्ड युनिवर्सिटी, नीदरलैण्ड की प्रोनिंगन युनिवर्सिटी, हारवर्ड युनिवर्सिटी, शिकागो युनिवर्सिटी, ड्यूक युनिवर्सिटी आदि में चल रहे शोध-प्रयत्नों ने इस विज्ञान के नये अध्याय आरम्भ किये हैं और ऐसे प्रमाण एकत्रित किये हैं जिनसे प्रतीत होता है कि मनुष्य में काम चलाऊ व्यवहार बुद्धि के अतिरिक्त और ऐसा भी बहुत कुछ है जिसे असामान्य एवं अद्भुत कहा जा सके। ऐसा क्यों होता है? अचेतन और उप-चेतन मन की विलक्षण क्षमताओं का स्वरूप और कारण समझने में इन शोध प्रयत्नों से बहुत सहायता मिली है और भविष्य में अधिक जान सकने की सम्भावना का स्व-प्रशस्त हुआ है।

अदृश्य जगत की चर्चा कई रूपों में होती है। भूत, प्रेत देवी देवता तो अपने अस्तित्व का प्रमाण और प्रभाव

का परिचय तो देते हैं किन्तु शरीरधारी प्राणियों की तरह दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके अतिरिक्त उनका अस्तित्व काया के अनेक केन्द्रों में शक्ति गुच्छकों की तरह पाया जाता है। वे शरीर से ऋषियों की और मनःसंस्थान से सिद्धियों की दिव्य-विभूतियों का परिचय देते हैं। अतीन्द्रिय क्षमताएँ यही हैं। इनकी अलौकिकता के प्रमाण मिलते तो पहले भी थे पर तब उन्हें भूत की करतूत कह कर जादुई रहस्यवाद की गर्त में धकेल दिया जाता था। पर अब वैसी बात नहीं रही। मनुष्य में पाई जाने वाली अतीन्द्रिय क्षमता अब इतनी स्पष्ट है उसे विज्ञान क्षेत्र ने अपने अनुसंधानों में मूर्धन्य मानना आरम्भ कर दिया है क्योंकि पदार्थ की तुलना में व्यक्ति की सत्ता निश्चित रूप से वरिष्ठ है।

मनुष्य की विभिन्न शरीर क्रिया विज्ञान परक एवं मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं की जाँच की गई तो देखा गया कि सुषुम्ना नाड़ी का केन्द्र, अनेक स्नायविक कोशिकाओं के गुच्छों के साथ जुड़ा एक जैवप्लाज्मीय सक्रियता का केन्द्र है। वायोप्लाज्मिक-सक्रियता “मूड” पर निर्भर देखी गई। उदाहरणार्थ कलाकार किसी कलाकृति के बारे में सोचते समय उच्चस्तरीय चेतना की स्थिति में थे तब उनका “कोरोना” अत्यन्त प्रकाशवान था, जबकि कुण्ठित और तनाव की अवस्था में बहुत क्षीण तथा मन्द उसमें काले धब्बे भी थे।

एक अन्य प्रख्यात वैज्ञानिक जर्मनी के प्रो० विलहेम राइख भी ‘प्राण शरीर’ के अस्तित्व में भारतीय सिद्धान्त का, मानवीय देह की एक प्रतिकृति के अस्तित्व के रूप में समर्थन करते हैं। वे इसे ‘आर्गोन’ कहते हैं यानी “एक जैव विद्युतीय शक्ति-जो नीले रंग की है।”

अब सभी जानते हैं कि प्राण विद्युत पर अनुसंधानरत रूस के विज्ञानवेत्ता ऐमयोन किलियान ने एक ऐसी फोटोग्राफी का आविष्कार कर लिया है जो मानव के हृद-गिर्द होने वाली विद्युतीय हलचलों का भी छायांकन करती है। इससे प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर के साथ-साथ सूक्ष्म शरीर की भी सत्ता विद्यमान है और वह ऐसे पदार्थों से बनी है जो इलेक्ट्रॉनों से बने ठोस पदार्थ की अपेक्षा भिन्न स्तर की है और अदृश्य गतिशील भी।

प्रो० एलीशाय ने अपनी पुस्तक 'मिरेकल्स आफ नेचर' में लिखा है—प्रकाश की तुलना में विचार विद्युत प्रवाह गति कहीं अधिक है। अभी यन्त्रों के द्वारा उसे नापा और देखा नहीं जा सका तो भी यह एक तथ्य है कि विचार मात्र कल्पनाओं का उभार न होकर एक शक्तिशाली पदार्थ है। उसकी गति तथा क्षमता ज्ञात भौतिक शक्तियों में सबसे अधिक है।

पदार्थ वैज्ञानिकों का कथन है कि पृथ्वी अपनी चुम्बकीय शक्ति के सहारे समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड में संव्याप्त अनेकानेक विशेषताओं को आकर्षित करती रहती है। उसकी अपनी सम्पदा तो नगण्य ही है। मनुष्य की अतीन्द्रिय क्षमता में वह चुम्बकत्व है जिसके द्वारा वह दुस्साध्य एवं सामान्यतः असम्भव दीखने वाले कार्यों को भी कर सकता है। वह दूरस्थ घटित घटनाओं का सचित्र आँखों देखा जैसा वर्णन कर सकता है। 'दूर की श्रवणातीत ध्वनियों को भा गमीप की ही भाँति स्पष्ट सुन सकता है।

ध्रुवों के क्षेत्र में चुम्बकीय तूफान उठते रहते हैं, जिनका प्रकाश 'अरोरा बोरीएलिस' तेजोबलय (ध्रुव प्रभा) के रूप में छाया रहता है। इसे पृथ्वी के साथ अन्य ग्रहों की सूक्ष्म हलचलों के मिलन-स्पन्दन की प्रतिक्रिया कह सकते हैं। ठीक इसी प्रकार शरीरगत जीवाणु भी ईथर एवं वायुमंडल में भरे विद्युत प्रवाह से टकराते रहते हैं और विद्युत ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। जीव कोशों में उन धातुओं तथा रसायनों की समुचित मात्रा रहती है जो आघातों से उत्तेजित होकर विद्युत प्रवाह उत्पन्न कर सके।

मानवी-चुम्बक अन्तरिक्ष से बरसने वाले अनेक भले-बुरे अनुदानों को अपनी आन्तरिक स्थिति के अनुरूप स्वीकार-अस्वीकार करता रहता है। वह अपने चुम्बकत्व के आधार पर इस विश्व-ब्रह्माण्ड में से अपनी जैसी सूक्ष्मधारा को एकत्रित कर उपयोग करता रहता है।

प्राण चुम्बकत्व पदार्थ में से अपने उपयोगी भाग को खींचता है—उसे अपने ढाँचे में ढालता है और इस योग्य बनाता है कि चेतना के स्वर में अपना भी ताल बजा सके। किस प्राणी के डिम्ब से किस आकृति-प्रकृति का जीव उत्पन्न हो, इसका निर्धारण मात्र रासायनिक संरचना के आधार पर

नहीं हो जाता, वरन् यह निर्धारण रज, शुक्र कीटों के अन्दर भरी हुई चेतना के द्वारा होता है। इसी चुम्बकत्व से भ्रूण में विशिष्ट स्तर के प्राणियों की आकृति एवं प्रकृति ढलनी शुरू हो जाती है। यदि ऐसा न होता तो संसार में पाये जाने वाले समस्त प्राणी प्रायः एक ही जैसी आकृति-प्रकृति के उत्पन्न होते क्योंकि अणुओं का स्तर प्रायः एक ही प्रकार का है।

शरीर की सामान्य क्षमता तनिक-सी प्रतीत होती है किन्तु यदि उसको दृढ़ता, और जीवट को देखा जाय तो प्रतीत होगा कि उसका प्रत्येक छोटा बड़ा अवयव असाधारण रूप से सामर्थ्यवान है। इसे प्राण शक्ति का चमत्कार जानना चाहिए।

एक व्यक्ति ७० वर्ष का होते-होते १०० टन भोजन खा लेता है। अपने वजन की तुलना में यह १२५० गुना अधिक है। कहा जाता है कि अधिकतर लोगों को तीन दिनों के उपवास की आवश्यकता है। इन्सान वर्ग भोजन किये बहुत दिनों तक जिन्दा रह सकता है। रूसी शोधकर्त्ताओं का कहना है कि एक आदमी के बारे में कहा गया कि उसने ५२ दिनों तक उपवास किया।

७० वर्ष के समय तक में एक औसत आदमी १२ वर्ष सोता है, ६ वर्ष खाता है, और इतना चलता है जितना चाँद तक पहुँचने और इस दुनिया को ६ बार चक्कर लगाने तक है। साफ त्वचा रोगाणुओं को नष्ट करती है। मानवीय त्वचा में ३ करोड़ रोगाणु पाये जाते हैं। इनमें से ७,२०,००० एक घण्टे तक और ७००० दो घण्टों तक जीवित रहते हैं।

शरीर की ही भाँति मनःसंस्थान भी विशिष्ट सामर्थ्य से भरा-पूरा है। प्रश्न केवल जागृति और सुषुप्ति का है। जो अपने मनःसंस्थान के अन्धेरे की गर्त में पड़े केन्द्रों को जगा लेता है, वह अविज्ञात विलक्षण क्षमताओं से सम्पन्न बनता है। बहिरंग की दृष्टि में ये सभी असम्भव-अद्भुत जान पड़ें, परन्तु यह सब प्रकृतियुक्त नियमों पर आधारित गूढ़ विज्ञान जिसे ऋषियों ने जाना व्यवहार में उतारा तथा योगाभ्यास प्रक्रिया द्वारा क्रिया न्वित कर स्वयं को प्राण ऊर्जा से सम्पन्न अतीन्द्रिय सामर्थ्यों से भरापूरा बनाया था। यह राजमार्ग सबके लिये खुला पड़ा है।



मानवी काया की दैर्घ्योपमक्षमताएँ

भारतीय पुराणों में भीम और दुर्योधन, कुम्भकरण और कंस, रावण और वाली-हनुमान और मेघनाद के सुदृढ़ शरीर और वज्र की काया के अनेकों प्रसंग भरे पड़े हैं। किन्तु उन्हें पढ़कर ऐसा लगता है कि ये मात्र अति-शयोक्ति और कोरी गण्य हैं। हाथियों द्वारा रोंदा जाना विष बुझे वाणों का असर न होना क्या रहस्य था। इसके विषय में कोई विज्ञान सम्मत तर्क नहीं मिलता किन्तु इसी शताब्दी के आरम्भ में अमेरिका के एक व्यक्ति रिचर्ड ने यह सिद्ध कर दिया है व वैज्ञानिकों को यह मानने को विवश कर दिया है कि पहले ऐसी सुदृढ़ देह वाले बलशाली योद्धा अवश्य रहे होंगे।

रिचर्ड नामक इस व्यक्ति ने अपनी काया की क्षमता को इतना विकसित कर लिया था कि बड़े से बड़े हथौड़े, भारी वजनी लकड़ी के लट्ठे, हाथी और तोप के गोले, उसका कुछ नहीं बिगाड़ पते थे। म्यूयार्क टाइम्स के सुर्खी भरे समाचारों में रिचर्ड के प्रदर्शन का विवरण प्रकाशित हुआ था। उसमें बताया गया कि ६४ वर्षीय रिचर्ड, जो अच्छा खासा लम्बा, चौड़ा मजबूत था, का शरीर फूट लम्बी और १ फीट लोटी लकड़ी पेट पर है भारत पर भी कुछ नहीं बिगाड़ सकी। सेन फॉर्निस्को के शरीर परकम पहलवान बूसे मारते थक गये किन्तु रिचर्ड ऐसे बैठा रहा जैसे उसकी मालिका की जा रही हो अथवा सहलाया जा रहा हो। १९६४ में १०० पीण्ड वजन तक के गोले को उठाने का उसे अभ्यास था। १९६६ में उसने एक प्रदर्शन में तोप के मुँहाने के सामने खड़े होकर १५० पीण्ड वजन का गोला दगवाया। रिचर्ड अविचलित खड़ा रहा और टेबिलटेनिस की गेंद को तरह गोला ठकराया और छिटक कर अलग जा गिरा। इस प्रकार रिचर्ड को "इस्पात" का आदमी कहा जाने लगा। रिचर्ड को यह विद्या कहीं से हाथ लगी। इसके उत्तर में उसने कहा कि वह बचपन में सन् १९२४-२५ में

हरिद्वार, ऋषिकेश, प्रयाग, और वाराणसी गया जहाँ भारतीय योगियों ने उसे योग साधना बताई जिसके अभ्यास से यह चमत्कारी परिणाम वे सब देख सके हैं।

पोर्टलैण्ड (ओरगन) की ८ वर्षीय लड़की सड़क पर खेल रही थी, खेल में वह इतनी मस्त थी कि उसे पता भी न चला कि उधर से सड़क पीटने वाला इन्जन दौड़ा आ रहा है। वह गिर पड़ी। ३ टन वजन का रोलर पहिया उसके पैरों से निकल गया। इन्जन आगे बढ़कर रुक गया। ड्राइवर यह देखकर भीचका रह गया कि वह लड़की उठकर खड़ी हो गई है और जिस लड़के के साथ खेल रही थी, उसे पकड़कर खिलखिलाकर हँस रही है; जैसे कुछ हुआ ही न हो।

भूय डिग्री से० ग्रे० तापमान-पर कोई व्यक्ति १० मिनट से अधिक नहीं ठहर सकता किन्तु मेजर डोनमैल्ड एक घण्टे तक नंगे बदन, बर्फ के गिला खण्डों पर लेटे रहे और बाद में कपड़े पहनकर चलते बने।

शरीर में इतना लचीलापन है कि वह किसी भी दबाव को सहन कर सकता है। किसी भी ढाँचे में ढल सकता है। किसी भी प्रतिकूलता के लिए अभ्यस्त बनाया जा सकता है। गर्माशय बहुत छोटा होता है, पर परिपक्व भ्रूण को धारण करके समय बह अपने मूल आकार की तुलना में पचास गुना बढ़ चुका होता है। पेट में उतना ही ध्यान है जितने में कि स्थापित अवयव अपनी-अपनी गतिविधियाँ चला सकें और सिकुड़ बटुरकर यथाक्रम बैठे रह सकें। किन्तु जब गर्भ बढ़ता है तो अति आमाशय आदि कम स्थान में गुजारा करते हैं और भ्रूण के लिए पर्याप्त जगह देकर भी अपनी गतिविधियों में कमी नहीं आने देते। समूचे शरीर के सम्बन्ध में यही बात लागू होती है। उसका कोई भी अवयव अभ्यास से अपने सामान्य क्षमता से कई गुने पराक्रम का बिना किसी कठिनाई के देखा जा सकता है।

सन् १९०२ में बंगाल के एक साधु अगस्तिया ने हठ-योग की एक प्रतिज्ञा की। प्रतिज्ञा यह थी कि वह लगा-तार १० वर्ष तक अपना बाया हाथ उठाये ही रहेगा कभी नीचे नहीं गिरायेगा।

और सचमुच ही वह लगातार १० वर्षों तक बिना हिलाये हाथ ऊँचा किये रहे। इस बीच एक चिड़िया ने समझा यह किसी पेड़ की टहनी है सो उसने बड़े मजे के साथ योगी के उठाये हुए हाथ की हथेली पर घोंसला बना लिया और उस पर अण्डे भी दे दिये।

मंसूर क्षेत्र के दक्षिण कनारा जिले का निवासी चालीस वर्षीय वेनारी वेंकट रामन कुछ समय पूर्व एक विचित्र प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध था। उसने अपनी दाढ़ी में मधुमक्खियों का छत्ता जमा रखा था। उसमें मक्खियाँ भली प्रकार जीवन निर्वाह करती थीं।

सरसर्जिंग—अफ्रीका के हंशियों में अपने ओठ बढ़ाने की प्रथा है इसके लिये वे लकड़ी की तश्तरियाँ बनाकर उनसे ओठों को बाँध देते हैं। ओठ जितना बढ़ते जाते हैं बड़ी तश्तरियाँ बाँध दी जाती हैं और इस प्रकार कई स्त्रियाँ तो अपने ओठ १४-१५ इन्च अर्थात् सवा फुट अभ्यास की ढक्कनदार तश्तरी की तरह बढ़ा लेती हैं।

इसका एक उदाहरण विन्ध्याचल के योगी गणेश गिरि ने प्रस्तुत किया। उन्होंने एक बार अपने होठों के आगे ठण्डे वाले समतल मँदानी हिस्से में थोड़ी गीली मिट्टी रख कर उसमें सरसों बो दिये जब तक सरसों उगकर बड़े नहीं हो गये और उनकी जड़ों ने खाल चीर कर अपना स्थान मजबूत नहीं कर लिया तब तक वे धूप में चित्त लेते रहे।

“साहिब अल्लाह शाह” नामक लाहौर का एक मुसलमान फकीर ६०० पौण्ड से भी अधिक वजन की मोटी लोहे की साँकलें पहने रहता था। वृद्ध हो जाने पर भी अपने अभ्यास के कारण इतना वजन भार नहीं बना। पंजाब में वह “साँकलवाला” और जर्जालिंग के नाम से आज भी याद किया जाता है। उसकी मृत्यु के बाद साँकलों की तौल की गई तो वह ६७० पौण्ड निकलीं।

साधारणतया आग अपने सम्पर्क में आने वाले हर पदार्थ को गरम करती और जलाती है। किन्तु ऐसा भी

हो सकता है कि शरीर बड़े तापमान में बिना जले अपनी स्थिति बनाये रह सके। इसी प्रकार जम जाने वाले शीत में भी उसका अस्तित्व लम्बे समय तक बना रहे ऐसी अवरोधक शक्ति का विकास हो सकता है।

दक्षिण जापान के कई बौद्ध मन्दिरों में ऐसे धर्मानुष्ठान होते हैं जिनमें छ' फुट लम्बी दहकती हुई कोयलों से सजाई हुई वेदी पर नंगे पैरों चलकर उसे पार करना पड़ता है। पुरोहित आगे चलता है और अनुयायी पीछे। जो लोग इस रास्ते को हँसते हुए पार कर लेते हैं वे सच्चे जैन विश्वासी माने जाते हैं।

ऐसी अग्नि परीक्षा मलेशिया के कई क्षेत्रों में धर्मानुष्ठानों के रूप में प्रचलित है। होली के अवसर पर भारत के कई स्थानों में पुरोहित लोग जलती हुई ऊँची लपटों में होकर नंगे पाँवों और नंगे शरीर पार निकलने का प्रदर्शन करते हैं।

वाली द्वीप में एक धर्मानुष्ठान होता है—संघ यग। इसमें पुरोहित धधकते आगारों पर नंगे पैरों झूम-झूमकर नाचते हुए निकलते हैं। साथ में नंगे पैर उसी तरह नंगे पैर कुछ प्रशिक्षित बच्चों की मण्डली भी निकलती है।

२४ फरवरी १९७८ को उदयपुर (राजस्थान) में भारतीय लोक कला मण्डल का समारोह था उसमें एक हठयोगी ने जलती आग में प्रवेश किया और घण्टों नृत्य करता रहा। पेट्रोल छिड़क-छिड़क कर कितनी ही बार आग भड़काई जाती रही योगी का नृत्य चलता ही रहा इस प्रदर्शन से पूर्व योगी के शरीर पर किसी विशेष रासायनिक पदार्थ आदि न होने का आशंका का भली प्रकार निराकरण कर लिया गया था।

कभी-कभी ऐसे प्रदर्शन भी देखे गये हैं जिससे मनुष्य को एक अच्छा-खासा दैत्य कहा जा सके। जादू के हाथ की सफाई—नजरबन्दी के खेलों की चर्चा को बाल विनोद कहा जा सकता है किन्तु असंख्य कुशल परीक्षकों को जाँच की चुनौती देते हुए खुले आम किये जाने वाले परीक्षण जहाँ हो चुके और दृश्य को किसी प्रकार की जालसाजी न होने की बात जब घोषित की गई तो उन्हें शरीर की विस्मयकारी विलक्षणता ही कहा जायगा।

सन् १९६८ में फूजी टेलीविजन कम्पनी जापान के

डाइरेक्टर्स भारत आये दिल्ली में उन्हें पता चला कि भारत में एक ऐसा व्यक्ति है जो काँच, लोहा, ताँबा, पिन, कंकड़, पत्थर चाहे जो कुछ खा सकता है तो भी उसकी शारीरिक क्रियाओं में रक्ती भर भी फर्क नहीं पड़ता। उन्होंने उस व्यक्ति को दिल्ली बुलवाया। स्वागत में जहाँ अन्य अतिथि स्वादयुक्त भोजन पाते हैं चाय, नाश्ता करते हैं वहाँ इस बेचारों को कीलें, पिनें, टूटे फ्लास्क और काँच के गिलास खाने को दिये गये। उसने वही बड़े प्रेम से खाये और जापानियों को दंग करके रख दिया। जापानी उन्हें साढ़े तीन माह के लिए जापान ले गये उन पर तरह-तरह के प्रयोग किये पर कोई रहस्य न जान सके आखिर इस मनुष्य दैत्य के पेट में क्या है जो वह मोटर ठेले खा जाने तक की क्षमता रखता है।

क्वीवलेण्ड (यू० एस० ए०) के वैज्ञानिक जार्ज क्रायल ने इस सम्बन्ध में अपना एक शोध प्रबन्ध सन् १९३३ में मैन फिश के मूर्धन्य चिकित्सक परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत किया था। उसमें उनने कहा था कि आवश्यक नहीं कि आहार मात्र मुँह से ही ग्रहण किया और गले से उतार कर पाचन तन्त्र में पचाया ही जाय। वह मांस द्वारा आकाश में फैली हुई वायुभूत खाद्य सामग्री से भी उपलब्ध किया जा सकता है। जीवन धारण के लिए जिस प्रोजोप्लाज्म की जरूरत है उसे उपलब्ध करने के लिए शरीर में अन्य भी ऐसे छिछे या चुम्बक केन्द्र हैं जो बाह्य की पूर्ति प्रचलित खाने और पचाने की प्रक्रिया को पूर्ति अन्य उपायों से कर सकें।

सन् १९७२ में सम्वाददाता निकोलाई स्वितेको के अनुसार खाकौव की श्रीमती ओल्गा दिलज नोवा की ६ वर्षीया पुत्री में विलक्षण सामर्थ्य पाई गई। 'सोवियत विज्ञान एकादमी' के समक्ष उसके परीक्षण के प्रयोग किए गए। आँखों पर पट्टी बँधी हुई अवस्था में उसने बिछी हुई शतरंज की काली एवं सफेद गोठों को अलग-अलग छाँटकर रख दिया। रंग-विरंगे कागजों की कतरनों को रंगों के अनुसार बारी-बारी से छाँटकर अलग कर दिया। परिचित लोगों के फोटो भी पहचान लिए। साथ ही वच्चों की रंग-विरंगी पुस्तकों को हाथ से छूकर पढ़कर भी सुनाया। इतना ही नहीं ५ सेंटीमीटर दूर रखी चीजों

को उसने उँगली के पोरवों की सहायता से पढ़ लिया। कुछ चीजों का सही परिचय तो उसने पैर की उँगलियों से छूकर ही बता दिया।

रूस के वैज्ञानिकों का ध्यान तब से इस दिशा में अधिक गया है और उन्होंने उस सम्बन्ध में लगातार शोध कार्य किया है। मनोविज्ञान शाखा के वरिष्ठ शोधकर्ता प्रो० कोन्स्टाटिन प्लातोनोव ने कहा है—'मानवीय चेतना विद्युत की व्यापकता को देखते हुए इस प्रकार अनुभूति अप्रत्याशित नहीं है। नेत्रों में जो शक्ति काम कर रही है, वही अन्यत्र ज्ञान-तन्तुओं में विद्यमान है, उसे विकसित करने पर मस्तिष्क को वही ही जानकारी मिल सकती है जैसी आँखों से मिलती है।' प्रो० एलेकजोदर स्मिर्नोव ने कहा है—'यह कोई अलौकिक बात नहीं है, वरन् सामान्य विज्ञान सम्मत सिद्धान्तों का ही एक दिल-चस्प प्रतिपादन है। एक अंग की चेतना दूसरे अंगों में भी काम कर सकती है।'।

ऐसे पराक्रमी न केवल श्रम शक्ति के क्षेत्र में चमत्कार दिखाते हैं वरन् उतना पुरुषार्थ उपलब्ध करने के लिए आहार भी बड़ी मात्रा में खाते पचाते देखे गये हैं। इसमें उनकी बलिष्ठता का पता चलता है। बड़ी मात्रा में भोजन करना ही नहीं उसे पचा लेना भी उदरदरी की भीतरी समर्थता है। वही जब बाहरी कामों में जाती है तो सिद्ध करती है कि न केवल खाने में वरन् करने में भी उसका उतना ही बड़ा-बड़ा चमत्कार है। अधिक खाने पचाने को भी यदि एक पुरुषार्थ माना जा सके तो ऐसे उदाहरण भी समय-समय पर दृष्टिगोचर होते रहे हैं। हो सकते हैं।

ग्रीस का क्रोटोना कामिलो नामक पेटू अधिक खा जाने और पचा जाने के लिये प्रसिद्ध था। वह १५० पोण्ड मांस एक दिन में खा जाता था। डेट्रायट निवासी एडिको नामक एक रेलवे मजदूर उसका भी ताऊ निकला। उसने ६० सुअरों के मांस से बनी हुई टिकिया एक दिन में खाकर पचाई। इसके बाद भी उसने कुछ जामुन की कचोडियाँ खाकर ओर दिखाई। उसकी सामान्य खुराक इतनी थी जितना पाँच व्यक्तियों के सामान्य परिवार के

अखण्ड-ज्योति

१७

दिसम्बर १९८२

लिये एक हफ्ते के लिये पर्याप्त होती। उसने शादी इस-लिए नहीं की कि जो कमाता था, वह अपने पेट के लिए ही कम पड़ता। घर वालों को क्या खिलाता। वेतन से एडिको का काम न चलता तो उसके मित्र सहायता करते थे ताकि वह भूखाने न मरे।

दक्षिण अफ्रीका के केपेटाउन नगर में एक प्रीतिभोज था। भोजन सामग्री तैयारी थी। आगन्तुकों को कौतुक सूझा। प्रसिद्ध पेटू मेलायन लकड़हारे को बुलाया गया और तय हुआ कि पहले उसे भोजन कराया जाय बाद में जो बचे और मेहमान लोग बाँट लें। मेलायन आया। उसे भरपेट खा लेने की छूट दी गई। सोलह आदमियों के लिए बनाई गई पूरी सामग्री उसने चट करली और तब उठा जब रसोई घर में कुछ शेष नहीं बचा। अतिथियों को दुबारा बची चाय पीकर भूखे ही वापस लौटना पड़ा।

आहार प्रतिद्वन्दता में उन दिनों फेंगोन ने बाजी मारी। रोम के राजा आकेलियान ने इस सम्बन्ध में एक प्रतियोगिता नियोजित की देखें कौन अधिक खा और पचा सकता है। कितने ही प्रतिद्वन्दी सम्मिलित हुए पर बाजी फेंगोन ने ही जीती। जो शास्त्र का ही एक बड़ा अधिकारी था। उसने भरे बरबार में एक पूरा सुअर—एक भेड़ १०० डबल रोटियाँ तथा एक गीपा शराब गले उतार ली। देखभाल रखे जाने पर पाया कि उसने उतना खाया ही नहीं वरन् पचा भी लिया।

शरीर का प्रचलित क्रम एक चिर अभ्यस्त ढर्रे के अनुसार चलता है। आदिम काल से लेकर उसमें अनेक प्रकार के हेर-फेर हुए हैं। फलतः मनुष्य की प्रकृति और जीवनचर्या पद्धति में भारी परिवर्तन होते रहे हैं। कभी कच्चे मांस पर एवं सूखे बीजों पर गुजारा करने वाला मनुष्य अब इस परिपाटी का अभ्यस्त नहीं रहा अब उसका पेट पकाये आहार का अभ्यस्त है। भविष्य में यदि प्रवाह बढ़े तो यह अभ्यास किसी ऐसी पद्धति को भी अपना सकता है जो इन दिनों असम्भव जैसी प्रतीत होती है।

शरीर की सभी प्रत्यक्ष गतिविधियाँ मन के इशारे पर चलती हैं। रक्तभिषण, श्वास, प्रश्वास, आकुंचन-

प्रकुंचन, निमेष, उन्मेष आदि स्वसंचालित समझी जाने वाली गतिविधियाँ भी अचेतन मन की प्रेरणा पर निर्भर हैं। मन और शरीर का वर्तमान तालमेल एक परमाणु के अनुरूप चल रहा है। वह बदली भी जा सकती है। मन का अंकुश यदि अवयवों, जीवकोशों को दूसरे ढाँचे में ढलने के लिए बाधित करे तो वे उस निर्देश की पालने से इनकार नहीं कर सकते। शरीरगत परमाणुओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का कहना है कि निर्जीव पदार्थों में पाये जाने वाले अणु परमाणुओं की तरह हठीले नहीं हैं। वरन् मन के निर्देशन पर चलने वाले—लचीले स्वभाव के हैं। यदि कोई अपने शरीर की वर्तमान प्रचलन से भिन्न प्रकार की प्रक्रिया चलाने के लिए दबाव डाले तो वह उस अनुशासन से सर्वथा इनकार न करेगा। थोड़ी सी नतुनच के बाद भी उसे स्वीकार कर लेगा।

जीव विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान रिची कार्लडर ने इस तथ्य का प्रतिपादन इस तरह किया है—इलेक्ट्रान हमारा दास है, क्योंकि वे मानवीय प्रतिक्रियाओं में अधिक तेजी से चलते हैं, ये मानवीय नेत्र से भी अधिक देख सकते हैं, मानवीय स्पर्श से अधिक सूझ अनुभव कर सकते हैं। मानवीय कान से अधिक सुन सकते हैं, मस्तिष्क की अपेक्षा शीघ्र और ठीक जिनती कर सकते हैं। हमारे सामने दूर आस्वादन (टेलीवेइशन), दूर श्रवण (टेलीफोन), दूर घ्राण ग्रहण (टेलीआल्फेक्शन), सुगन्धि पदार्थ जैसी सामर्थ्य भी हैं। वह इन्हीं दास इलेक्ट्रानों की लीला है। नियन्त्रण मॉटरों (सर्वोमोटर) के द्वारा इलेक्ट्रान किसी रोलिंग मिल के हजारों टन द्रव्य को पाव भर वजन की तरह उठा देता है, जबकि वह पदार्थ-गत मन है। इसके सहारे यदि मानव के जीवकोशों में अवस्थित मन (चेतना कणों) की शक्ति का अनुमान लगाएँ तो वहाँ तक सम्भवतः हमारी बुद्धि न पहुँचे। इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि ऐसी कोई विधा हो सकती है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अपनी विशेष शक्ति का उपयोग कर अपने आप को अप्रचलित ढाँचे में ढाल सके और अपने प्रभाव क्षेत्र में भारी उथल-पुथल उत्पन्न कर सके।

साहस सबसे बड़ा साधन

रक्तमांस की दृष्टि से सभी अनुष्यों की शरीर संरचना एक जैसी है। मस्तिष्कीय कलपुष्यों की बनावट में भी कोई अन्तर नहीं। सबके अंग अङ्गव्यवस्था की निर्धारित विधि-व्यवस्था के अनुरूप काम करते हैं। इतने पर भी कई साहस के धनी होते हैं और पराक्रम पुरुषार्थ में गवंग औरव समझने के कारण—धैर्य सन्तुलन बनाये रहने के कारण महत्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त करते हैं। असंख्यों के सम्मुख अपने शौर्य साहस का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

इसके विपरीत ऐसे लोगों की भी कमी नहीं जिन पर भीरुता, कायरता क्षुण्णता की गहरी परतें चढ़ी होती हैं। कठिनाई आने से पूर्व ही उनकी बड़ी-बड़ी हलना करते हैं और उस स्वनिर्मित भय भूत से डरकर शरीर कांपने लगते हैं। विपत्ति का सामना करने का असर तो तब आये जब वह सामने प्रकट हो। इससे पूर्व ही जिनकी कुकल्पनाएँ अनिष्ट, अहित और संकट की कल्पना चित्र ही इतने दुष्कर प्रतीत होते हैं जिनके निपटना बंतरणी पार करने की तरह कठिन हो जाता है।

ऐसे लोगों के सामने यदि कहीं सचमुच ही विपत्ति आ बड़ी हो तो समझना चाहिए कि भरण की पूर्ववर्ती 'रिहर्सल' हो गयी। सामना करने, उपाय सोचने वाले शरीर तन्त्र ही अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। ऐसी दशा में उनकी अपनी हड़बड़ी ही एक साथ अनेकों विपत्तियाँ भी बुलाती हैं। विपत्ति का आक्रमण जितना अनिष्ट होता उससे कहीं अधिक अपना भयभीत, उद्विग्न विशुद्ध हो ही अपने पैरों आप-कुल्हाड़ी मारने और सर्वनाश करने का काम पूरा कर चुका होता है।

जहाँ ऐसे डरपोक, कायरों की संसार में भरमार है वहाँ ऐसे साहसी शूर वीरों की भी कमी नहीं जो वास्तविक संकट सामने रहने पर भी मनोबल टूटने नहीं देते। आप खोजते हैं। रास्ता बनाते हैं और सन्तुलित सूझ-बूझ के आधार पर विपत्ति को पार कर लेते हैं। पार करना

सम्भव न हो तो भी मुशीबत से कटकट जूझते हैं। आघात शरीर भर की क्षति कर सकते हैं। साधनों को छीन सकते हैं। परिस्थितियाँ प्रतिकूल कर सकते हैं। इतने पर भी यदि मनोबल बना रहे—साहस न टूटे और अन्तिम समय तक जूझने की हिम्मत बनी रहे तो सामान्य शरीर वाले व्यक्ति भी ऐसे पराक्रम कर दिखाते हैं जिन की गौरव गाथा सुनने वालों के भी होंसले बुलन्द होते हैं।

प्रशंसा ऐसे लोगों की है जिनने अपने साहस और पराक्रम का परिचय दिया। जिनने संकट की घड़ी में धैर्य रखा और मनाने के स्थान पर जूझने का निश्चय किया। ऐसे लोगों के उदाहरण स्मरण भर से पढ़ने-सुनने वालों में उत्साह भरता है और शूर साहसियों की पंक्ति में बढ़ा होने को मन करता है।

फ्रान्स के न्यूस प्रदेश का कप्तान मैलर मुस्टेमे जीवन भर बुद्धों का अग्रिम मोर्चा सम्भालता रहा। उसने १२२ युद्धों में भाग लिया और प्रत्येक में कई-कई बाब लगे। सभी का वह सामना करता रहा और अच्छा होता रहा। उसको मृत्यु १३४६ में हुई। रात को सोते-सोते ही विस्तर पर मर गया। किसी को उसकी कराह या बीमारी का पता भी न चला।

फ्रान्सीसी जनरल वैंपटिस्टे मान्टमरिन की जीवत अपने ढंग की अनोखा है। उनने २० वर्ष की आयु से सेना में प्रवेश लिया ७५ वर्ष की आयु होने पर सन् १७७६ में मरे। इस बीच वे पूरे ५५ वर्ष सेना में विभिन्न पदों पर काम करते रहे। वे युद्ध मोर्चा पर पाँच बार भयंकर रूप से घायल हुए और मृतक घोषित किये जाते रहे। हर बार वे कब्रिस्तान पहुँचने से पूर्व जी उठे। उनका सारा शरीर अनेकों आपरेशनों से बेतरह कटा फँसा था। उनने मरने तक हिम्मत कभी भी नहीं हारी।

आस्ट्रिया का एक जनरल कान्ट एन्टम स्टार ने

अपने देश की सेना में ४७ वर्ष तक काम किया। इस बीच उनने ८९ लड़ाइयाँ लड़ीं। इनमें उन्हें ८४ भयंकर और सैकड़ों छोटे घाव लगे। उनकी मृत्यु युद्ध मोर्चे पर ही हुई। मरते समय उनके चेहरे पर कोई विषाद नहीं था।

समुद्र के आर्कटिक क्षेत्र में एक जहाज पालिरस बर्फ में फँसा और एक चट्टान से टकराकर डूब गया। जीवित बचे १९ नाविकों ने एक बहते हुए हिमि खण्ड पर सवारी गांठी और मछलियाँ पकड़ते खाते हुए उसी चट्टान पर दिन काटते तथा आगे धकेलते हुए बर्फ की चट्टान को नाव बनाकर वे १९६ दिन में १२०० मील की यात्रा करके लैब्रेडोर तट पर पहुँचे और अपने प्राण बचाने में सफल रहे।

मॅक्सिको के निकट प्रशान्त महासागर में लारा नामक एक जलयान गुजर रहा था। आग लग जाने से जहाज समेत सभी कर्मचारी जल गये। मात्र ७ नाविक एक छोटी जीवन नौका पर सवार होकर समुद्र में उतरे। किनारा १५०० मील था। सभी बेतरह थके हुए भी। प्यास से प्राण निकल रहे थे। इसी बीच कुछ ऐसा अद्भुत हुआ कि नाव समुद्र के मध्यवर्ती एक मीठे चश्मे के पास जा पहुँची वहाँ उनने प्यास बुझाई। फिर उनने हिम्मत बाँधी और किनारे की ओर चले। पूरे २३ दिन बिना कुछ खाये-पिये मॅक्सिको तट पर सुरक्षित पहुँचे।

सन् १७८३ में फ्रेंच वैज्ञानिक प्रो० चार्ल्स ने पहला गुब्बारा बनाया। इसके बाद उसकी क्षमता और आकृति में क्रमशः सुधार होता गया। उस समय के विकसित गुब्बारे को, जिसका नाम था "जैपलीन" को लेकर कुछ दुस्साहसी युवक "नौटिलस" नामक पनडुब्बी जहाज पर सवार हो उत्तरी ध्रुव की कठिन यात्रा के लिए चल पड़े। उस योजना का संचालन किया जर्मन डा० उल्सटीन ने। जैपलीन में कुल ५६ आदमी सवार थे—४० चलाते वाले और १६ अनुसंधान करने वाले। गुब्बारा एक छोटे फुटवाल मैदान के बराबर था और गिरजेघर जैसा ऊँचा जिसमें खटोले जैसे लटकनें थीं। यात्री उन्हीं पर बैठते थे।

लेक कांसटैंस से उड़कर यह गुब्बारा जर्मनी, स्वीडेन,

ऐथ्योनिया, फिनलैण्ड, रूस की सीमाएँ पार करते हुए ध्रुव प्रदेश पर पहुँचा। तफोरा अन्तरीय से लेकर सुविस्तृत ध्रुवीय क्षेत्र पर इसने उड़ानें भरी और विचित्र फोटो लिए। लगभग एक सप्ताह तक यह गुब्बारा उड़ा और पनडुब्बी को उससे भी अधिक समय लगाता पड़ा।

कैस्टाइन (स्पेन) के एक सैनिक स्वेटो, जबानी के आरम्भिक दिनों में अपनी प्रेमिका के साथ सम्बद्ध था। रिश्ता निभा नहीं और दोनों अलग हो गये। फिर भी उस योद्धा ने गले में एक लोहे का छल्ला अपनी विछुड़ी प्रेयसी की स्मृति में पहने रखा। वह बाँका लड़ाकू था। उन दिनों भाला प्रधान शस्त्र था। उसने ६८ योद्धाओं के साथ ७२७ भाला आक्रमणों का प्रहार तथा सामना किया। हर संघर्ष में उसने अपने स्मृति चिन्ह पर आँच आने देने के लिए भरी-पूरी सावधानी बरती। अन्तिम बार एक संघर्ष में ऐसी चोट लगी कि न केवल उसका जान गई वरन् यह स्मृति चिन्ह भी टूट कर लाश के साथ ही समाप्त हो गया। उसने दूसरा विवाह नहीं किया था।

एकबार समुद्री यात्रा करते समय रोम के शासक जूलियस सीजर को समुद्री डाकुओं ने आक्रमण करके बंधी कर लिया और होडस द्वीप में बन्दी कर दिया, कि सीजर के सम्बन्धियों को घन भेजने का सन्देश दिया।

इस सम्बन्ध में प्लुटार्क ने लिखा है कि सीजर डाकुओं का बन्दी होते हुए भी एक सम्राट के रोबदीव में रहता जिस किसी डाकू को डाँट देता, वही मुन्न रह जाता सब डाकू उसकी आज्ञा का पालन करते थे। वह उन धमकाते हुए कहता था कि यहाँ से जाने के बाद तुम सबको फाँसी के तख्ते पर चढ़ा दूँगा किन्तु कोई भी चूँ तक नहीं करता था। वहाँ से छुटकारा पाने के लिए उसने वैसा ही किया भी, पर वहाँ तो उसके आत्म की ही महत्ता थी जो गिरफ्तार होकर भी डाकुओं का शासन करता रहा। नैपोलियन कैद से छूटकर भागा उस समय बोर्बोनों की सेनायें सतर्क करदी गईं। सेनापति को आदेश दे दिया गया कि नैपोलियन उधर आये उसे गोली मार दी जाये पर हुआ कुछ और ही

नेपोलियन उधर ही गया, जहाँ सन्नद्ध सेना राइफलें 'लोड' किये खड़ी थी, पर उसके आगे किसी को भी धोड़ा दाबने का साहस नहीं हुआ। सारी सेना फिर नेपोलियन के सेनापतित्व में आ गई।

एथेन्स के वियेडोज ने एक बार शर्त लगाकर नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति हिप्पेनिकोस को सबके सामने थप्पड़ लगा दिया और दूसरे ही दिन उसने उसे इतना प्रसन्न कर लिया कि हिप्पेनिकोस ने अपनी पुत्री का विवाह ही उसके साथ कर दिया। वियेडोज के बारे में कहा जाता है कि उसके पास इतनी प्रबल आत्म-शक्ति थी कि दुश्मन को एक मिनट में मित्र बना सकता था।

समझा जाता है कि लोग साधनों के सहारे उन्नति करते हैं। परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो सफलता मिलती है। इस कथन में इतनी ही सचाई है कि अनुकूलता तथा साधन सुविधा के सहारे प्रगति का पथ अपेक्षाकृत सरल हो जाता है किन्तु बात ऐसी नहीं है कि जिनके पास साधन नहीं अथवा जो अवरोधों से घिरे हैं वे उन्नति कर ही नहीं सकते। सफलता के लक्ष्य तक पहुँचने का सही वस्तुतः मनुष्य की जीवत को है। कोई बिना अधीर प्रतिकूलताओं के साथ तालमेल बिठाते हुए—जो साधन उपलब्ध हैं उन्हीं का सदुपयोग करते हुए—आगे बढ़ता रहा तो कल न सही परसों अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँच सकना सम्भव हो जायगा। ऐसे उदाहरणों से इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। जो गर्द-गुजरी परिस्थितियों से घिरे थे। फिर भी उनने अपने प्रयास पौरुष को प्रज्वली से पकड़े रखा—निरन्तर चलते पट्टे के क्रम में अतिरेक न पड़ने दिया और अभीष्ट सफलता प्राप्त करके अस्त-कृत्य हुए।

ईसाई धर्म प्रचारकों में अग्रणी इवाइटमूडी जवानी एक अनपढ़ रहा। उसकी स्त्री थी तो कम पढ़ी पर चाहती यह थी कि उसका पति पादरी बने। सो उसने उसे पढ़ना-लिखना स्वयं सिखाया और जोर देकर गिरजे का शोक लगाया। वही लगी ही रही और अन्ततः मूडी को धर्म प्रचारक ही बनाकर मानी। पादरा भी ऐसा बिसने ईसाई जगत में असाधारण ख्याति और प्रतिष्ठा प्राप्त की।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का पालन-पोषण उनकी सौतेली माँ ने किया था। गरीबी और कठिनाइयों के बीच दिन काटने वाली उस महिला ने इस बालक को ऐसी प्रेरणाएँ और नसीहतें दी जिनके सहारे बच्चे की समझ और शिक्षा ही नहीं, आत्मा भी ऊँची उठती चली गई और वह क्रमिक प्रगति के पथ पर चलते हुए अमेरिका का राष्ट्रपति ही नहीं विश्व के महामानवों में से एक बना।

महान वैज्ञानिक टामस अल्वा एडीसन बचपन में अत्यन्त मन्द बुद्धि थे। पढ़ने में उनकी अक्ल चलती ही न थी। सो अध्यापक ने बच्चे के हाथों अभिभावकों को पत्र भेजा। इसे स्कूल से उठा लें, मन्द बुद्धि होने के कारण वह पढ़ न सकेगा। बच्चे की माँ ने भारी आँखों और भारी मन से पत्र को पढ़ा। बच्चे का दुलारा और छाती से चिपका कर कहा—“मेरे बच्चे, तुम मन्द बुद्धि नहीं हो सकते। मैं स्वयं ही तुम्हें पढ़ाऊँगी।” बच्चे को स्कूल से उठा लिया गया और उसकी माँ ने पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम सभी के सामने है। बच्चा विश्व के मूर्धन्य वैज्ञानिकों में से एक बना।

जापान के मुसाशी प्रान्त का निवासी हुनावा हाकोची सात वर्ष की आयु में ही अन्धा हो गया था। किन्तु उसने अपनी मस्तिष्कीय चेतना को इतना प्रखर बनाया था कि ४,००,००० इस्तलिफ की विषय सूची तैयार कर सकता था। कहते हैं वह अंधेरे में भी पढ़ सकता था। उसने एक ऐसा पुस्तक संकलित की जिसके २८२० खण्ड हैं। ऐसी विशाल पुस्तक आज तक दुनिया में किसी ने भी नहीं लिखी। उसने बागावसी में एक स्कूल भी खोला जिसमें जापानी साहित्य का अध्यापन वह स्वयं किया करता था।

इस प्रकार की क्षमताएँ बीज रूप से होती सभी में हैं, पर उन्हें जागने, प्रखर बनाने के लिए हर किसी को साहस, संकल्प और अध्यवसाय काम में लाना पड़ता है। मनस्वी ही जीतते हैं। आन्तरिक क्षेत्र की ओर बाह्य जगत की समस्त सफलताएँ साहसिक पुरुषार्थ पर ही निर्भर हैं।



इतर की दिवी क्षमताओं का प्रत्यक्षदर्शक उभार

काया पर इच्छा शक्ति का समग्र नियन्त्रण कितना उपयोगी एवं कितना महत्वपूर्ण है इसका अनुभव तब होता है जब इस आधार पर उपाजित की गई क्षमता को अतिरिक्त क्षमता सम्पादन के रूप में हस्तगत किया जाता है। सर्वविदित है कि सामर्थ्य के बदले ही सुविधा साधन खरीदे जाते हैं। सामर्थ्य के नाम पर मनुष्य में समर्पित शरीर बल और बुद्धिबल ही अनुभव में आता और प्रयुक्त होता है। इन दोनों क्षेत्रों की व्यापकता असीम है। उस पर जितना नियन्त्रण हस्तगत होता है उतनी ही विशिष्ट क्षमता का वैभव मनुष्य को ऐश्वर्यवान बनाता जाता है। इस आधार पर वह चाहे तो ऐसे काम कर सकता है जैसे कि सामान्य लोगों के लिए अशक्य ही समझे जाते हैं।

इस स्तर की सफलताएँ न कठिन हैं न सुस्तर। अनवरत प्रयत्न करने पर कोई भी धैर्यवान साहसी उन्हें उपलब्ध कर सकता है। ऐसा होते देखा भी गया है। कई व्यक्तियों में इस स्तर की दिवी क्षमताएँ पूर्व संचित भी होती हैं। वे अनायास भी जग जाती हैं अथवा थोड़े से प्रयत्न से इतनी बड़ी सफलता सामने ला खड़ी करती हैं कि देखने वाले आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

एजली इटली के मोची का लड़का था किन्तु घर से भागकर वह किसी जहाज कम्पनी में नौकर हो गया। जहाँ वह तैरना सीख गया। इसी एजली के कारनामे ऐसे रहे कि कोई भी अमेरिका का ऐसा खबरार अछूता न रहा, जिसने उसके करतब न छापे हों। एजली तैराकी में इतना सिद्ध हो गया कि उसे "मैन आफ़ काब" के नाम से पुकारा जाने लगा। घंटों पानी में रहना, पर बिना हाथ पैर हिलाए, तैरते रहना, हाथ पैर कुर्सी से बाँधकर समुद्र में फेंका जाने पर भी कुछ न होना—अपने आप में विलक्षण है। मनोपत्थर लोहा बाँधकर उसे पानी में फेंका गया किन्तु एजली मजे में तैरता रहा, डूबा नहीं। पन्द्रह-पन्द्रह घण्टे तैरते रहकर एजली ने बताया कि

वह कोई विलक्षण मनुष्य है सामान्य नहीं।

क्यूबा में रहने वाला सेनर एवेलिनो पेरेज नामक व्यक्ति की यह विशेषता थी कि वह अपनी इच्छानुसार अपनी एक आँख या एक साथ दोनों आँखों की पुतलियों को कोटर से दो इंच बाहर निकालकर वापस यथास्था बैठा लेता था और देखने की शक्ति में किसी तरह का दबाव भी नहीं पड़ता था।

केन्या के सम्बलु नामक व्यक्ति २८ वर्ष का था, उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि खाना-पीना, उट्टी-मेला सब खड़े ही खड़े किया जाय। अब तक उसे ३० वर्ष गये और सचमुच में वह जिन्दगी भर कभी बैठा नहीं लेटने या खड़े रहने की प्रतिज्ञा मृत्यु पर्यन्त निवाहने के अब उसकी सामान्य आदत बन गई है। जबकि सामान्य व्यक्तियों के लिये उसकी जगह भी कम विश्रमयकाय नहीं होगी।

क्रान्स के सुप्रसिद्ध फिज्ज अभिनेता पितरी मिसी जहाँ अभिनय सम्बन्धी अनेक विशेषतायें थीं वहाँ उनके कई अभूतपूर्व चमत्कारिक विशेषतायें भी थीं। वह अपने इच्छानुसार ही शरीर के किसी भी हिस्से का कोई भी भाग हिला सकता था। बाल की नोक को बड़ा कर सकता था उन्हें पानी और बाँधी के कारण गिरी फल की तरह लिटा सकता था, इतना ही नहीं कोमल सपाट बालों को वह जब चाहे अपनी इच्छा शक्ति द्वारा ही घुँघराले बना सकता था।

साम्राज्ञी मेरी लुईस अपनी इच्छानुसार अपने कपड़े को बिना हाथ से छूये किसी भी दिशा में मोड़ सकती थी और आगे पीछे हिला सकती थी।

एक फ्रांसीसी अभिनेता अपनी इच्छानुसार अपने बालों को घुमा सकता था। बालों को गिराने उठाने और घुँघराले बनाने की क्रिया इच्छानुसार कर सकने की यह अभूत क्षमता का प्रदर्शन करके वह धन भी कमाता था। एक बाल को घुँघराला और ठीक उसी की बगल में उसे

हुए दूसरे बाल को चपटा कर देना इसका अति आश्चर्य-जनक करतब था। डाक्टरों ने उसका परीक्षण किया और प्रो० आगस्ट कैंबेनीज ने बताया कि उसने शिर त्वचा की मांस पेशियों तथा तन्तुओं को अपनी इच्छा शक्ति के आधार पर असाधारण रूप से विकसित और सम्बेदन-शील कर लिया है।

घटना सन् १९०८ की है। सर कार्नरॉश को हाउस आफ कमन्स में विरोधी दल के विरुद्ध मतदान में भाग लेने जाना आवश्यक था किन्तु अस्पताल के डाक्टरों ने बीमारी की गम्भीरता को देखते हुए उन्हें जाने की अनुमति नहीं दी अतः हार्दिक आकांक्षा रहते हुए भी कार्नरॉश को नहीं जाने दिया। किन्तु हाउस आफ लार्डस् के सदन में कितने ही सहयोगी सदस्यों ने देखा कि अपनी सीट पर बैठे कार्नरॉश मतदान कर रहे हैं उनका मत गिना भी गया। दूसरी ओर एक डॉक्टर का ही नहीं पूरी टीम का कहना है कि कार्नरॉश विस्तर से हिलने लायक ही नहीं थे। उठना, जाना तो बहुत दूर की बात है।

स्वामी विवेकानन्द ने विना अन्न, जल के मुद्गरों से जीवित "पौहारी बाबा" का विवरण प्रकाशित किया था। आज भी कई हठयोगी समाधि लेकर गुफा में बन्द हो जाते हैं और लम्बी अवधि तक विना अन्न, जल एवं हवा के जीवित रहते हैं। जिस स्थिति में बैठे थे उसी में बने रहते हैं। मल-मूत्र विसर्जन करने एवं सोने उठने की उन्हें कुछ भी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। कितने ही हठयोगी रक्त संचार एवं हृदय की धड़कन बन्द करके भी जीवित रहने के प्रमाण विशेषज्ञों के परीक्षण के साथ दे चुके हैं। सामान्य मनुष्य जीवन से कई गुनी अधिक आयु वाले तथा असह्य शीत में निर्द्वन्द्व निवास करने वाले योगी अभी भी विद्यमान हैं।

काशी के प्रसिद्ध सिद्धयोगी स्वामी विशुद्धानन्द ने एक बार अपनी इच्छा-शक्ति का प्रदर्शन यों किया—
"अपने शिष्यों को अपनी-अपनी मुट्ठी में इच्छित वस्तु के आ जाने की इच्छा करने को, कहा। शिष्यों ने वैसा किया परन्तु कोई वस्तु नहीं आई। तब उन्होंने कहा अभी केवल तुम्हारी इच्छा ही थी अब मैं शक्ति का संचार

करता हूँ। इस बार सभी शिष्यों की मुट्ठियों में उनकी इच्छित वस्तु आ गई थी। स्वामीजी ने बताया कि यह मात्र संकल्प शक्ति की सिद्धि है जो हर व्यक्ति सामान्य क्रम में अर्जित कर सकता है। उसमें गुह्य का रहस्य जैसी कोई बात नहीं।"

स्वामी विशुद्धानन्द जी के बारे में कहा जाता है कि वे हाथ रगड़ कर मन चाहे पुष्पों की सुगन्ध उत्पन्न कर देते थे। अनेक शिष्यों, द्रष्टा अनेक प्रकार की सुगन्धियों की फरमाइश करना और तत्काल वैसी ही उत्पन्न हो जाना कम आश्चर्यजनक नहीं था। एक वस्तु को दूसरे रूप में परिवर्तित करने की विद्या को वे सूर्य विद्या बताने थे उन्होंने उसे प्रामाणित भी किया था। उन्ने एक फूल उठाया और उसकी प्रत्येक पंखुड़ी से एक-एक अलग फूल उत्पन्न कर दिया। रुई के टुकड़े को सफेद से लाल रंग का और फिर पत्थर जैसा कठोर बना दिया। खजूर के हरे भरे पत्ते को उन्होंने पत्थर जैसा बना दिया। स्वामी जी का कहना था कि यह कोई जादू नहीं विशुद्ध विज्ञान है। सूर्य की सूक्ष्म शक्ति के साथ यदि साधना द्वारा सम्पर्क बना लिया जाय तो उसके सहारे प्रकृति के पदार्थों में हेर-फेर करने की विद्या करतलगत हो सकती है।

पाओला के सेण्ट फ्रान्सिस रात्रि में प्रार्थना के समय आकाश में उठ जाते थे। नेप्स के राजा ने एक बार उन्हें अपने यहाँ आमन्त्रित किया। रात्रि को राजा ने दरवाजे के छेद से देखा तो आश्चर्यचकित रह गए। सेण्ट फ्रान्सिस प्रार्थना कर रहे थे और एक प्रकाश पुंज उन्हें घेरे हुए था एवं शरीर मेज से कई फुट ऊँचा आकाश में अवस्थित था।

दाराशिकोह ने "ओलियों के जीवन-वृत्तान्त" में मियाँ मार की अलौकिक सिद्धियों के बारे में उल्लेख करते हुए लिखा है कि वे कभी-कभी लाहौर से आकाश मार्ग द्वारा 'हिजाद' जाते थे। रात्रि व्यतीत करके पुनः सूर्योदय से पूर्व ही लाहौर वापस लौट आते थे। शेख अब्दुल कादिर एक बार व्याख्यान करते समय अचानक शून्य में ऊपर उठ गए। व्याख्यान में उपस्थित हजारों लोगों ने इस घटना को देखा। ऊपर कुछ देर ठहरने के बाद पुनः अपने स्थान पर आ विराजे। इस आकस्मिक

घटना का स्पष्टीकरण उन्होंने स्वयं देते हुए कहा—“मुझे अचानक सन्त ‘खिदिर’ जाते-दिखाई दिए। आकाश मार्ग में जाकर उन्हें अभिवादन करके व्याख्यान सुनने के लिए आमन्त्रित किया।”

फ्रांस में प्रथम विश्व युद्ध के बाद जूलस रोमैन ने सैकड़ों अन्धे व्यक्तियों पर दृष्टि सम्बन्धी, प्रयोग-परीक्षण किये तो पाया कि उनमें से कुछ अन्धकार और प्रकाश की उपस्थिति को अत्यन्त दक्षतापूर्वक बता सकने में समर्थ थे।

इटली में एक ऐसी अन्धी लड़की थी जो अपने नासाग्र एवं बाह्य कर्ण (पिन्ना) से देख सकती थी। जब अचानक कोई तेज रोशनी उसकी नाक अथवा कान पर डाली जाती तो वह चौंक उठती थी।

१९५६ में स्कॉटलैंड में एक इसी प्रकार के अन्धे स्कूली छात्रका पता चला जो विभिन्न प्रकार के रंगीन प्रकाशों में विभेद कर सकने में निष्णात था। साथ ही कुछ फुट की दूरी पर स्थित अनेक वस्तुओं में से सबसे चमकीली वस्तु के बारे में बताने की क्षमता थी।

सन् १९६० में वर्जिनिया की लड़की पर, जो कि अतीन्द्रिय दृष्टि से सम्पन्न समझी जाता थी, वहाँ के एक विशेष मेडिकल बोर्ड ने सच्चाई जानने के लिए अनेक प्रयोग किये। उसकी आँखों में मोटी पट्टी बाँध दी गई, किन्तु फिर भी वह देखने में सक्षम समर्थ रहा और किताबों को पढ़ भी सकी।

लुईविले (फ्रांस) की एक १२ वर्षीय लड़की थी एन्नेट फ़्लान। इस अद्भुत लड़की ने भारतीय योगियों जैसी अद्भुत पराशक्ति प्राप्त की थी। उसने अधिकांश मौन रहने का नियम बनाया था, कभी बोलती भी तो अत्यन्त सारगर्भित संक्षिप्त और आवश्यकता से अधिक नहीं। वह कहा करती थी कि मनुष्य के बोलने का जितना प्रभाव होता है उससे अधिक प्रभाव उसके गहरे विचारों का होता है। वह इस कथ्य को प्रत्यक्ष प्रामाणित भी करती थी। कभी कोई व्यक्ति प्रश्न पूछता तो वह एकाग्र चित्त हो जाती फिर जो पूछा जाता उसका उत्तर उमरे लाल बड़े-बड़े अक्षरों में उसकी बाँहों में, पैरों में तथा कन्धों में लिख जाता। इच्छा शक्ति से उत्पन्न यह लेखन कुछ देर

दृष्टव्य रहते। धीरे-धीरे बिना कोई छाप छोड़े ही गायब हो जाते।

१३ वर्षीय ‘लू विन्ग’ ने केन्द्रीय चीन के ‘बुहान’ में सिद्ध करके दिखाया कि वह लिखावट को कान से पढ़ सकती है। एक कागज जिस पर वह बिना देखे बैठा था जो लिखा था उसे उसने कान से पढ़ दिया। चीनी पत्रकारों ने ऐसे ही बीस विचित्र स्थितियों का अध्ययन किया है। शिशून प्रान्त में पहली घटना पायी गयी। जहाँ के बच्चे कान, नाक, हाथ, पैर, पेट अथवा आँख द्वारा पढ़ लेते थे।

कुछ समय पूर्व न्यू विन्दा ने अपनी बहन में यह गुण देखा जब वह प्राथमिकशाला में पढ़ रही थी। लू विन्ग को “इन्ग” लिखावट को समझने में १० मिनट का समय लगा। किया यह गया था कि वह एक कागज पर लिखकर और उसे मोड़कर लू विन्ग की कान के पास लाया गया था।

फ्रांसीसी परामनोविज्ञान वेत्ता डा० पाल गोलडीन का कहना था—“हमारे पाँच ज्ञानेन्द्रियों की सुनने, बोलने, देखने, सूँघने तथा स्पर्शानुभूति क्षमता से सभी परिचित हैं, पर इनसे भी महत्वपूर्ण एक और शक्ति है—परा चेतना शक्ति, जिसे छठी इन्द्रिय भी कहा जा सकता है। लोगों का इस अद्भुत किन्तु बलवती सामर्थ्य के बारे में स्वल्प ज्ञान है। किन्हीं-किन्हीं में यह संयोगवश प्रकट होता है, परन्तु यह आकस्मिक नहीं है। प्रयत्नपूर्वक उसे अभिवर्द्धित किया जा सकता है एवं उससे लाभ उठाया जा सकता है।”

अन्तराल की इन सामर्थ्यों की यदा-कदा झाँकी देखने को मिलती है। सामान्य से व्यक्ति भी असामान्य सामर्थ्यों से भरे-पूरे देखे गये। इसका एक ही अर्थ है कि ये सभी सम्भावनाएँ मानवी अन्तराल में हैं। उन्हें जगाने का प्रयास पुरुषार्थ हर किसी के लिए सम्भव है। कुछ में ये अनायास जग जाती हैं, कालान्तर में समाप्त भी हो जाती हैं। इनसे अचम्भित होने की बजाय इससे दिशा लेकर यदि अपना आपा और भी अद्भुत आत्मिक विभूतियों से भरा-पूरा बनाया जा सके तो स्वयं को धन्य बनाया जा सकता है।

दिसम्बर १९८२

३४

अखण्ड-ज्योति

ही गाय

‘बुद्ध’ में
न में पद
ने बैठा था
वीनी पत्र-

अध्ययन

यी गयी।

वा आँख

में यह गुण

लू बिना

का समय

पर लिख-

पास लाया

गोल्डीन

की सुनने,

से सभी

शक्ति है-

जा सकता

र्थ के बारे

वश प्रकट

यत्नपूर्वक

ससे लाभ

की देखने

सामर्थ्य

क ये सभी

गाने का

कुछ में ये

भी हो

ससे दिशा

क विश्व-

को धन्य

ज्योति

अखण्ड-ज्योति

ज्योति

ज्योति

ज्योति

ज्योति

ज्योति

ज्योति

ज्योति

ज्योति

ज्योति



स्वप्नों की निरर्थकता और सार्थकता

सपनों के सम्बन्ध में शरीर शास्त्री इतना ही कह सकते हैं कि वे अधूरी नींद की परिणति होते हैं। गहरी नींद आये-तो कोई सपना न दीखे। अपच रहने, दर्द मूजत बुखार आदि होने, मच्छर खटमल, दुर्गन्ध आदि के कारण जब नींद टूटती रहती है तो उसी उर्नीदी स्थिति में मस्तिष्क अव्यवस्थिति रूप से कुछ मोचने लगता है। उन्हीं टुकड़ों की शृंखला स्वप्न बन जाती है।

मनोविज्ञानी इसे अचेतन मन का क्रीड़ा कल्लोल कहते हैं। जागृत मन, सचेतन मस्तिष्क दैनिक कार्य व्यवहार में कल्पना करता और काँट-छाँट करते हुए बुद्धि संगत निर्णय लेता है। उस अवधि में कोई प्रिय व अप्रिय परिस्थिति मन पर गहरा प्रभाव छोड़े तो सोते समय उसी प्रसंग को उलटा-सीधा व्यक्त करने वाले सपने आने लगते हैं। अपनी इच्छाएँ, आशंकाएँ भी सपनों में व्यक्त होती हैं। इसके अतिरिक्त एक गहरी परत अचेतन मन की है जिसमें संचित स्मृतियाँ, आदतें, इच्छाएँ, मान्यताएँ, कवाडियों के गोदाम की तरह जमा रहती हैं। वे अनुकूल अवसर ताकती रहती हैं और जब भी दाव लगता है चिन्तन को दृश्य में बदल लेती हैं। यह सपने लाक्षणिक होते हैं। उनमें मनःसंस्थान की स्थिति का पहली बुझोडाल जैसा संकेत रहता है। विज्ञान उसका अर्थ लगाते हैं। चिकित्सा शास्त्री सपनों के आधार पर शारीरिक एवं मानसिक रोगों का कारण स्वरूप खोजते हैं। कुछ के लिए यह बिना पैसे का सिनेमा है।

यह मोटी मान्यताओं की—सामान्य समाधानों की किसी-पिटा जानकारी है। इसमें आगे की रहस्यपूर्ण गुत्थियाँ तब उत्पन्न होती हैं जब कई सपने पिछले दिनों घटित हुई किसी अविज्ञात घटना का यथावत् परिचय देते हैं। उसी समय जो किसी दूर देश में घटित हो रहा है उससे सही रूप में परिचित कराते हैं। जहाँ तार,

वेतार के संवार साधन मौजूद नहीं हैं वहाँ कुछ स्वप्न सन्देश वाहक का काम करते देखे गये हैं। इतना ही नहीं कुछ स्वप्नों में भावी सम्भावनाओं का पूर्वाभास भी होता है। उस समय तो सही गलत होने का कोई प्रमाण नहीं होता किन्तु समय आने पर जब वे स्वप्न सूचनाएँ भविष्यवाणी की तरह घटित होती हैं तो प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र से किसी ऐसी शक्ति का भी सम्बन्ध सूत्र जुड़ा है जो अदृश्य और भविष्य का निर्धारण संचालन करती है।

आत्मवेत्ता इसका समाधान इस प्रकार करते हैं कि सूक्ष्म शरीर में अतीन्द्रिय क्षमताएँ भरी पड़ी हैं। वे अभ्यास से दिव्य दृष्टि के रूप में अविज्ञात को जानती, अदृश्य को देखती हैं, पर सपने में उस क्षेत्र को बिना किसी प्रयास के ही ऐसा अवसर कभी-कभी मिल जाता है जिसमें दिव्यताएँ उन अनुभूतियों का सहज लाभ ले सके जो योगियों और सिद्ध पुरुषों में देखी पाई जाती हैं। चेतना की एक और भी गहरी परत है जो कारण से सम्बन्धित है इसमें मनुष्य की अपनी चेतना से बहुत ऊँचे उठकर देवी जगत के साथ सम्बन्ध जोड़ने की क्षमता है। उसे जब जितना सुअवसर मिलता है वह उच्चस्तरीय शक्तियों के साथ सम्बन्ध साध लेती है और उनके अहेतुकी अनुग्रह से लाभान्वित एवं कृत-कृत्य होती है।

ऐसे सार्थक, सारगर्भित सपने कभी-कभी—किसी-किसी को ही आते हैं। अधिकांश मनःक्षेत्र निरर्थक सपनों का ही जाल-जंजाल बुनता रहता है। सार्थक स्वप्न कभी ही क्यों न दीयते हों, पर उनसे यह सिद्ध अवश्य होता है कि दिव्य दर्शन का भी स्वप्न लोक के साथ सघन सम्बन्ध जुड़ा हुआ है।

“दि न्यू फ्रान्टियर्स आफ माइण्ड” में उसके लेखक

श्री जे० बी० राइन ने दूर-दर्शन के तथ्यों का वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन करके संकलन किया है— एक घटना के सम्बन्ध में लिखा है कि उनके पड़ोस के एक सज्जन की धर्म-पत्नी ने एक रात को स्वप्न देखा कि वहाँ से बहुत दूरी पर रहने वाला उसका भाई घोड़ा गाड़ी से खलियान जाकर मंचान पर चढ़कर अपनी पिस्तौल की गोली से आत्म-हत्या कर लेता है और भूसे के ढेर पर लुढ़क पड़ता है। स्त्री घबड़ा गई और अपने पति के साथ भाई के गाँव गई तो खलियान में जाकर पाया कि उसके भाई की मृत्यु ठीक वैसे ही हुई जैसा कि उसने स्वप्न में देखा था।

सन् १७७४ में न डाक तार का कोई प्रबन्ध था न यातायात का साधन। इटली के पादरी अलोफोन्सा लिगाडरी ने अर्धतन्द्रित अवस्था में दिवा स्वप्न देखा कि रोम के बड़े पोप नहीं रहे। उन्होंने यह बात अपने शिष्यों और साथियों को बताई वे इसे निराधार समझते रहे। कुछ ही दिन बाद समाचार मिला कि अलोफोन्सा ने जिस दिन यह घटना सुनाई उसी दिन बड़े पोप चल बसे।

“वाशिंगटन हेराल्ड” की संचालिका स्वर्गीय इलेनर मेरिट एक मध्याह्न विश्राम करने के लिए झपकी ले रही थी। कि उन्हें दिखाई पड़ा कि उनके पति कैसी पास में खड़े हैं अचानक उन्होंने देखा कि वे गायब हो गये। वे विस्मय में पड़ गईं का करें। दफ्तर गईं जहाँ लोगों को स्वप्न सुनाया सवने साधारण माना। किन्तु दूसरे दिन तार आया कि उनके पति की अचानक मृत्यु ठीक उसी समय हुई जब वे स्वप्न देख रही थीं।

फ्रांसिस्को रूसो व्यापार के सिलसिले में कुछ दिनों से बाहर गया था और पत्नी एमेलिया रूसों घर में अकेली थी। एक दिन उसने स्वप्न में देखा कि उसके बड़े खाली कमरे में पड़ा हुआ है और उस शव पर एक युवती बैठी हुई है। यह देखकर एमेलिया की चीख निकल गई और उसे लगने लगा कि उसके पति को कुछ हो गया है। तीन दिन बाद जब उससे न रहा गया तो वह पुलिस अधिकारियों के पास पहुँची। आरम्भ में पुलिस अधिकारियों ने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया परन्तु कुछ ही दिन बाद रोम से ५० किलोमीटर

दूर एक दुर्घटनाग्रस्त कार में फ्रांसिस्को का शव मिला।

शव की पोस्टमार्टम रिपोर्ट से यह सिद्ध हो गया कि फ्रांसिस्को की मृत्यु दुर्घटना के कारण नहीं विष देने के कारण हुई है। इसके बाद तो एमेलिया द्वारा देखे गए स्वप्न तथा उसके बारे में और अधिक पूछताछ करने के बाद उस स्त्री को गिरफ्तार किया जा सका जिसने फ्रांसिस्को की हत्या की थी। उस स्त्री को देखते ही एमेलिया ने पहचान लिया कि स्वप्न में यही स्त्री शव पर बैठी थी।

अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने अपनी मृत्यु से तीन चार दिन पहले जो स्वप्न देखा था वह “वार्ड लेमन” जो उनकी जीवनी लिख रहे थे को सुनाया किन्तु वार्ड लेमन ने उसे साधारण स्वप्न कहकर टाल दिया। लिंकन ने बताया कि “गत रात मैं ह्वाइट हाउस (अमेरिकी राष्ट्रपति के निवास) में चारों ओर घूमा किन्तु सभी कमरे खाली पड़े देखे। तभी पूर्वी भाग से कुछ लोगों के रोने की आवाज सुनाई दी जहाँ जाकर देखा तो पाया कि वहाँ मेरे परिवार के सदस्य, दूसरे राजनयिक, भी हैं। कौतूहलवश मैंने पूछा यह शव किसका है? उनमें से एक आकृति ने मेरी ओर देखकर कहा—राष्ट्रपति की हत्या कर दी गई है और यह शव उन्हीं का है। इतना सुनते ही मेरी नींद टूट गई। अतः इस स्वप्न का इतना सुनते ही मेरी नींद टूट गई। अतः इस स्वप्न का मेरे जीवन से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध है। वार्ड लेमन ने उक्त घटना को शीघ्र लिपि में लिपिबद्ध तो कर लिया किन्तु अंध विश्वास समझ कर कोई विशेष ध्यान अथवा चौकसी का प्रबन्ध या सुझाव भी नहीं दिया। ठीक तीसरे दिन उन्हीं परिस्थितियों में जो स्वप्न में लिंकन ने बताई थीं, उनकी हत्या कर दी गई, तब से आज तक यह प्रसंग राष्ट्रपति लिंकन का जीवनी के साथ जुड़ा है। और आज तक इसकी कोई वैज्ञानिक व्याख्या भी नहीं की जा सकी।

सन् १७६५ की बात है। वाय जैन्टियम के जेलखाने में बन्द एक कैदी ने सपना देखा कि वह उस देश की महारानी का प्रेम पात्र बन गया है। कैदी ने सपना पहरेदार को बताया। पहरेदार ने रिपोर्ट राजा से कर दी। राजा ने उसे मृत्युदण्ड

दिसम्बर १९५२

३१

अखण्ड-ज्योति

मिला।
हो गया
विप देने
देखे गए
करने के
जिसने
देखते ही
स्त्री शव

दिया पर रानी ने सपने के कारण फाँसी देने की बात को अनुचित बताकर राजा से उसे क्षमादान करा दिया।
संयोग की बात दो वर्ष बाद राजा कान्स्टेडइन दशम की मृत्यु हो गई। कुछ सिलसिला ऐसा चला कि जेल से छूटे कैदी सैनिक रोमेनस के साथ रानी का प्रेम-वन्धन ही नहीं बना उसने उससे विवाह भी कर लिया। फलतः वह सम्राट बना और रोमेनस चतुर्थ डायोजानेस के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

फ्रांसीसी क्रांति के नेताओं में से एक था—जीन पीशना। उसे वचन से ही एक डरावना सपना आता है कि उस की मित्र मंडली पर सिंहक जानवरों का झुण्ड टूट पड़ता है वह मित्रों के सहित उस दुर्घटना में समाप्त हो जाता है। यह सपना अनेक बार उसने देखा और हर बार मित्र सम्बन्धियों को सुनाया।

संयोग कुछ ऐसा बना कि जून सन् १७९४ में एक यात्रा पर जाते हुए भूखे-भेड़ियों का झुण्ड उसकी मंडली पर टूट पड़ा और वे सभी उसी प्रकार मारे गये जैसा कि सपने में देख पड़ता था।

इंग्लंड के बोस्टन नगर के समाचार पत्र "बोस्टन ग्लेज" में २८ अगस्त १८८३ के अंक में एक भयंकर समाचार छपा कि "एक समुद्री द्वीप 'प्रालेप' में महा भयंकर ज्वालामुखी फटा और उसने उस क्षेत्र का समुद्र में असाधारण कुहराम मचा दिया।

छपने के बाद यह जाँच-पड़ताल हुई कि वह समाचार इतनी जल्दी कैसे प्राप्त हुआ? जबकि उन दिनों तार वेतार जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। फिर उस विस्फोट का पूरा विवरण क्या है?

पूछनाछ अखबार के समाचार सम्पादक से हुई। उनमें हड़बड़ाते हुए इतना ही कहा कि रात को वह दपतर में ही सोया हुआ था। अचानक वह भयंकर उसे सपना दीखा। उनींदी स्थिति में उसे चेत किया और पता लगाने के लिए सुरक्षित रखे जाने वाले स्थान पर रख दिया। दुबारा नींद आई और वह सो गया। दूसरे सम्पादक ने उसे विश्वस्त समाचार सनक्षा और विस्तार-पूर्वक मुख पृष्ठ पर छाप दिया।

प्रतिष्ठित अखबार के लिए ऐसे वेबुनियादी समाचार

छापना बड़ी लज्जा की बात थी। दिन भर संसार भर में वेतार द्वारा पूछताछ चलती रही कि वैया कहीं कुछ हुआ है क्या। दूसरे दिन वह समाचार सही निकला। अखबार में पहले दिन वह समाचार गलत होने की क्षमा याचना पाठकों से की। किन्तु दूसरे दिन फिर उस क्षमा याचना को छपा कि समाचार सपने के माध्यम से मिला होने पर भी अक्षरशः सही निकला। मात्र उस द्वीप के नाम से ही एक दो अक्षरों का अन्तर पाया गया।

कई सपने बड़े प्रेरणा प्रद सिद्ध हुए हैं। उनमें इतना उत्साह प्रदान किया कि देखने वालों ने उसे संकल्प की तरह अपनाया और असम्भव जैसा लगने पर भी पूरा करके ही दम लिया।

फ्रांस के एक ग्रामीण डाकखाने का पोष्ट मैन प्रायः २० मील रोज चलता था। उसी कठोर परिश्रम से उसका परिवार पलता था। एक दिन उसने सपना देखा कि उसने पास के पहाड़ की चट्टानें काट कर एक भव्य भवन बनाना शुरू किया है। वह बहुत सुन्दर बना और उसका नाम पैलाइस आइडियले रखा गया।

सपने से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने वचे समय में वैया ही भवन अपने हाथों बनाने का निश्चय कर लिया। वह जुट पड़ा और अपनी सारी पूँजी और मेहनत लगा कर लगातार ३३ वर्षों के परिश्रम से उस सपने को साकार कर दिया। हैटोराइव—फ्रांस का वह स्वप्न महल अभी भी दर्शकों के लिए कौतुक और आकर्षक का विषय है।

ये समस्त प्रसंग एक ऐसे अदृश्य लोक का वर्णन करते हैं जो मानवा मन के रूप में हम सबके अन्दर विद्यमान हैं। स्वप्नों में पूर्वाभास से लेकर महत्वपूर्ण गुत्थियों के समाधान मिलते रहे हैं। परामनोविज्ञान का यह एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ समष्टि मन एवं व्यष्टि मन के परस्पर आदान-प्रदान का लीला सन्देह चलता रहता है। मस्तिष्क के शान्त प्रसुप्त पड़े क्षेत्रों की निद्रा की स्थिति में जागृति यही सम्भावना बताती है कि प्रयानपूर्वक तन्त्रशा पराक्रम से उन्हें जगाकर व्यक्ति-वैद्री क्षमता सम्पन्न भी बना जा सकता है। अध्यात्म क्षेत्र की विज्ञान को चुनौती के रूप में स्वप्न विद्या का यह क्षेत्र इतनी असीम सम्भावनाओं से भरा है जिसकी कोई परिधि सीमा नहीं। ●

अखण्ड-ज्योति



सितम्बर अंक में इसी शीर्षक से प्रकाशित लेख का उत्तरार्ध

कई बार अनीतिकर्ताओं को सताने वालों की हाथ ले बैठती है। कई बार दुरात्माओं को दण्ड स्वरूप आत्मबल सम्पन्न शाप देते भी देखे गये हैं। कोई व्यक्ति पूर्व संचित संस्कारों पर अविज्ञात कारणों से ऐसे दुर्भाग्यग्रस्त होते हैं कि सामान्य घटनाएँ भी उनके विपरीत पड़ती हैं। कई बार दूसरों के सताने वाला व्यक्ति एवं पदार्थ कर्मफल भुगतते और दैवी प्रकोप से ग्रसित होते देखे गये हैं। ऐसे अभागे अभिशप्त के अनेक उदाहरण जहाँ-तहाँ मिलते रहते हैं।

ब्राजील की भूतकालीन राजधानी 'रियो-डि-डिनरो' के सम्बन्ध में पुरातत्त्व अभिलेखागार में सन् १७३४ का दस्तावेज रखा है। क्रमाङ्क है इसका—५१२/१७३४। इन दस्तावेजों के अनुसार वोलोविया और ब्राजील की सीमा के निकट एक हिमाच्छादित पर्वत शृंखला के निकटवर्ती सघन वन में ऐसे ध्वंसावशेष नगर की चर्चा है जहाँ किसी समय सम्भवतः ब्राजील की राजधानी रही होगी और कोई सभ्य जाति शासन करती रही होगी। उन ध्वंसावशेषों में बहुमूल्य स्वर्ण खण्ड बिखरे पड़े हैं। अनुमान है कि खुदाई करने पर वहाँ सोने और चाँदी के बहुमूल्य भण्डार मिल सकते हैं।

विवरण के अनुसार अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में एक खोजी दल इस क्षेत्र में दबे स्वर्ण खजाने का पता लगाने के लिए चला। कई महीनों के बाद वह उस खण्ड-हर तक पहुँचा और इन खण्डहरों में जहाँ तहाँ सोने के सिक्के, सलाखें, बर्तन, शस्त्र आदि बिखरे पड़े पाये। खोजी दल आवश्यक जानकारी एकत्रित करके वापस लौटा तो परागुआसु, नदी के तट बसे आदिवासियों के हाथों अपने साथियों को आने के लिए एक पत्र भेजा जिसमें उस स्वर्ण नगरी का नक्शा, वहाँ की सम्पदा, पहुँचने का मार्ग आदि के बारे में सांकेतिक भाषा में

लिखा। यही है वह ५१२ नम्बर का दस्तावेज जिसकी खोज में अब तक कितनों ने अपनी जानें गँवायी हैं। पत्र यथा स्थान पहुँच गया। सहायक दल पहुँचा भी पर उसे अपने अग्रणी साथियों का कहीं पता नहीं चल सका।

सन् १९४७ में लन्दन के एक प्रोफेसर ऐरिक हेमण्ड उस खोज पर निकले। उन्होंने दस्तावेजों का बारीकी से अध्ययन किया और हवाई जहाज, जीप, मोटर साइकिल आदि का सहारा लेकर चले। आगे बीहड़ रास्ते से पैदल ही चल पड़े। वे इस वन प्रदेश में ईसाई धर्म के प्रचारक पादरी जोनायन वेल्म से मिले। उन्होंने आगे जाने से मना किया फिर भी हेमण्ड नहीं माने। तब उन पादरी ने हेमण्ड को तेरह प्रशिक्षित कबूतर दिए और कहा—'एक-एक करके वह इनके पैरों में पत्र बाँधकर उन तक सन्देश पहुँचाते रहें। हेमण्ड ने किया भी ऐसा ही परन्तु छठे, ग्यारहवें और तेरहवें नम्बर के कबूतर ही पहुँचें शेष रास्ते में ही गायब हो गये। तेरहवें पत्र में हेमण्ड ने लिखा—“मैं बीमार पड़ गया हूँ, मेरा मृत्युकाल निकट है लेकिन फासट द्वारा आरम्भ की गई खोज का अन्तिम चरण पूरा कर लिया।” पादरी जोनायन ने स्वयं खोज-बीन की पर बाद में इन सज्जन श्री हेमण्ड का कहीं पता नहीं चला।

दूसरी घटना है—सन् १८३२ की। पाईलीन बीवर नामक व्यक्ति को कहीं से पता चला कि समीपवर्ती सघन वन की पर्वत शृंखला में न केवल सोने का भण्डार दबा पड़ा है वरन् वहाँ रात को स्वर्ण कणों की वर्षा भी होती है। पता लगाने वह उस स्थान पर पहुँचा, खेमा गाढ़ा। रात्रि के समय उसने स्वर्ण कणों की वर्षा होते देखा और लगा सोना ममेटने। ऊपर सिर उठाया तो कुछ छायाओं के खिलखिलाते चेहरे दिखाई दिये। भयभीत हो जैसे ही खेमों की ओर नजर दीढ़ायी—खेमा गायब था। वह

भयभीत हो सोना छोड़कर वापस घर लौट आया।
 ठीक इसी से मिलता-जुलता अनुभव मैक्सिको निवासी
 एक युवक 'डान पैरेलता' भी कर चुका था। वह तो
 कम से कम अपनी जान बचा सकने में सफल हो गया
 लेकिन उसके साथी इसी कुचक्र में अपनी जान गँवा बैठे।

स्टेनले फर्नेड को 'जेम्स' नामक व्यक्ति की लिखी
 एक डायरी मिली जिसमें अमेरिका स्थित एक खूनी
 महाद का वर्णन था जहाँ सोना दबा ही नहीं पड़ा है वरन्
 बरसता भी है। जेम्स इसी खोज में अपनी जान गँवा
 बैठा था लेकिन इसके पूर्व वह वहाँ के समस्त विवरण
 सिख चुका था। फर्नेड उस डायरी के आधार पर अपने
 नयी बेजामिन फ्रेश को साथ ले सौ मील लम्बे निस्तब्ध
 रातों को पार करते हुए सायंकाल तीन बजे उस पर्वत के
 निकट पहुँच गए। ठहरने के लिए उपयुक्त स्थान की
 तलाश कर रहे थे कि अचानक फ्रेश के शिर में कहीं से
 गिरकर दो गोलियाँ लगीं और वह खून से लथपथ होकर
 वहीं गिर पड़ा। स्टेनले वापस भाग तो आया पर वह
 डरल हो गया। यह समाचार मैक्सिको और अमेरिका
 के समाचार पत्रों में सविस्तार छपा। मामला अमेरिका
 गया पुलिस के एफ० बी० आई० को सौंपा गया।
 कुछ समय पूर्व रावर्ट मेरे नामक व्यक्ति के साथ भी यही
 घटना घट चुकी थी। अतः मामले की गहराई से जाँच
 गयी लेकिन कुछ भी ज्ञात न हो सका।

बाल्ज नामक युवक ने इस दिशा में अधिक बुद्धि-
 पूर्ण कदम उठाने का निश्चय किया। उसने उस क्षेत्र
 आदिवासियों के साथ घनिष्ठता बढ़ाई और एक
 आदिवासी युवती से शादी करली जिससे उस क्षेत्र में देर
 तक सके एवं उनकी सहायता से अधिक जानकारी
 प्राप्त कर सके। बस जाने पर वह सोना समेटने और
 उसे का काम तो करता रहा पर आदिवासियों से उद्-
 देश की अधिक जानकारी प्राप्त करने में सफल न हो
 सका, उस क्षेत्र में सबसे अधिक दिन तक रहने और
 अधिक खोज करने का काम बाल्ज ने ही किया। अपने
 विवरणों के सम्बन्ध में उसने एक ऐसी सुरंग का उल्लेख
 किया है जिसमें सैकड़ों तर कंकाल भरे पड़े थे। सम्भवतः
 उस क्षेत्र के रखवाले देवताओं या तान्त्रिकों का तूफानी

आक्रमण ही स्वर्ण खोजियों की जान ले बैठता है। प्रथम
 महायुद्ध के पराक्रमी योद्धा वरेनी ने भी इस क्षेत्र में
 अधिक दिन रहकर अधिक खोजें कीं। उनका मत था कि
 इस क्षेत्र में विपुल सम्पदा है जिसका रहस्य वहाँ के
 कबीले आदिवासी जानते हैं पर वे किसी को उस क्षेत्र में
 आने नहीं देते और तान्त्रिक पुरोहितों की आज्ञानुसार
 आगन्तुकों की हत्या कर देते हैं।

होप नामक हीरा योरोप में अपने अमंगल के लिए बहुत
 विख्यात हो चुका है। वह जिसके पास भी रहा उसे चैन
 से नहीं रहने दिया। यह हीरा ब्रह्मा के किसी हिन्दू
 मन्दिर में भगवान की मूर्ति में आँख में जड़ा हुआ था।
 ३०० वर्ष पहले की बात है, बेपटिस्ट टर्वेनियर नामक
 अंग्रेज उसे चुरा ले गया। उसने उसे एक जौहरी टामस
 होप के हाथ बेच दिया। उसी ने हीरे का नाम होप
 रखा। हीरे के पहुँचते ही उसका कारोबार बैठ गया।
 उसने घबड़ाकर उसे कम दामों में बेच दिया। बाद में
 वही हीरा वाशिंगटन (अमेरिका) की एक नवयुवती ईव-
 लिन मैकलीन रेनल्ड्स ने खरीदा और उसके कुछ दिन
 बाद ही उसने निद्रा की गोलियाँ अधिक मात्रा में लेकर
 आत्म-हत्या कर ली। इसके बाद हीरा एण्टानयट के पास
 पहुँचा। उसके पहुँचते ही उसके जीवन में झगड़ों की बाढ़
 आ गई। अभी वह हीरे को बेचने की ताक में ही था कि
 उसका सिर काट लिया गया। अब वह हीरा प्रिन्सेस दि
 लम्बल ने पहना और उसकी भी हत्या कर दी गई।
 उसके पास से फास नामक एक जौहरी ने यह हीरा चुरा
 लिया और उसने कुल सात दिन में आत्महत्या कर ली।
 तब फॉलीज वर्ग नामक एक ड्रामा करने वाली लड़की
 ने इसे खरीद लिया। उसने एक दिन ड्रामा करते समय
 वह हीरा पहना। रंगमंच (स्टेज) पर चढ़ते ही किसी ने
 उसे गोली मार दी। स्टाक मार्केट के प्रमुख उद्योगपति
 लार्ड फ्रान्सिस होप ने यह हीरा लेकर अपनी सारी
 सम्पत्ति गँवा दी। तब वह पहुँचा अरब के मुल्तान अब्दुल
 हमीद के पास। उसे गद्दी से उतार दिया गया। तब
 इसे श्रीमती बाल्ज मैकलीन ने खरीदा और उसी दिन
 उनका प्रियपुत्र मोटर से कुचलकर मारा गया। इस
 तरह यह हीरा अपने अमंगल के कारण सारे योरोप में
 बदनाम हुआ।

सगर पुत्रों का कपिल मुनि के शाप से भस्म हो जाना, श्रंगी ऋषि के शाप से परीक्षित को साँप द्वारा काटा जाना, मेघदूत वर्णन में यक्ष का वियोग दुःख सहना, गन्धारी के शाप से यदुकुल कालड़कर समाप्त होना, नहुष का सर्प बनना, त्रिशुंक का उलटा लटकना, दमयन्ती के शाप से व्याध की दुर्गति होना जैसी असंख्य पुराण कथाएँ सुनी जाती हैं। पुराण के इन घटनाक्रमों की साक्षी आज भी देखने को मिलती।

केप कालानी के उच्च गवर्नर की अदालत से ६ सैनिकों को फाँसी की सजा सुनाई थी। गवर्नर का काम था। पीटर जिज्वर्ट नार्दन सैनिकों पर इलजाम था कि वे भागने की कोशिश कर रहे थे। वस्तुतः सैनिक निर्दोष थे। फिर भी उन्हें फाँसी के तख्ते पर चढ़ना पड़ा।

अन्तिम सिपाही जब मृत्यु वेदी की ओर जा रहा था तो वह जोर से चिल्लाया—“नार्दन, जरा ठहरो, मैं कुछ ही समय में तुझे ईश्वर के दरबार में जवाब देने के लिए घसीटकर ले चलूँगा।” फाँसी लगा दी गई। देखा गया कि कुछ ही मिनटों के उपरान्त गवर्नर अपने दफ्तर में कुर्सी पर बैठा-बैठा मर गया।

वेनिस के वैज्ञानिक फ्रान्सेस्को डेले वार्न ने युद्ध में काम आने वाले एक विचित्र राकेट का आविष्कार किया। वह ३००० पीण्ड भारी गोला लेकर उड़ता था और लक्ष्य तक जा पहुँचता था। उन दिनों इस आविष्कार की बहुत चर्चा थी।

एक बार इस आविष्कार का उपयोग युगोस्लाविया की घेराबन्दी तोड़ने में किया जाना था। गोला दागा गया। संयोग की बात कि दंगित समय आविष्कारक खुद उस मशीन में फँस गया और गोले के साथ उड़ता हुआ निर्धारित निशाने के नजदीक मरा। वह एक महिला से जा टकराया। महिला और कोई नहीं उसकी पत्नी जो किसी काम से उस इलाके में आई थी। टक्कर में पति-पत्नी दोनों चूर-चूर हो गये। दोनों एक साथ दफनाये गये।

३० मई १८८७ को इटली के टोरिओटिकाने की राजकुमारी का विवाह इटली के राजकुमार ड्यूक डिआ-डस्टा के साथ हुआ। विवाह का दिन ऐसा अभाग

निकला कि उस समारोह में भाग लेने वालों में से कितनों को ही अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। उन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं में से कुछ इस प्रकार हैं—

(१) राजकुमारी की निजी नौकरानी ने उसी दिन फाँसी लगाकर आत्म-हत्या कर ली।

(२) द्वारपाल ने अपना गला काट डाला।

(३) वारात के जुलूस का नेतृत्व करने वाला कनेबल लगने से ऐसा बीमार पड़ा और मरने के बाद ही चारपाई से उठा।

(४) जिस ट्रेन से वे दोनों सुहाग रात मनाने रहे थे उसका स्टेशन मास्टर गाड़ी के नीचे आ गया और कुचल कर मर गया।

(५) राजा का व्यक्तिगत सहायक घोड़े से गिरा और वहीं मर गया।

(६) विवाह के विशेष प्रबन्धक वेस्ट मैन अर्धविक्षिप्त स्थिति में असन्तुलित हो गये और प्राण गँवा बैठे।

एन्टोनिया रोम के राजा क्लॉडियस की बेटी की राजकुमारी तथा सुन्दरी होने के कारण उसके लिए विवाह प्रस्ताव सदा पड़े ही रहे। दो बार उमने विवाह किया था पर उनमें से सफल एक भी नहीं हुआ। विविध कारणों से उसके यह पति कुछ ही दिन पीछे निधन हो गए। अपराध में फँसे और मृत्यु दण्ड के अधिकारी क्लॉडियस ने उन दोनों की भयानक मृत्यु अपनी जीत मान ली। एन्टोनिया ने उन दोनों की भयानक मृत्यु अपनी जीत मान ली। तीसरी बार सम्राट नीरो की बारी आयी। उससे जोशीला विवाह प्रस्ताव भेजा। पर वह स्वीकार नहीं हुआ। इस पर अपमानित और क्षुब्ध नीरो ने स्वयं ही विवाह प्रस्ताव भेजा। पर वह स्वीकार नहीं हुआ। इस पर अपमानित और क्षुब्ध नीरो ने स्वयं ही आपको फाँसी लगाकर आत्म-हत्या कर ली।

अभिशाप जिस भी वस्तु अथवा व्यक्ति के साथ होता है, अन्ततः उन्हें विनाश की ओर ही ले जाता है। प्रकृति की एक सुनिश्चित विधि व्यवस्था है। दुस्साहस की चरम सीमा और वह भी गलत दिशा में हो तो प्रानाम निश्चित ही दुःखद होंगे। यदि यही प्रानाम दिशा में हों तो फिर सुखद परिणतियों की कल्पना की जा सकती है।

ज्योतिर्विज्ञान का पुनर्जीवन

देव संस्कृति का पुनीत कर्तव्य

प्राचीन काल में ज्योतिर्विज्ञान विज्ञान सम्मत था। भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने वाले विदेशी विद्वानों इस विधा से प्रभावित होकर अन्य भाषाओं में अनुवाद कराया। मुस्लिम ज्योतिषाचार्यों में इब्न वतूता और अलवरुनी का नाम उल्लेखनीय है। भारत की यात्रा पर आये इन विद्वानों ने अन्य भारतीय विधाओं के साथ ज्योतिष विद्या का भी गहन अध्ययन किया। अरब देशों के विद्वानों के विस्तार की योजना बनाई। अलवरुनी सन् १०१७ से १०३१ तक भारत में रहा। महमूद गजनवी के साथ वह भारत आया था। ज्योतिष शास्त्र से प्रभावित होकर उसने भारतीय ज्योतिष के पौलिश सिद्धान्त को 'ब्रह्म गुप्त' का विवेचन करते हुए गणित ज्योतिष पर अपनी भाषा में प्रामाणिक ग्रन्थ की रचना की, एवं सन् १३१-३२ में अरबी भाषा में इण्डिका नामक ग्रन्थ लिखा।

अलवरुना संस्कृत भाषा और ज्योतिष शास्त्र दोनों विषयों का मर्मज्ञ था। उसके मूल ग्रन्थ 'इण्डिका' को अरब विद्वानों ने ख्याति मिली। जर्मनी विद्वान एडवर्ड सी० साँचो इण्डिका में वर्णित सूक्ष्म ज्योतिर्विज्ञान से सूत्रों से विशेष प्रभावित हुआ और उसने इण्डिका का रूपान्तर जर्मन भाषा में कराया। कहते हैं कि इस पुस्तक के बाद जर्मनी के विद्वानों का ध्यान भारत की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ और कितने ही विद्वान यहाँ आकर प्राचीन वैदिक ज्योतिष का अध्ययन करते रहे और अपने साथ ढेरों दुर्लभ वैदिक साहित्य ले गये। एडवर्ड सी० साँचो की पुस्तक दो भागों में है तथा विश्व ख्याति प्राप्त है। इस पुस्तक में सन् १०३१ के पूर्व प्रचलित ज्योतिष सिद्धान्त पर इस विषय के मर्मज्ञ भारतीय विद्वानों का परिचय प्रस्तुत किया है।

अलफजारी, याकूब बिनतारिक, अबूअलहसन नामक अरबी विद्वानों की गणना भी ज्योतिष के विशेषज्ञों में की जाती है। यूनान के विद्वान यवनाचार्य भी दीर्घकाल तक

भारत में रहे और ज्योतिर्विज्ञान का अध्ययन करते रहे। वे संस्कृत, अरबी और यूनानी भाषा के विशेषज्ञ थे। इनकी कारिकाएँ प्रसिद्ध हैं। ग्रन्थों में 'बृहयवन जातक' और 'लघुयवन जातक' प्रसिद्ध हैं। बाराह मिहिर जैसे विद्वानों ने अपनी पुस्तक 'बृहत्संहिता' और 'बृहज्जातक' में यवनाचार्य का वर्णन बड़े सम्मान एवं विस्तार से किया है। ऐसा अनुमान है कि ईसा पूर्व से ही यूनानी अरबी, विद्वानों की अभिरुचि भारतीय ज्योतिर्विद्या में थी और समय-समय पर अध्ययन के लिए—वे लोग भारत आते रहे हैं।

अकबर के नवरत्नों में से अब्दुल रहीम खानखाना न केवल भारतीय संस्कृति के पुजारी और कवि थे बल्कि महान ज्योतिर्विद् भी थे। उनकी रचनाएँ 'खेट कौटुकम्' और 'द्वाविशद्योगावला' आज भी ज्योतिष शास्त्र के अध्येताओं का मार्गदर्शन करती है।

ईसा पूर्व सातवीं से दूसरी शताब्दी तक बेबीलोन में भी इस विद्या का बहुत विस्तार हुआ। जहाँ से यहूदियों और मिस्रवासियों ने इसे अपनाया। मध्य अमेरिका की प्राचीन एजटिक एवं मय संस्कृतियों में भी ज्योतिष विद्या प्रचलित थी। पीछे ग्रीक वासियों में भी यह विशेष लोकप्रिय हुई। मार्सेली फिकनो (सन् १४३३-१४६६) ने ज्योतिर्विज्ञान पर एक पुस्तक लिखी—'लिवर्डीविटा'। जिसमें अन्तर्ग्रही प्रभावों का विस्तृत उल्लेख है। प्रसिद्ध दार्शनिक पैरासैल्सस ने ज्योतिष-विज्ञान का उपयोग चिकित्सा जगत के लिए लाभप्रद बताया। उसका कहना था कि मॅक्रोकास्मिक प्रभाव के अनुसार मनुष्य शरीर (माइक्रोकास्मिक) पर प्रभाव पड़ते रहते हैं तथा चिकित्सा शास्त्र से उसका घना सम्बन्ध है। उन्होंने शरीर के अवयव एवं ग्रह नक्षत्र का सम्बन्ध सूचित करने वाली तालिका बनायी। फलतः अन्तर्ग्रहीय गतियों का शरीर की क्रियाओं एवं औषधियों पर होने वाले असर के अनेकों प्रयोगों का संकलन ज्योतिर्विज्ञान के रूप में सामने

आया। इसे अंग्रेजी में 'एस्ट्रोलाजिकल कारेस्पोंडेन्स' कहते हैं जिसके अनुसार विभिन्न रोगों के लिए विभिन्न ग्रह नक्षत्रों की स्थिति के अनुरूप उपयोग करने की वैज्ञानिक पद्धति विकसित हुई जो चरक और सुश्रुत के वर्णित चिकित्सा शास्त्र से बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

हेपोक्रेट्स और गैलेन आदि की यह मान्यता थी कि प्रत्येक चिकित्सक को ज्योतिर्विज्ञान का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। पन्द्रहवीं शताब्दी में इस दिशा में आशातीत प्रगति हुई और एस्ट्रोमेडिसिन (ग्रह नक्षत्रों से सम्बन्धित चिकित्सा विज्ञान) अस्तित्व में आया। 'रेनेसां' नामक दार्शनिक के समय इसका सुव्यवस्थित उपयोग होने लगा। इंग्लैण्ड के वनोपधि शास्त्री कैरिचर और जर्मनी के 'फाक' नामक विद्वान ने इसका विस्तार किया। इंग्लैण्ड के ही राबर्ट टर्नर ने तो ज्योतिर्विज्ञान से प्रभावित होकर बोटानोलाजिया नामक विज्ञान की शाखा को जन्म दिया। एस्ट्रोलाजिकल हर्वेलिस्ट निकोलस कल्पिपर की ख्याति इस क्षेत्र में अभी भी बनी हुई है। वह १६१६ में एक पादरी के घर पैदा हुआ। कैम्ब्रिज विश्व विद्यालय से चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की। बाद में हृदय रोग का मरीज होते हुए भी उसने ज्योतिष को चिकित्सा शास्त्र से जोड़ने का उत्साहवर्धक प्रयास किया। अपने अनुभवों के आधार पर उसने 'कल्पिपर हर्वल्स' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। आज भी यह ग्रन्थ प्रामाणिक माना जाता है उसकी स्मृति में लन्दन में कल्पिपर हाउस नामक भवन में 'सोसाइटी ऑफ हर्वेलिस्ट संस्था' काम कर रही है।

अतीत काल में ज्योतिर्विद्या का न केवल सैद्धान्तिक ज्ञान विश्व भर में लोकप्रिय हुआ वरन् अनेकों स्थानों पर अन्तरिक्षीय गतिविधियों के अध्ययन पर्यवेक्षण के लिए विलक्षण वेधशालाओं का भी निर्माण हुआ है। जिनकी निर्माण प्रक्रिया और सन्निहित विशेषताएं अभी भी वैज्ञानिकों के लिए रहस्यमय बनी हुई हैं।

'दी वर्ल्ड एटलस आफ मिस्ट्रीज' पुस्तक के लेखक हैं—फ्रान्सिस हर्चिंग। पुस्तक में रायल सोसाइटी के फेलो तथा लन्दन सोलर फिजिक्स लेबोरेटरी के डायरेक्टर 'नार्मन लॉकर' जो 'नेचर' पत्रिका के संस्थापक और ५२

वर्षों तक सम्पादक भी रह चुके हैं, के शोध निष्कर्षों का वर्णन है। नार्मन लाकर ने लम्बे समय तक मिस्र के विश्व प्रसिद्ध पिरामिडों का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इनकी रचना सूर्य एवं ग्रह नक्षत्रों की वेधशाला के रूप में का गई है उसकी पुष्टि में अनेकों तथ्य मिले हैं। जो यह बताते हैं कि गणितीय आधार पर यह विनर्मित हुई हैं। पिरामिड का वजन ५६२३४०० टन है जो पृथ्वी के वजन का १ हजार अरबवाँ भाग है। इसमें २ करोड़ ६० लाख पत्थर लगाये गये हैं। पिरामिडों की ऊँचाई को १०० करोड़ गुना करने पर पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी मापी जा सकती है। आकार प्रिज्म जैसा है तथा सभी भुजाएँ समान हैं। इसके सभी भुजाओं की परिमिति ३६५२० इंच है जो पृथ्वी द्वारा सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण के समय ३६५.२० दिन में सम्बन्धित है। पिरामिड का घनत्व ५.७ है। यही पृथ्वी का भी है। इसके आधार और ऊँचाई का अनुपात वृत्त और वृत्त की त्रिज्या के अनुपात में है।

पीटर टाम्पकिन्स नामक विद्वान ने सीक्रेट्स आफ दि ग्रेट पिरामिड नामक पुस्तक में लिखा है कि ये मात्र मनुष्यों को रखने के लिए बनाई गई इमारतें नहीं। वरन् ज्योतिर्विज्ञान के अनेकों गूढ़ रहस्यों को अपने समाहित किए हुए हैं। विलियम पीटर्सन कालेज न्यूजर्सी (अमेरिका) के एन्सियण्ट हिस्ट्री के प्रो० डा० लिक्वि (स्टेकेनी) के अनुसार पिरामिडें अपने समय में वेधशाला का प्रयोजन पूरा करती रही हैं। अभी भी इसके आधार पर खगोल का तक्शा बनाया जा सकता है। गणित के गूढ़ प्रश्नों पाइथागोरस के विश्व विख्यात प्रमेय आदि व्याख्या इसके विभिन्न भुजाओं के आधार पर की जा सकती है। पृथ्वी और सूर्य का अन्तर, दिन की लम्बाई एक दिन का २४२२ वां भाग समय जो ज्योतिष विज्ञान के लिए आवश्यक है इससे निकाला जा सकता है। पृथ्वी का गुरुत्व बल, सूर्य की गति एवं स्थिति भी जानी जा सकती है।

इसकी प्रयोग विधि पूर्ण रूपेण अभी भी अविज्ञात है यदि यह जाना जा सके तो कितने ही चमत्कारी सूत्र हासिल सकते हैं। इस अनुसंधान के बाद 'नार्मन लाकर' के

ब्रिटेन के स्टोन हैन्ज नामक विश्व प्रसिद्ध स्थान पर दृष्टि
 रोड़ाई और यह पाया कि यह स्थान अन्तर्ग्रही आदान-
 प्रदान के रहस्यात्मक सूत्रों को अपने में समेटे हुए है।
 इस सम्बन्ध में उन्होंने विस्तृत उल्लेख अपनी पुस्तक
 'स्टोन हैन्ज एण्ड अदर ब्रिटिश स्टोन मॉन्युमेण्ट्स' नामक
 पुस्तक में की है। उल्लेखनीय है कि इसी प्रकार इंग्लैण्ड
 के दूसरे खगोलविद् 'मोर्टिमर व्हीलर' जो सोसाइटी
 ऑफ एण्टीक्वेरीज इन लन्दन के प्रेसीडेंट हैं ने भी अपने
 ग्रोध निष्कर्षों के बाद 'नार्मन लाकर के अन्वेषण की
 पुष्टि की है। लन्दन के ही आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के
 स्पीनियरिंग प्रभाग के प्रोफेसर डा० 'अलेक्जेंडर थाम्स
 स्मेरिट्स' ने १९४५ से १९६१ तक इन अद्भुत स्थलों
 का अध्ययन किया तथा 'मेगेलिथिक साइट्स इन ब्रिटेन'
 नामक पुस्तक में सन्निहित विशेषताओं का विस्तृत
 उल्लेख किया उन्होंने अनेकों तथ्य एवं प्रमाणों द्वारा यह
 सिद्ध किया है कि स्टोन हैन्ज नामक स्थान पर पाये जाने
 वाले विशालकाय पत्थरों की भूमितीय रचना में विस्मय-
 करी सूक्ष्मता से ग्रह नक्षत्रों का वेध करने के लिए स्था-
 पित किया गया है। उनका कहना है कि इन विशालकाय
 विचित्र पत्थरों को उस स्थान पर स्थापित करने
 वाले न केवल सूक्ष्म गणित के ज्ञाता थे वरन् ज्योतिष
 विज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान भी थे। १ से० मी० के १०००
 भाग तक के सूक्ष्म वेध करने की क्षमता इन प्राचीन
 पत्थरों में विद्यमान है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि
 ब्रिटेन में पलियस सीजर के पदार्पण से १५०० वर्ष पूर्व
 ड्रुइड सम्प्रदाय के धर्मावलम्बी स्टोन हैन्ज क्षेत्र को देव-
 स्थान मानते तथा उपासना, आराधना किया करते थे।
 इन अन्तरिक्षीय गतिविधियों के अध्ययन पर्यवेक्षण के साथ-
 साथ उनसे लाभ उठाने के लिए साधनात्मक विधि-
 व्यवस्था बनाते थे।
 'सेक्रेट्स आफ दी वरमूडा ट्रेंगिल' के लेखक एलन
 टैम्स वर्ग ने ब्रिटिश टापु में स्थित उत्तर स्कॉटलैण्ड,
 गोर्दुंगल से लेकर वरमूडा तक के २५०० कि० मी०
 लम्बाई वाले भाग को किन्हीं अन्तर्ग्रही शक्तियों का केन्द्र
 माना है। वहाँ ६०० विशालकाय पत्थर सूर्य के
 विभिन्न अंशों पर खड़े हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है

कि किमी समय यह स्थान अन्तरिक्षीय विज्ञान की वेध-
 शाला रहा होगा। इन पत्थरों के माध्यम से प्रति ६
 वर्षीय सौर मण्डल चक्र की गतियों का अध्ययन किया जा
 सकता है।

भारत में भी अनेकों स्थानों पर ऐसी वेधशालाएँ
 स्थापित थीं पर विदेशियों ने आक्रमण कर देण की सभी
 महत्वपूर्ण सांस्कृतिक निधियों को नष्ट किया जिसमें वेध-
 शालाएँ भी थीं। अनेकों विद्वानों ने अपने खोज द्वारा
 यह बताया है कि दिल्ली का कुतुबमीनार किसी समय
 विश्व की प्रख्यात वेधशाला थी। जिसे बाद में मुगलों ने
 तुड़वा दिया। उस वेधशाला का अब मेरु स्तम्भ (कुतुब-
 मीनार) ही अब शेष बचा है। इस महान स्तम्भ का
 निर्माण अन्तरिक्षीय अध्ययन के लिए सम्राट विक्रमादित्य
 के प्रसिद्ध नवरत्नों में से प्रख्यात ज्योतिर्विद आचार्य
 बाराह मिहिर द्वारा सम्राट के सहयोग से किया गया
 था। दिल्ली के निकट बसा मिहिरावली (महरोली) ग्राम
 भी आचार्य बाराह मिहिर के नाम पर ही बसा हुआ है।

अनुमान है कि २२०० वर्षों पूर्व बाराह मिहिर ने
 सत्ताईस नक्षत्रों, सात ग्रहों एवं ध्रुव तारे का वेध करने
 के लिए तथा सम्बन्धित जानकारीयाँ प्राप्त करने के लिए
 जल के बड़े सरोवर के मध्य इस मेरु स्तम्भ का निर्माण
 कराया। इस स्तम्भ की ऊँचाई श्रीमद् भागवत पुराण में
 वर्णित हिमालय के शिखर मेरु पर्वत की ऊँचाई के अनु-
 पात में ली गई है। सात ग्रहों के अनुसार इसकी सात
 मंजिलें और नीचे से ऊपर तक सत्ताईस नक्षत्रों को देखने
 के लिए सत्ताईस रोशनदान बने थे। स्तम्भ के निर्माण में
 भीतर काले पत्थरों का प्रयोग हुआ है ताकि अन्दर
 बिल्कुल अन्धेरा रहे। इस स्तम्भ का प्रमुख द्वार ध्रुव
 उत्तर की ओर है और झुकाव पाँच अंश दक्षिण की ओर
 है। इसकी नींव १६ गज गहरी है और ऊपर ऊँचाई
 लगभग ८४ गज थी जो इस समय ऊपरी झुकाव को
 अंग्रेजों द्वारा तुड़वा दिए जाने के कारण ७६ गज रह
 गई है।

मेरु स्तम्भ (वर्तमान कुतुबमीनार की अनेकों
 विशेषताओं में से एक) यह है कि २१ जून को १२ बजे
 (शेष पृष्ठ ४७ पर)

त्रिपदा गायत्री की विविध भाव साधना

गायत्री को त्रिपदा कहा गया है। त्रिपदा अर्थात् तीन पद—तीन चरण वाली। जीव, ब्रह्म, प्रकृति, सत्-रज-तम। सत्-चित्-आनन्द। स्थूल, सूक्ष्म, कारण। ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि कितने ही त्रिकों का अध्यात्म शास्त्रों में उल्लेख मिलता है। देखा जाय तो यह सब गायत्रा के ही तीन चरणों का विस्तार विवेचन है। गायत्री महा-शक्ति अपने ब्रह्म उद्गम हिमालय से निकल कर दो भागों में विभक्त होती है। इनमें से एक ज्ञान धारा है, दूसरी शक्तिधारा। प्रयागराज के संगम में एक और सूक्ष्म सरिता सरस्वती भी मिलती है और वह त्रिवेणी संगम कहा जाता है। इसे गायत्री की कर्मधारा कह सकते हैं।

गायत्री की सामान्य उपासना में कर्मकाण्ड परक षट्कर्म, आत्मशोधन, जप, देवपूजन आदि उपचार सम्पन्न करने पड़ते हैं, इससे आगे की उच्चस्तरीय गायत्री साधना में भावपक्ष का प्राधान्य है। इसके भी तीन चरण हैं। उच्चस्तरीय गायत्री साधना के भावपक्ष को (१) भजन (२) मनन और (३) चिन्तन कहा जा सकता है। इन्हें त्रिपदा गायत्री के भावपक्ष के तीनचरण कहा जा सकता है।

उच्चस्तरीय अध्यात्म साधना के भाव पक्ष के तीन चरण हैं। (१) भजन, (२) मनन, (३) चिन्तन। इन तीनों को मिला देने से ही एक समग्र साधन प्रक्रिया का निर्माण होता है। अन्न, जल और वायु के तीनों अंग मिलकर पूर्ण आहार बनता है। इनमें से एक भी कम पड़ जाय तो जीवन यात्रा न चल सकेगी। इसी प्रकार आत्मिक जीवन के लिए भजन, मनन और चिन्तन का सूक्ष्म आहार प्रस्तुत करना पड़ता है। अन्तःकरण की स्वस्थता, प्रखरता, परिपुष्टता एवं प्रगति इन तान आधारों पर ही निर्भर है। गायत्रा महामन्त्र के तीन चरणों की सूक्ष्म प्रेरणा भी इसी त्रिवेणी को कहा जा सकता है।

उच्चस्तरीय 'भजन' के लिए शरीर को शिथिल और मन को उदासीन करना पड़ता है। ताकि न शरीर की

मांसपेशियों पर कोई तनाव रहे और न मस्तिष्क में कोई आकर्षण उत्तेजना पैदा करे। यह स्थिति कुछ ही दिनों के अभ्यास से उपलब्ध हो जाती है। किसी आराम कुर्सी कोमल विस्तर या दीवार, पेड़ आदि का सहारा लेकर शरीर को निद्रित एवं मृतक स्थिति जैसा शिथिल करने चाहिए। इसे शवासन एवम् शिथिलीकरण मुद्रा कहते हैं। शारीरिक दृष्टि से यह पूर्ण विश्राम है। मार्मिक दृष्टि से इसे ध्यान भूमिका कहा जाता है। उत्तेजित तन हुई नाड़ियाँ एवम् मांस पेशियाँ होने पर कभी किसी ध्यान लग ही नहीं सकता। इसलिए पद्मासन, वा पद्मासन जैसे तनाव उत्पन्न करने वाले आसन और किसी प्रयोजन के लिये उपयोगी भले ही हों—ध्यान के लिए उलटे बाधक होते हैं।

यहां बात मन के सम्बन्ध में भी है। समस्त संसार शून्यता संव्याप्त है। प्रलय काल की तरह नीचे अक्षय नाल जल राश और ऊपर नील आकाश है। सर्वत्र शांतिदायिनी नीलिमा एवं नीरवता संव्याप्त है। कोई व्यक्ति या पदार्थ नहीं। मन को आकर्षित करने वाली कहीं कोई स्थिति परिस्थिति शेष नहीं। उस पर शून्यता में बालक की तरह अपती निर्मल चेतना कम पत्र पर लेटी हुई तैर रही है। अपने पंर का अंगुल अपने मुँह में लगा हुआ है और आत्मा स्वरस का पान कर रही है। प्रलयकाल का ऐसा चित्र बाजार बिकता भी है। मनःस्थिति को उसी स्तर का बनाने प्रयत्न किया जाय तो शून्यता की मानसिक स्थिति बन और चली जाती है। शारीरिक शिथिलता और मानसिक रिक्तता की—उपरोक्त स्थिति भजन साधना की उपर्युक्त पूर्व भूमिका समझी जानी चाहिए।

शिथिल शरीर एवं मनःस्थिति में ही भजन प्रकार से हो सकता है। आपरेशन करते समय इन्वेक् लगाते समय हिलने-डुलने पर प्रतिबन्ध रहता है। का रक्त दूसरे के शरीर में प्रवेश करते समय दो

शक्तियों को हिलाया डुलाया नहीं जाता। भाव परक ध्यान योग के समय—भजन के समय भी मानसिक संस्थान को इसी प्रकार शान्त रहना चाहिए यह भजन का पूर्वार्ध है।

भजन का उत्तरार्ध यह है कि उस सर्व शक्तिमाद-सर्व वैभववान्—सर्व उत्कृष्टताओं से सम्पन्न—सर्वाधिक प्रेमी परमेश्वर को अपनी सत्ता में प्रविष्ट होते हुए—धुलते हुए अनुभव किया जाय। ब्रह्माण्ड-व्यापी दिव्य प्रकाश के सागर में अपने आपको मछली की तरह निमग्न अनुभव किया जाय। जिस प्रकार से मट्टी के ऊपर जल गिरने से दोनों के मिश्रण का एक नया रूप 'कीचड़' बनता है वैसे ही भावना का जानी चाहिए कि परम प्रकाश अपने रोम-रोम में संव्याप्त हो रहा है। (१) शरीर के अंग प्रत्यंग में वह संयम एवं बलिष्ठता का रूप धारण कर रहा है। (२) मस्तिष्क में विवेक और प्रखर प्रतिभा परक तेजस् बनकर बिखर रहा है। अन्तरात्मा के हृदय संस्थान में वह देवत्व और आनन्द रूप बना बैठा है। इस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन शरीरों में परमात्मा की परम ज्योति को ज्वलन्त अग्नि की तरह समाविष्ट देखना अपने को उस आलोक से आलोकित अनुभव करना भजन साधना की प्रधान ध्यान विद्या है।

कहा जा चुका है कि भावनात्मक साधनाओं के लिए मध्या वन्दन का तरह ब्रह्ममुहूर्त का बन्धन नहीं है। उसे सुविधानुसार नित्य उपासना के साथ या आगे पीछे किया जा सकता है। यही बात मनन साधना पर लागू होती है। उसे भजन के साथ या आगे पीछे किया जा सकता है। वातावरण शान्त और स्थान एकान्त होना चाहिए। आँखें बन्द करके आराम कुर्मी पर पड़े हुए यह सोचना चाहिए कि—“शरीर मृत अवस्था में पड़ा है और प्राण उसमें से निकल कर किसी ऊँचे स्थान पर हंस पक्षी की तरह जा बैठा। अब पड़ी हुई लाश के अंग-प्रत्यंगों को पोस्टमार्टम के समय उछाड़े गये अवयवों का तरह उलटना—पलटना चाहिए और समझना चाहिए कि कपड़ों के भरी हुई पेटी की तरह ही यह काया अपने सामयिक

उपयोग के लिए मिली थी। इसी प्रकार मस्तिष्क को एक छोटे डिब्बे की तरह खोलकर देखना चाहिए कि उसमें मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के चार आभूषण, उपकरण औजार सुसज्जित रहे थे।

इस ध्यान को जितनी गहराई से जितनी देर किया जा सकता सम्भव हो, करना चाहिए और इस निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए कि प्राण—हंस, की आत्म सत्ता सर्वथा स्वतन्त्र है। शरीर की वस्त्र पेटी और मस्तिष्क की उपकरण पिटारी, जावन रथ के दो अश्व वाहनों की तरह थी। काय-कलेवर लक्ष्य पूर्ति के लिए सहायक के रूप में मिला था। उस की शोभा सुसज्जा के लिए आत्म-कल्याण के लक्ष्य को तिलांजलि नहीं दी जाना चाहिए।

मनन का दूसरा अर्थ है—आत्मबोध। अपना वास्तविक स्वरूप, जीवन का उद्देश्य, शरीर और आत्मा का सम्बन्ध, श्रेय और प्रेय में से एक का चुनाव—अपनी गतिविधियों और रीति-नीतियों का सुनियोजित निर्धारण जैसे अनेक महत्वपूर्ण निर्णय इसी केन्द्र पर टिके हुए हैं कि आत्मबोध हुआ या नहीं। यह चेतन जब तक जगेगी नहीं तब तक लोभ और मोह की लिप्सा प्रचण्ड ही बनी रहेगी, तृष्णा और वासना की प्रबलता उभरी ही रहेगी, माया पाश के भव-बन्धनों से छुटकारा मिलेगा ही नहीं, फलतः व्यथा वेदनाओं में झुलसते रहने की दुर्गति से छुटकारा भी नहीं मिलेगा। यदि आत्मबोध का लाभ न मिल सका तो समझना चाहिए कि मानव जीवन का उद्देश्य और आनन्द हाथ से चला गया।

भजन अर्थात् ईश्वरीय सत्ता के साथ आत्मसत्ता का समीकरण—परस्पर विलय समन्वय की अनुभूति। भजन अर्थात् आत्मबोध, शरीर और आत्मा के स्वार्थों और सम्बन्धों का पृथक्करण, जीवन लक्ष्य के प्रति आस्था और सरल रीति-नीति का साहसपूर्वक निर्धारण दोनों की साधना विधियाँ सरल हैं। एक ही समय में या अलग-अलग समय में सुविधा समय और शान्त-एकान्त स्थान में, सुसन्तुलित चित्त से यह दोनों ध्यान किये जा सकते हैं। भावनाओं की जितनी गहराई इनमें लगेगी उतनी ही अन्तर्ज्योति प्रखर होती चली जायगी और आत्मा के साथ परमात्मा का प्रणय परिणाम होने पर दिव्य

सम्पदाओं की उपलब्धि होनी चाहिए, वे सहज ही कर-तलगत होती चली जायेंगी।

भाव साधना का तीसरा चरण है—चिन्तन। चिन्तन अर्थात् शारीरिक गतिविधियों का, आदर्शवादिता का और मानसिक हलचलों का उत्कृष्टता के आधार पर सुसन्तुलित निर्धारण। इसके लिए प्रातःकाल उठते ही “हर दिन नया जन्म—हर रात नई मौत” का तथ्य सामने रखकर आज को—समय परक और भाव परक दिनचर्या निर्धारित करनी चाहिए। एक ही दिन के लिए यह जन्म है। आज ही रात की मृत्यु, निद्रा की गोदी में जाना है इसलिए ईश्वर 'दत्त समय सम्पदा और भाव वैभव का श्रेष्ठतम सदुपयोग करने के लिए—जीवन लाभ लेने के लिये साहसपूर्वक तत्पर होना चाहिए। किसी भी व्यवधान को इस निर्धारण में बाधक नहीं होने देना चाहिए।

प्रातःकाल से लेकर सोने के समय तक की समयचर्या निर्धारित करनी चाहिए। नित्य कर्म, विश्राम, उपार्जन से लेकर परमार्थ प्रयोजनों तक के लिए उचित रीति व समय विभाजन किया जाय। उपार्जन के और परिवार पोषण के उत्तरदायित्व अभी जिनके कंधों पर हैं उन्हें भी आठ घण्टा कमाने के लिए, छह घण्टा सोने के लिए चार घण्टा नित्य नैमित्तिक कर्मों के लिए लगाकर सांसारिक प्रयोजनों के लिए अधिकतम २० घण्टे ही खर्च करने चाहिए। शेष ४ जीवनोद्देश्य की पूर्ति में लगाने चाहिए।

हर क्रिया के साथ एक विचारणा अनिवार्य रूप से जुड़ी रहती है। क्या कार्य, किस लाभ या प्रयोजन के लिए किया जा रहा है, उसमें रुचि या उत्साह किस लिए है, इसका कुछ न कुछ कारण आकर्षण होना ही चाहिए। मनोगत आकांक्षा और शरीरगत क्रिया दोनों के सम्मिश्रण से समग्र कर्म बनता है, उसी के आधार पर सस्कार बनते हैं, पाप पुण्य का निर्धारण होता है और कर्मफल की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। भाव रहित क्रिया तो मात्र उछल कूद भर होती है। हमें अपने पर क्रिया-कलाप के साथ उच्च आदर्शों से, भरी-पूरी भावना नियोजित रखनी चाहिए। पत्नी को अपने संरक्षण में रखी गई ईश्वर की पुत्री समझा जाना चाहिए और वह पिता के घर से जिस

स्थिति में आई थी उसकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ, सुयोग्य सुविकसित, प्रसन्न, प्रफुल्लित बनाने का प्रयास निरन्तर करते रहने की बात सोचनी चाहिए।

बालकों को ईश्वर के उद्यान में उगे हुए सुरभि पुष्प माना जाय और उन्हें माली की तरह सींचा, सम्भाला जाय। अपनी सम्पदा, बुढ़ापे की लकड़ी, वंश चलाने वाले उत्तराधिकारी, मात्र प्रियपात्र उन्हें माना समझा जायगा तो वे ही बालक बन्धन रूप सिद्ध होंगे और लोक-परलोक में विविध विधि दुर्गति का कारण बनेंगे। दृष्टिकोण का अन्तर रहने के कारण एक व्यक्ति के लिए शिशु पोषण, परिवार पालन अपार उद्वेग उत्पन्न करेगा। जब कि परिष्कृत चिन्तन शैली से की गई परिवार सेवा-गृहस्थयोग साधना बन जाती है। माता-पिता, भाई-बहन आदि का भरा-पूरा कुटुम्ब किसी भावनाशील व्यक्ति के लिए अपने सद्गुणों के विकास के लिए विनिर्मित प्रयोगशाला ही सिद्ध होता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए परिवार के लिये उपार्जन एवं सुविधा व्यवस्था में लगने वाला अधिकांश समय तथा मनोयोग नियोजित किया जाय तो घर ही तपोवन बन सकता है। ऐसे लोगों को तपोवन में घर बनाने की आवश्यकता नहीं है।

तात्पर्य यह है कि दिन भर की समस्त कार्य पद्धति के साथ उच्चकोटि की भावनाएँ नियोजित रखी जायें। हर दिन कागज पर पूरी दिनचर्या नोट करली जाय जिसमें दिनभर का समय विभाजन और हर कार्य के साथ जुड़ी रखी जाने वाली भावनाओं का विवरण लिखा रहे। यह कागज मेज पर या जेब में रखा रहे। निर्धारित कार्य पद्धति और विचार प्रक्रिया में कितनी सफलता मिल रही है कितनी असफलता, इसका निर्णय हर घण्टे करते रहा जाय। इस प्रकार चलता हुआ क्रम रात को सोते समय यह बतावेगा कि सब मिलाकर कुल कितने प्रतिशत सफलता मिली कितनी असफलता। सफलता के लिये प्रसन्न हुआ जाय और जो भूलें हुई हों उन्हें दूसरे जन्म में—दूसरे दिव सुधारने के लिए अधिक सतर्कता जागृत की जाय।

रात्रि को सोने के लिये जब विस्तर पर जाया जाय तब संन्यास जैसी भावनाओं को हृदयंगम किया जाय। जो कुछ कर्त्तव्य थे वे ईश्वर के सौंपे हुए थे, ईमानदारी से पूरे किये गये। जो शेष हैं उन्हें ईश्वर पूरा करेगा। कुटुम्ब, परिवार, धन, वैभव आदि सब भगवान का था उसकी धरोहर उसे सौंपकर निश्चिन्तता पूर्वक निर्लिप्त मन से अनासक्त कर्मयोगी की तरह निद्रा मृत्यु की गोद में शयन किया जा रहा है। अन्तिम मृत्यु के लिये यह श्रेष्ठतम साधना है। इस मनःस्थिति में यदि महाप्रयाण किया जाय तो परलोक में निश्चित रूप से परम शान्ति और सद्गति ही मिलेगी।

चिन्तन का स्वरूप शारीरिक और मानसिक गति-विधियों को आदर्शवादिता और उत्कृष्टता के खाँचे में इस तरह कस देना है कि असावधानी के कारण पनपने वाली दुष्प्रवृत्तियों के पनपने की कोई गुंजायश न रहे। डीली-पोली जीवनचर्या पर ही विकृतियाँ सवार होती हैं यदि जागरूकता और सतर्कता बना रहे तो दुष्ट दुर्भावों को सेंध लगाने का अवसर नहीं मिले। यदि वे कदाचित् आक्रमण करें भी तो चिन्तनशील उसके लिये विरोधी

विचारों की सेना सदा लड़ने और अड़ने के लिये तैयार रखता है। कभी कामुकता के विचार मन में उठें तो उसे निरस्त करने के लिये व्यभिचार से उत्पन्न होने वाले असंख्य अनर्थों का, संयम ब्रह्मचर्य से उपलब्ध होने वाले सत्परिणामों की लम्बी सूची तैयार रखता है और जैसे ही उस स्तर के दुष्ट विचार उठे कि प्रतिरोधी सदाचार परायण विचार शृंखला पर गम्भीरतापूर्वक ऊहापोह आरम्भ कर देता है। जहाँ यह प्रक्रिया आरम्भ हुई वहाँ कुविचारों के निराकरण में तनिक भी देर नहीं लगती।

यह गायत्री की उच्चस्तरीय भाव साधना है। इसके लिए भजन, मनन और चिन्तन की त्रिवेणी प्रवाहित की जानी चाहिए तथा उपासनात्मक कर्मकाण्ड के साथ-साथ इस भाव साधना को भी चलाना चाहिए। गायत्री महा-मन्त्र के उपासनात्मक कर्मकाण्ड की प्राण प्रतिष्ठा इस भाव समन्वय से ही सम्भव होती है और इसी के परिणाम स्वरूप वह सब कुछ उपलब्ध होता है जिसका माहात्म्य वर्णन विभिन्न अध्यात्म प्रसंगों में किया गया है।

(शेष पृष्ठ ४३ का)

दोपहर में इसकी छाया पृथ्वी पर नहीं पड़ती। छाया न पड़ने का कारण यह है कि सूर्य २१ जून को भूमध्य रेखा से २३.५ अक्षांश उत्तर की ओर होता है। देहली भूमध्य रेखा से २८.५ अक्षांश उत्तर की ओर है। इन दोनों अक्षांशों में ५ अंश का अन्तर है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए ज्योतिष गणना के अनुसार स्तम्भ निर्माण में ऊपरी हिस्से को ५ अंश दक्षिण की ओर झुकाव दे दिया गया था। ब्रिटिश शासन काल में इन्जीनियर इस स्तम्भ के टेढ़े होने का रहस्य न जान सके और यह समझकर कि नींव खिसकने से स्तम्भ झुक गया है तथा गिरने का खतरा है, भार को हल्का करने के लिए ऊपरी खण्ड को तुड़वाकर गिरवा दिया।

बाराह मिहिर के समय में इस स्तम्भ के चारों ओर सत्ताईस अन्य वेधशालाएँ थीं जिन्हें सत्ताईस मन्दिरों का स्वरूप दिया गया था। इन मन्दिरों को कुतुबुद्दीन

नामक विदेशी आक्रमणकारी ने तुड़वाकर मस्जिद में परिवर्तित करने का प्रयास किया तथा अपना नाम उस पर खुदवाया। इन सब तोड़-फोड़ के बावजूद भी स्तम्भ के ध्वंशशेष अभी भी ऐसे किसी समय की वेधशाला होने का बोध कराते हैं तथा अपनी विचित्रताओं से वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित करते हैं।

भारत से प्रादुर्भूत होकर ज्योतिर्विज्ञान का ज्ञान विश्व भर में फैला था। उस महान विद्या के विकास के प्रमाण अभी भी भारत ही नहीं विश्व के विभिन्न स्थानों पर विभिन्न भाषाओं में लिपिबद्ध हैं तथा अपनी विलक्षणता के लिए अनेकों प्रकार की वेधशालाओं के अवशेष विद्यमान हैं जो किसी समय इसकी उपयोगिता-उपादेयता का बोध कराते हैं। उस महान विज्ञान को पुनर्जीवित करने की दिशा में विज्ञ मनीषियों द्वारा प्रयास किया जाना चाहिए।

अखण्ड-ज्योति



यज्ञों के भेद-उपभेद और शाखा-प्रशाखाएँ

प्रयोजन एवं विधान भेद से एक ही यज्ञ तत्त्व के अनेक भेद उपभेद हो जाते हैं। अनेकों शाखा प्रशाखाएँ फूटती हैं। तदनुसार उनके प्रयोग परिचय जानने की सुविधा को ध्यान में रखते हुए नामकरण भी पृथक-पृथक किये गये हैं। इतने पर भी उन सबको एक-दूसरे के साथ अविच्छिन्न रूपसे जुड़ा हुआ समझा जा सकता है। शरीर के विभिन्न अवयवों की बनावट तथा कार्य क्षमता पृथक-पृथक है। इतने पर भी वे सब किसी एक सूत्र-शृंखला में पिरोये हुए हैं और सभी का समन्वय एक समग्र शरीर बनता है। यह बात भिन्न-भिन्न नामों से जाने गये यज्ञों को मूलभूत एकात्मता बनी ही रहती है। भले ही उनकी प्रयोग प्रक्रिया पृथक-पृथक ही क्यों न दृष्टिगोचर होती हो।

सूत्र ग्रन्थ में यज्ञ के कितने ही भेद उपभेद बताये गये हैं और उनके विधान तथा प्रयोजनों का उल्लेख किया गया है। इस विभाजन को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। एक श्रौत यज्ञ दूसरे "स्मार्त यज्ञ" इस वर्गीकरण में 'गोपथ ब्राह्मण' गौतम धर्म सूत्र और कात्यायन श्रौत सूत्र के आधार पर किये गये विभाजनों को अधिक मान्यता मिली है। यो अन्य ऋषिय एवं शास्त्रकारों ने भी अपने-अपने मतानुसार कई अन्य प्रकार से भी वर्गीकरण किये हैं।

गोपथ ब्राह्मण के असार श्रौत यज्ञों के में अनन्या-धेय अग्निहोत्र—दर्श—पौर्णमास—चातुर्मास्य नव सस्येष्टि और पशु बन्ध को हविर्यज्ञ माना है। श्रौति यज्ञों की ही दूसरी शाखा सोम यज्ञ है। उसमें अग्निष्टोम—अत्यग्निष्टोम—उक्थ्य—पोडसी—वाजपेय—अतिरात्र, और आप्तोर्यामि का प्रावधान है।

गोपथ ब्राह्मण के दूसरे विभाजन को 'स्मार्त यज्ञ' कहा गया है। इनका एक नाम पाक यज्ञ—चरुयज्ञ भी है। इस विभाग में जिनका विधान है वे यह है—प्रातः होम—सायं होम—स्थाली, पाक—बलि वैश्व, पितृयज्ञ—

अष्टका।

गौतम धर्म सूत्र में भी आधारभूत विभाजन तो श्रौत यज्ञ और स्मार्त यज्ञ दो रेखाओं के अन्तर्गत ही हुआ है, पर उनके नामों में तथा विभाजनों में यत्किंचित् अन्तर है। वे भी श्रौत यज्ञों के दो भेद करते हैं हविर्यज्ञ और सोम यज्ञ। स्मार्त यज्ञ तो उनमें भी एक ही वर्ग में रखे हैं। इस प्रकार उनका विभाजन भी गोपथ की तरह ही तीन विभागों में हो बँट जाता है। उनका विभाजन इस प्रकार है—

(१) हविर्यज्ञ—अग्नि होत्र, दर्श पूर्णमास आग्रयण—चातुर्मास्य—निरुद—सौत्रामणि—पिण्ड पितृ।

(२) सोमयज्ञ—अग्निष्टोम—अति अग्निष्टोम—उक्थ्य—पोडसी—वाजपेय—अतिरात्र—आप्तोर्यामि।

(३) स्मार्त यज्ञ—औपासन—वैश्वदेव—पार्षण—अष्टका—श्राद्ध—श्रवणा—शूल गव।

कात्यायन श्रौतसूत्र में निर्दिष्ट याग—अग्न्याधान अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास दाक्षायण यज्ञ, आग्रयणेष्टि, दर्विहोम (ऋद्धिनीयेष्टि, आदित्येष्टि, मित्रविन्देष्टि), चातुर्मास्य, निरुद पशुबन्ध, सोमयाग, एकाह, द्वादशाह सत्र (द्वादशाह), गवामयन, वाजपेय, राजसूय अग्निचयन सौत्रामणि, अश्वमेध, पुरुषमेध, अभिचारयाग, अहीन-अतिरात्र, सत्र (द्वादशाह से सहस्रसंवत्सरपर्यन्त) और प्रवर्ग्य।

कुछ अन्य स्मार्त यज्ञ इस प्रकार हैं—

ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्य यज्ञ। यज्ञों का एक अन्य वर्गीकरण इस प्रकार भी है। सात्विक-राजसिक तामसिक-नित्य-तैमित्तिक और काम्य। अन्यान्य पौराणिक याग—विष्णुयाग, रुद्रयाग, सूर्ययाग, गणेशयाग लक्ष्मीयाग, मृत्युंजययाग, शतचण्डी, सहस्रचण्डी, लक्ष चण्डी याग, महाशान्तियाग, भागवत सप्ताह यज्ञ इत्यादि।

आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण की दृष्टि से किन्हे

अखण्ड-ज्योति

युगे समस्त श्रेष्ठ कार्य यज्ञ की कोटि में आते हैं। इनमें कुछ तात्त्विक भेद भी होता है। कुछ कर्म पूर्णतया स्थूल पदार्थों से सम्बद्ध होते हैं। कुछ भावनात्मक स्तर पर होते हैं और कुछ आत्मिक स्तर पर होते हैं। इन विभिन्न स्तरों पर सम्पन्न होने वाले कार्य विभिन्न यज्ञों के नाम से जाने जाते हैं—

- | | |
|----------------------|--------------------------|
| (१) द्रव्यात्मक यज्ञ | (हविष्य होम) |
| (२) भावनात्मक यज्ञ | (ध्यान धारणा) |
| (३) केवलात्मक यज्ञ | (समर्पण, एकात्म, विलय) |

जिस यज्ञ का सम्बन्ध स्थूल पदार्थों से होता है, उन्हें द्रव्यात्मक यज्ञ या पदार्थात्मक यज्ञ कहा जाता है। व्यक्ति जिन भौतिक आकर्षणों में फँसा है, उसे जब वह भगवत्-पूज करता है, तो यह यज्ञ सम्पन्न हुआ माना जाता है। द्रव्य और पदार्थ का तात्पर्य ही होता है चित्त को द्रवी-भूत आकर्षित करने वाला और भगवान् (पद) का प्रकाश या विग्रह (अर्थ) सभी पदार्थ भगवान् की विभूति ही तो हैं। इन पदार्थों को स्वार्थ से हटाकर परमार्थ में नियोजित करना—भगवान् तक समष्टि तक पहुँचाना पदार्थ यज्ञ है।

भावनात्मक यज्ञ में स्थूल हविष्यों का प्रयोग नहीं होता है। इसमें अपने अन्तःकरण को समस्त कामना-वासना-आसक्ति-स्वार्थ—सुख-स्पृहा—अहंकार-प्रतिष्ठा का मोह इत्यादि से खाली करना होता है, दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि इन दुर्भावनाओं की आहुति प्रदान करके, हृदय को निर्मल स्वच्छ एवं द्वन्द्वातीत अवस्था में पहुँचा दिया जाता है। इस स्थिति में चित्त को भगवत् भाव से पूर्णकर सर्वत्र भगवद्-दर्शन-भगवत् सेवा के लिए तैयार किया जाता है।

सभी प्राणियों एवं पदार्थों में ईश्वर की-देवता की-अनुभूति करना भावनात्मक यज्ञ कहा जाता है। जब यह स्थिति पराकाष्ठा पर पहुँचती है और प्राणिभेद-पदार्थ भेद का अन्तर ही मिट जाता है, एकमात्र ब्रह्म ही सर्वत्र विद्यमान है ऐसा अनुभव होने लगता है, तब इसे केवलात्मक यज्ञ की संज्ञा प्रदान की जाती है।

‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’ की अनुभूति केवलात्मक यज्ञ ही ही परिणति कही जा सकती है। इसी को ‘एकमेवाद्वितीयम्’ मन्त्र द्वारा भी स्पष्ट किया गया है।

योग का एक विभाजन कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के रूप में है। इस सन्दर्भ में तीन यज्ञों का भी उल्लेख है—कर्म यज्ञ, ज्ञानयज्ञ, देव यज्ञ।

सिद्धान्तों को योग और प्रयोगों का यज्ञ कहा गया है। निर्धारण और विधि-व्यवस्था के मिलने से ही एक पूरी बात बनती है। इस प्रकार योग और यज्ञ भी परस्पर पूरक बन जाते हैं।

निघण्टु ३।१७ में यज्ञ के विविध १५ नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं—यज्ञ, वेन, अध्वर, मेध, विदध, नार्थ, सवन, होत्र, इष्टि, देवताता, मख, विष्णु, इन्द्र, प्रजापति और धर्म।

जिस प्रकार एक ही चिकित्सा विज्ञान के अन्तर्गत रोगियों की स्थिति एवं आवश्यकता को देखते हुए कई प्रकार के उपचार निर्धारण किये जाते हैं उसी प्रकार विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यज्ञ विज्ञान के विभिन्न निर्धारण प्रयुक्त होते हैं। अस्पताल एक ही होता है। प्रवेश करने वाले भी सभी रोगी कटलाते हैं। किन्तु उन सब की चिकित्सा प्रक्रिया एक जैसी नहीं होती। रोगियों की स्थिति और आवश्यकता को देखते हुए उपचार की अनेक शाखाओं का प्रयोग किया जाता है। पीने की खाने की, लगाने की दवाओं का स्वरूप और विधान अलग-अलग होता है। इन्जेक्शन, आपरेशन, मेक, एनीमा, कथेडर आदि उपचारों की प्रक्रियाएँ भी एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। कारखाना एक ही होने पर भी उसमें कितने ही प्रकार के काम होते रहते हैं। उनकी हलचलें एक-दूसरे से भिन्न होती हैं इतने पर भी सभी का सम्मिलित उद्देश्य एक ही रहता है। अस्पताल रोग-मुक्ति का—कारखाने उत्पादन का—लक्ष्य लेकर चलते हैं। अभीष्ट प्रयोजन का पूर्ति के लिए आवश्यकता-नुसार व्यवस्था बनाने और बदलते रहते हैं। यही बात विभिन्न यज्ञ निर्धारणों में भी व्यक्ति और समाज और वातावरण की स्थिति सुधारने के लिए विभिन्न नाम रूप वाले यज्ञों को निर्धारण करने वाले अन्तर के सम्बन्ध में भी समझा जाना चाहिए। नाम रूप पृथक् होते हुए भी वे सभी मिलकर सर्वतोमुखी उत्कर्ष की विधि-व्यवस्था बनाते हैं।

अपनी अपनी दादा

सम्पदा, बुद्धिमत्ता, बलिष्ठता, प्रतिभा, कला कुशलता जैसी भौतिक उपलब्धियों का शारीरिक सुविधा सम्बर्धन में कितना योगदान है इसे सभी जानते हैं। उस उपाजन के लिए सभी अपनी सूझ-बूझ और सामर्थ्य के अनुरूप प्रयत्न भी करते हैं। इस सन्दर्भ में एक बात और भी जानने योग्य है कि आत्मिक प्रखरता का मूल्य इन सबसे अधिक है। चेतना का स्तर ऊँचा उठने पर जो प्राप्त किया जाता है उस विभूति वैभव को अद्भुत ही समझा जाना चाहिए। व्यक्तित्व की गरिमा जिन्हें हस्तगत होती है वे आत्मबल के धनी वह सब कुछ प्राप्त करते हैं जो इस संसार में न इस जीवन में पाने योग्य है।

आत्मिक प्रगति को भौतिक सम्पत्ति से किसी प्रकार कम नहीं आंका जाना चाहिए वरन् समझा जाना चाहिए कि व्यक्तित्व सम्पादन के अध्यात्म पुरुषार्थ में असंख्य गुना

में बहुत लाभ का लाटरी जैसा प्रलोभन देने वाली तथा कथित अध्यात्म की दुकानें तो हर गली-कूचे में लगी रहती हैं, पर उनमें से कदाचित् ही कोई यह सिद्ध करती हो कि अध्यात्म के तीन लाभ—आत्म-सन्तोष, लोक-सम्मान और देवी वरदान की कसौटियों पर भी खरा सिद्ध होने वाली महानता उनके द्वारा कितने कहाँ कथ उपलब्ध की या कराई। भ्रान्तियों और विडम्बनाओं में उलझने वाले अन्ततः खिन्न, निराश होते और संजोई हुई आस्था तक गँवा बैठते हैं।

युग सन्धि के प्रभात पर्व पर आत्म शक्ति की ही सबसे बड़ी आवश्यकता पड़ेगी। इसी से वरिष्ठ प्रतिभाएँ उभरेंगी और उनके माध्यम से युग अवतरण का महान प्रयोजन पूरा होगा। यह क्षमता आत्म-शक्ति में ही है कि वे आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण का दुहरा प्रयोजन पूरा करा सके। जागृत आत्माओं के लिए सबसे बड़ी सामयिक आवश्यकता एक ही है कि अपने में अपेक्षाकृत अधिक आत्मबल सम्पन्न करें। उस विभूति के सहारे स्वयं ऊँचे उठे, प्रखर बने और समूचे वातावरण को नव जीवन को युग चेतना से अनुप्राणित करे।

आत्म शक्ति के सम्बर्धन प्रयास में योगदान अपेक्षित

लाभ है आत्म सन्तोष—छोफ सम्मान और देवी वरदान यह तीनों ही आत्मिक प्रगति पर निर्भर हैं जबकि माय सम्पदा से दूसरों की आँखों में चकाचौंध भर उत्पन्न करने, अपना अहंकार फुलाने एवं दुर्व्यसनों के गर्त में आ गिरने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता। विज्ञान तुलनात्मक अध्ययन करके वस्तुस्थिति का मूल्यांकन करते उस मार्ग को अपनाते हैं जिससे सहारे स्वयं कृतकृत्य होने और असंख्यों को ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने का सुयोग्य सौभाग्य उपलब्ध हो सके।

आत्मिक प्रगति की महत्ता तो कितने ही लोग जानते हैं, उनके माथ जुड़ी हुई श्रद्धा-सिद्धियों की विभूतियों के प्रमाण उदाहरण भी देखे सुने होते हैं किन्तु अपने समय का सबसे बड़ा दुर्भाग्य एक ही है कि इस दिशा में सुनिश्चित गति से बढ़ा सकने वाला मार्गदर्शन एवं सहयोग उपलब्ध होता नहीं। भ्रान्तियों में भटकाने वाली, सस्ते

यह सब कैसे हो? इसका उत्तर अखण्ड-ज्योति के एक अष्टावर-नवस्वर बंक के पृष्ठों पर मिल सकता है। उसमें अध्यात्म विभूतियों के सम्पादन का राजमार्ग यों क्रमिक गति से आरम्भ से ही प्रस्तुत किया जाता रहा है पर अब उसकी आवश्यकता एक प्रकार से अनिवार्य हो गई है और अपना समाधान तत्काल मांगती है। अस्तु अखण्ड-ज्योति ने तद्गुरूप अपनी प्रशिक्षण व्यवस्था में अधिक प्रखरता का समावेश किया है। अध्यात्म विज्ञान के सारगर्भित पक्षों को इस प्रकार प्रस्तुत करना आरम्भ किया है जिसके सहारे उसे गले उतारना और व्यवहार में समाविष्ट कर सकना अपेक्षाकृत अधिक सुविधा और अधिक सरलतापूर्वक सम्भव हो सके। राजमार्ग पर चलते हुए देर लगती है, पर कभी-कभी ऐसी पगडण्डियाँ भी हाथ लग जाती हैं जो समय श्रम में असाधारण बचत करके अधिक ऊँचाई तक पहुँचाने का सुयोग प्रदान कर

079522

मकें। इन दिनों ऐसे आधार उपलब्ध करना और अवलम्बन अपनाना आवश्यक हो गया है।

अध्यात्म विज्ञान प्रधानतया 'श्रद्धा' शक्ति पर आधारित है। इन दिनों बढ़ती तार्किकता एवं प्रत्यक्षवादिता ने श्रद्धा की जड़ें हिला दी हैं। दूसरे इस क्षेत्र में इन दिनों विडम्बना और प्रवंचना ने जिस बुरी तरह अड़्डा जमाया है उसे देखते हुए सर्वत्र अविश्वास का वातावरण बना है। दोनों ही कारणों से प्रधानतया श्रद्धा पर आधारित अध्यात्म एक प्रकार से अविश्वस्त एवं उपेक्षित स्थिति में जा गिरा है। एक ओर आत्म शक्ति की महती आवश्यकता दूसरी ओर उसे उपलब्ध कराने वाले मार्ग पर घनघोर तमिस्रा। इन कारणों से एक प्रकार का अवरोध ही अड़ गया है। न सामयिक आवश्यकता की उपेक्षा की जा सकती है और न भ्रान्तियों, विकृतियों से बरे पुरे प्रचलन का अन्धानुकरण करने की सलाह प्रेरणा ही किसी को दी जा सकती है। असमंजस इतना जटिल और वास्तविक है जिसका समाधान न सूझ पड़ता है और न उससे विमुख होने को मन करता है।

इन परिस्थितियों में अखण्ड-ज्योति ने अपना विशिष्ट उत्तरदायित्व नये सिरे से युग धर्म के अनुरूप अर्पित किया और निश्चय किया है कि अध्यात्म तत्त्व ज्ञान और साधना विधान का इस प्रकार नये सिरे से प्रस्तुतीकरण किया जाय जो तर्क, तथ्य और प्रमाण, की कसौटी पर खरा सिद्ध हो सके। साथ ही व्यवहार में उतारने की दृष्टि से भी सर्व साधारण के उपयोग में आ सकने योग्य हो। कठिन और जटिल साधनाएं कर सकने की क्षमता अब लोगों में रही नहीं। उत्कृष्टता की दिशा में अन्तर्गत अग्रसर करने वाला साहस, संकल्प बल एवं पराक्रम भी घटते-घटते बहुत दयनीय स्थिति में जा पहुँचा है। ऐसी दशा में पुरातन काल में जिन साधनाओं तपश्चर्याओं को अपनाने वाले कौतुक जैसा सरल सुगम माना जाता था वही अब पर्वत जैसा भारी प्रतीत होता है। यह एक नया संकट है जिसके कारण इन दिनों पुरातन काल की कठिन निर्धारणों को अपनाने के लिए सर्व साधारण को उत्साहित सहमत करना कठिन हो चला है।

अखण्ड-ज्योति

इन जटिलताओं के बीच युग धर्म का निर्वाह करते हुए सर्वसाधारण को विशेषतया जागृत आत्माओं को—आत्मबल से सुसम्पन्न बनाने वाला पथ प्रशस्त करना ही होगा। यह कैसे हो? इसका निर्धारण गहरे विचार मन्थन के उपरान्त अब एक प्रकार से निश्चित कर ही लिया गया है। उसे प्रज्ञा परिजनों के सम्मुख इन्हीं दिनों प्रस्तुत किया जाना है।

अखण्ड-ज्योति के अगले अंकों को एक प्रकार से उच्चस्तरीय अध्यात्म विज्ञान का व्यावहारिक शिक्षा पाठ्यक्रम समझा जाना चाहिए। उस आधार पर घर बैठे भी बहुत कुछ समझा सीखा किया और पाया जा सकता है। जो इस सन्दर्भ में शान्ति-कुंज हरिद्वार की कल्प साधना सत्र शृंखला में सम्मिलित हो सके वे और भी अधिक लाभान्वित होंगे।

अखण्ड-ज्योति परिजनों में से प्रत्येक से निवेदन है वे इस आत्म-शक्ति सम्बर्धन प्रयासों को सफल बनाने में हाथ बढ़ायें और प्रत्यक्ष योगदान दें। यह योगदान अखण्ड-ज्योति के नये पाठक बढ़ाने के रूप में हो सकता है। जो अगले वर्ष के अङ्क पढ़ेंगे वे एक प्रकार से पत्राचार विद्यालय के माध्यम से आत्मोत्कर्ष प्रयास में संलग्न होने वाले छात्रों जैसा लाभ घर बैठे प्राप्त कर सकेंगे।

अनेकों उच्चस्तरीय कारण, उद्देश्य और आधार ऐसे हैं जिन्हें उपलब्ध करने के लिए अगले वर्ष की अखण्ड-ज्योति सदस्यता हर किसी के लिए अतीव लाभदायक सिद्ध होगी। इसलिए वर्तमान पाठकों से आग्रहपूर्वक यह अनुरोध किया गया है कि वे अपने सम्पर्क क्षेत्र में जिन पर भी प्रभाव अधिकार समझें उनमें कम से कम तीन को पत्रिका के सदस्य बनाने का प्रयत्न करें। इसी प्रयोजन के लिए रसीद पत्रक इसी अंक में लगाये गये हैं। जिनसे चन्दा प्राप्त हो उन्हें विश्वास दिलाने के लिए यह रसीदें ही जा सकती हैं। चन्दा कार्यालय में पहुँचते ही सन् ८३ की पत्रिकाएं आरम्भ हो जायेंगी।



अध्यात्म साधना और शिक्षा के महत्वपूर्ण सत्र

तत्त्व दर्शन की और कल्प तपश्चर्या के रूप में युग साधना की एक झाँकी प्रस्तुत की जा चुकी है। इसे एक प्रकार से व्यावहारिक मार्गदर्शन ही समझा जाना चाहिए। अभीष्ट जानकारी से अवगत होने के उपरान्त उस मार्ग पर घर रहते हुए भी चला जा सकता है। जिन्हें अधिक समझना और गम्भीरतापूर्वक समझना हो उनके लिए एक-एक मास के कल्प साधना सत्र में सम्मिलित होनेके लिए शान्ति कुंज हरिद्वार का सहयोग लिया जा सकता है।

जिन्हें बहुत व्यस्तता है—जो एक महीने का समय नहीं निकाल सकेंगे उनके लिए एक महीने की कल्प साधना का एक दस दिवसीय छोटा संस्करण भी आरम्भ किया गया है। उनमें एक महीने की कल्प साधना के सभी आवश्यक सिद्धान्तों और प्रयोगों का समावेश करने का प्रयत्न किया गया है।

नये निर्धारण की इस शृंखला में एक संशोधन परिवर्धन यह भी किया गया है कि एक मास की कल्प-साधना के दो विभाग कर दिये गये हैं एक साधना प्रधान दूसरा शिक्षा प्रधान। शिक्षा प्रधान में कल्प साधना की उपासनाएँ कुछ कम कर दी जायेंगी और बदले में उन्हें (१) भाषण-सम्भाषण (२) संगीत अभ्यास (३) आसन प्राणायाम एवं जड़ी-बूटी विज्ञान के स्वास्थ्य सम्बर्धन की तीन कक्षाओं में सम्मिलित रहने का अवसर मिलेगा। साधना तो भी कुछ कल्प साधना के लिए निर्धारित क्रम के अनुरूप ही चलती रहेगी। साधना प्रधान सत्रों में सम्मिलित होने वालों का प्रधान विषय तो नहीं रहेगा किन्तु उन्हें भी तीन घण्टे नित्य उपरोक्त तीन कक्षाओं में सम्मिलित रहने का अवसर मिल सकेगा। इस प्रकार शिक्षा प्रधान कल्प साधना के लिए आने वाले युग शिल्पियों जितनी तो नहीं पर उससे कुछ ही कम मात्रा में उपरोक्त तीनों विषयों की काम चलाऊ जानकारी मिल जायगी। इस प्रकार अब इन एक महीने के सत्रों में सम्मिलित होने वाले दुहरा लाभ उठा सकेंगे। आत्मबल की अभिवृद्धि, उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण एवं लोक नेतृत्व के लिए आवश्यक भाषण, संगीत एवं चिकित्सा उपचार की

त्रिविधि विशेषताएँ भी हस्तगत हो सकेंगी।

यह संशय किसी को भी नहीं करना चाहिए कि शीत ऋतु में हरिद्वार जाना ठीक न रहेगा। ताप मान सर्वत्र बढ़ा है, अस्तु हरिद्वार का मौसम भी पहले की अपेक्षा कहीं अधिक गरम हो गया है। कनाडा जैसे देशों के कई क्षेत्रों में पूरे वर्ष वर्ष पड़ती है फिर भी वहाँ लोग निरन्तर महत्वपूर्ण कार्यों में संलग्न रहते हैं। हरिद्वार की ठंड तो उसके आगे कुछ भी नहीं। फिर उच्चस्तरीय साधनाओं के लिए शीत ऋतु सर्वोत्तम मानी गई है। जितना अच्छी तरह ध्यान लगने से लेकर साधना प्रयासों में सुविधा रहने की बात शीत ऋतु में रहती है उतना और कहीं नहीं। यही कारण है कि तपस्वी सदा शीत प्रधान हिमालय में अपना डेरा डालते और अन्यत्र की अपेक्षा कहीं अधिक लाभ प्राप्त करते हैं इन तथ्यों पर विचार करते हुए हरिद्वार में कल्प-साधन के लिए आने में शीत ऋतु का समय असुविधाजनक नहीं, सुविधा प्रधान ही सिद्ध होगा।

संक्षेप में शान्ति कुंज की सत्र व्यवस्था में एक-एक महीने के कल्प साधना सत्र ही प्रमुख हैं। उन्हीं को दो भागों में विभक्त कर दिया गया है एक साधना प्रधान दूसरे शिक्षा प्रधान। दस दिवसीय सत्र में साधना का ही संक्षेप है। उतनी कम अवधि में भाषण—संगीत चिकित्सा उपचार का समावेश सम्भव नहीं। जिन्हें उपरोक्त सत्रों में से जिनमें आना हो वे (१) सत्र का नाम तथा तारीखें (२) अपना पूरा नाम पता (३) आयु (४) शिक्षा (५) जन्म-जाति (६) शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य के सही होने सम्बन्धी स्पष्ट जानकारी (७) यहाँ का अनुशासन पूर्णरूपेण पालन करने के आश्वासन समेत आवेदन-पत्र भेजना चाहिए और स्वीकृति प्राप्त होने के उपरान्त ही आने की तैयारी करनी चाहिए। मास वाले सत्र हर महीने, पहली से तीस तारीख तक चला करेंगे और दस दिवसीय १ से १०, ११ से २०, २१ से ३० को चला करेंगे। जिसमें प्रवेश पाना हो उसके लिए आवेदन-पत्र भेजते समय साथ में यह भी लिख देना चाहिए कि यदि इच्छित सत्र में स्थान भर गया हो तो अन्य किसी सत्र में स्थान दिया जाय।

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

रु. १५)

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

रु. १५)

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

रु. १५)

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

रु. १५)

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

रु. १५)

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

रु. १५)

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

रु. १५)

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

रु. १५)

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

अखण्ड
सन् १९८३

क्रमांक

श्री

प्रापता

से सन् १९८३

पन्द्रह रुप

रु. १५

अखण्ड
सन् १९८३

क्रमांक

श्री

प्रापता

से सन् १९८३

पन्द्रह रुप

रु. १५

अखण्ड
सन् १९८३

क्रमांक

श्री

प्रापता

से सन् १९८३

पन्द्रह रुप

रु. १५

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

से सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क
पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

से सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क
पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

से सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क
पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए,
धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए,
धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए,
धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ३

सन् १९८३

क्रमांक

श्री

प्रापता

से सन् १९८३

पन्द्रह रुप

रु. १५

अखण्ड ३

सन् १९८३

क्रमांक

श्री

प्रापता

से सन् १९८३

पन्द्रह रुप

रु. १५

अखण्ड ३

सन् १९८३

क्रमांक

श्री

प्रापता

से सन् १९८३

पन्द्रह रुप

रु. १५

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

से सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क
पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

से सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क
पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

से सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क
पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए,
धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए,
धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए,
धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड
सन् १६८३

क्रमांक

श्री

प्रापता

से सन् १६८३

पन्द्रह रुप

रु. १५

अखण्ड
सन् १६८३

क्रमांक

श्री

प्रापता

से सन् १६८३

पन्द्रह रुप

रु. १५

अखण्ड
सन् १६८३

क्रमांक

श्री

प्रापता

से सन् १६८३

पन्द्रह रुप

रु. १५

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

से सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क
पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

से सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क
पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

से सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क
पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए, धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए,
धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए,
धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क

क्रमांक दिनांक

श्री

पूरापता

सन् १९८३ का सदस्यता शुल्क पन्द्रह रुपये प्राप्त हुए,
धन्यवाद

रु. १५)

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता

१० गु

गाय

हजा

वह्योग ए

स्वरूप वि

के आधा

ताभ उठा

गुरु के स

जिज्ञासा

समाधान

१-२

(२) गाय

हिक गाय

चित्रावली

सम्बन्धी

(अ)

वाले ३२

उपासना

प्रकाश ड

महत्व अ

मात्र १५

इस प्रका

१.

गुप्त शक्ति

का शक्ति

प्राण प्रवि

७. गाय

विशेष स

१०. गाय

१२. गाय

गायत्री ३

गायत्री ४

विधि मू

से (द)

अध्यात

प्रस

प्रमाण

शास्त्र,

गाय है

१० गुरुदेव प्रणीत अध्यात्मविद्याके अमूल्य ग्रन्थ रत्न

गायत्री-विद्या के अमूल्य ग्रन्थरत्न

हजारों ग्रन्थों की खोज, अगणिता गायत्री उपासकों के सहयोग एवं चालीस वर्ष की व्यक्तिगत साधना के फल-स्वरूप विनिर्मित इन ग्रन्थों की एक-एक पंक्ति अनुभव के आधार पर लिखी गई है। गायत्री साधना से समुचित लाभ उठाने के इच्छुकों के लिए यह साहित्य अनुभवी गुरु के समान पथ-प्रदर्शन करता है। इस विषय की सभी जिज्ञासाओं तथा शंकाओं का इन पुस्तकों में समुचित समाधान मौजूद है।

१-गायत्री महाविज्ञान सजिल्द (तीनों भाग) २२.५०
(२) गायत्री यज्ञ विधान (प्रथम भाग) ३.०० (३) सामूहिक गायत्री यज्ञ विधान (द्वितीय भाग) ३.०० (४) गायत्री चित्रावली ४.०० (५) गायत्री मन्त्रार्थ ३.५० (६) गायत्री सम्बन्धी छोटा प्रचार साहित्य।

(अ) छोटा गायत्री ट्रैक्ट साहित्य सैट—आकर्षक कवरों वाले ३२-३२ पृष्ठ के गायत्री ट्रैक्ट जिनमें गायत्री उपासना तथा उसकी वैज्ञानिकता पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। प्रचार की दृष्टि से इन ट्रैक्टों का महत्व असाधारण है। प्रत्येक ट्रैक्ट का मू० ८० पैसा मात्र १५ पुस्तकों के सैट का मू० १२.०० ट्रैक्टों के नाम इस प्रकार हैं।

१. गायत्री का स्वरूप और रहस्य। २. गायत्री की गुप्त शक्ति। ३. सर्वसुलभ गायत्री साधना। ४. गायत्री का शक्तिस्त्रोत सविता देवता। ५. गायत्री और उसकी प्राण प्रक्रिया। ६. गायत्री पंचमुखी और एकमुखी। ७. गायत्री की पंचविधि दैनिक साधना। ८. गायत्री की विशेष साधना। ९. गायत्री मन्त्र की विलक्षण शक्ति। १०. गायत्री की असंख्य शक्तियाँ। ११. गायत्री की सिद्धियाँ। १२. गायत्री शक्ति का नारी स्वरूप। १३. स्त्रियों का गायत्री अधिकार। १४. गायत्री और यज्ञोपवीत। १५. गायत्री और यज्ञ का सम्बन्ध। (ब) संक्षिप्त गायत्री हवन विधि मू० ६० पैसे। (स) दैनिक गायत्री साधना मू० ६० पैसे (द) गायत्री चालीसा मू० १० पैसे।

अध्यात्म का वैज्ञानिक प्रतिपादन साहित्य

प्रस्तुत बुद्धिवादी युग में तर्क, तथ्य, प्रत्यक्ष, प्रमाण एवं विज्ञान को प्रामाणिकता मिली है और शास्त्र, श्रद्धा एवं आप्त वचनों को अमान्य किया गया है। इस मनःस्थिति में पनपने वाले नास्तिक-

वाद एवं स्वेच्छाचार को निरस्त करने के लिए युगदृष्टा गुरुदेव की लेखनी से अभिनव युग साहित्य सृजा गया है। प्रत्येक पुस्तक बिचारशील वर्ग के लिए अत्यन्त प्रेरणाप्रद है।

(१) विवाद से परे ईश्वर का अस्तित्व, (२) ईश्वर कौन है? कहाँ है? 'सा है? (३) दृश्य जगत के अदृश्य संचालन सूत्र, (४) चेतना की प्रचण्ड-क्षमता एक दर्शन, (५) असीम पर निर्भर ससीम जीवन, (६) मनुष्य चरिता-फिरता पेड़ नहीं है, (७) पाँच प्राण-पाँच देव, (८) दिव्य-शक्तियों का उद्भव प्राण शक्ति से, (९) मानवीय क्षमता-असीम अप्रत्याशित, (१०) अणु में विभु—गागर में सागर, (११) आत्मा न नर है, न नारी, (१२) मानवीय मस्तिष्क विलक्षण कम्प्यूटर, (१३) अतीन्द्रिय क्षमताओं की पृष्ठभूमि, (१४) जड़ के भीतर विवेकवान चेतना, (१५) शरीर की अद्भुत क्षमताएँ और विलक्षणताएँ, (१६) मस्तिष्क प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष, (१७) क्या धर्म अफीम की गोली है? (१८) धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं पूरक, (१९) विज्ञान को शैतान बनने से रोकें, (२०) पुनर्जन्म एक ध्रुव सत्य, (२१) स्वर्ग नरक की स्वसंचालित प्रक्रिया, (२२) तात्त्विक दृष्टि से बन्धन मुक्ति, (२३) मरें तो सही पर बुद्धिमत्ता के साथ, (२४) भूत कैसे होते हैं? क्या करते हैं? (२५) पितरों को श्रद्धा दें—वे शक्ति देंगे, (२६) सपने झूठे भी सच्चे भी, (२७) शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म, (२८) आध्यात्मिक काम विज्ञान, (२९) जीव-जन्तु बोलते भी हैं सोचते भी हैं (३०) संसार चक्र की गति प्रगति, (३१) असामान्य एवं विलक्षण, किन्तु सम्भव और सुलभ, (३२) मनुष्य गिरा हुआ देवता या उठा हुआ पशु, (३३) दृश्य-जगत की अदृश्य पहलियाँ, (३४) हम सब एक दूसरे पर निर्भर, (३५) चेतना का सहज स्वभाव-स्नेह, सहयोग (३६) सहृदयता आत्मिक प्रगति के लिए अनिवार्य, (३७) बच्चे बढ़ाकर अपने पैरों कुल्हाड़ी न मारें, (३८) युग शक्ति गायत्री का अभिनव अवतरण, (३९) ब्रह्मवर्चस् की ध्यान-धारणा, (४०) कुण्डलिनी महाशक्ति और उसकी संसिद्धि, (४१) सर्वोपयोगी गायत्री साधना, (४२) गायत्री के पाँच मुख पाँच दिव्य कोश।

प्रत्येक की छपाई-सफाई सुन्दर! कवर आकर्षक। पृष्ठ संख्या ११२, मूल्य तीन रुपया। डाक व्यय अलग। पूरे सैट का मूल्य ११०) डाक व्यय मुफ्त।

अखण्ड-ज्योति प्रकाशन, मथुरा।

अपना दीप जलाओ

अपना दीप जलाओ साथी, करो ज्योति अगवानी !

साथी करो ज्योति अगवानी !!

अन्धकार के पाँव न पूजो, अपनी ज्योति उतारो,

ओ प्रकाश के पुंज, जागकर अपनी ओर निहारो ।

तुम जागे हो नहीं, इसी से, छाया छद्म अँधेरा,

जब प्रकटेगा सूर्य तुम्हारा, होगा नया सबेरा ।

तुम सविता के पुत्र, तेज की तुमको मिली जवानी !

साथी करो ज्योति अगवानी !!

सूर्य-सुतों की क्षीण तपस्या, तभी रात ने घेरा,

वर्ना अरुणोदय के घर में, है क्या चीज अँधेरा ?

काला कोट पहनकर निकला, क्या आलोक निराला,

तम से समझौता कर बैठा, क्या सुर-लोक-उजाला ?

है अचरज की बात, प्रात से रात करे मनमानी !

साथी करो ज्योति अगवानी !!

सूरज की जिम्मेदारी है, हँसता भोर रचाये ,

किरणों की जिम्मेदारी है, कण-कण को नहलाये ।

सूरज का आगवन, बताती हँसती मिलें उषाये ,

फूल-फूल मुस्कान बिखेरे, गाती मिलें दिशाये ।

प्राण परसती पवन उतारे, भूपर सुरभि सुहानी !

साथी करो ज्योति अगवानी !!

तन-मन-जीवन स्वच्छ, तुम्हारा है प्रकाश की गीता,

गंगा-गायत्री माता, देवी सावित्री सीता ।

देव शक्ति ने सदा समर में, असुर शक्ति को जीता,

शान्ति-साधना-चिरसंगिनि बन, रही क्रांति परिणीता।

कण-कण को आलोक पिलाती है जीवन्त कहानी!

अपना दीप जलाओ, साथी करो ज्योति अगवानी !!

—लाखनसिंह भदौरिया, ‘सौमित्र’

सम्पादक—भगवती देवी शर्मा प्रकाशक व मुद्रक—मृत्युञ्जय शर्मा, अखण्ड-ज्योति संस्थान द्वारा
जन-जागरण प्रेस मथुरा २८१००३ में मुद्रित ।

मासिक

थान द्वारा

Stock Verification-2004

Stock Verification-2004

